

ISSN 2348-8425

सत्राची

A UGC-CARE Enlisted
Peer Reviewed Research Journal
(Impact Factor 5.361)

वर्ष 10, शंक 36, नं. 5
जुलाई-शितम्बर, 2022

संपादक
आनन्द बिहारी

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

ISSN : 2348-8425

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 10, अंक 36, नं. 5, जुलाई-सितम्बर, 2022

प्रधान संपादक
कमलेश वर्मा

संपादक
आनन्द बिहारी

समीक्षा संपादक
सुचिता वर्मा, आशुतोष पार्थेश्वर

सह-संपादक
जयप्रकाश सिंह, हुशन आरा

संहायक संपादक
प्रीति चौधरी, भावना मिश्रा

सलाहकार समिति व समीक्षा मंडल

मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, प्राध्यापक, शांति निकेतन, प.बंगाल।
अनीता राकेश, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, जे.पी.विश्वविद्यालय, छपरा।
सुचिता वर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी, वाराणसी।
आशुतोष पार्थेश्वर, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी, इलाहाबाद।
प्रवीन कुमार यादव, असिस्टेंट प्रोफेसर, रा.पी.जी.कॉ., आलापुर, अम्बेडकर नगर।
राजू रंजन प्रसाद, असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, मुजफ्फरपुर।
नीरा चौधुरी, प्राध्यापक, संगीत, पटना।
अरविन्द कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत, पटना।



SATRAACHEE

Peer Reviewed and Refereed Research Journal

UGC Care Listed Journal

मूल्य : ₹ 250

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक	: 4,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	: 10,000 रुपए (संस्थागत)
आजीवन	: 10,000 रुपए (व्यक्तिगत)
	: 20,000 रुपए (संस्थागत)
दो वर्ष	: 1500 रुपए (केवल पी.डी.एफ.)
पंचवार्षिक	: 2500 रुपए (केवल पी.डी.एफ.)

बैंक खाते का विवरण :

SATRAACHEE FOUNDATION,
A/c No. 40034072172, IFSC : SBIN0006551,
Boring Canal Rd.-Rajapool, East Boring Canal Road,
Patna, Bihar, Pin: 800001

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादन/प्रकाशन : अखिल भारतीय/अखिल भारतीय

प्रकाशक : सत्राची फाउंडेशन, पटना

संपादकीय संपर्क :

आनन्द बिहारी

कला कुंज, दूसरा तल्ला

बाजार समिति रोड, बहादुरपुर, पटना, पिन : 800016

Website : <http://satraachee.com>
: <http://satraachee.org.in>

E-mail : satraachee@gmail.com

Mob. : 9661792414, 9470738162 (A.Bihari.)



SATRAACHEE

इस अंक में...

- 05 :: संपादकीय - आनन्द बिहारी
- 07 :: अब्राहमिक धर्मों में जाति प्रथा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण - प्रवेश कुमार
- 17 :: डॉ. भीमराव अम्बेडकर की सामाजिक दृष्टि : हिंदू कोड बिल एवं नारी उत्थान के विशेष संदर्भ में - शशिकांत कुमार
- 26 :: भूमंडलीकरण एवं पर्यावरणीय राजनीति का समालोचनात्मक अध्ययन - प्रमोद कुमार
- 33 :: दलित आत्मकथा : जाति, गरिमा और सामाजिक पहचान का विमर्श - संजीव कुमार
- 39 :: उन्नीसवीं सदी का समाजसुधार : अग्र से पार्श्व तक की यात्रा - सुधांशु कुमार
- 47 :: खेत के रूपक में स्त्री - रंजना पाल
- 52 :: पर्यावरणीय राजनीतिक सिद्धांत एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का तुलनात्मक अध्ययन - प्रमोद कुमार
नेहा सिंह
- 59 :: हिंद महासागर में बढ़ती भारत और चीन की प्रतिस्पर्धा - अरुण यादव
का समग्र आकलन डॉ. विवेक कुमार मिश्र
- 68 :: भारतीय संस्कृति और विश्व मानवता का सिद्धांत - रेखा यादव
- 77 :: सामाजिक संरचना का संविधान : याज्ञवल्क्यस्मृति - सुबोधकांत मिश्र
श्वेता तिवारी
- 84 :: 'बूया' : जिशी जनजाति का लोकनृत्य - तेजी यापेरा
प्रो. शिवम चतुर्वेदी
- 88 :: मानवतावाद और धर्म : एक दार्शनिक अनुशीलन - प्रियंका देवी
- 96 :: राष्ट्रवाद एवं बिहार में पत्रकारिता - अक्षय कुमार
डॉ. मो. निजामुद्दीन रिजवी
- 102 :: इक्कीसवीं सदी के संदर्भ में भारत और चीन के समकालीन - अरुण यादव
आर्थिक एवं सामरिक संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन डॉ. विवेक कुमार मिश्र
- 111 :: भगवतगीता में कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग का समन्वय - वरुण प्रकाश
- 115 :: निम्नवर्गीय समुदायों के लिए तुले के सामाजिक-सांस्कृतिक - प्रीति गुप्ता
विचारों की प्रासंगिकता : झारखंड के भुइया समुदाय का विशेष संदर्भ

- 124 :: सीरियाई गृह युद्ध : एक विस्तृत विश्लेषण - सुभाष सिंह
सलीम अहमद
- 136 :: नव प्रवेशित स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के व्यावसायिक रुचि का अध्ययन - दिग्विजय सिंह
राहुल बाल्मीकि
- 149 :: राजस्थान के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र सीकर जिले में सूखे की स्थिति एवं उसका प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन - बीरबल लूनीवाल
- 160 :: ग्रामीण क्षेत्र की महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना के प्रति जागरूकता का अध्ययन - मंजू सिंह
डॉ. अनुपम कुमार वर्मा
- 171 :: उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन एवं उसका प्रभाव - अजीत कुमार सरोज
डॉ. चंद्रैया गोपानी
- 181 :: प्रेमचंद की बाल कहानियों का मूल्यांकन - सुनील कुमार 'सुमन'
- 187 :: हिंदी रंगमंच में अनूदित नाटक - नीतू शर्मा
- 192 :: इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में प्रतिरोध का जातीय स्वर - मणि रंजन राय
- 199 :: सुधि मेरे आगम की : यमदीप - अंकिता त्रिपाठी
- 206 :: प्राचीन भारत में कृषिप्रबंधन - राजीव रंजन
अवधेश प्रताप सिंह
- 212 :: पतञ्जलिकालीन भारत और वर्तमान : एक अध्ययन - रंजन कुमार त्रिपाठी
- 223 :: यमी : यम-यमी संवादसूक्त के दृष्टिकोण से - श्रुति राय
- 230 :: संस्कृतभाषायाः संवर्धने राजस्थानस्य शासकानां योगदानम् - पिकी कुमारी
उमाशंकर
- 235 :: प्रवासी साहित्य : पारिभाषिक अवधारणा एवं पहचान - मुलायम सिंह
- 239 :: 21वीं सदी की कहानीकार क्षमा शर्मा की कहानियों में नारी पात्रों का विवेचन - गीता



यह अंक...

यूजीसी केयर सूची में शामिल होने के बाद सत्राची का यह पहला अंक है। इस अंक से सत्राची की व्यापकता और स्वीकार्यता में स्पष्ट विस्तार हुआ है। पहले इस पत्रिका की स्वीकार्यता उत्तर भारत के हिंदी लेखकों में अपेक्षाकृत अधिक थी। इस अंक के प्रकाशन के साथ ही सत्राची ने उत्तर भारत और दक्षिण भारत के हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के लेखकों के बीच समान रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। यह हमारे लिए अत्यंत हर्ष और संतोष की बात है। हमारी कामना है कि सत्राची को अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी और अंग्रेजी लेखकों का सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा। इसी कामना के साथ पत्रिका की गुणवत्ता को प्राथमिकता दी गई है। सत्राची फाउंडेशन अपने उद्देश्यों के प्रति सजग है। मानक (स्तरीय) शोध के प्रकाशन के साथ-साथ इस संस्था ने साहित्य की गतिविधियों में भी अपनी सक्रियता कायम रखी है। इस गतिविधि का सुखद परिणाम 20 सितम्बर 2022 को बनारस की धरती पर देखने को मिला। प्रो. चौथी राम यादव को वर्ष 2022 के सत्राची सम्मान से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर 85 वर्षीय हिन्दी साहित्य के उपन्यासकार श्री काशीनाथ सिंह और उनके शिष्य, प्रख्यात हिन्दी आलोचक एवं गहन शोधकर्ता प्रो. वीर भारत तलवार की उपस्थिति रही। इसे ऐतिहासिक कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है। प्रो. काशीनाथ सिंह और प्रो. वीर भारत तलवार ने प्रो. चौथी राम यादव को सम्मान स्वरूप 51 हजार रुपए, अंगवस्त्र और प्रतीक चिन्ह भेंट किया। सत्राची सम्मान के लिए प्रो. चौथी राम यादव के चयन पर प्रो. काशीनाथ सिंह ने कहा कि वह बिल्कुल सही व्यक्ति हैं और इस चयन पर किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता, क्योंकि जिस चयन समिति के अध्यक्ष प्रो. वीर भारत तलवार हैं, उसमें किसी प्रकार की शंका की गुंजाइश नहीं हो सकती। अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो. वीर भारत तलवार ने प्रो. चौथी राम यादव के लेखन की विशेषताओं पर प्रकाश डाला। इस मत में चौथी राम यादव व्यवस्थित रूप से दलित आलोचक हैं। उनकी लेखनी की यह विशेषता किसी अन्य आलोचना में नहीं दिखती। सम्मान समारोह में बनारस के साहित्य प्रेमियों, विद्यार्थियों और अध्यापकों का उत्साह और सहयोग बनाए रखना आवश्यक है। आरंभ से अंत तक जिस तरह से उनके आत्मीय प्रशासन की झलक देखने को मिली, वह दुर्लभ है। यह बहुत दुर्लभ है कि किसी सम्मान समारोह में आमंत्रित प्रतिष्ठित साहित्यकार और प्रोफेसर कार्यकर्ता के रूप में कार्य करें और समारोह को सफल बनाने का प्रयास करें। भारत की ओर से यह कोई साधारण आयोजन नहीं है। वास्तव में यह वह संदेश है जिसे सत्राची फाउंडेशन के पक्ष में देखा जाना चाहिए। यह हमारी सच्ची सेवाओं का शुभ परिणाम है कि इतने कम समय में सत्राची फाउंडेशन और सत्राची पत्रिका को लेखकों, विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने आगे बढ़ाने

के लिए स्वीकार कर लिया है, उनसे सहयोग और स्नेह की वर्षा होने लगी है। ऐसे स्नेह और सहयोग को मैं नमन करता हूँ। सत्राची पत्रिका के 24वें अंक का यह पांचवां भाग है। इस अंक में संकलित सभी लेख हिंदी भाषा में हैं। विषयों की विविधता भी यहाँ देखी जा सकती है। विविधता के बावजूद सभी आलेख सामाजिक सरोकार से जुड़े हैं तथा समसामयिक समस्याओं को समझाने का प्रयास करते हैं। लेखकों की मौलिकता एवं प्रस्तुति भी सराहनीय है। इसके बावजूद सभी आलेखों को शुद्ध शोध पत्र की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आमतौर पर आलेखों में शोध रिपोर्ट एवं शोध पत्र का अंतर नहीं दिखाई देता। यह दोनों का मिश्रण जैसा है। चयनित विषय पर पूर्व शोध कार्य की स्थापना एवं पूर्णता को ध्यान में रखते हुए साक्ष्यों के साथ अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करना शोध पत्र की पहचान है, जबकि शोध रिपोर्ट में तथ्यों के प्रस्तुतीकरण पर ध्यान दिया जाता है। मानक (स्तरीय) शोध पत्रिका में शोध पत्रों को प्राथमिकता दी जाती है। लेकिन यहाँ ऐसा नहीं किया गया है। शोध पत्र के रूप में प्रस्तुत शोध रिपोर्ट को विशेषज्ञों की अनुशंसा पर शामिल किया गया है। इसका एकमात्र कारण यह है कि इनमें इतना कुछ है कि इसे प्रकाशित करने से शोधकर्ताओं को ठोस सामग्री मिल सकेगी। हमें उम्मीद है कि यह अंक पाठकों एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

सादर,

- आनन्द बिहारी

अब्राहमिक धर्मों में जाति प्रथा : एक ऐतिहासिक विश्लेषण

○ प्रवेश कुमार¹

संक्षिप्ति

केंद्र सरकार ने अक्टूबर 2022 में भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के.जी. बालकृष्णन के नेतृत्व में एक नया आयोग नियुक्त किया जो न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा आयोग (2007) की रिपोर्ट की जांच करेगा। इस रिपोर्ट ने अब्राहमिक धर्मों (इस्लाम या ईसाई धर्म) में परिवर्तित दलितों को आरक्षण के लाभों के विस्तार का समर्थन किया था। इस आयोग की स्थापना विशेष रूप से यह जांचने के लिए की गई है कि क्या धर्म परिवर्तन के बाद भी किसी दलित को अनुसूचित जाति का दर्जा मिलना चाहिए? यह विषय विभिन्न मीडिया मंचों, शैक्षणिक मंचों और रोजमर्रा के घरों में बहस और चर्चा का मुद्दा बना हुआ है। जाति प्रथा जैसे संवेदनशील मुद्दे का अध्ययन और विश्लेषण हमेशा से महत्वपूर्ण रहा है, एक ओर इसकी आंतरिक विरोधाभासों और अस्पष्टताओं के कारण और दूसरी ओर समाज की अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति में इसकी गहरी जड़ें होने के कारण। इस लेख के माध्यम से हम अब्राहमिक धर्मों में जाति प्रथा की ऐतिहासिक उत्पत्ति का संक्षेप में अध्ययन करने का प्रयास करेंगे। इसके अलावा, हम उन प्रमुख कारणों और कारकों की जांच करेंगे जिन्होंने ऐसे व्यापक धर्मांतरणों को प्रेरित किया है। इसलिए इस अध्ययन के माध्यम से, मैं इस समस्या के लिए ठोस तर्क और उपाय प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा।

बीज शब्द : जाति प्रथा, के.जी. बालकृष्णन, अनुसूचित जाति, अब्राहमिक धर्म, धर्मांतरण

केंद्र सरकार द्वारा भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के.जी. बालकृष्णन के निर्देशन में तीन सदस्यीय समिति गठित किए हुए बहुत समय बीत चुका है। इस समिति का उद्देश्य उन लोगों को अनुसूचित जाति (एससी) का दर्जा देने के मुद्दे की जांच करना है, जो ऐतिहासिक रूप से एससी समुदाय से संबंधित थे, लेकिन हिंदू धर्म, सिख धर्म या बौद्ध धर्म के अलावा किसी अन्य धर्म में परिवर्तित हो जाने के कारण वे इस दर्जे के लिए

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, सी०सी०पी०पी०टी० स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

नामांकित नहीं हो पाए। यह सरकार का एक महत्वपूर्ण प्रयास है जिससे इस मुद्दे पर अपनी स्थिति स्पष्ट की जा सकेगी और सर्वोच्च न्यायालय को उन कई जनहित याचिकाओं पर निर्णय लेने में सहायता मिलेगी जो अब्राहमिक धर्मों में परिवर्तित दलित समुदायों द्वारा दायर की गई हैं। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा की गई घोषणा के अनुसार, जबकि कुछ समूह अनुसूचित जाति की वर्तमान परिभाषा की समीक्षा करने की आवश्यकता पर प्रश्न उठा रहे हैं (अनुच्छेद 341 से परे), कुछ मौजूदा अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों ने धर्मांतरित व्यक्तियों को अनुसूचित जाति का दर्जा दिए जाने का विरोध किया है। सरकार इस बात से अवगत है कि यह एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक और संवैधानिक विषय है और यह निस्संदेह सार्वजनिक हित का एक बड़ा मुद्दा है।

ऐसे संवेदनशील मामलों को यदि सावधानीपूर्वक नहीं संभाला गया तो इसके गंभीर और संभावित परिणाम हो सकते हैं। दलित मुस्लिमों और ईसाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठनों का दावा है कि उनका धर्मांतरण उनके खिलाफ होने वाले भेदभाव को नहीं रोक पाया है। उनके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में कई याचिकाएं और जनहित याचिकाएं दाखिल की गई हैं। इसलिए हमें विद्वान शोधकर्ताओं के रूप में इस जटिल मुद्दे के अंतर्निहित कारणों की पहचान करनी चाहिए और यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि भारत की जाति व्यवस्था का ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ है और विभिन्न धर्मों में जाति की उपस्थिति कैसी है। एक व्यावहारिक समाधान ढूंढने के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि उन कई प्रभावशाली कारकों को समझा जाए जो लोगों को धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करते हैं। धर्म परिवर्तन के बाद मिलने वाले लाभों और व्यवहार की तुलनात्मक समीक्षा भी आवश्यक है।

भारत में जाति प्रथा का संक्षिप्त इतिहास

‘जाति’ या ‘जाती’ शब्द स्पेनिश और पुर्तगाली शब्द ‘कास्टा’ से आया है, जिसका उपयोग नस्ल, वंश या वंशावली को दर्शाने के लिए किया जाता था। 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने सबसे पहले इस शब्द का भारतीय संदर्भ में उपयोग किया। ‘जाति’ एक जटिल शब्द है जिसे विद्वानों के लिए परिभाषित करना और सहमत बनाना कठिन रहा है। पश्चिमी विद्वानों की शुरुआत से जैसे कि सर एच. एच. रिसले ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Tribes and Caste of Bengal" (1891) में जाति को उन परिवारों के समूह के रूप में परिभाषित किया जिनके पास सामान्य नाम होता है और जो आमतौर पर एक विशिष्ट पेशे से जुड़े होते हैं। ये परिवार एक काल्पनिक पूर्वज से उत्पत्ति का दावा करते हैं जो मानव या देवता हो सकता है और समान व्यावसायिक कार्यों का पालन करते हैं। उन्हें एक समान, समरूप समुदाय के रूप में देखा जाता है। अमेरिकी समाजशास्त्री सी. एच. कूली ने अपनी रचना "Social Organization" (1909) में कहा, ‘जाति एक वर्ग है जो काफी हद तक वंशानुगत होती है।’ इतिहासकार पेरी एंडरसन अपनी पुस्तक "The Indian Ideology" में जाति को सेवाओं और कार्यों पर आधारित एक समूह प्रणाली के रूप में वर्णित करते हैं। उनका मानना था कि यह एक पूरी तरह समावेशी व्यवस्था थी जिसमें किसी साझा धर्मसिद्धांत की आवश्यकता नहीं थी और प्रत्येक समूह को अपनी पूरी स्वतंत्रता दी गई थी।

भारत में जाति प्रथा पर विद्वता की शुरुआत महात्मा जोतिबा फुले से होती है जो पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिंदू समाज के उत्पीड़ित और अछूत बहिष्कृत जातियों के लिए ‘दलित’ शब्द का उपयोग किया। अपनी प्रसिद्ध कृति ‘गुलामगिरी’ (1873) में फुले ने जाति प्रथा पर प्रहार करते हुए ‘जाति व्यवस्था के नस्ल सिद्धांत’ की रूपरेखा तैयार की। इस सिद्धांत के अनुसार, एक श्रेष्ठ, बाहरी नस्ल ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया और वे

ब्राह्मण बने, जबकि निम्न, स्थानीय निवासी अधीन हो गए और शूद्र (निम्न जातियाँ) बन गए। भारतीय जाति प्रथा का अध्ययन डॉ. बी. आर. आंबेडकर के योगदान के बिना अधूरा रहेगा। आंबेडकर ने जाति को एक विचार और सोचने के तरीके के रूप में देखा। उनके सिद्धांत के अनुसार जाति प्रथा ने शुद्ध और अशुद्ध को असमान सामाजिक पदानुक्रम के विपरीत ध्रुवों के रूप में स्थापित किया। भारतीय लेखकों जैसे डी. एन. मजूमदार और टी. एन. मदान ने जाति को एक बंद समूह के रूप में परिभाषित किया जहाँ लोग शारीरिक निकटता के आधार पर नहीं बल्कि साझा मूल्यों और संचालन के तरीकों के कारण समूह बनाते हैं जो उच्च और निम्न वर्गों में विभाजन का निर्माण करते हैं। ऐसे समूहों के सदस्यों में एक ऐसा गुण होना चाहिए जो अन्य लोग प्राप्त नहीं कर सकते। डॉ. केतकर इस परिभाषा में यह भी जोड़ते हैं कि सदस्यों को समूह के बाहर विवाह करने से सख्त सामाजिक आदेश द्वारा रोका जाता है। प्रत्येक जाति समूह का एक विशिष्ट नाम होता है जो उससे जुड़ा होता है।

इस प्रकार जाति व्यवस्था के वर्णन की जांच करने के बाद यह स्पष्ट है कि इसके मूल घटक अंतर्विवाह, धार्मिक अनुशासन, जन्म और पुनर्जन्म पर आधारित पदानुक्रम, सामाजिक-आर्थिक निर्भरता, और बहिष्कृत निम्नस्तर (आउटकास्ट सबस्ट्रेटम) हैं (मेसन ओल्कॉट, 1944)। हालाँकि यह एक जटिल अध्ययन है कि जाति व्यवस्था की उत्पत्ति किस प्रकार हुई या किन कारकों ने इसे प्रभावित किया। जाति का अध्ययन करने वाले कई विद्वान 'एकल-कारण भ्रांति' (सिंगल-कॉज फॉलसी) का शिकार हुए हैं। कुछ का कहना है कि जाति व्यवस्था की उत्पत्ति जनजातीय प्रणाली के माध्यम से हुई थी या यह नस्लीय भेदभाव और उच्चविवाह (हाइपरगैमी) की आवश्यकता या व्यवसाय के कारण उत्पन्न हुई थी। हालाँकि मेसन ओल्कॉट ने भोजन और व्यावसायिक वर्जनाओं, जनजातीय एकजुटता, नस्लीय शुद्धता की इच्छा, संघ स्थायित्व (गिल्ड पर्पेचुएशन), धार्मिक सिद्धांतों और प्रवासन जैसे कई कारकों का हवाला दिया, जिनका विभिन्न समयों और स्थानों पर विभिन्न शक्तियों के साथ संयोजन हुआ और इसके परिणामस्वरूप जातियों की स्थापना हुई।

सुसान बेली के व्यापक ऐतिहासिक विश्लेषण के अनुसार, "Caste, Society, and Politics in India" पुस्तक में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति 1500 ईसा पूर्व के आसपास खोजी जा सकती है। उस समय जाति 'वर्ण व्यवस्था' के रूप में थी। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों ने पदानुक्रम में शीर्ष स्थान प्राप्त किया और हिंदू मंदिरों में पुजारी की भूमिकाएँ निभाई, क्षत्रिय योद्धाओं और राजाओं से जुड़े थे, वैश्य व्यापारी वर्ग से जुड़े थे, और शूद्र, जो सामाजिक व्यवस्था में चौथे स्थान पर थे अकुशल श्रमिक थे। इस सामाजिक श्रेणीकरण को प्राचीन धार्मिक ग्रंथों जैसे वेद, भगवद गीता और महाभारत में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया जिससे इसे धार्मिक मान्यता मिली। एबेनेजर सुंदर राज (1985) के अनुसार, प्रवास और धर्म भी भारत में जाति की उत्पत्ति के दो अन्य कारण हैं। विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक और धार्मिक उथल-पुथल ने विभिन्न समूहों को प्रवास करने और सीमाओं को पार करने के लिए मजबूर किया। हिंदू धर्म में कई उप-जातियाँ इन विविध धार्मिक समुदायों के बीच संपर्क के परिणामस्वरूप बनीं। निकोलस डिक अपनी कृति, "Caste of Mind" में बताते हैं कि वर्तमान में जो जाति व्यवस्था हम देखते हैं वह प्राचीन नहीं है बल्कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद के बाद उत्पन्न हुई है। बेली इस बात से सहमत हैं कि औपनिवेशिक शासन ने भारत में जाति नियमों और परंपराओं को व्यापक रूप से विस्तारित और सख्त किया।

भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद 1948 में जाति-आधारित भेदभाव को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया लेकिन यह 1950 में भारतीय संविधान निर्माताओं के बीच एक स्थायी तत्व बना रहा। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, और अन्य पिछड़े वर्गों को उन्नत करने के लिए संविधान में कई प्रावधान स्थापित किए

गए। संविधान (अनुसूचित जातियाँ) आदेश, 1950 के अनुसार, कोई भी व्यक्ति जो हिंदू, सिख, या बौद्ध धर्म का पालन नहीं करता, उसे अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जा सकता है। 1956 में सिखों को इस वर्गीकरण में जोड़ा गया जिसमें पहले केवल हिंदू शामिल थे और 1990 में बौद्धों को जोड़ा गया। नियमों के अनुसार भारत में सरकारी नौकरियों और उच्च शिक्षा संस्थानों में लगभग 60% सीटें विभिन्न वर्गों जैसे कि एसटी, एससी, ओबीसी, और ईडब्ल्यूएस के लिए आरक्षित हैं।

भारतीय संविधान में अनुच्छेद 14, 15, 16, और 18 समानता के अधिकार का उल्लेख करते हैं। अनुच्छेद 29, 46, 243, 330, 332, और 335 के अनुसार, राज्य को इन समूहों की वर्तमान परिस्थितियों को सुधारने के लिए विशेष ध्यान और विकास प्रदान करना चाहिए। अनुसूचित जातियों की सुरक्षा की निगरानी के लिए 1978 में सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के तहत अनुच्छेद 338 के अंतर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (एनसीएससी) की स्थापना की गई थी। 1931 में और अंतिम बार 2011 में सरकार द्वारा नागरिकों की आर्थिक स्थिति का पता लगाने के लिए सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना (एसईसीसी) की गई थी, ताकि विभिन्न जाति समूहों का आकलन किया जा सके और उनके उत्थान के लिए नई नीतियाँ और योजनाएँ बनाई जा सकें।

अब्राहमिक धर्मों में प्रचलित जाति प्रणाली

अब्राहमिक धर्म - इस्लाम और ईसाईयत ने ऐतिहासिक रूप से समानता का समर्थन किया है और जाति तथा अन्य सामाजिक पदानुक्रमों का विरोध किया है। यह सत्य है कि हिंदू धर्म के विपरीत भेदभाव को अब्राहमिक धर्मग्रंथों से नहीं जोड़ा जा सकता। इस्लाम समानता और भ्रातृत्व की प्रबल वकालत करता है क्योंकि जातियों का उल्लेख इस धर्म की शब्दावली में नहीं है। मुसलमानों में जन्म या पदानुक्रम के संदर्भ में पवित्रता और अपवित्रता की विचारधारा नहीं है, और उनका विभाजन तंत्र एक समग्र दर्शन से रहित है जो मौजूदा भिन्नताओं पर विचार करता हो। इस्लाम सभी लोगों की एक ही ईश्वर के सामने समानता की पुष्टि करता है और न ही किसी पेशेवर या वंशानुगत बिचौलियों की आवश्यकता को स्वीकार करता है। संयुक्त प्रार्थनाएँ, अंतर्विवाह और सामूहिक भोज जैसे उदाहरण मुसलमानों द्वारा अपनाई गई समानता को प्रदर्शित करते हैं।

इसलिए, फ्रांसीसी शोधकर्ता लुइस ड्यूमॉन्ट, जिन्होंने 1966 में 'होमो हायरैरिकस' नामक पुस्तक प्रकाशित की, के अनुसार मुस्लिम समाजों में जाति की बजाय मुख्य रूप से सामाजिक-आर्थिक विभाजन ही लोगों को अलग करता है। पैगंबर मुहम्मद के प्रसिद्ध विदाई खुत्बे के अनुसार, 'किसी अरब को गैर-अरब पर और गैर-अरब को अरब पर, न ही किसी गोरे को काले पर और न ही काले को गोरे पर कोई श्रेष्ठता है। इसके अतिरिक्त, इस्लाम में एक प्रसिद्ध कथा एक इथियोपियाई गुलाम बिलाल की है, जो अपनी धार्मिकता और अद्भुत आवाज के कारण इस्लामी दुनिया के पहले मुअज्जिन बने।

हालांकि, लुइस ड्यूमॉन्ट के सिद्धांत के अनुसार, इस्लाम की समतावादी दावों के बावजूद, इस्लाम के धार्मिक सिद्धांत में जातियों (जाति) की सामाजिक संरचना, जो एंडोगैमी, वंशानुगत पेशेवर विशेषज्ञता, और स्थिति द्वारा परिभाषित पदानुक्रमित संबंधों से निर्धारित होती है, एक अलगाव प्रणाली का गठन करती है। फ्रेडरिक बार्थ (1960) ने स्वात घाटी के पठानों के अपने अध्ययन में समुदाय में मौजूद सामाजिक स्तरीकरण (कौम) की प्रणाली की तुलना हिंदू जाति व्यवस्था से की है।

उनके बीच विद्यमान संरक्षक-ग्राहक संबंध हिंदू 'जजमानी प्रणाली' के समान है। इस्लाम में भी बिरादरी प्रणाली, खानदान (वंश वंशावली) और नस्ल (रक्त संबंधों पर आधारित समूह) के आधार पर एक पदानुक्रमित

भेदभाव मौजूद है।

सातवीं शताब्दी में जब मुहम्मद का निधन हुआ तो उत्तराधिकार को लेकर एक संघर्ष उत्पन्न हुआ। कई कबीले और शक्तिशाली परिवार एक-दूसरे के साथ संघर्ष में लगे थे। यह अरब समाज की पदानुक्रमित संरचना का एक महत्वपूर्ण कारण था, जिसने जनसंख्या को अरबों और गैर-अरबों में विभाजित कर दिया। गैर-अरब जनसंख्या को आगे अशरफ और अजलाफ में विभाजित किया गया। उच्चतम सम्मान का स्तर (हिंदू ब्राह्मणों के समान) सैय्यदों को प्राप्त था जो अपनी वंशावली पैगंबर की बेटी फातिमा तक वापस ले जाते हैं। इसके बाद क्रमशः शेख, मुगल, और पठान आते हैं। अजलाफ और अरजल मुसलमानों को पसमांदा माना जाता है। ये लोग गैर-अशरफ समुदाय का हिस्सा हैं और सभी निचली जाति के हिंदू धर्मांतरित हैं।

भारत की जनगणना जिसने 133 सामाजिक-आर्थिक समूहों को पूरी तरह या आंशिक रूप से मुस्लिम के रूप में पहचाना मुसलमानों में इस तरह के स्त्रीकरण को कानूनी रूप से मान्यता देने वाली पहली बार थी। 1911 की जनगणना में उत्तर प्रदेश में 102 जाति समूह शामिल थे जिनमें से कम से कम 97 गैर-अशरफ श्रेणी के थे। गौस अंसारी ने अपने प्रसिद्ध कार्य “उत्तर प्रदेश में मुस्लिम जातियाँ” में 1960 में भारतीय मुसलमानों में चार प्रमुख विभाजन पहचाने : (1) अशरफ: वो लोग जो विदेशी वंश का दावा करते हैं, जैसे सैय्यद, शेख, मुगल, और पठान, (2) हिंदू उच्च जातियों से धर्मांतरित मुसलमान, जैसे राजपूत, (3) दरजी, धोबी, मंसूरी, गद्दी, फकघेर, हज्जाम (नाई), जुलाहा, कबाड़िया, कुम्हार, कुंजरा, मिरासी, और तेली जैसे अन्य भारतीय जनजातियों से धर्मांतरित लोग, (4) मुस्लिम जातियों से धर्मांतरित लोग, जैसे भंगी। इसके विपरीत, 2006 की सच्चर कमेटी रिपोर्ट ने भारतीय मुसलमानों को तीन समूहों में विभाजित किया : (1) अशरफ : वे लोग जो सामाजिक रूप से अक्षम नहीं हैं, (2) अजलाफ (हिंदू ओबीसी के समकक्ष), (3) अरजल : अरबी शब्द जो हिंदू अनुसूचित जातियों के लिए प्रयोग किया जाता है।

समतावाद के उपदेशों को मानने के बावजूद ईसाई धर्म में भी समान सामाजिक स्त्रीकरण देखे जा सकते हैं। लुइस ड्यूमॉन्ट ने कई हिस्सों में ईसाइयों में जाति विभाजन, विशेष रूप से अछूत जातियों का उल्लेख किया है। चर्चों में अलग-अलग बैठने की व्यवस्था और यहाँ तक कि अलग-अलग कब्रिस्तान, अछूत ईसाइयों के प्रति पूर्वाग्रह के उदाहरण हैं। जो हिंदू ईसाई धर्म में परिवर्तित हुए वे बामन (ब्राह्मण) बन गए जबकि क्षत्रिय और वैश्य चारदो, ईसाई कुलीन बन गए। शूद्र गौड़ो बन गए। वैश्य जो इस वर्गीकरण में प्रवेश नहीं कर सके वे सुदिर, महार और चमार बन गए, जिन्हें धर्मांतरित दलितों के वंशज के रूप में देखा जाता है।

प्रसिद्ध मानवविज्ञानी सी. जे. फुलर ने अपनी ‘केरल ईसाई और जाति प्रणाली’ पर आधारित अध्ययन में केरल के ईसाइयों को तीन मुख्य समूहों में विभाजित किया जैसे सीरियन ईसाई, लैटिन ईसाई, और नए ईसाई या ‘पिछड़े ईसाई’। इन समूहों को दो मुख्य कारकों द्वारा एक दूसरे से अलग किया जाता है जैसे जिन जातियों से प्रत्येक समूह अपनी वंशावली का दावा करता है और इन मूल धर्मांतरणों की तिथि आदि।

सी. जे. फुलर ने अपने सीरियन ईसाइयों के विस्तृत अध्ययन में उल्लेख किया है कि उन्हें नंबूदरी ब्राह्मणों के वंशज माना जाता है जो केरल में सबसे उच्च जाति है और जिन्हें संत थॉमस, प्रेरित ने भारत में 52 ई. में आने के बाद धर्मांतरित किया। संत फ्रांसिस जेवियर जैसे अन्य धर्म प्रचारकों की केरल में 1544 में दूसरी सबसे बड़ी समूह, लैटिन ईसाइयों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही। लैटिन ईसाइयों की विशाल संख्या में अभी भी मछुआरे हैं और इस धर्मांतरित समूह का अधिकांश हिस्सा मुक्कुवन और अरया मछुआरा जातियों से आया है। उन लोगों के वंशज जो उन्नीसवीं और बीसवीं सदी की शुरुआत में धर्म प्रचारक लहर के दौरान धर्मांतरित हुए तीसरी श्रेणी बनाते हैं, जिसे नए ईसाई कहा जाता है। ये धर्म प्रचारक, ब्रिटिश राज के दौरान काम करने

वाले अधिकांश अन्य धर्म प्रचारकों की तरह, अपनी कोशिशों का ध्यान सबसे निचली जातियों पर केंद्रित करते थे। ऐसा माना जाता है कि इन लोगों के लिए ईसाई धर्म की आकर्षण का एक प्रमुख कारण यह था कि उन्हें अपने कठोर, अपमानजनक, और नीच जाति प्रणाली से मुक्त होने की आशा थी।

इस प्रकार ऐसे अध्ययन हैं जो अब्राहमिक धर्मों में विद्यमान अलगाव का सुझाव देते हैं, लेकिन यह भेदभाव हिंदू धर्म के मामले में उतना गंभीर नहीं है। दलित हिंदुओं द्वारा अब्राहमिक धर्मों को अपनाने का एक महत्वपूर्ण कारण जाति प्रणाली के दुष्प्रभावों से बचना रहा है। इन गैर-हिंदू धर्मों में उपस्थित अलगाव को सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर कहा जा सकता है, न कि पवित्र संस्थाओं के आधार पर।

हाल के धर्मांतरण पर एक नजर

1981 में, तिरुनेलवेली जिले के मीनाक्शीपुरम में हुए सामूहिक धर्मांतरण की घटना सभी की यादों में ताजा है। 150 से अधिक दलित परिवारों ने जातिगत पूर्वाग्रह और उत्पीड़न से बचने के लिए इस्लाम अपनाया। पंजाब में छिपे हुए धर्मांतरण के माध्यम से ईसाई धर्म के बढ़ने के कारण चिंता बढ़ी है, जो 1.5% से 15% तक पहुँच गया है। सिख धर्म में प्रचलित जाति व्यवस्था के कारण 'दलित सिख' या 'मजहबी सिख' 'जाट सिखों' द्वारा परित्यक्त महसूस करते हैं। कुछ को तो गुरुद्वारों में प्रवेश से भी रोका गया। स्थानीय लोगों ने ईसाई धर्म प्रचारकों पर चमत्कारी उपचारों और धोखाधड़ी के व्यापारिक गतिविधियों का उपयोग करके अवैध धर्मांतरण का आरोप लगाया। हाल ही में बिहार के गया जिले में एक मामला सामने आया, जहाँ पूरे गाँव ने अंधविश्वास के कारण ईसाई धर्म अपनाया। नाइली पंचायत के बेलवाड़ीह गाँव में महादलितों को जातिगत पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ा। गाँव के इन लोगों के पास डॉक्टरों और अस्पतालों के महंगे बिल चुकाने की सामर्थ्य नहीं थी। इसलिए उन्होंने चर्च में प्रार्थनाओं के बाद होने वाले चमत्कारों का सहारा लिया। वे कहते हैं कि किसी को भी धर्मांतरित होने के लिए मजबूर नहीं किया गया लेकिन यह उनके विश्वास प्रणाली का परिणाम था। ऐसे मामलों को महाराष्ट्र में भी देखा जा सकता है। एक रिपोर्ट के अनुसार पुणे जिले के दौंड नगर पालिका में हर साल दो सौ से अधिक लोग इस्लाम अपनाते हैं। यहाँ बलात्कारी धर्मांतरण के मामलों के कारण सरकार को सख्त कार्रवाई करनी पड़ी।

राजस्थान के जयपुर के पास वटिका गाँव में सामूहिक धर्मांतरण के आरोपों की रिपोर्टें आई थीं। सामूहिक सभा में लोगों ने ईसाई धर्म की महानता का प्रचार किया और उन्हें ईसाई धर्म का पालन करने के लिए प्रोत्साहित किया जैसे कि महिलाओं को सिन्दूर या बिंदी नहीं पहननी चाहिए और लोगों को त्योहारों के दौरान मांसाहारी भोजन करना चाहिए। उत्तर प्रदेश में मेरठ पुलिस ने उत्तर प्रदेश धर्मांतरण रोकने के अधिनियम, 2021 के तहत कई आरोपियों के खिलाफ FIR दर्ज की। रिपोर्टों में कहा गया था कि कुछ ईसाई प्रचारक दलित हिंदुओं को ईसाई धर्म अपनाने के लिए मजबूर कर रहे थे।

फिर सवाल यह उठता है कि इन धर्मांतरणों के पीछे कौन सी प्रेरक शक्तियाँ हैं? और क्या दलित धर्मांतरितों को अनुसूचित जाति कोटा प्रदान करना चाहिए? यह स्पष्ट है कि इस्लाम या ईसाई धर्म के समानता और भ्रातृत्व के विचार, जो कठोर हिंदू जाति संरचना का विरोध करते हैं, दलित हिंदुओं को इन धर्मों की ओर आकर्षित करते हैं। इसके अतिरिक्त, हर अब्राहमिक धर्म में जन्म, मृत्यु, मासिक धर्म या किसी व्यक्ति की स्थिति के कारण 'शारीरिक अशुद्धता' का कोई अवधारणा नहीं है। ये धर्म जाति व्यवस्था के साथ उसी महत्व के साथ पहचान नहीं रखते हैं जैसा कि हिंदू धर्म में है। इन धार्मिक ग्रंथों में कोई जाति आधारित ऊर्ध्वाधर विभाजन नहीं है। सी जे फुलर के अनुसार ईसाई धर्म और हिंदू धर्म में कुछ समान आचार होते हैं लेकिन जो चीज उन्हें अलग

करती है वह यह है कि उनके पास नकारात्मकता को खत्म करने के साधन होते हैं और वे गलत काम को रोकने के तरीके जानते हैं। इस प्रकार सामाजिक हीनता के अस्वीकृति और सामाजिक और धार्मिक पहचान के सकारात्मक भाव को बढ़ावा देना लोगों को धर्मांतरण की ओर आकर्षित करता है।

साहित्यिक आलोचक टेरी ईगल्टन का कहना है कि ईसाई धर्मांतरण प्रस्तावित नहीं बल्कि प्रदर्शनकारी होते हैं। इसमें नए रिश्ते बनाने और उन लोगों की भलाई के लिए कार्य करने का संकल्प लेना शामिल होता है जो निराशाजनक परिस्थितियों में होते हैं। इस स्थिति में दलित हिंदुओं को बुनियादी आवश्यकताओं की कमी का सामना करना पड़ा, जिसमें एक उपयुक्त स्वास्थ्य सेवा प्रणाली और स्वच्छ पेयजल शामिल हैं। छत्तीसगढ़ में एक उदाहरण में एक दलित-धर्मांतरित ईसाई को अपने गाँव से बाहर निकाल दिया गया और उसकी मृत पत्नी को वहीं दफनाने का अवसर नहीं दिया गया। भारत के दूर-दराज के गाँवों में कुछ जाति प्रथाएँ अभी भी विद्यमान हैं जैसे कि अछूत होना, मंदिरों में प्रवेश से इनकार करना, सार्वजनिक जल संसाधनों का उपयोग न करना, आदि। यह लोगों को जाति व्यवस्था की सीमाओं को छोड़ने और एक नए धर्म में शामिल होने के लिए मजबूर करता है जो उन्हें एक सम्मानित और प्रतिष्ठित अस्तित्व का आश्वासन देता है।

निष्कर्ष

जमात जैसे संगठनों या ऑल इंडिया बैकवर्ड मुस्लिम मोर्चा (AIBMM) ने सुप्रीम कोर्ट से अपील की है कि वह केंद्र को आदेश दे कि दलित मुसलमानों को अनुसूचित जातियों के रूप में मान्यता दी जाए। हालाँकि सरकार ने सुप्रीम कोर्ट को सूचित किया है कि इस्लाम और ईसाई धर्म में परिवर्तित दलितों को अनुसूचित जाति का दर्जा नहीं दिया जा सकता। अछूतपन और अन्य सामाजिक कलंक का जबरदस्त प्रणाली केवल उन समुदायों में प्रचलित है जिन्हें संविधान (अनुसूचित जातियों) आदेश, 1950 में उल्लेखित किया गया है। आदेश का अनुच्छेद 3 अनुसूचित जाति मूल के ईसाई और मुसलमानों को अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त करने से रोकता है। इसमें कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जो हिंदू (सिख या बौद्ध) धर्म से भिन्न धर्म को मानता है, उसे अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं माना जाएगा।

क्रिश्चियन और इस्लामिक समाजों के सदस्यों का मानना है कि उन्होंने कभी ऐसी पिछड़ापन या अत्याचार का अनुभव नहीं किया। अनुसूचित जाति के सदस्यों के इस्लाम या ईसाई धर्मों में धर्मांतरण का एक प्रमुख कारण अछूतता के उत्पीड़नकारी प्रणाली से भागना है। इस विषय पर कोई प्रलेखित शोध नहीं किया गया है जो यह प्रमाणित कर सके कि क्या अब्राहमिक धर्मों में भी ऐसा उत्पीड़न का वातावरण मौजूद है जिसे अनुसूचित जाति वर्ग के लोग धर्मांतरण के बाद भी सामना कर रहे हैं। जब पूछा गया कि बौद्धों को आरक्षण लाभ क्यों दिया गया तो सरकार ने स्पष्ट रूप से कहा कि यह डॉ. बी.आर. अंबेडकर के (1956) अनुरोध पर था कि अनुसूचित जनजातियों ने स्वेच्छा से बौद्ध धर्म अपनाया। यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक कदम था और इन धर्मांतरितों को उनके मूल जातियों और समुदायों के साथ अभी भी पहचाना जा सकता था। यह निश्चित रूप से मुसलमानों और ईसाइयों के मामले में नहीं था जो पूरी तरह से अन्य कारणों के लिए धर्मांतरण किए।

बी.आर. अंबेडकर के क्लासिक निबंध 'जाति का नाश' के अनुसार, जाति गैर-हिंदुओं के बीच उतनी सामाजिक प्रासंगिकता नहीं रखती जितनी कि हिंदू जनसंख्या में। उन्होंने हिंदू और "गैर-हिंदू" के बीच भेद करने के लिए तीन मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है। सबसे पहले, यदि किसी मुसलमान से उसकी पहचान के बारे में पूछा जाए तो वह जवाब देगा कि वह एक मुसलमान है और अपनी जाति का खुलासा नहीं करेगा। यह एक संतोषजनक उत्तर होगा क्योंकि उनके लिए यह आवश्यक नहीं है और बिना जाने, कोई यह प्रश्न पूछ

सकता है कि वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं। दूसरी बात, गैर-हिंदू धर्मों में बहिष्करण की धारणा का उपयोग नहीं किया जाता। तीसरी बात गैर-हिंदू धर्मों में अर्चना का अभ्यास नहीं होता। वे जाति को एक पवित्र संस्था के रूप में नहीं देखते बल्कि इसे केवल एक अभ्यास के रूप में मानते हैं।

न्यायमूर्ति रंजनाथ मिश्र की रिपोर्ट (2007) ने माना कि सामाजिक-आर्थिक अभाव, जाति या धर्म नहीं, आरक्षण के लिए आदर्श मानदंड होना चाहिए। अनुसूचित जाति का दर्जा धर्म से हटा दिया जाना चाहिए और इसे ST की तरह धर्म-निरपेक्ष बनाया जाना चाहिए। इसके अलावा, रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि SC/ST और OBC सूचियाँ ठीक से विकसित नहीं की गईं और ये किसी विशेष जाति या वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर सटीक सर्वेक्षण या विश्वसनीय जानकारी पर आधारित नहीं थीं। इसलिए, OBCs और SCs/STs के लिए पूरे आरक्षण प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। हालाँकि, सरकार ने रिपोर्ट को 'खामी' के लिए आलोचना की, यह कहते हुए कि रिपोर्ट में वैज्ञानिक रूप से किए गए क्षेत्रीय जांचों की कमी थी।

इसी तरह, सचर समिति की रिपोर्ट ने भारत में मुसलमानों की स्थिति को संबोधित करने के लिए कई सिफारिशें की। समिति ने कहा कि वंचित समूहों की शिकायतों की जांच करने के लिए एक समान अवसर आयोग स्थापित करने की आवश्यकता है, रोजगार बढ़ाने और अधिक राजनीतिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। समिति ने यह सुझाव दिया कि समुदाय को विविधता का सम्मान करते हुए 'मुखधारा' में लाने की आवश्यकता है। हालाँकि, समिति की रिपोर्ट में कई गलतियाँ रिपोर्ट की गईं, जैसे कि यह वैज्ञानिक रूप से पर्याप्त नहीं थी। इसने भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य जैसे विशाल विषय पर संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया।

इस जटिल समस्या का एकमात्र सौहार्दपूर्ण समाधान समस्या की जड़ का गहन अध्ययन करना है। उचित क्षेत्रीय अनुसंधान के माध्यम से ऐसे लोगों की वैज्ञानिक रूप से तैयार की गई सूची केवल एक अचूक सूची बनाने में मदद करेगी। आयोग को इन धर्मों के लोगों को केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा दिए गए विभिन्न लाभों का भी अध्ययन करना चाहिए। उन स्थानों पर सांख्यिकीय विश्लेषण की आवश्यकता है, जहाँ धर्म परिवर्तन अधिक तेजी से हो रहा है। सामूहिक स्तर पर, और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। पूर्व के धर्म परिवर्तन के मामलों के माध्यम से, शिक्षा और स्वास्थ्य बुनियादी ढाँचे की कमी को देखा जा सकता है। बड़े पैमाने पर अंधविश्वास की प्रचलितता ने अधिक संख्या में धर्म परिवर्तन को जन्म दिया है। मजबूत और आसानी से सुलभ अस्पतालों और स्कूलों का निर्माण करने की तत्काल आवश्यकता है। किसी भी प्रकार के बलात धर्म परिवर्तन के मामलों को ठोस कानूनी प्रणाली के साथ सख्ती से देखा जाना चाहिए। यह केवल सरकार और नागरिक समाज के सामूहिक प्रयासों के माध्यम से ही संभव होगा कि स्थिति को नियंत्रित किया जा सके।

संदर्भ

- What BR Ambedkar Had To Say About Caste & The Caste System. (2017, अप्रैल) द लॉजिकल इंडियन से प्राप्त: <https://thelogicalindian.com/story-feed/awareness/b-r-ambedkar>
- Ambedkar, D. B. (कोई तिथि नहीं). THE ANNIHILATION OF CASTE. प्रिंट संस्करण से प्राप्त (The Annihilation of Caste - Dr. B. R. Ambedkar): https://ccnmtl.columbia.edu/projects/mmt/ambedkar/web/readings/aoc_print_2004.pdf
- Ansari, G. (1960). मुस्लिम जाति उत्तर प्रदेश में : संस्कृति संपर्क का अध्ययन लखनऊ: एथनोग्राफिक और फोक कल्चर सोसाइटी.
- BOSE, A. N. (1958). भारत में नागरिक समाज और जाति प्रणाली का विकास. अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक इतिहास

की समीक्षा, 97-221.

- Caste System in India – Origin, Features, and Problems. (2019, 3 मार्च). क्लियर आर्इएस से प्राप्त : <https://www.clearias.com/caste-system-in-india/>
- Cook, M. (2016). Cook on Guha, 'Beyond Caste: Identity and Power in South Asia, Past and Present'. H-Empire.
- Dumont, L. (1966). Homo Hierarchicus. प्रेस. छिक्कागो. से प्राप्त: <https://press.uchicago.edu/ucp/books/book/chicago/H/bo25135790.html>
- Fredrik Carlsson, G. G.-S. (जनवरी, 2009) Keeping up with the Vaishyas? Caste and Relative Standing in India. ऑक्सफोर्ड आर्थिक पत्र 52-73
- Fuller, C. J. (1976). केल के ईसाई और जाति प्रणाली. ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड का रॉयल ऐंथ्रोपोलॉजिकल इंस्टीच्यूट, 53-70
- Guha, S. (2004). Beyond Caste: Identity and Power in South Asia, Past and Present. लीडेन: ब्रिल अकादमी पब्लिशर्स.
- History of India's Caste System. (कोई तिथि नहीं.) थॉटको से प्राप्त: <https://www.thoughtco.com/history-of-indias-caste-system-195496#:~:text=The%20origins%20of%20the%20caste,work%2C%20it%20soon%20became%20hereditary.>
- In Punjab, a jump from 1.5% to a possible 15% in Christianity raises demographic change worries, the biggest problem being 'stealth' conversions. (2022, 6 सितंबर) ऑफ इंडिया से प्राप्त <https://www.opindia.com/2022/09/christianity-punjab-increaseconcerns-demographic-change-caste-certificate/>
- India's caste system remains entrenched, 75 years after independence. (2021) द इकोनॉमिस्ट.
- Jebaraj, P. (2020, 10 अगस्त). 70 वर्षीय दलित ईसाइयों और मुसलमानों की SC निर्णय पर जाति स्थिति के लिए प्रतीक्षा. द हिंदू से प्राप्त : <https://www.thehindu.com/news/national/70year-wait-for-dalit-christians-muslims-on-sc-verdict-over-caste-status/article32312331.ece>
- Mosse, D. (2012). जति और ईसाई धर्म. इंडिया सेमिनार से प्राप्त: https://www.indiaseminar.com/2012/633/633_david_mosse.htm
- Nadkarni, M. V. (2003). क्या जाति प्रणाली हिंदू धर्म में अंतर्निहित है? एक मिथक को नष्ट करना. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 4783-4793.
- Olcott, M. (1944). भारत की जाति प्रणाली. अमेरिकी समाजशास्त्रीय समीक्षा, 648-657.
- Plea on Scheduled Caste Status to be Religion Neutral. (2020] 9 tuojh)- n'f'V vkbZ,,l ls izkIr% [https://www.drishtiiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/plea-onscheduled-caste-status-to-be-religion-neutral#:~:text=Scheduled%20Castes%20status.-,Paragraph%203%20of%20the%20Constitution%20\(Scheduled%20Castes\)%20Order%2C%201950,member%20of%20a%20Sch](https://www.drishtiiias.com/daily-updates/daily-news-analysis/plea-onscheduled-caste-status-to-be-religion-neutral#:~:text=Scheduled%20Castes%20status.-,Paragraph%203%20of%20the%20Constitution%20(Scheduled%20Castes)%20Order%2C%201950,member%20of%20a%20Sch)
- Raj, E. S. (1985). जति प्रणाली की उत्पत्ति Transformation, 10-14.
- Risley, H. H. (1893). बांग्ला की जनजातियाँ, द जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, 237-300
- SALAM, Z. U. (2022, 30 नवंबर). जीमयत उलेमा-ए-हिंदी ने दलित मुसलमानों के लिए अनुसूचित जाति का दर्जा मांगा. द हिंदू से प्राप्त: <https://www.thehindu.com/news/national/jamiatulama-i-hind-seeks-scheduled-caste-status-for-dalit-muslims/article66205623.ece>

- SAMPATH, G. (2019, 21 सितंबर). 'जाति मायने रखती है' समीक्षा: दलित प्रेम और संवादों का एक नया ढांचा. द हिंदू से प्राप्त : <https://www.thehindu.com/books/booksreviews/caste-matters-review-dalit-love-and-a-new-framework-of-conversations/article29469463.ece>
- SC Households with salaried jobs. (कोई तिथि नहीं). सामाजिक-आर्थिक और जाति जनगणना से प्राप्त : <https://secc.gov.in/getSCCategorySalariedJobNationalLgdReport.htm>
- Shantha, S. (2022, 10 नवम्बर). केन्द्र सरकार मुस्लिम, ईसाई दलितों के लिए अनुचित जाति के दर्जे के खिलाफ अडिग है. विशेषज्ञ असहमत. द वायर से प्राप्त : <https://thewire.in/caste/uniongovt-is-adamant-against-sc-status-for-muslim-christian-dalits-experts-disagree>
- SHARMA, K. (2012). क्या आज भारत में जाति प्रणाली है या केवल जाति? Polish Sociological Review, 245-263.
- Shepherd, K. I. (2023, 8 जनवरी). भारत के मुस्लिम शासकों और विचारकों ने जाति प्रणाली की असमानताओं का सामना क्यों नहीं किया? द वायर से प्राप्त : <https://thewire.in/caste/whydidnt-indias-muslim-rulers-and-thinkers-confront-the-inequities-of-the-caste-system>
- Songara, A. S. (2022, 24 मार्च). निम्न जाति के भारतीय मुस्लिम समुदाय में पहचान - एक आलोचनात्मक अध्ययन Know Law से प्राप्त <https://knowlaw.in/index.php/2022/03/24/identity-in-a-low-caste-indian-muslimcommunity-a-critical-study/>
- Soosai Etc vs Union Of India And Others on 30 September 1985. (कोई तिथि नहीं). भारतीय कानून. वतह से प्राप्त : [https://indiankanoon.org/doc/1724190/#:~:text=The%20essence%20of%20the%20petitioner's,Scheduled%20Castes\)%20Order%2C%201950.](https://indiankanoon.org/doc/1724190/#:~:text=The%20essence%20of%20the%20petitioner's,Scheduled%20Castes)%20Order%2C%201950.)
- Sukumar, N. (2022). भारतीय विश्वविद्यालयों में जातिगत भेदभाव और बहिष्कार. नई दिल्ली: राउटलेज इंडिया.
- Talha, P. (2022, 12 दिसंबर). पासमानदा मुसलमान और उनकी दशकों पुरानी समानता के लिए लड़ाई. द वायर से प्राप्त : <https://thewire.in/communalism/pasmanda-muslims-castedalits-bjp>
- Vaid, D. (2012). "भारत में जाति-कक्षा संबंध : एक अनुभवजन्य विश्लेषण". एशियन सर्वे, 395-422.
- Waghule, P. (2017, 14 अप्रैल). जोतिबा फुले की गुलामगिरी का एक अध्ययन : जाति पर एक महत्वपूर्ण पाठ. फेमिनिज्म इन इंडिया से प्राप्त : <https://feminisminindia.com/2017/04/14/jotiba-phule-gulamgiri/>



डॉ. भीमराव अम्बेडकर की सामाजिक दृष्टि : हिंदू कोड बिल एवं नारी उत्थान के विशेष संदर्भ में

○ शशिकांत कुमार¹

संक्षिप्ति :

महान सामाजिक वैज्ञानिक, सामाजिक न्याय के महाप्रणेता और एक सच्चे समाज सुधारक के रूप में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की भूमिका आधुनिक भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूपरेखा को आकार देने और विशेष रूप से महिलाओं की उन्नति को बढ़ावा देने में बहुत अहम है। एक दलित के रूप में उनकी व्यक्तिगत पीड़ा और पश्चिमी विचारों तथा मूल्यपरक सोच के संपर्क ने उनमें रूढ़िवादी हिंदू सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देने; समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे एवं महिलाओं सहित सभी की गरिमा को संरक्षित रखने वाले विचारों के साथ समाज का पुनर्निर्माण करने का आत्मविश्वास पैदा किया। उन्होंने महिलाओं की नारकीय स्थिति, दुर्दशा और पीड़ा के लिए मनु को जिम्मेदार ठहराते के साथ-साथ हिंदू सामाजिक व्यवस्था को भी जिम्मेदार ठहराया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अन्यायपूर्ण लिंग संबंधों के उन्मूलन और महिलाओं की प्रस्थिति को सुधारना सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव है। इसलिए, उन्होंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों को शामिल करने के लिए अथक संघर्ष किया। उन्होंने अपने वक्तव्यों, विचारों और सुधारों के माध्यम से महिलाओं में सामाजिक न्याय और अपने अधिकारों के लिए लड़ने हेतु जागरूक किया। हिंदू समाज को आधुनिक बनाने के लिए उनके महत्वपूर्ण सुधारात्मक कदम हिंदू कोड बिल के रूप में सामने लाये जो अपने महत्व में अद्वितीय बन गया। प्रस्तुत प्रपत्र में महिलाओं के अधिकारों के लिए एक सामाजिक योद्धा के रूप में उनके योगदान को समझने के लिए एक विश्लेषणात्मक प्रयास किया गया है।

बीज शब्द : हिंदू कोड बिल, नारी सशक्तीकरण, विवाह, तलाक, दत्तक।

एक समाज सुधारक के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का योगदान खासकर भारतीय महिलाओं के लिए अद्वितीय है। सदियों-सदियों से चले आ रहे महिलाओं के संस्थागत शोषण के विरुद्ध पहली बार बाबा साहब

1. पी-एच.डी. शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ने मुखर विरोध किया तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके अधिकारों की पुरजोर वकालत की। बाबा साहब समानता आधारित समाज में विश्वास रखते थे तथा जाति, धर्म, लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को सिरे से नकारते थे। महिलाओं को उनका अधिकार दिलाने हेतु उन्होंने हिन्दू कोड बिल की वकालत की, जिसके माध्यम से महिलाओं को उनका हक मिल सके तथा वे भी एक सम्मानजनक जीवन जी सकें। वास्तव में हिंदू कोड बिल स्त्री अधिकारों की दावेदारियों का कानूनी घोषणा पत्र था (Halli & Mullal, 2016a)। किन्तु डॉ. आंबेडकर के इस कोड बिल का सदन से लेकर बाहर तक पुरजोर विरोध किया गया था। ध्यातव्य है कि डॉ. आंबेडकर ने जिस हिंदू कोड बिल का प्रस्ताव किया था, वह सभी जातियों की महिलाओं की स्वतन्त्रता को ध्यान में रखकर बनाया गया था, इसका विरोध न केवल ब्राह्मणवादी पुरुषों ने किया बल्कि इनमें वे महिलाएँ भी थीं, जो पितृसत्ता को बनाए रखने की पक्षधर थीं। डॉ. आंबेडकर द्वारा प्रस्तावित विधेयक में बिना वसीयत किए मृत्यु को प्राप्त हो जाने वाले हिंदू पुरुषों और महिलाओं की संपत्ति के बंटवारे के संबंध में कानूनों को संहिताबद्ध किए जाने का प्रस्ताव था। यह विधेयक मृतक की विधवा, पुत्री और पुत्र को उसकी संपत्ति में बराबर का अधिकार देता था, जो समानता के अधिकार को पोषित करता था (Ramajayam, n.d.)। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दू विधि अथवा हिन्दू ला शब्द औपनिवेशिक शासन की देन है। इसका प्रारम्भ 1772 ई. में तब हुआ जब ब्रिटिश अधिकारियों ने यह निर्णय लिया कि भारत में कामन ला लगाने की बजाय हिन्दू विधि एवं मुसलमानों हेतु मुस्लिम विधि (शरीयत) लागू की जायेगी (Michaels, 2010)। 1948 में संविधान सभा की बैठक में पहली बार हिन्दू कोड बिल पेश किया गया। उस बैठक में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि उन्हें कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं है तथा यह सब काम स्मृतियों व पुराणों का है।

सन् 1951 ई. में उन्होंने ऐतिहासिक हिन्दू कोड बिल संसद में प्रस्तुत किया। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि सही अर्थों में प्रजातंत्र तब आयेगा जब महिलाओं को उनकी पैतृक सम्पत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा तथा उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिये जायेंगे। डॉ. भीम राव अम्बेडकर महिलाओं की उन्नति के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि किसी भी समाज की प्रगति का मूल्यांकन इस बात से किया जाना चाहिए कि उनमें महिलाओं की क्या प्रस्थिति है। दुनिया की आधी आबादी महिलाओं की है; इसलिए जब तक उनका समुचित विकास नहीं होता कोई भी देश चहुँमुखी विकास नहीं कर सकता (Halli & Mullal, 2016b)।

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि महिलाएँ एकजुट हो जायें तो समाज को सुधारने के लिए क्या नहीं कर सकती हैं। वायसराय की कार्यकारी परिषद में श्रम सदस्य रहते हुए डॉ. अम्बेडकर ने सर्वप्रथम महिलाओं के लिए प्रसूति अवकाश (मैटरनल लीव) की व्यवस्था की। संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में भी उनकी भूमिका अहम थी। संविधान में सभी नागरिकों को बराबरी का अधिकार दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 14 में यह प्रावधान किया गया कि किसी भी नागरिक के साथ लिंग के आधार पर भेद-भाव नहीं किया जा सकता। आजादी मिलने के साथ ही महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति में सुधार हुआ। स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री के रूप में उन्होंने महिला सशक्तिकरण के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाये। उनका दृढ़ विश्वास था कि महिलाओं की उन्नति तभी सम्भव हो सकेगी जब उन्हें घर, परिवार और समाज में बराबरी का स्थान मिलेगा। शिक्षा और आर्थिक तरक्की उन्हें सामाजिक बराबरी दिलवाने में मदद करेगी (Abedi, 2017)। डॉ. आंबेडकर ने हिंदू कोड बिल से तत्कालीन नेहरू सरकार के पीछे हटने पर कानून मंत्री पद से इस्तीफा देते समय इसके महत्व को बताते हुए यहाँ तक कह डाला कि “महत्व की दृष्टि से भारत विधानमंडल द्वारा अतीत में या भविष्य में निर्मित की जानी वाली किसी भी विधि की तुलना इससे (हिंदू कोड) नहीं की जा

सकती। वर्गीय और लैंगिक असमानता, जो हिंदू समाज का मूलधार है, को बरकरार रखते हुए केवल आर्थिक मसलों से जुड़े कानून पारित करते जाना हमारे संविधान का मखौल बनाना होगा। यह ऐसा ही है जैसे गोबर के ढेर पर महल की तामीर करना इसलिए मैं हिंदू कोड बिल को इसलिए इतना अधिक महत्व देता हूँ (B. R. Ambedkar & Moon, 2020)।”

हिन्दू कोड बिल तथा परम्परागत कानून :

प्रारंभ में भारतीय समाज में महिलाओं को स्वतंत्रता, स्वायत्तता और अधिकार प्राप्त थे। पूर्व-वैदिक काल में जब समाज मातृसत्तात्मक था, तब महिलाओं को महत्वपूर्ण माना जाता था। आर्य या वैदिक संस्कृति के आगमन के साथ, मातृसत्तात्मक समाज का स्थान पितृसत्तात्मक समाज ने ले लिया। हालाँकि, महिलाओं को अभी भी स्वायत्तता और विविध अधिकार प्राप्त थे और सभी प्रकार की शिक्षा तक उनकी पहुँच थी। धार्मिक समारोहों और अपने जीवन साथी चुनने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। वे वेदों का अध्ययन कर सकती थी और विवाह को रद्द करने या पुनर्विवाह करने का साहस कर सकती थीं। विधवा पुनर्विवाह की भी अनुमति थी। हालाँकि लिंग भेद के कारण उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति और बदतर होती चली गयी। सामाजिक-आर्थिक रूप से, महिलाओं को अलग-थलग कर दिया गया और उन्हें बुनियादी मानवाधिकारों से वंचित कर दिया गया (Bala, 2019)। वे स्वायत्तता और संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दी गई। उनकी स्थिति में गिरावट जो वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में शुरू हुई, वहीं कानून निर्माता मनु द्वारा उन पर और कड़े नियम लागू करने के कारण और भी बदतर स्थिति हो गई। विदित है कि मनु ने अपनी पुस्तक मनुस्मृति में ‘सभी सामाजिक बुराइयों को उनके उन्मूलन के बजाय सामाजिक लोकाचार के रूप में सहिताबद्ध किया’। मनुस्मृति के प्रभाव में महिलाओं को संपत्ति, शिक्षा प्राप्त करने के मामलों में विभिन्न भेदभावों का सामना करना पड़ा। धार्मिक ग्रंथों के प्रभाव से यह धारणा गहरी हो गई कि महिलाओं को स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए और उन्हें पुरुष प्रभुत्व के अधीन रखा जाना चाहिए (B. C. Mandal, 2011)।

देश पर मुस्लिम आक्रमण पर्दा प्रथा, बहुविवाह और तलाक जैसी कुप्रथाओं ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया। किन्तु भारत में ब्रिटिश राज ने भारतीय महिलाओं के लिए नए युग की शुरुआत की। शिक्षित और प्रबुद्ध समाज सुधारकों ने भारतीय समाज को सामाजिक बुराइयों की बेड़ियों से मुक्त करके सुधारने का प्रयास किया। यहां स्वामी विवेकानन्द और राजा राम मोहन राय का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने सती प्रथा को समाप्त करने के लिए कठिन प्रयास किये और विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया। जोतिबा फुले ने अपना पूरा जीवन महिलाओं की शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया। ईश्वर चंद्र विद्यासागर और महात्मा गांधी ने भी महिलाओं के हित के लिए लड़ाई लड़ी थी। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय महिलाओं की दुर्दशा के लिए मनुस्मृति को जिम्मेदार ठहराया। उनका बौद्ध धर्म में विश्वास था, जो महिलाओं की समानता, आत्म-सम्मान और शिक्षा को बढ़ावा देता है।

उल्लेखनीय है कि महिलाओं को पुरुषों के बराबर मानने और उनके शिक्षा, संपत्ति और राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल होने के अधिकार को सुनिश्चित करने की वैश्विक नारीवादी मांगें अम्बेडकर की महिलाओं की अवधारणा से काफी मिलती-जुलती हैं। जे.एस. मिल के उस विचार की प्रतिध्वनि भी मिलती है जब अम्बेडकर स्त्री को पुरुष के अधीन रखना अपराध मानते हैं। अगर हम मानवाधिकारों के लिए प्रतिबद्ध एक विकसित दुनिया का सपना देखते हैं तो दुनिया की आधी आबादी वाली महिलाओं को मजबूत करने की जरूरत है। अपने साहित्यिक योगदान के माध्यम से, उन्होंने उस सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई जो महिलाओं को

अधीनता सिखाती थी, पुरुष वर्चस्व के अधीन रहने और एक विशिष्ट स्त्री व्यवहार का पालन करने के लिए मजबूर करती थी। वह जाति और लिंग के बीच संबंध में विश्वास करते थे और इस बात पर बल देते थे कि लिंग का उन्मूलन जाति के विनाश का स्वाभाविक परिणाम है (Thorat & AM, 2007)। अम्बेडकर के अनुसार जाति के उद्भव में योगदान देने वाला मुख्य कारक समूहों के भीतर बढ़ता मतभेद था। जातियाँ बंद वर्ग थे जो सजातीय विवाह के माध्यम से महिलाओं की कामुकता को नियंत्रित करते थे। उन्होंने सभी प्रकार के शोषण के लिए जाति-लिंग संबंध को पूरी तरह जिम्मेदार बताया। उनका सैद्धांतिक ज्ञान, अपनी जाति के कारण कई बार अपमानित होने का व्यक्तिगत अनुभव तथा युगीन सामाजिक व्यवस्था ने उन्हें गहरे से प्रभावित किया। जिसमें पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने की आजादी किन्तु विधवा दोबारा शादी नहीं कर सकती थी तथा विधवाओं को सम्पत्ति से भी वंचित रखा जाता था (Singariya, 2014)।

निःसन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दू कोड बिल ने पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकार में पुत्रों के साथ पुत्रियों को सम्मान व अधिकार दिलाकर भारतीय नारियों के साथ बहुत ही न्याय व सहानुभूति का प्रदर्शन किया है। मुस्लिम पर्सनल ला में पुत्रों की भाँति पिता की सम्पत्ति में पुत्रियों का भी अधिकार है। यह बात अलग है कि मुस्लिम पर्सनल ला में पुत्री का अंश भाग पुत्र से अपेक्षाकृत कुछ कम है, इसी भाँति पुत्र-पुत्री को समान अधिकार है। यहाँ तक की यदि किसी ईसाई राजा की प्रथम संतान पुत्री है तो उसकी ज्येष्ठ पुत्री पिता के मरणोपरान्त राज्य सिंहासन पर आसीन होती है एवं यूरोप के कई ईसाई देशों की बागडोर श्रेष्ठ पुत्रियों के हाथ में है। भारत में धर्मशास्त्रकारों ने पुत्री को पिता की सम्पत्ति का अधिकारी ठहराने को दोषपूर्ण बताया है। पुत्री गाय, भैंस की भाँति अन्य स्त्रियों को बेची जा सकती है। पुत्री विवाह के बाद पिता की गोत्र से निकलकर पति के गोत्र में चली जाती है (Deokar, 2020)।

ज्ञातव्य है कि पिता की मृत्यु का कर्मकाण्ड जैसे श्राद्ध, पिण्डदान आदि का अधिकार पुत्रों को ही प्राप्त है पुत्रियों को नहीं है। अतः धर्मशास्त्रों ने पुत्र को मृतक पिता के कर्मकाण्ड करने का अधिकार दिया इसलिए पुत्री का सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं है। यह स्थिति तो पुत्रियों के साथ असमान व्यवहार थी। बेसहारा हिन्दू विधवाओं की स्थिति को देखा जाये तो वह और दयनीय थी, पति के मर जाने पर विधवा को उत्तराधिकार का पात्र ठहराना तो दूर उसे पति के शव के साथ चिता में बैठकर जीते जी मर जाना विधवा का श्रेष्ठ और परम धर्म बताया गया था। आजादी के बाद बाबासाहेब के प्रयासों से निम्न कानून पारित करवाए गए इससे आगे चलकर स्त्रियों की दशा में व्यापक सुधार आया (Thorat & AM, 2007)।

1. हिन्दू विवाह विषयक विधि 1955
2. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956
3. हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण-पोषण कानून 1956
4. हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता का कानून 1956

इन कानूनों के लागू होने से हिन्दू धर्म में गहरायी से व्याप्त सामाजिक कुरीतियों का अन्त हुआ। हिन्दू कोड बिल जैसे प्रगतिशील कानून का प्रारूप तैयार कर पितृसत्तात्मकता का प्रखर विरोध एवं क्रांतिकारी दृष्टिकोण के कारण डॉ. अम्बेडकर को स्त्री मुक्ति का योद्धा कहा जाता है। भारत के गणतंत्रीय संविधान ने सरकार को यह आदेश दिया है कि समस्त देश की प्रगति के लिए एक प्रकार की दीवानी संहिता तैयार करे। इसलिए हिन्दू कोड बिल तैयार किया गया। बिल का उद्देश्य हिन्दूओं के परम्परागत कानून की कुछेक शाखाओं को कानूनी रूप देना और उनका आधुनिकीकरण करना था। देश की एकता के दृष्टिकोण से यह लाभकारी था कि हिन्दूओं के

समाजिक व धार्मिक जीवन पर एक ही प्रकार के कानून लागू हों।

पारिभाषिक रूप से कोड शब्द का अर्थ होता है कानून अथवा विधि का एकीकरण। संक्षेप में कहा जाए तो हिन्दू कोड बिल प्राचीन काल से ही हिन्दुओं के पवित्र समझे जाने वाले विधि विधानों और रूढ़ियों का अन्त कर उसके स्थान पर ऐसे समान नियमों का निर्माण करना है जो हिन्दू समाज में आमूल-चूल परिवर्तन कर भारत को सामाजिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर कर सके। वास्तव में हिन्दू कोड बिल दो उद्देश्यों पर आधारित था। प्रथम यह कि हिन्दू समाज से संबंधित बिखरे हुए विभिन्न कानूनों को एक ही कानून संहिता में एकत्रित करना व उन्हें सुधारना तथा द्वितीय, हिन्दू कानूनों को भारतीय संविधान के अनुरूप बनाना। जहाँ तक पहले उद्देश्य का संबंध है तो यह प्रचलित कानूनों और नियमों के सुधार से संबंधित था। दूसरे वाले उद्देश्य की व्याख्या करते हुए डॉ. आंबेडकर ने कहा “जो लोग हिन्दू कोड बिल का विरोध कर रहे हैं, मैं उनका ध्यान संविधान के अनुच्छेद 15 की ओर दिलाना चाहता हूँ जिसे मूल अधिकार के रूप में पारित किया गया है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इसमें से किसी के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। लेकिन वर्तमान में जो हिन्दू नियम प्रचलित है वह पुरुष एवं स्त्री के बीच विभेद करते हैं। अतः प्रचलित हिन्दू नियमों में सुधार न किया गया तो यह भारतीय संविधान के उपबंधों से टकराएगा(Nagindrapa & Khan, n.d.) ”

डॉ. आंबेडकर ने हिन्दू कोड बिल का जो प्रारूप तैयार कर संसद में प्रस्तुत किया, उसमें दिए गए प्रमुख प्रावधानों को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत सरल रूप में वर्णन प्रस्तुत किया गया है :

1. विवाह : उल्लेखनीय है कि हिन्दू कोड बिल में दो प्रकार के विवाहों को स्वीकृत किया गया। एक शास्त्रीय विवाह जो हिन्दू रीति-रिवाजों में पहले से ही विद्यमान था, दूसरा सिविल विवाह। तत्कालीन हिन्दू कानून मात्र शास्त्रीय विवाह को ही स्वीकार करता था, सिविल विवाह के लिए उसमें कोई स्थान न था। सिविल विवाह कई अर्थों में शास्त्रीय विवाह से अलग था। सिविल विवाह, जिसे रजिस्टर्ड विवाह भी कहा जाता है, में एक ओर विवाह में सगोत्र की समानता को कोई बाधा नहीं माना गया अर्थात् इसके अंतर्गत समान गोत्र के लड़का-लड़की विवाह के बंधन में बंध सकते थे। दूसरी ओर इसमें अंतर्जातीय विवाह को भी मान्यता प्रदान की गयी। अतः किसी भी जाति के लड़के तथा लड़की के विवाह संबंधों एवं उनसे उत्पन्न सन्तान को वैध माना गया। तत्कालीन हिन्दू रीति-रिवाजों में पुरुष बहु-विवाह कर सकता था। हिन्दू कोड बिल में पति-पत्नी दोनों के लिए बहु विवाह को निषेध किया गया तथा ऐसा करने पर सजा का भी प्रावधान किया गया। इसके अतिरिक्त विधवा पुनर्विवाह को भी जायज ठहराया गया(S. Mandal, 2021)।

2. विवाह विच्छेद एवं तलाक : ध्यातव्य है कि तत्कालीन हिन्दू रीति-रिवाजों में विवाह संबंध को दो आत्मा का मिलन माना जाता था, अतः इसे अविच्छेद्य बताया गया। किन्तु आश्चर्य तो यह था कि यह अविच्छेद्यता केवल स्त्री के लिए थी पुरुष के लिए नहीं अर्थात् स्त्री किसी भी स्थिति में पुरुष से अलग नहीं हो सकती थी। हिन्दू कोड बिल ने महिलाओं को विवाह विच्छेद का अधिकार प्रदान किया तथा विच्छेद के सात मजबूत आधारों का निर्धारण किया(Sampathkumar, 2014)।

क. विवाह के समय पर एवं तब से लेकर इससे संबंधित अदालती कार्यवाही के आरंभ तक विवाह के दोनों पक्षों में से कोई एक नपुंसक हो।

ख. यदि पति ने किसी महिला को रखल रख लिया है अथवा पत्नी किसी पर पुरुष की रखल बन गई है अथवा वेश्या का जीवन व्यतीत कर रही है।

- ग. पति या पत्नी ने हिन्दू धर्म का त्याग कर कोई दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया हो।
- घ. यदि पति अथवा पत्नी में से कोई एक असाध्यरूप से उन्मत्त या पागल है एवं तलाक के लिए प्रार्थना पत्र देने से पहले निरन्तर पाँच वर्ष के लिए उसका इलाज किया जा चुका है।
- ङ. यदि दोनों पक्षों में से कोई एक भयानक अथवा असाध्य प्रकार के कुष्ठ रोग से ग्रस्त है।
- च. पति या पत्नी क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हों, जिसके फलस्वरूप प्रार्थी उक्त पक्ष के साथ रहने में असमर्थ हो।
- छ. पति अथवा पत्नी ने एक दूसरे का परित्याग कम से कम दो वर्षों के लिए कर दिया हो।

उपरोक्त आधारों में से किसी पर भी पुरुष ही नहीं बल्कि महिला भी तलाक का अधिकार रखती है जो हिन्दू कोड बिल का एक क्रांतिकारी कदम था।

3. दत्तक ग्रहण (गोद लेना) : विदित है कि पहले से प्रचलित हिन्दू कानून में मात्र लड़के को ही गोद लिया जा सकता था एवं इसके लिए पत्नी की इच्छा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था-अर्थात् पत्नी की स्वीकृति प्राप्त नहीं की जाती थी। दत्तक अथवा गोद लेने का अधिकार मात्र अपने कुल में पैदा हुए लड़के को ही था। हिन्दू कोड बिल में दत्तक ग्रहण में पत्नी की स्वीकृति अनिवार्य मानी गई। इसके अंतर्गत हिन्दू परिवार में जन्मे लड़के या लड़की को गोद लिया जा सकता था चाहे वह लड़का अथवा लड़की किसी भी हिन्दू जाति के क्यों न हो। वह गोद लिए जाने वाले की जायदाद के वारिस बन सकते थे (Yadav, 2019)।

4. भरण-पोषण : उल्लेखनीय है कि वृद्ध माता-पिता के भरण-पोषण की तत्कालीन हिन्दू रिवाजों में कोई जिम्मेदारी सुनिश्चित नहीं की गई थी। केवल लोक लाज के लिए वृद्धजनों का भरण-पोषण किया जाता था। हिन्दू कोड बिल ने वृद्धों की देखभाल का कानूनी आधार तैयार किया। इसके साथ हिन्दू स्त्री को जीविका प्राप्त करने के अपने अधिकार से वंचित हुए बिना भी अपने पति से अलग रहने का अधिकार प्रदान किया। परन्तु इसके साथ यह प्रतिबंध भी लगाया कि यदि पत्नी अपतिव्रता है अथवा उसने धर्म परिवर्तन कर लिया है तो इस स्थिति में भरण-पोषण की हकदार नहीं होगी (Sankar & Sadasivan Nair, 1999)।

5. संपत्ति का अधिकार : ज्ञातव्य है कि परिवार की संपत्ति में महिलाओं का अधिकार, विशेषतः पुत्री के अधिकार का समावेशन हिन्दू कोड बिल का बेहद क्रांतिकारी कदम था। इस विधेयक के अस्तित्व में आने के पश्चात महिला द्वारा जो भी संपत्ति प्राप्त की जाएगी, वह निश्चित रूप से उसकी निजी संपत्ति होगी। इसके अंतर्गत महिला द्वारा अर्जित धन, विवाह संस्कार से प्राप्त स्त्रीधन, दहेज, सगे संबंधियों द्वारा दिए गए उपहार आदि की स्वामिनी महिला ही होगी। उसकी अनुमति से ही पति विशेष अवस्थाओं में उसका उपयोग कर सकता है। स्त्री धन को लेने अथवा बेचने आदि का अधिकार पति, पुत्र, पिता, भाई आदि को नहीं है। इसके साथ ही पति की मृत्यु होने पर महिला को पति की संपत्ति में उसकी संतान के समान बराबर हिस्सा अथवा अंश देने का प्रावधान किया गया। इतना ही नहीं पिता की मृत्यु यदि बिना वसीयतनामे के हुई है तो पुत्री भी पुत्रों के बराबर सम्पत्ति की वारिस एवं उत्तराधिकारी होगी (Yadav, 2019)।

6. संरक्षण संबंधी प्रावधान : ध्यातव्य है कि तत्कालीन हिन्दू रीति-रिवाजों में पिता अपनी संतान का अभिभावक ताउम्र बना रहता था, चाहे उसने धर्म परिवर्तन कर लिया हो अथवा सन्यास ग्रहण कर लिया हो। हिन्दू कोड बिल के अंतर्गत सन्यासी बनने और धर्म परिवर्तन दोनों ही स्थिति में पिता की अभिभावकता का लोप होने का कानून बनाया गया और इसका अधिकार माता को दिया गया। उपरोक्त प्रावधानों के द्वारा डॉ.

अम्बेडकर का ने पहले से चली आ रही अत्याचारपूर्ण व्यवस्थाओं को बदलने का प्रयास किया। उन्होंने हिन्दू, हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख, जैन सबको एक सूत्र में बांधकर लाखों-करोड़ों महिलाओं को अत्याचार, उत्पीड़न एवं अन्याय से मुक्ति दिलाने के लिए हिन्दू कोड बिल के रूप में एक मजबूत कानूनी आधार का निर्माण करने की पुरजोर कोशिश की (Chakrabarty, 2016)।

डॉ. भीम राव अम्बेडकर के योगदानों की प्रासंगिकता :

विदित है कि डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने समानता के आधार पर हिंदू समाज के पुनर्निर्माण पर जोर दिया। कानून मंत्री और मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने मनु द्वारा बनाए गए सामाजिक कानूनों में सुधार करके महिलाओं को सदियों पुरानी दासता से मुक्त करने का दायित्व निभाया। एक समाज सुधारक के रूप में उनके लेखन और गतिविधियों ने महिलाओं के सशक्तिकरण में काफी हद तक मदद की। महिला सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय नीति 2001, में स्वीकार किया गया है कि लैंगिक असमानता के लिए सामाजिक और आर्थिक संरचना काफी हद तक जिम्मेदार है, जैसा कि अंबेडकर ने बहुत पहले कल्पना की थी। सरकार ने महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं की शिक्षा जैसी विभिन्न पहल की है। स्वयं सहायता समूह, क्षमता निर्माण, कौशल निर्माण प्रशिक्षण, महिला और बाल विकास पर जोर, रोजगार सुविधाएं, राजनीति में महिलाओं की भागीदारी और राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना, विकास को बढ़ावा देने के लिए 5-वर्षीय योजनाओं द्वारा रचनात्मक कदम उठाए गए हैं। महिलाओं के नियोजित विकास में पिछले दशकों में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में महज कल्याण से सशक्तिकरण की ओर एक आदर्श बदलाव आया है। उन्हें पंचायतों में प्रतिनिधित्व मिला है। भारतीय महिलाओं ने कुछ हद तक प्रगति हासिल की है, फिर भी वे अपहरण, हिंसा, अपराध, अपमान, दहेज, एसिड हमले, छेड़छाड़, बलात्कार और ऑनर किलिंग जैसी विभिन्न सामाजिक बुराइयों की शिकार हैं। असमानताओं और भेदभावों को सुधारने में कई दशक लगेंगे। महिलाओं के अधिकारों के लिए होने वाले प्रयासों से पता चलता है कि बहुत कुछ अधूरा रह गया है। हालाँकि उन्हें सामाजिक, आर्थिक, कानूनी और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाया जा रहा है (Khosla, 2022)।

भारत में महिला अधिकार आंदोलन दो प्रकार के हैं: एक कुलीन वर्ग का और दूसरा दलित वर्ग का; पहला पश्चिमी विचारों से प्रभावित और दूसरा श्रमिकों द्वारा अपने अधिकारों के लिए चलाया जाने वाला आंदोलन। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पहले प्रकार के महिला सशक्तिकरण आंदोलन में अंबेडकर के विचारों को मान्यता नहीं दी गई है। भारत में नारीवादी आंदोलन निचली जाति की महिलाओं की समस्याओं को हल करने में सफल नहीं रहा है और उनके अधिकारों पर पर्याप्त ध्यान देने में विफल रहा है (Datta, 2019)। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न पर विशाखा दिशानिर्देशों में यह बहिष्करण दिखाई देता है जो असंगठित वर्ग पर लागू नहीं होता है। कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए 2 सितंबर 2012 को लोकसभा में एक विधेयक पारित किया गया, जिसका नाम कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न विधेयक था। यह 2013 में एक अधिनियम बन गया और इसे कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 नाम दिया गया। इसमें विशाखा बनाम राजस्थान राज्य मामले में हमारे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुझाए गए दिशानिर्देशों और मानदंडों को शामिल किया गया है (Singh, 2016)।

विदित है कि असंगठित क्षेत्र की 70 प्रतिशत निचली जाति की महिलाएं समान पारिश्रमिक का लाभ लेने के विशेषाधिकार से वंचित हैं। पितृसत्ता और जाति व्यवस्था जैसी बुराइयों का उन्मूलन ही क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं और निर्भया की पुनरावृत्ति को रोका जा सकता है। न केवल संवैधानिक प्रावधानों बल्कि लोगों

के हृदय एवं दृष्टिकोण में बदलाव के माध्यम से महिलाओं को मुक्ति मिल सकती है और उन्हें सशक्त किया जा सकता है, यही डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का एक महान लक्ष्य था। स्वयं महिलाओं और सरकार का एक संयुक्त प्रयास उनके विकास के रास्ते में बाधाओं को दूर कर सकता है।

निष्कर्ष:

उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह के प्रतीक, भारतीय महिलाओं के लिए एक उद्धारक के रूप में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का योगदान इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने एक नवीन सामाजिक व्यवस्था की नींव रखी जो देश के सर्वांगीण विकास के लिए समाज के सभी वर्गों के सशक्तिकरण को आवश्यक मानती है। उपरोक्त विश्लेषण से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित हिंदू कोड बिल की अधिकांश विशेषताएं अभिव्यक्त करती हैं कि वे स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और गरिमा की मूल भावना से गहरे से अवगत थे। वह कभी नहीं चाहते थे कि महिलाओं को भेदभाव का सामना करना पड़े और उनका यह भी मानना था कि महिलाएं पुरुषों से नीचे नहीं हैं। वह बखूबी जानते थे कि एक महिला कोई भी ऊँचा मुकाम हासिल कर सकती है (Khosla, 2018)। हिन्दू कोड बिल के माध्यम से वह महिलाओं को समान अधिकार देना चाहते थे, उन्होंने उनकी शिक्षा से लेकर संपत्ति तक सभी क्षेत्रों में अधिकारों की वकालत की। यह दुर्भाग्य की बात है कि वह इस बिल को जिस रूप में लागू करवाना चाहते थे, उसी रूप में इसे लागू नहीं करवा पाए और कानून मंत्री के पद से विक्षुब्ध होकर इस्तीफा दे दिए किन्तु इस बिल को आगे चलकर विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से खंड-खंड में लागू किया गया। उनके इन्हीं प्रयासों के कारण आज की भारतीय महिलाओं को समाज में एक प्रतिष्ठा हासिल है और वे समाज में किसी भी पुरुष की तरह अपनी इच्छानुसार कुछ भी हासिल कर सकती हैं (Jadhav & Dhaware, n.d.)।

References:

1. Abedi, F. (2017). Ambedkar's Struggle for the Emancipation of Women. *Academic Discourse*, 6(1), 60–63.
2. Ambedkar, B. (2014). *THE ANNIHILATOR OF CASTE*.
3. Ambedkar, B. R., & Moon, V. (2020). *Dr. Babasaheb Ambedkar: (2 pts.). Dr. Ambedkar and the Hindu code bill*. Dr. Ambedkar Foundation. <https://books.google.co.in/books?id=Sk850AEACAAJ>
4. Bala, B. (2019). *Hindu Code Bill-An Ambitious Dream of Dr. BR Ambedkar to Women Empowerment and its Disastrous Repudiation*.
5. Chakrabarty, B. (2016). BR Ambedkar and the history of constitutionalizing India. *Contemporary South Asia*, 24(2), 133–148.
6. Datta, R. (2019). Emancipating and strengthening Indian women: An analysis of BR Ambedkar's contribution. *Contemporary Voice of Dalit*, 11(1), 25–32.
7. Deokar, M. A. (2020). Buddha and Ambedkar on caste: A comparative overview. *Classical Buddhism, Neo-Buddhism and the Question of Caste*, 87–110.
8. Halli, C. S., & Mullal, S. M. (2016a). Dr. BR Ambedkar and Hindu code bill, women measure legislation. *Imperial Journal of Interdisciplinary Research (IJIR)*, 2(3), 7–10.
9. Halli, C. S., & Mullal, S. M. (2016b). Dr. BR Ambedkar and Hindu code bill, women measure legislation. *Imperial Journal of Interdisciplinary Research (IJIR)*, 2(3), 7–10.

10. Jadhav, V., & Dhaware, G. (n.d.). *Dr. Ambedkar's Contribution to Feminist Discourse in India: A Contemporary Relevance*.
11. Khosla, S. (2018). AMBEDKAR AS FORERUNNER OF EQUALITY. *Innovative Research Thoughts*, 4(4), 450–459.
12. Khosla, S. (2022). RELEVANCE OF AMBEDKAR'S PHILOSOPHY IN CONTEMPORARY INDIA. *Innovative Research Thoughts*, 8(4), 29–37.
13. Mandal, B. C. (2011). Dr. BR Ambedkar: A Champion of Women's Rights and Empowerment. *Voice of Dalit*, 4(1), 79–90.
14. Mandal, S. (2021). *Ambedkar's illegal marriage: Hindu nation, Hindu modernity*.
15. Michaels, A. (2010). The practice of classical Hindu law. *Hinduism and Law: An Introduction*, 58–77.
16. Nagindrappa, M. M., & Khan, A. (n.d.). *Dr. BR Ambedkar Contribution to the Hindu Code Bill*.
17. Ramajayam, S. (n.d.). Pragmatic Approaches of Dr. Babasaheb Ambedkar on Elevation of Women and Hindu Code Bill. *Women Empowerment A Need of Hour*, 40.
18. Sampathkumar, M. (2014). BR Ambedkar and social justice a study. *Historical Research Letter*, 13.
19. Sankar, D., & Sadasivan Nair, G. (1999). *Right to Maintenance Under Criminal Law-A Critical Study*.
20. Singariya, M. (2014). Dr. BR Ambedkar and women empowerment in India. *Quest Journals Journal of Research in Humanities and Social Science*, 2(1), 1–4.
21. Singh, T. (2016). Prevention of sexual harassment of women in the workplace: Seeking gender equality at work in India. *Journal of International Women's Studies*, 18(1), 104–113.
22. Thorat, S., & AM, S. (2007). *Ambedkar in Retrospect*.
23. Yadav, K. R. (2019). Ambedkar's Vision towards Women Empowerment in India: Reflections. *Glass Ceiling and Ambivalent Sexism (Critical Perspectives of Gender Trouble)*, 35–37.



भूमंडलीकरण एवं पर्यावरणीय राजनीति का समालोचनात्मक अध्ययन

○ प्रमोद कुमार¹

संक्षिप्ति :

20वीं सदी के अंतिम दशक में उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने वैश्विक स्तर पर बाजार एकीकरण को प्रबलतम गति प्रदान की। इसके तहत भूमंडलीकरण ने संपूर्ण विश्व को भौगोलिक स्तर पर एक समुदाय के रूप में विकसित करना प्रारंभ कर दिया। यह एक ऐसी परिघटना है जिसमें व्यापार, वित्त-पूंजी, वस्तु, संस्कृति, विचार आदि के मुक्त प्रवाह पर बल दिया। वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय हास की समस्या भी आधुनिक मानवीय सभ्यता का लगातार ध्यान आकृष्ट कर रही थी। क्योंकि भूमंडलीकृत बाजार अर्थव्यवस्था ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को और तेज कर दिया। परिणामस्वरूप पर्यावरणीय राजनीति ने भूमंडलीकरण और नव-उदारवादी ढांचे पर मूलभूत सवाल खड़े किए। भूमंडलीकरण एवं पर्यावरणीय राजनीति का अंतर्विरोध 21वीं सदी में हमारे समक्ष विकराल रूप में सामने आया है।

बीज शब्द : भूमंडलीकरण, पर्यावरणीय राजनीति, निजीकरण, उदारीकरण, पर्यावरणवाद।

भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसने राष्ट्र-राज्यों की भौगोलिक सीमाओं को संकुचित करते हुए उन्हें परस्पर एक दूसरे से जोड़ा है यह जुड़ाव केवल राष्ट्र राज्यों के स्तर तक ही नहीं बल्कि उनकी भौगोलिक सीमाओं में रहने वाले नागरिकों, संस्थाओं (सरकारी एवम, गैर सरकारी दोनों), सांस्कृतिक विचारों, वैश-भूषाओं इत्यादि तक भी हुआ है। संचार परिवहन एवम तकनीकी के उनन्त संसाधनों में जुड़ाव को केवल तीव्रता ही नहीं बल्कि सुलभता भी प्रदान की है

सामान्यता भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को एक आर्थिक प्रक्रिया एवम् अर्थशास्त्रीय विचारधारा के रूप में समझा जाता है किंतु यह एक बहुआयाम है यह आर्थिक के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक, वैचारिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया इत्यादि भी है। एक आर्थिक प्रक्रिया के रूप में जब हम भूमंडलीकरण को समझते हैं तो यह संपूर्ण वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं को परस्पर जटिल रूप से आत्मनिर्भर बनाता है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

अपने आर्थिक स्वरूप में उदारीकरण एवम् निजीकरण को साथ लेकर सामने आती है। उदारीकरण का अर्थ है कि राष्ट्र राज्य अपनी अर्थव्यवस्थाओं में व्यापारिक अवरोधों को न्यूनतम करें, वह अपनी अर्थव्यवस्था एवम् बाजार को खोलकर उसमें संरचनात्मक सुधार करें।

भूमंडलीकरण की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

हालाँकि, भूमंडलीकरण स्वाभाव में एक वैचारिक परिदृश्य है, किंतु फिर भी इसकी अपनी एक विचारधारा है। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के तत्पश्चात विश्व एकल ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में परिवर्तित हुआ तथा इसे समाजवाद पर एक पूंजीवाद की विजय के रूप में भी देखा गया, तथा फ्रैंसिस फुकुयामा जैसे विद्वानों ने तो इसे समाजवाद के अंत के साथ “इतिहास का अंत” तक कह दिया। हाँलाकि आधुनिक भूमंडलीकरण की आधारशीला वॉशिंग्टन सहमति से उपजी, पूंजीवादी वैचारिक सहमति में आसानी से मिल जाती है, क्योंकि वॉशिंग्टन सहमति की मूल अवधारणा में राजकोषीय प्रबंधन, निजीकरण तथा बाजारी शक्तियों के उदारीकरण पर राष्ट्रों में सहमति को निर्मित करना है। उपरोक्त तीनों ही प्रावधानों को वॉशिंग्टन सहमति की नींव माना गया। 1990 के दशक में नव-उदारवादी विचारधारा से जुड़े विद्वानों ने, जिसमें मुख्य रूप से हेयक, मिल्टन फ्रीडमैन, राबर्ट नॉजिक इत्यादि शामिल थे। इन्होंने मुख्यतः राज्य के दूर-दूर तक फैले कार्यक्षेत्र को समेटने (Roll Back of State) पर बल दिया।

किंतु वहीं दूसरी तरफ भूमंडलीकरण के विरोधी विचारक भूमंडलीकरण की इस सामाजिक विवराणात्मक न्याय विरोधी प्रक्रिया को संदेहास्पद दृष्टि से अवलोकित कर रहे थे। नव-उदारवादी समसामयिक वैचारिक परंपरा की एक शाखा जिसे हम नव-उदारवादी समतावाद के रूप में पहचानते हैं जिसमें मुख्य रूप से रोकोवास्की, डार्विन, अमार्थ्य सेन, जॉन रॉल्स, सी. बी मेकफर्सन, एलिजाबेथ एंडरसन इत्यादि आते हैं इन विद्वानों ने भूमंडलीकरण की इस सामाजिक न्याय विरोधी प्रवृत्ति का जोरदार खंडन किया है।

भूमंडलीकरण एवम् नव-उदारवाद की समस्त प्रक्रियाओं को वैश्विक जनमत विशेषतः तृतीय विश्व के राष्ट्रों में एक नये प्रकार के साम्राज्यवाद अथवा साम्राज्यवादी प्रक्रिया के एक रूप में देखा जा रहा था। इसके तहत विकासशील राष्ट्रों पर विकसित देशों के अप्रत्यक्ष अधिपत्य की संकल्पना को कई अर्थों एवम् रूपों में देखा गया। इस प्रकार ये बहुराष्ट्रीय निगम केवल कमजोर राष्ट्रों को भयभीत ही नहीं कर रही हैं बल्कि, वहाँ के जनमानस में भी इनको लेकर पर्याप्त भय एवम् स्वयं के भविष्य को लेकर संकट नजर आता है क्योंकि भूमंडलीकरण एवम् ये विकास असमान एवम् असंतुलित है। भूमंडलीकरण ने वैश्विक व्यापार का विविधिकरण किया जिससे कि व्यापार राष्ट्र राज्यों की सीमाओं का अतिक्रमण कर गया। व्यापार सरलीकरण की प्रक्रियाओं के कारण अंतर-क्षेत्रीय एवम् अंतरराष्ट्रीय व्यापार सुगमातापूर्वक होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पूरी दुनिया में बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) का जाल सा बिछने लगा। ये बहुराष्ट्रीय निगम मुख्य रूप से विकसित देशों की बड़ी कंपनियाँ थीं। इन निगमों ने तृतीय विश्व के बाजारों पर धीरे-धीरे कब्जा जमाना शुरू किया।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के पर्यावरणीय अन्तर्विरोध

आर्थिक विकास के साथ पर्यावरणीय संरक्षण आज के समसामयिक युग की मानवीय सभ्यता की सबसे बड़ी चुनौती है। आज के युग के मानव को आर्थिक संवृद्धि एवम् आर्थिक विकास तथा पर्यावरणीय सुरक्षा के मध्य एक बेहद बारीक सा दिखाई देने वाला संतुलन साधना है। विकसित राष्ट्र अपने पूर्ववर्ती विकास के स्तर को बनाए रखने हेतु विकास की प्रक्रिया में लगातार संलग्न हैं। वहीं दूसरी तरफ विकासशील राष्ट्र अपने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को पूरा करने हेतु विकास को अनिवार्य शर्त मानते हैं। यहीं से पर्यावरण पर राजनीति की

शुरुआत के संकेत मिलने आरंभ हो जाते हैं।

पर्यावरणवाद अथवा पर्यावरणीय राजनीति विगत कई दशकों पूर्व तक एक स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में नहीं उभर पाई। साथ ही राजनीतिक सिद्धांत अथवा अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मूलभूत सैद्धांतिक पैराडाइम में भी हरित राजनीति, पर्यावरणवाद एवम् इससे जुड़े मुद्दों एवम् समस्याओं को कभी मुख्यधारा में सम्मिलित किया ही नहीं गया। इस प्रकार पर्यावरणवाद एवम् पर्यावरणवादी राजनीति एक स्वायत्त राजनीतिक गतिविधि के रूप में मान्यता प्राप्त करने में लंबे समय तक विफल रही। केवल इतना ही नहीं बल्कि पर्यावरणवाद को मुख्यधारा सिद्धांतों से बहिष्कृत तक किया गया। अनेक राजनीतिक विद्वानों के अनुसार तो पर्यावरणीय राजनीति एक मिथ्या गतिविधि अथवा क्रियाकलाप के रूप में रेखांकित की गई।

इस प्रकार पर्यावरणवाद एक विचारधारात्मक आंदोलन है, जो पश्चिम राजनीति में 1970 के दशक में उभरा और धीरे-धीरे संपूर्ण विश्व में फैल गया। पर्यावरणवाद से जुड़ी राजनीति को हम कई बार हरित राजनीति भी कहते हैं तो कई बार परिस्थितिकवाद की भी संज्ञा देते हैं। पर्यावरणीय इतिहास मानवीय संस्थाओं से परे होने के साथ-साथ लिंग, वर्ग, राजनीतिक संस्थाओं इत्यादि से भी तटस्थ है, क्योंकि ये सभी स्वयं पर्यावरण पर निर्भर हैं।

इस प्रकार पर्यावरण राजनीति मुख्य रूप से सामाजिक न्याय का मुद्दा भी बन जाता है क्योंकि पर्यावरणीय राजनीतिज्ञ तर्क देते हैं कि पृथ्वी किसी की भी निजी संपत्ति नहीं है बल्कि यह तो संपूर्ण मानवीय जगत की साझी धरोहर है। इसी कारण परिस्थितिकी-केंद्रित पर्यावरणीय राजनीति मानव की केवल आवश्यकता ही नहीं बल्कि यह आज उसकी सबसे बड़ी मजबूरी भी बन गई है। इसलिए आज वैश्विक समुदाय पर्यावरणवादी राजनीति को सभी राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र में रख कर देखता है।

अतः इस तर्क में कोई दो राय नहीं है कि पर्यावरणीय राजनीति एक स्वतंत्र चर (Independent Variable) के रूप में आज वैश्विक स्तर पर उभर रही है। पर्यावरणीय राजनीति ने वैश्विक समुदाय के सामने शोध के ना केवल नये आयाम प्रस्तुत किये हैं बल्कि साथ ही नये क्षेत्र भी खोल दिए हैं। यून तो जाहिर है कि कोई भी सिद्धांत शून्य अवस्था में उत्पन्न नहीं होता बल्कि किसी भी सिद्धांत निर्माण के पीछे कुछ खास किस्म की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मानवीय अथवा अन्य किसी भी प्रकार की परिस्थितियाँ जिम्मेदार होती हैं आज पर्यावरणीय समस्याओं ने पूरी मानवीय सभ्यता के अस्तित्व को झकझोर कर रख दिया है। आज का आधुनिक मानव समझ चुका है की उसका अस्तित्व प्रकृति के अस्तित्व पर ही निर्भर है और वही प्रकृति आज विनाश के कगार पर पहुँचती जा रही है। अतः पर्यावरणीय राजनीति पर अब गहन चिंतन की शुरुआत होने लगी है। बस अंतर इतना ही है कि विकसित एवम् विकाशील दोनों ही देश इसे अपने-अपने परिप्रेक्ष्यों एवम् कुछ हद तक हितों के रूप में परिभाषित कर रहे हैं।

पर्यावरणीय ह्रास एवं भूमण्डीकरण आधारित विकास मॉडल

इस प्रकार पर्यावरण के समस्त सिद्धांतों का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने के पश्चात हम पाते हैं कि सभी सिद्धांत अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं। किंतु फिर भी सभी सिद्धांतों में एक एकस्वरूपता है वह ये है कि सभी सिद्धांत प्रकृति के प्रति विशेष तरीके से संवेदनशील हैं। सभी सिद्धांतों के मूल केंद्र में जो विचार हम पाते हैं वह हैं 'प्रकृति' जहाँ अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अन्य सिद्धांत राष्ट्र-राज्यों, मानवों, युद्ध एवम् संघर्ष आदि को राजनीति के केंद्र-बिंदु के रूप में स्थापित करते हैं, तथा पर्यावरणीय समस्याओं का बहिष्कार कर देते हैं। वहीं पर्यावरण राजनीतिक सिद्धांत मानवीय जीवन की सबसे विकराल समस्या के रूप में जिस समस्या को इंगित करते हैं, वह है पर्यावरणीय समस्या एवम् उसका वांछित समाधान। यद्यपि सभी सिद्धांत उपरोक्त समस्या का

समाधान अपने तरीके से ढूँढते हैं। साथ ही सभी सिद्धांतों से अलगाव रखते हैं, उनके मौलिक विश्लेषण के केंद्र बिंदु भी अलग-अलग हैं। लेकिन इन सबके बावजूद पर्यावरणीय राजनीतिक सिद्धांतों ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति में एक राजनीतिक सिद्धांतों की एक नई समझ विकसित की है। पर्यावरणीय सिद्धांत संपूर्ण सैद्धांतिक एवम् वैचारिक परंपरा में एक पैराडाइम है।

ये एक ऐसा प्रतिमान रूपी परिवर्तन है जिसने राजनीतिक सिद्धांतों तथा अंतरराष्ट्रीय राजनीति को समृद्ध किया है। इन्होंने वैश्विक बौद्धिक समुदाय को नये तरीके से सोचने समझने व शोध करने के नवीन आयाम प्रदान किए हैं। इसका उदाहरण हम देख सकते हैं कि आज विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोधार्थी पर्यावरणीय विषयों पर लगातार शोध कर रहे हैं। दुनिया के अनेक देशों में तो अंतरराष्ट्रीय राजनीति एवम् राजनीतिक विज्ञान से स्वायत्त पर्यावरणीय अध्ययन के केन्द्र एवम् विभाग भी स्थापित किए गये हैं। अतः पर्यावरणीय राजनीति का वास्तविक प्रभाव भले ही स्पष्ट रूप से सभी मुख्य धारा सिद्धांतों में दिखाई नहीं दे रहा हो, किंतु भविष्य में इसके अत्यंत महत्वपूर्ण तथा दूरगामी प्रभाव दृष्टिगोचर होने की प्रबल संभावनाएं प्रतीत हो रही हैं।

पर्यावरणीय राजनीति के कुछ व्यावहारिक प्रभाव भी पड़े जो की हरित राजनीति के बगैर संभव नहीं हैं। विश्व के अनेक देशों में पर्यावरणीय राजनीति के प्रभाव-वश हरित राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ। जैसे की नॉर्वे, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन तथा पश्चिमी युरोप के अनेक देशों आदि। कई राष्ट्रों में इन हरित राजनीतिक दलों ने चुनाव में हिस्सेदारी लेकर आंशिक सफलता भी प्राप्त की जैसे की ब्रिटेन के स्थानीय चुनावों में वहीं के हरित दल ने काफी बेहतर प्रदर्शन किया (Rootes, 1995)।

इसी प्रकार अमेरिका में भी हरित दल अस्तित्व में आए। वे हरित दल मुख्य रूप से सामाजिक आंदोलनों का परिणाम थे। हालाँकि, शुरू में इनकी प्रगति काफी धीमी थी लेकिन बाद में यह धीरे-धीरे विकसित हुआ। सन् 2000 के चुनाव से उभरे ये हरित राजनीतिक दल देश के तीसरे सबसे बड़े राजनीतिक निर्माणकारी दल बन गये। इनको 2.88 मिलियन लोगों के मत मिले तथा इसके साथ राज्यों में ये वैधानिक राजनीतिक दल का दर्जा पाने में सफल रहे।

ऐसे ही विभिन्न युरोपियन राष्ट्रों में भी हरित दलों का निर्माण हुआ। इन राष्ट्रों में भी लगभग सभी हरित राजनीतिक दलों की विचारधारा तथा कार्य-पद्धति समान ही रही। जब हम हरित दलों का मूल्यांकन करते हैं तो हम पाते हैं कि हरित दलों ने अन्य राजनीतिक दलों की अवधारणा में बेहद आमूल परिवर्तन कर दिए। जहाँ परंपरागत रूप से राजनीतिक दलों को हम केवल इस आधार पर विश्लेषित करते हैं कि वे केवल सत्ता पाने के लिए संघर्षरत रहते हैं। उनकी कार्यपद्धति मुख्य रूप से चुनाव में जीत हासिल करना होता है। वे मुख्य रूप से मतदाताओं की उपभोगतावादी माँगों को संतुष्ट करने के दावे करते हैं। परंपरागत राजनीतिक दल नागरिकों को बेहतर आर्थिक संवृद्धि की लालसा देते हैं जबकि हरित दल मुख्य रूप से हरित समालोचना तथा पर्यावरणीय दुष्प्रभावों की आलोचना करते हैं। इस प्रकार हरित राजनीतिक दलों ने राजनीतिक सिद्धांतों को दलील प्रणाली को नये शोध के विषय प्रदान किए।

पर्यावरणीय राजनीति के प्रभाव में कुछ व्यावहारिक मुद्दे भी सामने आये जैसे पारिस्थितिकीय-करण। यह एक ऐसा कर है जो कि राज्य सरकारें लोक एवम् निजी संस्थानों पर कार्बन उत्सर्जन के लिए लगाती है। ये कर कार्बन उत्सर्जन के सापेक्ष बढ़ता चला जाता है जो कि पर्यावरणीय नुकसान की भरपाई करता है। यह कर 'प्रदूषणकर्ता ही भुगतान करें' के सिद्धांत को आधार बनाकर लगाया जाता है।

इसी प्रकार एक अन्य मुहिम 'पृथ्वी के मित्र' संस्था ने पारिस्थितिकीय कर्ज की संकल्पना के साथ शुरू की। यह एक अभियान था जो की यह दर्शा रहा है कि विकसित अर्थव्यवस्था जो कि पर्यावरणीय संसाधनों

के कारण विकसित हैं। उन्होंने पर्यावरण का दोहन किया है इसलिये वो विकसित है। अतः उन पर पर्यावरण के बोझ के कारण कर्ज है। उनकी समृद्धता इसी कारण है कि पृथ्वी ने उन्हें अपने संसाधन दिए इसलिए वे इस पृथ्वी के कर्ज में हैं।

एक अन्य अवधारणा पारिस्थितिकीय अर्थशास्त्र की है। यह अर्थशास्त्रीय सिद्धांतों एवम् विकास की गणना पर्यावरणीय हास के साथ मापकर करता है। इनके अनुसार पर्यावरणीय समस्याओं का मूल कारण बाजार की विफलता है। ये इस बात को सिरे से खारिज करते हैं कि तार्किक विवेकशील प्राणी अर्थात् मानव पर बल दिया जाए क्योंकि तार्किक मानव की क्रियाएँ ही बाजार में माँग पूर्ति के नियमों को बाजार में आगे बढ़ाती है जो कि पर्यावरणीय विनाश का मूल कारण है। ये मानते हैं कि मानवीय गतिविधियाँ शेष विश्व से स्वायत्त नहीं है, तथा आर्थिक विकास का आधार सतत विकास के बिना अस्तित्वहीन है (Costanza, 1991)।

आज हम पर्यावरणीय संरक्षण के लिए एक अन्य संकल्पना पारिस्थितिक पदचिह्न के रूप में भी स्वीकारते हैं ताकि टिकाऊ विकास को प्राप्त किया जा सके। किंतु विकसित राष्ट्र इसका विरोध करते हैं, क्योंकि इसमें कार्बन उत्सर्जन को प्रति-व्यक्ति के आधार पर मापा जाता है। विकसित राष्ट्रों की कम जनसंख्या भी अधिक उत्सर्जन करती हैं (Wackernagel and Rees, 1999)।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

पर्यावरणीय राजनीति मानव को विस्थापित कर प्रकृति को केंद्र में रखती है तथा आर्थिक संवृद्धि एवम् विकास पर बड़ा प्रश्नचिह्न लगती है। किंतु आलोचकों के अनुसार किसी भी कीमत पर आर्थिक विकास की प्रक्रिया पर विराम नहीं लगाया जा सकता। विश्व में अनेक मानवीय समस्याएँ हैं जैसे गरीबी, भुखमरी, बीमारी, अभाव, पीड़ा, आर्थिक वांछना आदि। इन सब समस्याओं का हल आर्थिक विकास है। अतः मानव किसी भी कीमत पर आर्थिक संवृद्धि एवम् विकास से समझौता नहीं कर सकता। मानव के सामने आज दो ही विकल्प हैं- या तो वो पीड़ा से मुक्ति प्राप्त कर ले अथवा पर्यावरण का संरक्षण कर ले। जहाँ एक और पर्यावरणीय राजनीति उपभोक्तावाद एवम् बाजार केंद्रित भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का विरोध करती है क्योंकि इससे प्राकृतिक संसाधनों पर अनावश्यक दबाव पड़ता है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक विकास एवम् समृद्धि के समर्थक भूमंडलीकरण एवम् बाजार की क्रियाओं को और अधिक तेज करने पर बल देते हैं। इनके अनुसार बाजार एवम् भूमंडलीकरण ही वो साधन है जिसके द्वारा मानव की आर्थिक वंचना एवम् पीछड़ेपन के समाधान ढूँढे जा सकते हैं। यह पर्यावरण विरोधी संकल्पना 1960 के दशक में तथा उसके बाद पुनः 1980 के दशक में हमारे सामने आती हैं। 1970 के दशक में अमेरिका में राजनीतिक सक्रियता एवम् सहमति उपरोक्त दृष्टिकोण के समर्थन में सामने आई (Helvarg, 1994)।

पर्यावरण विरोधी आंदोलनों के समर्थकों ने तर्क दिए कि पर्यावरणीय संरक्षण की राजनीति के कारण अनेक लोग बेरोजगार होते जा रहे हैं। अमेरिका में व्यापारिक एवम् औद्योगिक घरानों ने उपरोक्त पर्यावरणीय राजनीति का विरोध किया। इनका तर्क था की पर्यावरणीय राजनीति आर्थिक वृद्धि की सीमा को निर्धारित करती है। वह आर्थिक संवृद्धि एवम् पर्यावरणीय संरक्षण में एक अंतर्विरोध पाती है। इसी के कारण वे एक संवृद्धि की सीमा तथा नुकसान की भरपाई पर बल देती है। अतः पर्यावरणीय राजनीति बाजार एवम् उसकी क्रियाओं के विरोध में खड़ी नजर आती है। जबकि पर्यावरणीय विरोधी राजनीति के समर्थक मानते हैं कि यदि पर्यावरणीय राजनीति के कारण उद्योगों पर ताला लगता चला गया अथवा वे घाटे में गयी तो मानव को अनेक प्रकार की असहनीय पीड़ाओं का सामना करना पड़ेगा (Hirsch and Warren, 1998)।

पर्यावरणीय राजनीति का भूमंडलीकरण के युग में अध्ययन अत्यंत जटिल है किंतु यह प्रासांगिक

वाद-विवाद से जुड़ा मुद्दा है। जहाँ एक ओर भूमंडलीकरण एवम् इसकी प्रक्रिया बाजार केंद्रित अर्थव्यवस्था के मानक को आत्मसात् करती है तथा साथ ही पर्यावरणीय संसाधनों के दोहन हेतु मानव को अधिकृत करती हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय राजनीति विकास की तीव्रतर होती प्रक्रिया पर पुनर्विचार की मांग करती है। यह हमारे सामने एक बेहद ही संवेदनशील एवम् तर्कसम्मत मुद्दा रखती है कि क्या मानवीय आवश्यकताएँ आज इतनी अपरिमित हो गयी हैं कि मानव ने प्रकृति के विनाश के बारे में भी सोचना बंद कर दिया है। जबकि प्रत्येक मानव यह भली-भाँति जानता है कि उसके अस्तित्व की प्रत्येक कड़ी प्रकृति के प्रत्येक कण से इतनी गहराई से जुड़ी है कि इसमें से एक कड़ी का भी टूटना संपूर्ण मानवीय सभ्यता की शृंखला को बिखेर कर रख देगा।

इसी प्राकृतिक शृंखला के विनाश के मद्देनजर ही पर्यावरणीय राजनीतिक सिद्धांत अस्तित्व में आए। इन्होंने मानव को मजबूर किया कि वह अपने ध्यान एवम् संवेदनाओं को अब प्रकृति की तरफ मोड़ कर देखना शुरू करे। यह हमें सिखाती है कि चाहे हम किसी भी सैद्धांतिक परंपरा का अनुसरण करते हो किंतु उन सबसे उपर एक और सैद्धांतिक परंपरा है जो हमें प्रकृति का सैद्धांतिकरण करना सिखाती है। पर्यावरणीय राजनीति प्रकृति का मानवीकरण हुए उसे मानव रूप प्रदान करती हैं। यह मानती हैं कि यह गैर-मानवीय विश्व भी संवेदनाओं से परिपूर्ण है जो की अपनी सार्थकता एवम् अस्तित्व के लिए संघर्ष करता है। इस गैर-मानवीय विश्व का एक-मात्र सबसे बड़ा संघर्ष जगत एवम् मानव के साथ है। प्रकृति के साथ मानवीय अंतः-क्रिया का परिणाम यह होता है कि उसमें पराजय एवम् हानि सदैव प्रकृति के हिस्से ही आती है। प्रकृति स्वयम् में एक सजीव तार्किक प्राणी नहीं है जो कि मानव की तरह विवेकशीलता से सोच सके। बल्कि वह तो सब कुछ सहती जाती है बिना तर्क, बिना विवेकशीलता के। यदि वह भी विवेकशील होती तो मानव उसका इतने विराट स्तर पर दोहन नहीं कर पाता। चूँकि प्रकृति स्वयं तर्क-सम्मत नहीं है कि वह मानव को उसकी गलती का एहसास दिला सके। इसीलिए पर्यावरणीय राजनीति की परंपरा बेहद तार्किक तरीके से तथाकथित मानवीय तार्किकता के दुष्परिणामों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। अब केवल यह देखना बाकी है कि पर्यावरणीय राजनीति की यह परंपरा अपने सार्थक परिणामों को किस हद तक प्राप्त करने में सफल होगी।

References:

- Aggarwal, Bina (2000), "Conceptualizing Environmental Collective Action: Why Gender Matters", Cambridge Journal of Economics, Vol.24, pp- 280-310
- Barry, John (1999), *Rethinking Green Politics: Nature, Virtue and Progress*, pp- 29-144, London: Sage Publications
- Callicott, J. B. (1989) "Indifference of the Land Ethics Essays in Environmental Philosophy", Albany: State University of New York Press.
- Carter, A. (1999), *A Radical Green Political Theory*, London: Routledge.
- Cronon, William. (1983), *Changes in the Land: Indians, Colonists, and the Ecology of New England*, New York: Hill and Wang.
- Devall, B and Sessions, G. (1985), *Deep Ecology: Living as if Nature Mattered*, Salt Lake City: Peregrine Smith Book.
- Dobson, Andrew. (1990), *Green Political Thought*, New York: HarperCollins Academics.

- Doherty, Brian and De Geus Marius. (1996), "Introduction", in B. Doherty and de Geus (eds.) *Democracy and Green Political Thought: Sustainability, Rights and Citizenship*, London: Routledge.
- Dryzek, John (1987), "Rational Ecology: Environment and Political Economy", New York: Baril Blackwell.
- Eckersley, Robyn. (1992), *Environmentalism and Political Theory: Towards and Ecocentric Approach*, New York: State University of New York Press.
- Ekins, P (1999), "European Environmental Taxes and Changes: Recent Experiences, Issues and Trends", *Ecological Economics*, Vol. 31, pp. 39-62.
- Fukuyama, Francis. (1993), *The End of History and the Last Man*, UK: Penguin Company.
- Hayward, T. (1998), *Political Theory and Ecological Values*, Cambridge: Polity Press.
- Kaur, Pushpinder (2016), "Debating Globalization", *Man and Development*, Vol. XXXVIII (1), pp. 15-20.
- कुमार, राकेश एवं जगदीप सिंह (2015), "भूमंडलीकरण और बुद्धिजीवी वर्ग", Delhi: Bharat Pustak Bhandar.
- Loh, J and Wilkerangel William. (eds.) (2004), *The Living Planet Report*, Umweltstiftung WWF: Deutschland.
- Naess, Arne (1989), *Ecology, Community and Lifestyle: outline of an Ecosophy* Translated by D Rothenberg Cambridge, Cambridge University Press.
- Pereira, Luiz Carlos Bresser. (2010), *Globalization and Competition: Why Some Emergent Countries Succeed While Other Fall Behind*, Cambridge: Cambridge University Press.
- Rootes, C. (1995), "Green in Cold Climate" in D. Richardson and C. Rootes (eds.) *The Green Challenge; The Development in Green Parties in Europe*, London: Routledge.
- Stockard, Jean and Van De Kragt, A.J.C. and Dodge, P.J. (1988), "Gender Roles and Behavior in Social Dilemmas: Are There Sex Differences in Cooperation and its Justification?", *Social Pshychology Quaterly*, Vol. 51(2).



दलित आत्मकथा : जाति, गरिमा और सामाजिक पहचान का विमर्श

○ संजीव कुमार¹

संक्षिप्ति :

यह लेख दलित आत्मकथाओं के विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन करता है, जो इन्हें प्रभुत्वशाली साहित्यिक परंपराओं से अलग करते हैं। इसमें तर्क किया गया है कि दलित आत्मकथाएँ मुख्यतः उन व्यक्तियों की दर्दनाक यात्राओं का चित्रण करती हैं, जो प्रणालीगत दमन का सामना करते हैं, जबकि कई आत्मकथाओं का स्वर उत्सवधर्मी होता है। पाठ यह उजागर करता है कि दलित आत्मकथाएँ व्यक्तिगत, संबंधपरक और सामूहिक स्वर के बीच के द्विआत्मक संबंधों को कैसे दर्शाती हैं, और यह व्यक्तिगत पहचान तथा सामाजिक संदर्भ के अंतर्संबंध पर ध्यान केंद्रित करती हैं। ये कथाएँ जाति की स्थलीय-कालिक आयामों में व्याप्त अनुभवों के एक विस्तृत स्पेक्ट्रम को उजागर करती हैं, जो दुःख और आनंद दोनों से चिह्नित हैं। जाति के केंद्रीयता को समझना दलित आत्मकथा की रूप और कार्यप्रणाली में अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेख में जाति को एक सामाजिक-राजनीतिक श्रेणी के रूप में उसकी महत्ता पर चर्चा की गई है, जो समकालीन भारतीय समाज में भी प्रासंगिक बनी हुई है। इसमें दलित-बहुजन विद्वानों और चिंतकों जैसे एलॉयसियस, इलैया और कुमार के कार्यों के साथ-साथ प्रथमा बनर्जी और अनुपमा राव के आलोचनात्मक दृष्टिकोणों पर भी विचार किया गया है। यह लेख जाति को एक महत्वपूर्ण वैचारिक श्रेणी के रूप में शोध में पुनः लाने की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है, विशेष रूप से गरिमा, भेदभाव, और आत्म-सम्मान के अनुभवों के संदर्भ में।

बीज शब्द : दलित आत्मकथा, जाति, गरिमा, सामाजिक पहचान, प्रणालीगत दमन।

भारत में साहित्यिक लेखन की परंपरा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक मुद्दों को कविता, कहानी, आत्मकथा, जीवनी, और उपन्यास जैसे साहित्यिक रूपों के माध्यम से

1. सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय
Email: sanjeev.spmcollege@gmail.com; Mob: 9718640333

दर्शाया जाता है। भारतीय साहित्य का यह स्वरूप समाज की विविधता और उसकी जटिलताओं को चित्रित करता आया है। आधुनिक काल में प्रेमचंद ने अपने लेखन के माध्यम से समाज और उसके जटिल ताने-बाने को मुख्यधारा साहित्य में एक प्रमुख विषय बनाया। प्रेमचंद का लेखन उस समय की सामाजिक वास्तविकताओं का सजीव प्रतिबिंब था, जिसमें व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्ष को एक साथ प्रस्तुत किया गया। चेल्लप्पन (1993) के अनुसार, “तमिल उपन्यास के उदय के पीछे मुख्य प्रेरणा मध्यम वर्ग, विशेषकर महिलाओं की आत्म-जागरूकता और सामाजिक आलोचना की भावना थी” (पृष्ठ 33)। इस दृष्टिकोण को देखते हुए, सी. एन. अन्नादुरई और द्रविड़ आंदोलन के लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों और उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई। इसी पृष्ठभूमि में दलित आत्मकथा लेखन का उभार 1960 और 1970 के दशकों में हुआ, जिसने साहित्यिक दुनिया में एक नई धारा का प्रवाह लाया।

कौल और जयदेव (1993) ने मराठी साहित्य में दलित साहित्यिक आंदोलन के संदर्भ में कहा है कि दलित लेखन ने भारतीय साहित्य के पारंपरिक काल्पनिक और प्रेम-प्रासंगिक साहित्यिक प्रवृत्तियों को चुनौती दी और एक नई, सामर्थ्यपूर्ण दृष्टिकोण का निर्माण किया (पृष्ठ 23)। इस लेख का मुख्य उद्देश्य ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन में आत्मनिष्ठता और आत्मसम्मान के भावों का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन दलित आत्मकथाओं में प्रस्तुत व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवों के माध्यम से आत्मस्वाभिमान के दावों की पड़ताल करता है।

आत्मकथा लेखन का इतिहास

आत्मकथा लेखन की परंपरा को ‘स्व’ का उत्सव मनाने के रूप में देखा जाता है, जिसकी शुरुआत पश्चिमी समाज में हुई। कुमार (2011) के अनुसार, आत्मकथा लेखन एक ऐसी विधा है जो व्यक्ति के आत्मसम्मान, आत्म-खोज और आत्म-स्वीकृति को अभिव्यक्त करती है (पृष्ठ 8)। पश्चिमी साहित्य में सेंट ऑगस्टीन की कन्फेशन और जे. एस. मिल्स की आत्मकथा इस परंपरा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जो ‘स्व’ की खोज और उसकी विशिष्टता को समाज के सामने प्रस्तुत करती हैं।

भारत में आत्मकथा लेखन की शुरुआत बनारसी दास की अर्धकथानक (1641) से मानी जाती है, जो भारतीय साहित्यिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। हालांकि आत्मकथा लेखन की पश्चिमी परंपरा का प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़ा, लेकिन दलित आत्मकथाएं इस प्रभाव से भिन्न रहीं और उन्होंने उपनिवेशोत्तर काल में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। राज कुमार के अनुसार, ष्ढायरी, स्मृतियां, इतिहास, और पत्रिकाओं के लेखन ने आधुनिक समय में आत्मकथा लेखन की नई दिशा तय की, विशेष रूप से दलित आत्मकथाओं ने साहित्य में एक नई विधा को जन्म दिया (राज कुमार, 2010)।

दलित आत्मकथाएं एक व्यक्तिगत ‘स्व’ के अनुभव से अधिक सामूहिक अनुभवों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये रचनाएं दलित समुदाय के संघर्ष, उत्पीड़न, और उनकी सामाजिक स्थिति का दस्तावेज हैं। कुमार (2010) के अनुसार, दलित लेखन उच्च जाति के प्रभुत्वशाली साहित्यिक परंपरा को चुनौती देने वाला साहित्य है, जो सामाजिक असमानताओं और जातिगत भेदभाव के खिलाफ एक सशक्त प्रतिरोध का माध्यम बनता है।

दलित आत्मकथा और आत्मनिष्ठता

राज कुमार (2010) का तर्क है कि दलित आत्मकथा लेखन केवल आत्मकथात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह जातिगत अनुभवों का सजीव दस्तावेज है। उनका कहना है कि दलित लेखकों के लिए आत्मकथा लिखना एक राजनीतिक प्रक्रिया है, जो जातिगत उत्पीड़न के खिलाफ उनके ‘स्व’ का दावा करती है। आत्मकथा

लिखते समय दलित लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनके लेखन में आत्मसम्मान और आत्मनिष्ठता के भाव प्रमुखता से उभरते हैं।

हिंदी दलित आत्मकथा लेखन का उदय 1990 के दशक के मध्य में हुआ, जिसने दलित पहचान और संघर्ष को साहित्यिक जगत में स्थान दिलाया। सरह बेथ (2012) का कहना है कि हिंदी दलित आत्मकथाएं उत्तर भारत में दलित सांस्कृतिक पहचान को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। बेथ ने जूठन, अपने-अपने पिंजरे, और तिरस्कृत जैसी आत्मकथाओं का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि दलित आत्मकथाएं न केवल उनके अनुभवों को प्रस्तुत करती हैं, बल्कि वे साहित्यिक दुनिया के बाहर भी दलित पहचान की सार्वजनिक धारणा को प्रभावित करती हैं।

दलित आंदोलन और आत्मकथा लेखन

मिलिंद वाकणकर (2010) ने अपने निबंध 'सबाल्टर्निटी एट द क्यूस्प: लिमिट्स एंड ओपनिंग ऑफ द दलित क्रिटिक' में तर्क दिया कि दलित आत्मकथा लेखन दलित आंदोलन और दलित चेतना के उदय का प्रतीक है। उनका मानना है कि आत्मकथाएं 'मान्यता' और 'आत्मसम्मान' के दावों को एक राजनीतिक परियोजना के रूप में प्रस्तुत करती हैं। वाकणकर का यह भी तर्क है कि दलित आत्मकथाएं सामाजिक पहचान और आत्मसम्मान की भावना को प्रकट करती हैं, जो जातिगत उत्पीड़न के खिलाफ एक सशक्त प्रतिरोध है (वाकणकर, 2010, पृष्ठ 3-4)।

वाल्मीकि (2005) ने अपनी आत्मकथा जूठन में दलित साहित्य को एक सांस्कृतिक और सामाजिक आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि दलित साहित्य उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के खिलाफ संघर्ष का प्रतीक है, जो दलित समुदाय की इच्छाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है। वाल्मीकि का तर्क है कि दलित साहित्य केवल सहानुभूति के लिए नहीं लिखा गया, बल्कि यह परिवर्तन और सामाजिक सुधार का आह्वान करता है।

शरण कुमार लिंबाले (2004) और एम.एन. वानखेड़े (2005) ने भी दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र पर चर्चा करते हुए कहा है कि दलित लेखन ने भारतीय साहित्यिक परंपरा को चुनौती दी है, जो दलितों की पीड़ा और उनके संघर्ष को उपेक्षित करती रही है। लिंबाले का मानना है कि दलित साहित्य का उद्देश्य सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ एक सशक्त संघर्ष को अभिव्यक्त करना है।

दलित आत्मकथा के केंद्रीय बिंदु

उपरोक्त विवेचन से दलित और प्रभुत्वशाली साहित्य के बीच के अंतर स्पष्ट होते हैं, और दलित आत्मकथा के संबंध में कुछ विशिष्ट बिंदुओं का उद्घाटन होता है। प्रथम, यह आत्मकथात्मक लेखन उस व्यक्ति के वास्तविक जीवन का चित्रण है जिसने 'स्वत्व' के उत्सव के विपरीत, पीड़ा की लंबी यात्रा की है, जो इसे अन्य आत्मकथात्मक परंपराओं से भिन्न बनाता है। द्वितीय, दलित आत्मकथा व्यक्तिगत, संबंधपरक और सामूहिक श्वाश के बीच निरंतर द्वंद्वत्मकता को प्रतिबिंबित करती है। यह केवल व्यक्तिगत विचारों या कल्पनाओं पर केंद्रित नहीं होती, बल्कि संदर्भ और सामाजिक संबंधों को भी केंद्र में रखती है। तृतीय, यह विभिन्न जीवन अनुभवों—दुःख, पीड़ा, और आनंद—की एक पूरी श्रेणी को प्रस्तुत करती है। चतुर्थ, यह सामाजिक-राजनीतिक और स्थानिक-लौकिक आयामों में दुःख और आनंद की निरंतरता का उद्घाटन करती है, विशेष रूप से जातिगत श्रेणी के अंतर्गत इन अनुभवों के मध्य अंतःक्रिया को उजागर करती है। इस प्रकार, दलित आत्मकथा का विशिष्ट स्वरूप और इसकी लेखन परंपरा इस बात की समझ प्रदान करती है कि जाति इस साहित्य में केंद्रीय श्रेणी

क्यों है।

‘श्रेणी’ के रूप में जाति की केंद्रीयता

जाति का प्रश्न तब और महत्वपूर्ण हो जाता है जब हम जाति व्यवस्था के अध्ययन को सामाजिक जीवन और अकादमिक प्रतिक्रियाओं में देखते हैं। समकालीन समय में भी जाति पदानुक्रम जाति, स्थिति और धर्म के नाम पर सभी प्रकार की हिंसा को उचित ठहराता है। लेकिन वस्तुतः इसका आधार अस्पृश्यता और सत्ता की राजनीति है, जहां भेदभाव और अपमान के तौर-तरीके बदल गए हैं, लेकिन जाति की संरचना और उसकी केंद्रीयता स्थिर बनी हुई है। ऐसे मुद्दे भारतीय ज्ञान परंपरा और भारतीय पुनर्जागरण के लिए भी चुनौती खड़ी करते हैं। इस संदर्भ में, यह दावा कि आधुनिकता ने समाज के सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में समानता स्थापित की है, बेमानी प्रतीत होता है, और जाति का प्रश्न केंद्रीय महत्व रखता है।

जाति व्यवस्था के अध्ययन के संदर्भ में अकादमिक प्रतिक्रियाओं में जाति को ‘श्रेणी’ के रूप में केंद्रीयता प्रदान करने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। अधिकांश सामाजिक और राजनीतिक श्रेणियों, जैसे राष्ट्र, राज्य, धर्म, जातीयता, और लिंग पर कार्य हुए हैं, किंतु जाति व्यवस्था को ‘श्रेणी’ के रूप में देखने के महत्व पर पर्याप्त विचार नहीं किया गया है। जाति के ‘श्रेणी’ के रूप में महत्व को दलित-बहुजन विद्वानों और कार्यकर्ताओं द्वारा व्यापक रूप से पहचाना गया है, जैसे एलॉयसियस (2004, 2010), इलैया (2009), और कुमार (2010)। वे जाति के सर्वव्यापी और प्रभुत्वकारी स्वरूप के इतिहास को केंद्रीयता प्रदान करते हुए इसके अध्ययन पर जोर देते हैं।

प्रथमा बनर्जी और अनुपमा राव ने हाल ही में जाति को केंद्रीय श्रेणी के रूप में देखने का सुझाव दिया है, जिसे मुख्यधारा के राष्ट्रवादी इतिहास लेखन ने उपेक्षित किया है। बनर्जी का तर्क है कि जाति इतिहास के अनुशासन में उपेक्षित श्रेणी रही है और यह एक सामाजिक श्रेणी के रूप में देखी जानी चाहिए। जाति की केंद्रीयता का राजनीतिक श्रेणी के रूप में दावा करते हुए, बनर्जी मुख्यधारा के इतिहास और राजनीति में राष्ट्र, राज्य, धर्म, नस्ल और वर्ग जैसी श्रेणियों के प्रभुत्व को चुनौती देती हैं। इस संदर्भ में, अम्बेडकर ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के तहत धर्म और अस्पृश्यता से निपटने के दौरान जाति को केंद्रीय श्रेणी बनाने पर जोर दिया था।

अनुपमा राव, जैसा कि बनर्जी ने चर्चा की है, इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि “अम्बेडकर ने मौलिक अधिकारों पर अपने मसौदे में सुझाव दिया था कि ‘रैंक, जन्म, धर्म, और जातिगत रीति-रिवाजों से उत्पन्न कोई विशेषाधिकार समाप्त हो जाता है” (बनर्जी, 2012, पृष्ठ 11) किंतु यह मसौदा संविधान सभा द्वारा स्वीकृत नहीं किया गया, इसके बजाय संविधान का अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करने और इसके अभ्यास को निषिद्ध करने पर केंद्रित हुआ।

इन चर्चाओं से यह स्पष्ट होता है कि जाति की केंद्रीयता न केवल सामाजिक बल्कि प्रमुख राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक संदर्भों में भी महत्वपूर्ण बन गई है, और इसे अकादमिक अनुसंधान में पुनः लाना एक अनिवार्य जिम्मेदारी बन गई है।

‘श्रेणी’ के रूप में जाति: एक जटिल घटना

जाति की श्रेणी एक संदर्भ मात्र नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत घटना है, जिसमें भेदभाव, अपमान, आत्म-सम्मान, और गरिमा जैसी अंतःक्रियाएँ शामिल हैं। जाति व्यवस्था के संदर्भ में ‘आत्म-सम्मान’ और ‘स्वाभिमान’ की अवधारणाएं अत्यंत समस्याग्रस्त और अस्पष्ट रूप से उभरती हैं, जिन्हें जाति समाज के अध्ययन

में केंद्रीय अवधारणा के रूप में माना जाना चाहिए।

‘आत्म’ और ‘स्वाभिमान’ को जातिगत संदर्भ में एक ओर उत्पीड़न, भेदभाव, अन्याय, और दासता, तथा दूसरी ओर न्याय, स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व के बीच संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। लोक दृष्टि और लोक संस्कृति के संदर्भ में भेदभाव और उत्पीड़न को सतही विश्लेषण के तहत छोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए, यह व्यापक रूप से माना जाता है कि आधुनिक समय में जाति व्यवस्था की प्रासंगिकता समाप्त हो गई है, और आरक्षण नीति ने दलितों के लिए सामाजिक सुरक्षा और न्याय सुनिश्चित किया है, जिससे अस्पृश्यता का अंत हुआ है।

लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि आधुनिकता कभी भी हिंदू रूढ़िवादी परंपराओं और संस्कृति को पूरी तरह बदलने में सफल नहीं रही है। सुदीप्त कविराज का तर्क है कि भारतीय संदर्भ में परंपरा और आधुनिकता के बीच एक समानांतरता और सह-अस्तित्व बना हुआ है। परंपरा और आधुनिकता के बीच इस प्रकार की बहस को समाज और संस्कृति के मानस के परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है, जो समय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वैचारिक घटनाओं से ऊपर उठकर स्वयं को पुनः परिभाषित करती है।

जाति व्यवस्था के विमर्श में मानस और संस्कृति के इस परिवर्तन को समझने की आवश्यकता है क्योंकि भेदभाव, उत्पीड़न, और शोषण जैसी अवधारणाएं जाति के अनुभवजनित विज्ञान को परिभाषित करने के लिए केंद्रीय रही हैं, किंतु उनकी मौजूदा परिभाषाएं सतही हैं। नतीजतन, यह देखा गया है कि उच्च जातियों के लोग न केवल शारीरिक और मौखिक रूप से भेदभाव करते हैं, बल्कि दलितों के विकास को बाधित करने और विमर्श को गुमराह करने के लिए कानूनी और बौद्धिक तर्कों का भी प्रयोग करते हैं।

अतः इन अवधारणाओं के गहरे अर्थों को समझने की आवश्यकता है, जो संस्कृति और मानस की अंतःक्रियाओं से प्रकट होते हैं। दलित आत्मकथाएं और उनके व्यक्तिगत अनुभव उत्पीड़न, भेदभाव, और शोषण की अवधारणाओं के कई आयामों को उद्घाटित करते हैं, जो ‘आत्म-सम्मान’ के कार्यात्मक पहलू के रूप में सामने आते हैं। अतः दलित अनुभवों के सिद्धांतिकरण और जाति के संदर्भ में श्वश और श्वाभिमान के आयामों को केंद्र में रखकर इन प्रश्नों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

निष्कर्ष

इस लेख में प्रस्तुत चर्चाएँ जाति के सामाजिक और राजनीतिक श्रेणी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करती हैं, विशेष रूप से दलित आत्मकथाओं में। यह दर्शाता है कि जाति, भले ही भेदभाव के रूप बदलते रहें, भारतीय समाज में एक केंद्रीय और अपरिवर्तनीय शक्ति बनी रहती है। लेख यह प्रमाणित करता है कि दलित आत्मकथाएँ, अपने अनुभवों के चित्रण के माध्यम से, आधुनिकता और सामाजिक न्याय के सतही विमर्श को चुनौती देती हैं, खासकर इस धारणा को, कि आरक्षण जैसी नीतियों ने जाति आधारित असमानताओं को समाप्त कर दिया है। ‘स्व-सम्मान’ और ‘गरिमा’ जैसे अवधारणाओं की जटिलता जाति समाज में खोजी गई है, जो जाति के उत्पीड़न के ढाँचे में समझी जाने पर गंभीर समस्याएँ प्रस्तुत करती हैं। जाति पर चल रहा विमर्श यह दर्शाता है कि अकादमिक और सामाजिक संदर्भों में जाति को एक केंद्रीय श्रेणी के रूप में फिर से देखना आवश्यक है। दलित आत्मकथात्मक के संदर्भ में यह लेख जाति की भूमिका का गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता की ओर इशारा करता है, जो व्यक्तिगत पहचान और सामूहिक सामाजिक वास्तविकताओं को आकार देती है, और इन विषयों के लिए आगे की अकादमिक संलग्नता की आवश्यकता पर बल देती है। □

References:

- Aloysius, G. (2010). *The Brahminical Inscribed in Body-Politic*. Delhi: Critical Quest.
- Ambedkar, B. R. (1991). Annihilation of Caste. In Vasant Moon (Ed.), *Ambedkar's Writings and Speeches*. Vol-1. Bombay: Maharashtra Government Publications Division.
- Banerjee, P. (2009). Caste and the writing of history. Critical Encounters, <http://criticalencounters.wordpress.com>.
- Beth, S. (2007). Hindi dalit autobiography: An exploration of identity. In *Modern Asian Studies*. Cambridge University Press. Vol. 41. No. 3.
- Ilaiah, K. (2009). *Post Hindu India*. India: Sage publication.
- Kaviraj S. 2005. An outline of a revisionist theory of modernity. *European Journal of Sociology*. 46 (3).
- Kumar, R. (2011). *Dalit personal Narrative; reading caste, nation and identity*. Delhi: Orient BlackSwan.
- Mani, B. R. (2008). *Debrahmanising History: Dominance and resistance in Indian Society*. Delhi: Manohar Pub & Dist.
- Omvedt, G. (2011). Understanding caste: From Buddha to Ambedkar and beyond. Delhi: Orient Blackswan.
- Valmiki O. (2003). *Joothan*. Columbia: Columbia University Press.
- Wakankar, M. (2010). Subalternity at the cusp: limits and openings in the dalit critique. In *Subalternity and religion: the prehistory of Dalit empowerment in south Asia*. New York. Routledge.



उन्नीसवीं सदी का समाजसुधार : अग्र से पार्श्व तक की यात्रा

○ सुधांशु कुमार¹

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भक्ति आंदोलन और पश्चिम के नवजागरण से प्रभावित होकर भारत का भद्र वर्ग दलित समस्या, स्त्री समस्या जैसी सुधारवादी परियोजनाओं से जुड़ा हुआ था। सामाजिक लोकवृत्त में स्त्री प्रश्न एक केंद्रीय बिंदु की तरह उभरा। राधा कुमार ने तो उन्नीसवीं शताब्दी को 'स्त्री की शताब्दी'¹ तक कहा। उस पूरे दौर में, परम्परा पर बहस और परम्परा की पुनर्खोज के साथ-साथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का बीजवपन स्त्री-प्रश्नों के संवादी धरातल पर ही शुरू हुआ। इस शुरुआत में औपनिवेशिक विमर्श से अपने सांस्कृतिक परम्परा की धूमिल होती छवि को बचा लेने की जद्दोजहद भी दिखती है। उपनिवेशित विश्व के अधिकांश भाग में परम्परा की पुनर्खोज और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उभार साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रतिरोध के सिद्धांत² के रूप में हुआ। भारत में राष्ट्रीय परम्परा की पुनर्खोज भी तकरीबन इसी तरह हुई।

भारतीय राष्ट्रवाद के बीजवपन काल में औपनिवेशिक ग्रन्थों एवं प्राच्यवादी विमर्शों ने भारत की धार्मिक परम्परा की पहचान करते हुए यहाँ महिलाओं के साथ होने वाले बर्ताव की निंदा की। भारतीयों को बर्बर और असभ्य बताया। भारत में अपने शासन के औचित्य को साबित करने के लिए लगभग हर श्रेणी के ब्रितानी बुद्धिजीवियों ने भारत की संस्कृति का अध्ययन किया। इसाई मिशनरियों, अंग्रेज पत्रकारों से लेकर विभिन्न कोटि के पश्चिमी विद्वानों और प्रशासकों ने भारतीय संस्कृति के बारे में सनसनीखेज रिपोर्ट लिखी। आश्चर्यजनक रूप से उन सब की मान्यताएं समान थीं जिनके अनुसार अज्ञानता, अतार्किकता, मूढ़ता, बर्बरता और असभ्य आचरण भारतीय संस्कृति के मूल में है। सभ्यता की दृष्टि से भारत को बर्बर साबित कर अपने शासन को वैधता प्रदान करने के लिए अंग्रेजों ने स्त्री-पुरुष संबंध को पैमाना बनाया। प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय भद्रवर्ग ने भी उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में इन संबंधों को पुनःपरिभाषित करने का प्रयास शुरू कर दिया।

इस तरह भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन के संदर्भ में दो तरह के विमर्श शुरू हुए। पहला, औपनिवेशिक विमर्श, जिसके अंतर्गत ब्रितानी बुद्धिजीवी अपनी औपनिवेशिक उपस्थिति को वैध बनाने के लिए अपने अध्ययनों और अतीत के अनुसंधान से भारत की एक ऐसी छवि गढ़ रहे थे, जिसमें स्त्रियों की हीन दशा

1. अतिथि शिक्षक, हिंदी विभाग, पटना कॉलेज, पटना

मो. : 7839114692, Email : sudhanshuchaudhary1991@gmail.com

को केंद्रीय बिंदु बनाया जा रहा था। दूसरा, राष्ट्रवादी विमर्श, जिसके अंतर्गत नव-शिक्षित भारतीय भद्रवर्ग जहाँ एक तरह स्त्री की दशा में सुधार के लिए कुछ जरूरी बदलाव की वकालत कर रहा था तो वहीं दूसरी तरफ अतीत की पुनर्व्याख्या के जरिए समाज में स्त्री की दशा को पुनःपरिभाषित करने का काम भी कर रहा था। हम पाते हैं कि चिंतन की पहली धारा में जहाँ औपनिवेशिक शासन को वैध ठहराने का रणनीतिक प्रयास किया जा रहा था तो वहीं दूसरी धारा में अपने गौरवमयी परम्परा के माध्यम से गौरवशाली राष्ट्र का दर्जा पाने की कोशिश की जा रही थी। दोनों ही धाराएं ऐसे अतीत पर बल दे रहे थीं जिसका संबंध स्त्री, स्त्री-प्रश्न से था।

भारत में अतीत का व्यवस्थित अध्ययन अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही शुरू हो गया था। इस क्षेत्र में सबसे बड़ा नाम है सर विलियम जॉस (1746-94) का। ये भारतीय भाषा और संस्कृति के प्रेमी थे। जॉस ने ग्रीक ग्रंथों के आधार पर पहली बार प्राचीन भारत का ऐतिहासिक कालक्रम निश्चित किया। संस्कृत के संदर्भ में इनकी स्थापना शुरूआती औपनिवेशिक विमर्श की जड़ों को हिला रही थी, उनके इस स्थापना से पश्चिम के बुद्धिजीवी भौंचक्के रह गए। उन्होंने कहा कि “संस्कृत भाषा चाहे जितनी भी प्राचीन हो उसकी संरचना बेहद शानदार है। वह ग्रीक भाषा से ज्यादा संपूर्ण है, लैटिन से ज्यादा समृद्ध है और दोनों से ही ज्यादा परिष्कृत। फिर भी इसमें और ग्रीक और लैटिन भाषाओं में गहरी समानता है। इनमें इतनी समानता है कि कोई भाषा वैज्ञानिक इन तीनों की जाँच करें तो उसे यकीन करना ही होगा कि इन तीनों भाषाओं का स्रोत एक ही रहा होगा।”³ उन्होंने कहा कि संस्कृत ग्रीक और लैटिन की सुंदर बहन है। वो पूर्व और पश्चिम को जोड़ रहे थे। आप कल्पना कीजिये कि जॉस की इस स्थापना का पश्चिम के बुद्धिजीवियों पर क्या असर पड़ा होगा क्योंकि उनका तो यह मानना था कि भारतीय सेवक बनने लायक हैं। जनवरी 1784 जॉस ने अपने अध्ययन को व्यवस्थित और उसके दायरे के विस्तार के लिए 30 ब्रिटिश नागरिकों को इकट्ठा कर पूर्व के अध्ययन के लिए एक क्लब की स्थापना की। इस क्लब को हम एशियाटिक सोसाइटी के नाम से जानते हैं।

लंदन के रॉयल सोसाइटी के तर्ज पर बंगाल में एशियाटिक सोसाइटी स्थापना की। ‘सोसाइटी की पहली बैठक 15 जनवरी 1784 को हुई। इस सोसाइटी का उद्देश्य एशिया के नागरिक और प्राकृतिक इतिहास का अध्ययन और कला, विज्ञान एवं साहित्य की खोज करना था। जॉस इस सोसाइटी में पढ़े-लिखे भारतीयों को शामिल करना चाहते थे लेकिन उनकी बात नहीं मानी गई। अगले 50 वर्ष तक किसी भारतीय को सोसाइटी में शामिल नहीं किया गया।’⁴ शिक्षित भारतीयों को सोसाइटी में शामिल नहीं करने के पीछे औपनिवेशिक विमर्श के रणनीतिक योजनाओं को हम आसानी से समझ सकते हैं। चूँकि औपनिवेशिक विमर्शकारों को भारतीय अतीत की पुनर्चना अपने हितों के लिहाज से करना था इसलिए उन्होंने भारतीयों को शामिल नहीं करने का निर्णय लिया। अतीत की पुनर्चना के लिहाज से प्राच्यवादी विद्वान हेनरी टॉमस कोलब्रुक (1765-1837) का काम महत्वपूर्ण है।

कोलब्रुक के जरिए औपनिवेशिक विमर्श ने अपना ध्यान सीधे-सीधे स्त्री-प्रश्न पर केंद्रित किया। उनका प्रस्थान बिंदु था सती प्रथा। अपने प्रथम शोध आलेख ‘ऑन द ड्यूटीज ऑफ द फेथफुल हिंदू विडो’ में उन्होंने सती का पाठ्य आधारित अध्ययन किया। निष्ठावान हिंदू विधवाओं के कर्तव्य पर केंद्रित कोलब्रुक के इस लेख ने भारतीय स्त्रीत्व के बहुत ही खौफनाक पहलू को उजागर करने का काम किया। कोलब्रुक ने वेद पर किए अपने अध्ययन में प्राचीन आर्यों की उपलब्धियों पर ध्यान तो दिया लेकिन उन्होंने प्राचीन भारतीय स्त्रीत्व के गौरव के प्रतीक मैत्रेयी और गार्गी का जिक्र करना उचित नहीं समझा। गौरतलब है कि सर विलियम जॉस स्त्रियों के मामले में सती पर कोई टिप्पणी नहीं ही करते हैं बल्कि वे अपने आलेख में गार्गी की विद्वता को रेखांकित भी करते हैं। कोलब्रुक जैसे ब्रितानी बुद्धिजीवी ने भारतीय स्त्री के संदर्भ में सिर्फ उन्हीं पहलुओं पर चर्चा की

जिससे भारतीय समाज और भारतीय अतीत को बर्बर और असभ्य बताया जा सके।

इस क्रम में 1817 में लिखी जेम्स मिल (1773-1836) की पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' हमें औपनिवेशिक विमर्श का अगला और अहम पड़ाव दिखता है। इस पुस्तक में भारत का पहला सुव्यवस्थित और विस्तृत इतिहास दर्ज था। मिल ने भारतीय इतिहास को तीन भागों में बांटा- हिंदू भारत, मुस्लिम भारत और ब्रिटिश भारत। तीसरे भाग को ईसाई भारत न कहकर जहाँ उसने चालाकी का परिचय दिया वहीं उसने औपनिवेशिक रणनीति का सहारा लेते हुए शुरुआती दो भागों के माध्यम से भारत की दो बड़ी कौमों को आमने-सामने ला खड़ा किया। इस किताब के माध्यम से मिल ने एक ही तीर से दो निशाना साधा। उसने भारतीय संस्कृति को दोहरा नुकसान पहुंचाने का काम किया। जहाँ एक ओर उसने उत्तर-मध्यकाल के दौरान बन रही सामासिक संस्कृति को सांप्रदायिकता की आग में झोंक दिया वहीं दूसरी ओर उसने हिंदू सभ्यता को प्रारंभ से ही भ्रष्ट बताया। इस संदर्भ में हम मिल की पुस्तक के 'ऑफ द हिंदूज' (of The Hindus) खंड के 'रिलिजन' (Religion)⁵ अध्याय को देखा जा सकता है।

मिल की स्थापना प्राच्यवादियों से ठीक उलट थी। मिल का भारत विलियम जोंस जैसे प्राच्यवादी विद्वानों के भारत से बिलकुल ही अलग था। वह मानता था कि हिंदू सभ्यता अपने शुरुआती दौर से ही अभिशप्त है, अनैतिकता और अपराध के दलदल में अंदर तक डूबी हुई है। मिल ने हाल हेड द्वारा रचित मनुस्मृति का अनुवाद 'कोड ऑफ गेंटू लॉज' एवं ईसाई मिशनरियों द्वारा लिखित भारत विषयक कुछ पुस्तकों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि हिंदू अपनी स्त्रियों के साथ घृणित व्यवहार करते हैं। उन्हें अत्यंत अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ता है। उन्हें शिक्षा, धार्मिक पुस्तकों एवं संपत्ति के अधिकार से वंचित रखा जाता है। आदि आदि। इस संदर्भ में हम मिल की पुस्तक के 'ऑफ द हिंदूज' (of The Hindus) खंड के 'मैनर्स' (Manners)⁶ अध्याय को देखा जा सकता है। मिल और मिल जैसे तमाम औपनिवेशिक विमर्शकारों का अध्ययन भारत की ऐसी धूमिल छवि प्रस्तुत कर रहा था जिससे भारतीयों को शासन करने के अयोग्य साबित किया जा सके। निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि ये भारतीय संस्कृति की एकांगी समझ प्रस्तुत कर रहे थे।

इस एकांगी अध्ययन और समझ के समानांतर नव-शिक्षित भारतीयों ने उन्नीसवीं सदी में अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा का न सिर्फ अध्ययन शुरू किया बल्कि कुछ कुरीतियों के खिलाफ आवाज भी बुलंद की। प्राच्यवादी अध्ययन के शुरुआत से भारत में एक सकारात्मक परिघटना घटी। अब तक जिस वैदिक ज्ञान राशि पर पंडितों ने कब्जा कर रखा था प्राच्यवादियों ने उसकी व्याख्या को जन सामान्य के लिए उपलब्ध करवाया। प्रिंटिंग प्रेस के आगमन से पुनर्रचित अतीत अब एशियाटिक रिसर्चर जैसे जर्नल तक सीमित नहीं रह गया। अब अतीत को पर्चा और देशी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामान्य जन मानस तक पहुंचाया जाने लगा। औपनिवेशिक विमर्श द्वारा अतीत की पुनर्रचना की इस प्रक्रिया में स्थानीय निवासी अतीत के बोध को निष्क्रिय ढंग से ग्रहण नहीं कर रहे थे बल्कि वो भी औपनिवेशिक विमर्श के बरक्स अपने ढंग से अतीत और ऐतिहासिक चेतना को पुनर्रूपायित कर रहे थे। उमा चक्रवर्ती अपने लेख 'व्हाटएवर हैपण्ड टू द वैदिक दासी?' में इस बात की ओर इशारा करते हुए कहती हैं कि 'किसी भी समुदाय को अपने इतिहास का बोध देने वाले तत्त्व शाश्वत और अपरिवर्तनशील नहीं होते हैं। अतीत की धारणा निरंतर निर्मित और पुनर्निर्मित होती रहती है। इसमें नित्य नूतन होने की प्रवृत्ति होती है।...किसी समुदाय के लोग अपनी वर्तमान छवि से इतर अतीत की नाटकीय ढंग से पुनर्रचना करते हैं। भारत में ऐसा ही एक मोड़ उन्नीसवीं सदी में आता जब ऐतिहासिक चेतना को पुनर्राकार दिया गया।'⁷

अतीत और ऐतिहासिक चेतना को पुनर्राकार देने के लिए भारतीय नव-शिक्षित वर्ग जहाँ एक ओर वर्तमान

की कलांत संस्कृति पर आलोचनात्मक रुख रखता था तो वहीं दूसरी ओर वह यह महसूस भी करता था कि वह एक ऐसी संस्कृति का प्रतिनिधि है जिसको कालांतर में चालाक पंडितों ने विकृत⁸ किया है। वह यह मानता था कि इस संस्कृति में पुनः सशक्त होने की क्षमता है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इस तरह के विचार रखने वालों में प्रमुख थे मृत्युंजय विद्यालंकार और राजा राममोहन राय। मृत्युंजय विद्यालंकार ने राजा राममोहन राय से पहले ही सती प्रथा पर बहस छेड़ी थी। ‘इन दोनों विद्वानों ने पहली बार स्त्री के आध्यात्मिक लक्ष्यों पर प्रकाश डाला था। प्राचीन वैदिक शास्त्र में स्त्री का अंतिम लक्ष्य पतिव्रत धर्म को बताया गया है लेकिन इन दोनों विद्वानों ने स्त्री सहित सभी हिन्दुओं का लक्ष्य मोक्ष को बताया जो कि स्त्री द्वारा सती होने से नहीं प्राप्त किया जा सकता है।’⁹ स्त्री पराधीनता के विरुद्ध अपने तर्क की पुष्टि के लिए राममोहन राय ने मैत्रेयी और याज्ञवल्क्य के शास्त्रार्थ का उदाहरण दिया। उन्होंने इस उदाहरण के जरिए न सिर्फ महिलाओं की आध्यात्मिक क्षमता को पुष्ट किया बल्कि यह भी कहा कि आध्यात्म के क्षेत्र में महिलाएं पुरुष से किसी भी तरह से कम नहीं हैं। कहना न होगा कि भारतीय नव-शिक्षित वर्ग न सिर्फ अपने अतीत और ऐतिहासिक चेतना को पुनर्कार दे रहा था बल्कि वह औपनिवेशिक विमर्श के खिलाफ एक एंटी-थीसिस भी रच रहा था। जिस मैत्रेयी और गार्गी प्रसंग पर कोलब्रुक और ईसाई मिशनरी चुप्पी साध लेते थे उसी प्रसंग के जरिए यह वर्ग अध्यात्मिक धरातल पर हिंदू स्त्री की समानता की बात करता है।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समाज एक तरफ जहाँ प्राच्यवादी लेखन के माध्यम से अपने अतीत के प्रति जागरूक हो रहा था तो वहीं दूसरी तरफ ईसाई मिशनरी, प्रशासक वर्ग और ब्रितानी बुद्धिजीवी भारत के अतीत के बारे में उतनी ही मजबूती के साथ नकारात्मक छवि बना रहे थे। यह ठीक है कि भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक अतीत को उजागर करने वाले प्राच्यवादी विमर्श में भारत की नकारात्मक छवि से संबंधित लेखन बहुत कम था लेकिन धार्मिक लेखक, खासतौर से ईसाई मिशनरी योजनाबद्ध रूप से भारत की भयानक छवि का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। अब स्त्री-प्रश्न औपनिवेशिक विमर्श का अनिवार्य उपकरण बन चुका था। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक अंग्रेज भारतीयों के अनैतिक चरित्र और उनकी स्त्रियों की हीन दशा की चर्चा करते थे। यह रस्साकशी चल ही रही थी कि राजा राममोहन राय के उद्यम से लार्ड विलियम बेंटिक ने 1829 में सती अधिनियम लागू कर दिया। 1829 में सती अधिनियम के लागू होने साथ भारत का पुरुष वर्ग अब इन सब मुद्दों (भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष संबंध) पर सीधे-सीधे अपनी प्रतिक्रिया देने लगा क्योंकि ऐसा पहली बार हुआ था जब अंग्रेज भारतीय घरों में घुस आए थे। इसके फलस्वरूप भारत में 1830 के दशक में ‘सांस्कृतिक राष्ट्रवाद’ का उदय होता है। उमा चक्रवर्ती ने इस ‘सांस्कृतिक राष्ट्रवाद’ के उदय के तीन बड़े कारणों को चिह्नित किया है। ‘पहला, उपयोगितावादी और अंग्रेजों द्वारा हिंदू सभ्यता पर आक्रमण, दूसरा, ईसाई मिशनरियों द्वारा हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करवाना और तीसरा, सती प्रथा पर प्रतिबंध लगाकर हिंदू समाज के सबसे पवित्र क्षेत्र ‘घर’ के भीतर घुसपैठ।’¹⁰ उमा चक्रवर्ती जिस ‘घर’ की बात यहाँ कर रही हैं उस घर के पवित्र दायरे के और मजबूत करने में बाद के प्राच्यवादी इतिहाकारों ने अहम भूमिका निभाई। घर के इस दायरे का इस्तेमाल बाद में पुरुष राष्ट्रवादियों ने अपने प्रतिरोध स्थल के रूप में किया।

1830 के बाद के सांस्कृतिक विमर्श में राष्ट्रीयता के तत्त्व मिलने लगते हैं। राष्ट्रीयता की चेतना ने ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक लेखन को बढ़ावा दिया। यह वह दौर था जब कुछ हिंदू क्षेत्रीय नायकों को राष्ट्रनायक के रूप में चित्रित किया गया। “इस समय पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, शिवाजी, रतनसेन, पद्मावती, हम्मिर समेत कई ऐतिहासिक और कल्पित हिंदू राजाओं को हिंदू राष्ट्र के निर्माण के लिए आदर्श प्रतीकों के रूप में खड़ा किया गया।”¹¹ गुप्त साम्राज्य के उत्कर्ष को राष्ट्रीयता का अभ्युदय माना गया। इसी समय हम पाते

हैं कि राष्ट्रवाद के साथ-साथ सांप्रदायिक लेखन की भी शुरुआत होती है। इस तरह के लेखन को प्राच्यवाद का विस्तार कहा जा सकता है। राष्ट्रीयता की अवधारणा से प्रेरित लेखन पर सर्वाधिक प्रभाव मैक्समूलर (1823-1900) का पड़ा। मूलर ने माना कि वेद के अनुसंधान से हिंदू अपनी प्राचीन परंपरा को जान पाएंगे। उसने यह स्थापना दी कि वेद हिंदू धर्म का नहीं बल्कि सभी धर्म, कानून और दर्शनों का मूल है। उसने 'कॉमन इंडो आर्यन ओरिजिन थ्योरी' के माध्यम से अंग्रेजों और भारतीयों के समान उत्पत्ति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

मूलर ने 1882 में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में इंडियन सिविल सर्विस के अभ्यर्थी को 'इंडिया: व्हाट कैन इट टीच अस? (india: what can it teach us?)' विषय पर 7 लेक्चर दिए। उसने बताया कि आर्य यूरोप की ही एक शाखा से निकले हुए लोग हैं। उसने अपने लेखन के बारे में यह कहा कि वो इंडिया के सिर्फ आर्य लोग को देख रहे हैं। ट्राइबल्स को नहीं। वो सिर्फ आर्यन साहित्य का अध्ययन कर रहा है। उसने बताया कि जब तक इंग्लैंड के लोग इंडिया नहीं आ गए तब तक मुसलमान आक्रमणकारियों ने इंडिया पर काफी अत्याचार किया। साथ ही उसने यह आश्चर्य भी व्यक्त किया कि इतने अत्याचार के बावजूद भारत में सद्गुण और शुद्धता कैसे रह गए। बाद में मूलर के इस आश्चर्य का उपयोग पुरुष राष्ट्रवादियों ने खूब बेहतर ढंग से किया। मूलर की स्थापना ने भारतीय राष्ट्रवाद पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह का असर छोड़ा। इन लेक्चर्स ने राष्ट्रवाद की दिशा एवं दशा का निर्धारण करने में अहम भूमिका निभायी। मूलर की स्थापना ने आर्य-अनार्य विमर्श को भी हवा दी। वैसे तो मूलर ने स्त्रियों की स्थिति पर सीधे-सीधे कोई टिप्पणी नहीं की। लेकिन उसके लेखन में यह धारणा निहित थी कि आर्यों की पितृसंरचना स्त्रियों पर ज्यादा ध्यान केंद्रित नहीं करती।

आर्य शब्द का संबंध 'श्रेष्ठ नस्ल' से किया गया। बाद में हम पाते हैं कि आर्यों के नस्ल की श्रेष्ठता और पवित्रता को स्त्री से जोड़ा गया। मूलर जिस विषय में आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि इतने आतंक के बावजूद आर्यों में सद्गुण और शुद्धता कैसे बची रह गई। इस आश्चर्य को राष्ट्रवादियों ने अपने पक्ष में भुनाया। उन्होंने यह बताया कि स्त्री के विरुद्ध बनाए गए सारे कानून परिस्थितिजन्य थे। इस संदर्भ में 'वीमेन इन द सेक्रेड लॉज' की लेखिका शकुलता राव शास्त्री के मत¹² को भी देखा जा सकता है। राष्ट्रवादियों द्वारा यह तर्क दिया गया कि हिंदू समाज में जो सद्गुण और पवित्रता बची हुई है वो सब इसी तरह के कानून से संभव हो पाया है। आर्य नस्ल की शुद्धता को बचाने के लिए¹³ ऐसा किया गया। राष्ट्रवादियों के इस तरह के तर्क से यह निष्कर्ष निकला कि आर्य जाति की शुद्धता स्त्रियों के माध्यम से ही बची हुई है। स्त्रियों की इस ताकत को रेखांकित करने का काम सिर्फ राष्ट्रवादी पुरुष ही नहीं कर रहे थे बल्कि इस ओर प्राच्यवादी लेखन की भी नजर थी।

'लाइफ इन एंशिअंट इंडिया' (1856) नामक पुस्तक के साथ स्पीयर कुछ इसी तरह के लेखन को लेकर सामने आई। भारतीय महिलाओं के बारे में वो उनका विचार कुछ उसी तरह का था जैसे 1830 के बाद का संस्कृतिपरक लेखन का। स्पीयर राजा राममोहन राय और मृत्युंजय विद्यालंकार की स्थापना को ही बढ़ा रही थीं। 'भारत में स्त्रियों को भी मोक्ष प्राप्ति का अधिकार था। स्पीयर वर्तमान में स्त्रियों की खराब स्थिति के लिए ब्राह्मणों द्वारा बाद में लिखी गई स्मृति ग्रंथों को दोषी मानती हैं। मसलन मनु स्मृति।'¹⁴ इसी क्रम में हम फ्रांसीसी लेखक क्लेरिस बैडर (1840-1902) को भी देख सकते हैं। बैडर की पुस्तक 'मोनोग्राफ ऑन वीमेन इन एंशिअंट इंडिया (1867)'¹⁵ न सिर्फ भारत के अतीत को बढ़ा-चढ़ा कर दिखा रही थी बल्कि वर्तमान के बरक्स भारत के अतीत के प्रति 'आह' भी भर रही थी। यह 'आह' राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती की अनुगूँज 'हम कौन थे' से किसी भी तरह कम नहीं थी। बैडर के अनुसार प्राचीन भारत की स्त्री गौरव के ऊँचे सिंहासन पर विद्यमान थीं।

उन्नीसवीं सदी के साठ-सत्तर के दशक में दो महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिलता है। पहला, यहाँ तक आते-आते शुरुआती औपनिवेशिक विमर्श लगभग उलट चुका था। अब भारतीय जनता के पास अपनी सांस्कृतिक विरासत थी। उनके पास एक ऐसा गौरवशाली अतीत था, एक ऐसी हिंदू संस्कृति थी जिससे कुछ यूरोपीय विद्वान भी रश्क करते थे। प्राच्यवादी लेखन और नव-शिक्षित भारतीयों के उद्यम से इन्होंने जाना था कि इनकी हिंदू संस्कृति वैसी नहीं थी जैसा मिल जैसे इतिहासकारों और ईसाई मिशनरियों ने प्रचारित-प्रसारित किया था। और तो और जिस स्त्री-विरोधी व्यवहार के कारण इन्हें सबसे ज्यादा फजीहत और अपमान का सामना करना पड़ा था; उसके बचाव में अब इनके पास अपना तर्क भी था। कहने का आशय यह है कि उन्नीसवीं के उत्तरार्ध में पूरा का पूरा डिस्कोर्स ही बदल रहा था। इस परिवर्तन के साथ औपनिवेशिक विमर्श द्वारा खड़ा किया गया सुधारवादी आंदोलन का भी बदलना तय था जो कि बदला भी।

दूसरा बदलाव कुछ इस तरह का था। जैसा कि हम जानते हैं कि उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में औपनिवेशिक विमर्श का लक्ष्य अपने शासन को वैधता प्रदान करना था; जिस कारण नस्लीय श्रेष्ठता बोध के बावजूद औपनिवेशिक शासक अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा को सुधारवादी कार्यक्रम के माध्यम से आगे बढ़ रहे थे। 1857 के बाद इनके राजनैतिक रवैये एवं प्रशासनिक तौर-तरीकों में बदलाव देखने को मिलता है। “तीस के दशक की सुधारवादी भावना ने 1857 के बाद सख्त और नंगी नस्लवादी रंगत अख्तियार कर ली। फिट्जजेम्स स्टीफेन की बात यहाँ उद्धृत की जा सकती है, जो मात्र ढाई सालों के लिए वायसराय की काउंसिल के लॉ मेम्बर रहे, लेकिन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के ब्रिटिश भारत में जिनकी उपस्थिति बहुत अहम थी। स्टीफेन के शब्दों में, गदर के नतीजे के तौर पर ‘पुरानी व्यवस्था बिखर गई; कानूनी, सैन्य और प्रशासनिक चीजों के बारे में एशियाई और यूरोपीय नजरियों के बीच एक नामुमकिन समझौता कराने की कोशिशों को तिलांजलि दे दी गई। संविधि-संग्रह (कानून की किताब) पर गदर का असर बहुत साफ दिखता है। इसके परिणामस्वरूप साठ और सत्तर के शुरुआती दशक में कठोर कानून बने।”¹⁶ इस बदलाव ने शासक और शासित के बीच के राजनैतिक टकराव को गति प्रदान की। और इस राजनैतिक टकराव ने सामाजिक कार्यक्रम, खासकर स्त्री-प्रश्नों की दशा एवं दिशा को भी प्रभावित किया। बाद में राष्ट्रवादी पुरुषों ने इसे अपने हित में भुनाया भी।

ऐसा नहीं है कि राजनैतिक टकराव की शुरुआत 1857 और इसके बाद ही हुई। औपनिवेशिक विमर्श ने तो अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए ही उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री-प्रश्न को उठाया था। “दरअसल, उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में भारतीय समाज सुधार के एजेंडे में तथाकथित महिला प्रश्न सामाजिक सम्बन्धों में महिलाओं की विशिष्ट स्थिति से जुड़ा हुआ नहीं था। इसके बजाय, इसका ज्यादा जुड़ाव औपनिवेशिक राज्य और इसके तथाकथित शासित लोगों की ‘परम्परा’ के बीच के राजनीतिक टकराव से था। जैसाकि लता मणि ने सती-दाह के अपने अध्ययन में दिखाया है, यह एक ऐसी परम्परा थी जो औपनिवेशिक विमर्श द्वारा भी उत्पन्न हुई थी (मणि 1985; 1989)। दरअसल, औपनिवेशिक विमर्श ने ही ब्राह्मणवादी धार्मिक ग्रन्थों के वर्चस्व की कल्पना करते हुए परम्परा को परिभाषित किया। इस परम्परा की आलोचना की जानी थी और इसमें सुधार किया जाना था। भारतीय राष्ट्रवाद ने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक राजनीतिक दृष्टिकोण रेखांकित करते हुए ‘महिलाओं का प्रश्न’ उठाया।”¹⁷ इसलिए 1857 के बाद जैसे-जैसे राजनीति साम्राज्यवाद-विरोधी होती गई वैसे-वैसे राजनीति का केंद्र भी बदलता गया, महिलाओं का प्रश्न द्वितीयक प्रश्न बनता गया। पुरुष राष्ट्रवादियों में एक मौन-सहमति बनती गई कि राजनैतिक आंदोलन हमारा प्राथमिक मुद्दा है और समाजसुधार द्वितीयक।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के साथ राजनीतिक दृष्टिकोण में बदलाव दिखाई

पड़ता है। यह बदलाव महादेव गोविंद रानाडे की चिंता में देखा जा सकता है- “जब आप अपने को राजनीतिक अधिकारों की तुला पर कमजोर पाते हैं, तो आप सामाजिक व्यवस्था भी अच्छी नहीं बना सकते। और जब तक आपकी सामाजिक व्यवस्था तर्क और न्याय पर आधारित नहीं है, तब तक आप राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने के योग्य भी नहीं हो सकते। यदि आपकी सामाजिक व्यवस्था अच्छी नहीं है तो अच्छी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते। यदि आपके धार्मिक विचार निम्न स्तर के और तुच्छ हैं, तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। यह पारस्परिक निर्भरता आकस्मिक नहीं है। यह हमारी प्रकृति का नियम है।”¹⁸ रानाडे का मत था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सामाजिक सुधार के प्रश्नों पर भी ध्यान देना चाहिए।

रानाडे इस बात के हिमायती थे कि बिना सामाजिक मुक्ति के राजनैतिक मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए कांग्रेस को इस ओर भी ध्यान देने की जरूरत है। किंतु, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते भारतीय राष्ट्रवाद का राजनीतिक दृष्टिकोण बदल चुका था, इसलिए कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को यह विचार पसंद नहीं आया। “दादाभाई नौरोजी जैसे नरमदली नेताओं ने भी, जो सामाजिक सुधार की आवश्यकता को स्वीकार करते थे, तर्क दिया कि कांग्रेस इसके लिए उचित मंच नहीं है।”¹⁹ अलग मंच के मद्देनजर रानाडे ने रघुनाथ राव के साथ मिलकर दिसम्बर 1987 में ‘राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन’ की नींव डाली। तमाम असहमतियों के बावजूद ‘राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन’ के वार्षिक अधिवेशन कांग्रेस के पंडाल में करने की अनुमति मिल गयी। “परन्तु 1895 में बाल गंगाधर तिलक तथा अन्य उग्रवादी नेताओं के कहने से यह सुविधा भी छीन ली गयी। इन नेताओं का मत था कि राजनीतिक सुधार और सामाजिक सुधार में कोई संबंध नहीं है और यदि सामाजिक सम्मेलन के अधिवेशन के लिए कांग्रेस पंडाल का उपयोग करने की अनुमति दी जाती रही, तो कांग्रेस में फूट पैदा हो जाने का खतरा है।”²⁰ तिलक जैसे राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों से यह साफ होने लगता है कि राष्ट्रवाद के विकास के साथ सुधारवादी आंदोलन को केंद्र से परिधि की ओर धकेले जाने की कार्यवाही शुरू हो गई थी। राष्ट्रवादी आंदोलनों ने समाज सुधार की परियोजनाओं को धीरे-धीरे परिधि पर धकेल दिया और अब समाज सुधार नवजागरण की परियोजना का हिस्सा नहीं रहा। इन्हीं वजहों से रानाडे जैसे भारतीय नवजागरण के महत्वपूर्ण स्तम्भ अलग-थलग पड़ते चले गए।

संदर्भ :

1. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, अनु. रमा शंकर सिंह ‘दिव्यदृष्टि’, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 23
2. 1920 के दशक में केन्या में ब्रिटिश मिशनरियों ने महिला खतना की परम्परा के खिलाफ सक्रिय अभियान चलाया। केन्या के लेखक न्युगी वा थियांगो अपने उपन्यास द रीवर बिटविन में यह वर्णन किया है कि ब्रिटेन द्वारा केन्या में साम्राज्यवादी हस्तक्षेप ने उन लोगों के लिए दुविधा पैदा कर दी, जो समाज को भीतर से सुधारना चाहते थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी केन्यायी पहचान का दावा करते हुए केन्या की किकुयु जनजाति की महिलाओं ने खतना के माध्यम से अपने नारीत्व की माँग करनी शुरू कर दी। अल्जीरिया में फ्रेंच प्रभुत्व के प्रतिरोध के प्रतीक के तौर पर वहाँ की महिलाओं ने ‘फिर से पर्दा’ अपनाया।
3. bbc.com/hindi/multimedia/2015/12/151205_incarnation_ep_21_william_jones_ml
4. bbc.com/hindi/multimedia/2015/12/151205_incarnation_ep_21_william_jones_ml
5. जेम्स मिल, द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, लंदन, 1817, पृ.सं-198-286
6. जेम्स मिल, द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, लंदन, 1817, पृ.सं-287-331

7. सं. कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद, रिकास्टिंग वूमेन, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी अमेरिका, 1990, पृ. सं-27
8. सं. कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद, रिकास्टिंग वूमेन, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी अमेरिका, 1990, पृ. 33 / It was the 'Wicked' Pandits who distorted the Shastras in subsequent times..
9. सं. कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद, रिकास्टिंग वूमेन, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी अमेरिका, 1990, पृ. सं-33/ The goal for women, as spelt out by the ancient Hindu legislators was Pativarta dharama (devotion to the husband). But Mritunjay, and then Rammohun, argued that the ultimate goal of all Hindus was selfless absorption in a divine essence, a union which could not flow from an action like sati.
10. सं. कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद, रिकास्टिंग वूमेन, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी अमेरिका, 1990, पृ. सं-36/ There were three major elements that coalesced and triggered off the beginnings of cultural nationalism in the 1830s. One was the attack of the Utilitarians and Anglicists on Hindu civilization; the Second was the Perceived threat of the Christian missionaries as exemplified in the Person of Duff whose ambition was to convert the whole of Calcutta, and the third was the abolition of sati, which was perceived as an intrusion into the Hindu family, the most sacred sphere of Hindu society.
11. Hindisamay.com/content/9886/1/सुप्रिया-पाठक-विमर्श-राष्ट्र-आख्यान-एवं-राष्ट्रवाद-की-परिधि-में-जेंडर-के-प्रश्न.csp
12. सं. कुमकुम राँय, वीमेन इन अर्ली इंडिया, उमा चक्रवर्ती, बियॉन्ड द अल्टेकरियन पाराडाइम: टुवर्ड्स अ न्यू अंडरस्टैंडिंग ऑफ जेंडर रिलेशन्स इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ.सं-74/ When Hindu culture came into clash with a culture far different from its own, the leaders of society began to frame rules and laws to safeguard their interest—specially the position of women. Rigorous restrictions were placed on them.
13. सं. कुमकुम राँय, वीमेन इन अर्ली इंडिया, उमा चक्रवर्ती, बियॉन्ड द अल्टेकरियन पाराडाइम: टुवर्ड्स अ न्यू अंडरस्टैंडिंग ऑफ जेंडर रिलेशन्स इन अर्ली इंडियन हिस्ट्री, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ.सं-75/ This was done perhaps to save her from the foreigners and to preserve the purity of the race.
14. सं. कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद, रिकास्टिंग वूमेन, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी अमेरिका, 1990, पृ. सं-43
15. सं. कुमकुम सांगरी और सुदेश वैद, रिकास्टिंग वूमेन, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी अमेरिका, 1990, पृ. सं-44-46
16. वसुधा डालमिया, हिंदू परम्पराओं का राष्ट्रीयकरण, अनु. संजीव कुमार और योगेन्द्र दत्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 36-37
17. अनुपमा राँय, नागरिकता का स्त्री-पक्ष, अनु-कमल नयन चौबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 73
18. के.दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ.सं-367 / आर. के. प्रभु द्वारा उद्धृत : एन. एन्थोलॉजी ऑफ मॉडर्न इंडियन एलोक्यूशंस, पृ. 26
19. के.दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 368
20. के.दामोदरन, भारतीय चिंतन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 369



खेत के रूपक में स्त्री

○ रंजना पाल¹

भारतीय पितृसत्ता ने समय-समय पर अपने पितृसत्ताक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्त्री को अलग-अलग रूपकों में ढालने की कोशिश की। वेद, वेदांग, उपनिषद, स्मृति ग्रंथ, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण आदि ने समय-समय पर स्त्री को पृथ्वी, खेत, नदी, पहाड़, संपत्ति, माया आदि के रूपक में बाँधा। हम पाते हैं कि शुरुआती कृषि आधारित समाज स्त्री को खेत, क्षेत्र और पृथ्वी के रूपक में ढालता है तो वहीं निजी संपत्ति के उदय के बाद का समाज स्त्री को संपत्ति के रूपक में ढालता है। महाकाव्यों में कई ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि “प्राचीन भारत में राज्य की उत्पत्ति के लिए स्त्री और संपत्ति के संरक्षण की आवश्यकता को महत्त्व दिया जाता था।”¹ महाकाव्यों और पुराणों में जगह-जगह स्त्री और संपत्ति के संयुक्त उल्लेख भी² इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस काल तक आते-आते स्त्री को संपत्ति के तौर पर देखा जाने लगा था। प्रस्तुत आलेख में हम खेत के रूपक में ढलती स्त्री की बात करेंगे। इस रूपक का संबंध स्त्रियों की जैविक विशिष्टता से था।

इस जैविक विशिष्टता के कारण शुरुआती समाज स्त्रियों के प्रति थोड़ा सदाशय जरूर रहा होगा। सिंधु घाटी सभ्यता स्त्री को उर्वरता की देवी³ के रूप में देखती है। यह सभ्यता स्त्रियों की मृणमूर्तियों को ज्यादा महत्त्व देती है। कृषि की शुरुआत के साथ ही मातृदेवी की वंदना का आरंभ होता है। तमाम इतिहासकार इस आरंभ को कर्मकांड की शुरुआत से जोड़ते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर भी इसके कर्मकांडी महत्त्व की बात करती हैं लेकिन ऐसा कहते हुए वे इसके प्रतीकात्मक महत्त्व को नजरअंदाज नहीं करती हैं।⁴ मैं मातृदेवी वंदना की शुरुआत को कर्मकांड से जोड़ने के पक्ष में नहीं हूँ। मैं इसका संबंध-सूत्र दो बिंदुओं से जुड़ा हुआ मानती हूँ, जो बाद में कर्मकांड में रिड्यूस् हो गया। पहले बिंदु का संबंध उन स्त्रियों के प्रति सम्मान प्रकट करना रहा होगा जिनकी वजह से संघर्षशील मानव जाति जीवनयापन हेतु कृषि से परिचित हुई। बहुत संभव है कि इसी कारण सैंधव-समाज ने सम्मान देने के उद्देश्य से या फिर प्रतीकात्मक संदेश देने के लिए जगह-जगह स्त्री और वृक्ष को एक साथ उकेरा।

सैंधवकालीन मुहरों में वृक्षों पर नारी आकृतियों का चित्रण देखने को मिलता है। रोमिला थापर⁵ इस चित्रण

1. शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Email: ranjana27jnu@gmail.com

को अप्सराओं की कल्पना का संकेत मानते हुए मातृवन्दना को देवीपूजा के चलन से जोड़ती हैं तो वहीं रामशरण शर्मा⁶ देवीपूजा के विमर्श को खारिज करते हुए रोमिला थापर के ठीक उलट इस बात पर बल देते हैं कि सैधव समाज में मातृदेवी की मृण्मूर्तियों के बावजूद सुदीर्घ काल के बाद ही हिंदू धर्म में मातृदेवी को उच्च स्थान मिला। रामशरण शर्मा इसी बिंदु को लक्ष्य करके सैधव समाज को मातृसत्तात्मक समाज न मानने की दलील देते हैं। रामशरण शर्मा की दलील में यह बात अनुस्यूत है कि वर्तमान हिंदू समाज में मातृदेवी-वन्दना का जो पारंपरिक चलन देखने को मिलता है, वह सैधव समाज में मौजूद नहीं था। इस तर्क के उलट रोमिला थापर सैधव समाज और उससे पहले देवीपूजा के चलन पर बल देती हैं। इन बहसों के दरम्यान मैं इस बात पर बल देना चाहती हूँ कि ताम्रपाषाण और सैधव संस्कृति की मातृदेवी-वन्दना का संबंध उस स्त्री जाति के प्रति सम्मान प्रकट करने से था जिसने कृषि की खोज में अहम भूमिका निभाई।

कृषि कोई सामान्य खोज नहीं थी, इसका संबंध भूख की समस्या के समाधान से जुड़ा था। ऐसी समस्या जिसकी पूर्ति के लिए आए दिन मनुष्य तमाम छोटे-बड़े जोखिमों से दो-चार होता रहता था। ‘आखेटक-खाद्य संग्राहक’ अवस्था में कई बार हिंसक पशुओं से लड़ते हुए मानव समुदाय की अपूर्णीय क्षति होती थी। ऐसे में कृषि और पशुपालन ने उस अविकसित समाज को बहुत राहत पहुँचाई होगी, उसके जीवन में कुछ हद तक स्थायित्व आया होगा। दुर्दम्य, संघर्षशील जीवन में स्थायित्व प्रदान करने में अहम भूमिका निभाने वाली स्त्रियों के प्रति सम्मान का एक तरीका रहा होगा मातृदेवी-वन्दना। मातृदेवी-वन्दना की शुरुआत को लेकर दूसरा बिंदु पहले बिंदु का ही पूरक है। इसका संबंध स्त्री की उस जैविक विशिष्टता से है जो कृषि और पशुपालन में भी देखने को मिलती है। इस संदर्भ में ‘अथर्ववेद’ के चौदहवें कांड के सूक्त दो के श्लोक संख्या 14 को देखा जा सकता है—

“आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम्
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः।

हे पुरुष ! तू इस उर्वरा नारी में बीजों का वपन कर। वृषभ के समान तेरे वीर्य को और अपने दूध को धारण करनेवाली यह तेरे निमित्त संतान उत्पन्न करे।”⁸

बहुत संभव है कि इसी जैविक विशिष्टता के प्रति आभार व्यक्त करने के कारण सैधव समाज में स्त्री मृण्मूर्तियों के प्रति विशेष आग्रह रहा हो। सिंधु घाटी सभ्यता में स्त्री की मृण्मूर्तियाँ काफी मात्रा में मिली हैं। इन मृण्मूर्तियों की अधिकता की वजह से बीसवीं सदी की शुरुआत में कुछ इतिहासकारों ने सैधव समाज को मातृसत्तात्मक समाज कहना शुरू किया।

कालांतर में यही जैविक विशिष्टता स्त्री-शोषण का सबसे बड़ा आधार बनती है। उर्वरता की देवी के प्रतीक को जैविक विशिष्टता के संदर्भ में रखकर देखा जाना चाहिए। सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त मूर्ति में नारी के गर्भ से निकलते हुए पौधे भी इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं। वैदिक सूक्तों और बाद के तमाम ग्रंथों में स्त्री को पृथ्वी और खेत के रूपक में ढाला गया। मनुस्मृति के नवें अध्याय में जगह-जगह स्त्री को क्षेत्र के रूप में बताया गया है—

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम्॥

स्त्री क्षेत्ररूप और पुरुष बीजरूप कहा गया है, इस क्षेत्र और बीज के संयोग से सब प्राणियों की उत्पत्ति है।”⁹

कृषि से परिचित हो चुका समाज कालांतर में स्त्री और पुरुष संबंध को बीज और खेत के रूपक में ढालता है। हम पाते हैं कि प्रजनन की प्रक्रिया को खेत, बीज, उर्वरता, बंजर आदि प्रतीकों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया। इस विषय पर सबसे प्रामाणिक काम करने वाली स्त्रीवादी चिंतक लीला दुबे लिखती हैं— “प्राचीन काल में मानव प्रजनन प्रक्रिया को स्त्री-खेत में पुरुष-बीज के अंकुरण के संदर्भ में समझा और अभिव्यक्त किया गया है। इसे वैवाहिक अनुष्ठानों में तथा जीवन के अन्य महत्वपूर्ण अवसरों के दौरान व्यवहृत मंत्रोच्चारों तथा पाठों में देखा जा सकता है। इसमें से कई का स्रोत वेद है और कई महाभारत से हैं। विधि पुस्तकों में, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण मनुस्मृति है, इस प्रतीक का इस्तेमाल जाति-मिश्रित समागम से उत्पन्न संतानों की प्रस्थिति का निर्धारण करने तथा मिश्रित समागमों के प्रकारों की योग्यता का मूल्यांकन करने में किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रथागत विधि तथा गांवों की पारंपरिक निर्णयकारी प्रक्रियाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि गर्भधारण के इस सिद्धांत से उद्भूत सिद्धांतों पर बिना अधिक रद्दोबदल के सदियों से अमल होता रहा है। लगता है, मानव प्रजनन प्रक्रिया की अवधारणा युगों से शास्त्रीय-साहित्यिक परंपरा और जनचेतना दोनों का अंग रही है। वर्तमान समय में देश के विभिन्न क्षेत्रों में किए गए अनुसंधानों पर आधारित मानव वैज्ञानिक लेखन में इसकी उपस्थिति का उल्लेख है। इस रूपक का उल्लेख न केवल हिंदुओं में बल्कि उन आदिवासी समूहों में भी मिलता है जो पितृवंशी हैं तथा कृषि कार्य में रत हैं।”¹⁰

कृषि और जैविक विशिष्टता का यह सकारात्मक दृष्टिकोण अधिशेष आधारित समाज के निर्माण के साथ ज्यादा दिन तक सकारात्मक रहा नहीं। जिस कृषि की खोज और जैविक विशिष्टता ने सभ्यता के आरंभ में स्त्रियों को सम्मान का पात्र और पूजनीय बनाया, उसी कृषि और स्त्री की जैविक विशिष्टता के आत्यंतिक संबंध ने स्त्रियों के शोषण के आधार को तैयार किया। कालांतर में स्त्रियाँ संतानोत्पत्ति का साधन मात्र बनकर रह गईं। ‘नारदीय धर्मशास्त्र’ इस बात की पुष्टि भी करता है— “स्त्रियों का सृजन ही संतानोत्पत्ति के लिए किया गया है। स्त्री खेत है और पुरुष बीज का स्वामी। खेत उसको ही दिया जाना चाहिए जिसके पास बीज हो। बिना बीज वाला व्यक्ति खेत पाने का अधिकारी नहीं है।”¹¹ कालांतर में हम पाते हैं कि पुरुष बीजवपन कर अपनी ज्यादा से ज्यादा प्रतिकृति प्राप्त करने पर जोर देने लगा, जैसे-जैसे स्त्री के संदर्भ में खेत और बीज का रूपक मजबूत होता गया वैसे-वैसे स्त्रियाँ पति की आत्मा के जन्म लेने का सनातन क्षेत्र बनती गईं।¹² कृषि, पशुपालन आदि अर्थव्यवस्था के आरंभिक चरण में जहाँ स्त्रियों की सहभागिता स्पष्ट थी वहीं प्रौद्योगिक विकास के साथ स्त्रियों की सहभागिता कम होती गई। पुरुषों ने उनके उस स्पेस को छीनना शुरू किया जिसे पूर्व में उन्होंने बनाया था। पूर्वकाल में स्त्रियाँ सिर्फ कृषि से ही नहीं जुड़ी थीं बल्कि मृदभांड आदि कला संस्कृति में भी उनकी भूमिका रही होगी। धीरे-धीरे स्त्रियों की जैविक विशिष्टता ही उनके शोषण का आधार बनने लगी।

अभी तक जो स्त्रियाँ कृषि, पशुपालन, शिल्प-कला आदि कार्यों में लगी हुई थीं, उन्हें वहाँ से बेदखल कर पुरुषों ने उस क्षेत्र को अपना बना लिया। बौद्धकालीन भारत में लोहे की खोज और लोहे से बने हल के माध्यम से कृषि के क्षेत्र में अधिक व्यापक परिवर्तन देखने को मिलता है। कृषि की खोज भले ही स्त्रियों ने की हो लेकिन ‘हल कृषि’ को अधिक व्यापक करने का काम पुरुषों ने किया। रोमिला थापर लिखती हैं “अधिक व्यापक परिवर्तन हल कृषि के फलस्वरूप हुआ और यह काम पुरुष करते थे।”¹³ छठी शताब्दी की प्रौद्योगिकीय प्रगति को पुरुषों ने अपने पक्ष में भुनाया, उन्होंने स्त्रियों को सिर्फ संतानोत्पत्ति का साधन बनाकर उन्हें पूरी तरह से घरों के भीतर कैद किया। हम पाते हैं कि बुद्ध जब ‘कुमारियों के लिये जीवन नियम’ बताते हैं तो उसमें कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो घर और पति के दायरे से बाहर का हो।

मेण्डक के पौत्र उग्गह के आग्रह पर बुद्ध उसकी कन्याओं को उपदेश देते हुए कहते हैं कि “लड़कियों!

इस प्रकार का अभ्यास डालो कि हमारा हित और भलाई चाहने वाले हमारे अनुकम्पक माता-पिता जिस किसी पति को हमें सौंप देंगे, हम उससे पहले सोकर उठने वाली होंगी और उससे पीछे सोने वाली होंगी। हम काम करने वाली होंगी और सभी चीजों को व्यवस्थित रखने वाली तथा मधुर-भाषिणी होंगी। लड़कियों! तुम्हें ऐसा अभ्यास डालना चाहिये। लड़कियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति के माता-पिता, सगे सम्बन्धी तथा साधुगण- जो कोई भी घर आयें, उनका आदर करने वाली होंगी, उनका स्वागत करने वाली होंगी, उनके आने पर उन्हें आसन और जल देने वाली होंगी। लड़कियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि हमारे पति का जो भी काम होगा- चाहे ऊन का हो और चाहे राई का हो- हम उसमें दक्ष और होशियार होंगी। हम उस काम की समझ हासिल करेंगी जिससे हम उसे स्वयं कर सकें, करा सकें। लड़कियों! और यह अभ्यास डालना चाहिये कि घर के जितने नौकर-चाकर होंगे हम उन सबके काम की देख-भाल रखेंगी कि किसने क्या और कितना काम किया है और क्या और कितना काम नहीं किया है? हम रोगियों का बलाबल जानेंगी, और जिसको जैसा भोजन देना चाहिए वैसा भोजन देंगी। लड़कियों! और यह भी अभ्यास डालना चाहिये कि जो रुपया, जो धान, जो सोना तथा चाँदी पति घर लायेंगे, हम उसे सुरक्षित रखेंगी, उसकी हिफाजत करेंगी ताकि कोई चोर, कोई उचक्का, कोई डाकू उसे न ले जा सके।”¹⁴

बुद्ध के विस्तृत संबोधन के माध्यम से इस बात को आसानी से समझा जा सकता है कि छठी शताब्दी ई. पू. तक आते-आते स्त्रियों को पूरी तरह से घरेलू कार्य तक सीमित किया जाने लगा। उन से लेकर राई तक का सभी बाहरी काम पुरुष ही करते थे, विशेष परिस्थिति में स्त्रियों से कभी-कभी मदद ली जा सकती थी। प्रौद्योगिक विकास ने स्त्री-श्रम को न सिर्फ घर के भीतर तक सीमित किया बल्कि स्त्री को ज्यादा से ज्यादा संतान उत्पन्न कर मानव-संसाधन की पूर्ति का साधन बनाया गया।

प्रौद्योगिक विकास के साथ पुरुषों ने न सिर्फ स्त्री के स्पेस को हथियाया बल्कि अधिशेष आधारित संस्कृति के ‘जन्म के साथ अधिशेष को हड़पने वाली/अधिशेष पर पलनेवाली जातियों’¹⁵ ने और अधिक अधिशेष उत्पादन के लिए एवं अधिशेष की रक्षा हेतु स्त्रियों को मेहनतकश और बहादुर संतान उत्पन्न करने का कार्य सौंपा। बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था और अधिशेष की रक्षा हेतु मानव-संसाधन की जरूरत बढ़ने लगी। सरदारतंत्र और राजतंत्र के इस दौर में उच्च कोटि के बलवान और लड़ाकू क्षमता वाले मनुष्य की माँग बढ़ी जिसे पूरा करने की जिम्मेदारी स्त्रियों की थी। राष्ट्रवादी इतिहासकार ए. एस. अल्तेकर की टिप्पणी को इस संदर्भ में देखा जा सकता है- “महिलाओं में लड़ाकू क्षमता का अभाव होता है इसलिए वह प्रत्यक्ष रूप से अपने समुदाय को लाभ नहीं पहुँचा सकतीं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से बेटों को पैदा करके वह अपने समुदाय की युद्ध क्षमता बढ़ाने के काम आ सकती हैं।”¹⁶ सरदारतंत्र से राजतंत्र की ओर बढ़ते समाज ने स्त्रियों को मानव-संसाधन की अबाध पूर्ति का साधन बना दिया।

छठी शताब्दी ई.पू. कृषि में आए परिवर्तन ने स्त्रियों के गर्भ-धारण की प्रक्रिया को तेजी प्रदान की। स्त्रीवादी चिंतक उमा चक्रवर्ती बौद्धकाल में धान की खेती ने जनसांख्यिकीय-क्रांति को बढ़ावा दिया। वे लिखती हैं “कृषि के प्रसार और विशेषकर धान की खेती ने एक तरह की जनसांख्यिकीय-क्रांति कर दी थी। धान उपजाने वाले क्षेत्रों और प्रजनन क्षमता में गहरा संबंध माना जाता है। कहते हैं, धान का दलिया खाते रहने से बच्चे जल्दी ही माँ का दूध छोड़ देते हैं और इस प्रकार माँ पुनः गर्भ धारण करने के लिए तैयार हो जाती है। बौद्ध साहित्य में जनसंख्या की वृद्धि की बात लक्षित होती है। उन दिनों जनसंख्या में वृद्धि, समृद्धि का चिह्न मानी जाती थी।”¹⁷ इस क्रांति ने समाज में स्त्रियों की भूमिका को न सिर्फ तय किया बल्कि स्त्रियों को घरों के भीतर कैद भी किया। यहाँ तक आते आते हम पाते हैं स्त्री एक ऐसे उर्वर खेत के रूपक में ढल चुकी है जिससे समय समय

पर फसल की कटाई की जा सकती है।

संदर्भ :

1. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 61
2. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 60-65
3. भारतीय उपमहाद्वीप में ताम्रपाषाण युग से ही उर्वरता से संबंधित प्रतीक और कर्मकांड का चलन देखने को मिलता है। धरती की उर्वरता को ध्यान में रखकर ही वैदिक सूक्तों में पृथ्वी को माता की तरह प्रस्तुत किया गया. देखें- रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 118 / रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का परिचय, पृ. 83
4. रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 126
5. रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 118-119 / 128
6. रामशरण शर्मा, प्रारंभिक भारत का परिचय, पृ. 82-83
7. यह आरंभिक मानव की अवस्था थी। भोजन का इंतजाम करने की विधि से उन्हें इस नाम से पुकारा जाता था. आमतौर पर खाने के लिए इस अवस्था के मनुष्य जंगली जानवरों के शिकार एवं जंगली फल-फूल, कंदमूल आदि पर आश्रित रहते थे।
8. गंगा सहाय शर्मा (सं.), अर्थववेद, पृ. 724
9. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी (सं.), मनुस्मृति, पृ. 323-324
10. आशीष कुमार मिश्र, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य भाषा और लैंगिक विमर्श, पृ. 141-142 / लीला दुबे, लिंगभाव का मानववैज्ञानिक अन्वेषण: प्रतिच्छेदी क्षेत्र, पृ. 123
11. Women have been created for the sake of propagation, the women is the field, the man the giver of the seed; the field must be given to him who has seed; he who has no seed must not possess it. / जूलियस जॉली (सं.), नारदीय धर्मशास्त्र, पृ. 82
12. आशीष कुमार मिश्र, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य भाषा और लैंगिक विमर्श, पृ. 140
13. रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 106
14. भीम रामजी आंबेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धम्म, पृ. 215-216
15. रोमिला थापर लिखती हैं कि प्रौद्योगिकीय प्रगति के फलस्वरूप लोगों की टोली के लिए दरकार न्यूनतम खाद्य पदार्थ से अधिक का उत्पादन संभव हुआ। इस अधिशेष खाद्य पदार्थ के अनेक प्रकार के विनिमयों के लिए- जैसे जरूरत की कुछ दूसरी चीजों या यहाँ तक कि श्रम प्राप्त करने के लिए भी- इस्तेमाल किए जाने की संभावना थी, और बाद में वस्तुतः उसका ऐसा इस्तेमाल होने भी लगा। अतिरिक्त खाद्य पदार्थ के ऐसे इस्तेमाल से समाज में क्रमशः सोपानीकरण का समावेश हुआ- कुछ लोग खाद्य पदार्थों पर अपना नियंत्रण रखते थे और विनिमय के लिए उनका उपयोग करते थे, लेकिन बाकी लोगों को अतिरिक्त खाद्य पदार्थों का उत्पादन करना था। देखें- रोमिला थापर, अनु.-आदित्य नारायण सिंह, पूर्वकालीन भारत, पृ. 106
16. Women have low fighting value, they have potential military value. By giving birth sons they contribute indirectly to the fighting strength and efficiency of their community / कुमकुम रॉय (सं.), वीमेन इन अर्ली इंडिया, पृ. 77
17. रेमी कुमारी (सं.), प्राचीन भारत, पृ.-51



पर्यावरणीय राजनीतिक सिद्धांत एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य का तुलनात्मक अध्ययन

○ प्रमोद कुमार¹

○ नेहा सिंह²

संक्षिप्ति :

अंतरराष्ट्रीय राजनीति का आरंभ एक विषय के रूप में मूलतः 1920 में वुड्रो विल्सन चेयर की स्थापना के पश्चात हुआ। अंतरराष्ट्रीय राजनीति अपने प्रारंभिक चरण में मुख्यतः यथार्थवाद एवं आदर्शवाद के मध्य सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विवादों पर केंद्रित रही। जहाँ यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य अंतरराष्ट्रीय राजनीति को राष्ट्र राज्यों के मध्य संघर्षों के रूप में परिभाषित करता है, तो वहीं दूसरी तरफ आदर्शवादी वैचारिक पृष्ठभूमि में नैतिकता एवं शांति स्थापना के मूल्यों को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया। अंतरराष्ट्रीय राजनीति का दूसरा विवाद मुख्यतः यथार्थवाद एवं व्यवहारवाद के मध्य माना गया जहाँ अंतरराष्ट्रीय राजनीति की वैज्ञानिकता एवं मानकीयता पर गहन चर्चा देखने को मिलती है। तीसरा महान विवाद नव मार्क्सवाद, नव उदारवाद, एवं नव यथार्थवाद के मध्य इंटर पैराडाइज डिबेट के रूप में परिभाषित किया गया। वही चौथा महान विवाद प्रत्यक्ष वाद एवं उत्तर प्रत्यक्ष वाद के मध्य अंतरराष्ट्रीय राजनीति में तथ्यों और मूल्यों के विवाद के रूप में भी सामने आता है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति राष्ट्र राज्यों को केंद्र में रखकर राष्ट्रीय हितों को केंद्रीय महत्व प्रदान करती है जिसके तहत अंतरराष्ट्रीय राजनीति एक प्रतिस्पर्धी स्वरूप धारण करके अराजकता पूर्ण स्थिति को प्राप्त करती है। वहीं पर्यावरणीय राजनीतिक सिद्धांत राष्ट्र राज्यों के मध्य पर्यावरण की रक्षा हेतु पारस्परिक सहयोग एवं सौहार्द को प्रेरित करने की सैद्धांतिक समझ को विकसित करने का एक प्रयास है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मूलभूत सिद्धांत अथवा मुख्य धारा सिद्धांत वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरणीय मुद्दों को दरकिनार करते हुए राष्ट्रीय मुद्दों एवं वैश्विक मुद्दों को एकीकृत करते हैं। वहीं पर्यावरणीय राजनीतिक सिद्धांत के केंद्र में पृथ्वी उसकी रक्षा, पर्यावरणीय संसाधनों

1. असिस्टेंट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

2. असिस्टेंट प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

का विवेकसम्यक दोहन एवं विराट रूप में पर्यावरणीय संरक्षण इसकी केंद्रीय अवधारणा है।

बीज शब्द: अंतरराष्ट्रीय राजनीति, पर्यावरण संरक्षण, सैद्धांतिक विश्लेषण, प्राकृतिक संसाधन, वैश्वीकरण

अंतरराष्ट्रीय राजनीति एक स्वायत्त अध्ययन के विषय के रूप में 20वीं सदी के आरंभिक वर्षों में विकसित हुई। अंतरराष्ट्रीय राजनीति के सिद्धांत मुख्य रूप से राज्य केंद्रित हैं, खासकर इसके मुख्यधारा सिद्धांतों में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक प्रबल रूप से मुखरित होती है। नव-यथार्थवाद एवं नव उदारवाद अंतरराष्ट्रीय संरचना को अराजकतापूर्ण मानते हैं। अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मुख्यधारा सिद्धांतों की मूलभूत मान्यताएँ राज्य, शक्ति, सुरक्षा, राष्ट्र हित, सुरक्षा व असुरक्षा-दुविधा के आस-पास ही घूमती हैं। यहाँ पर्यावरणीय सुरक्षा का मुद्दा दूर-दूर तक नदारद नजर आता है। वहीं जब हम अंतरराष्ट्रीय राजनीति के वैकल्पिक सिद्धांतों जैसे नारीवाद, रचनवाद, उत्तर-आधुनिकतावाद तथा आलोचनात्मक सिद्धांत आदि की मूल मान्यताओं पर प्रकाश डालते हैं तो पाते हैं कि ये सिद्धांत मुख्यधारा सिद्धांतों की प्रत्यक्षवादी अध्ययन पद्धति तथा उनकी मौलिक मान्यताओं पर तो प्रहार करते हैं किंतु पर्यावरणीय सुरक्षा यहाँ भी सिद्धांत एवं सैद्धांतिकरण की प्रक्रिया के केंद्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं कर पाती। नारीवादी सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय राजनीति की पुरुषवादी प्रवृत्ति पर तो प्रहार करता है लेकिन पुरुषवादी भौतिकवादी मानसिकता जो पर्यावरणीय विनाश की जिम्मेदार है, इसे सिद्धांतों के केंद्र में नहीं रखता है।

अन्तराष्ट्रीय राजनीति बनाम पर्यावरणीय राजनीति

अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मुख्य धारा तथा वैकल्पिक सिद्धांतों को विश्लेषित करते हुए यह पाया कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति की परंपरा में पर्यावरणीय एवं हरित राजनीति केंद्रीय विषय तो दूर की बात, परिधि का विषय भी नहीं बन पाया है। इसलिए 1970 के दशक में जब पर्यावरण के दुष्प्रभाव ज्यादा तीव्रता से दिखाई देने लगे तो इसे नजरअंदाज किया जाना मुश्किल होने लगी। इसलिए हरित राजनीति भी अब अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का विषय बनने लगा। जहाँ हरित राजनीति की मूल अवधारणा का सवाल है तो हरित राजनीति एक ऐसी अवधारणात्मक संकल्पना है जो कि पर्यावरण अथवा प्रकृति को अपने सैद्धांतिकरण की प्रक्रिया के केंद्र में रखती है। यह मानव केंद्रित उस संकल्पना का खंडन करती है जिसमें यह माना जाता है कि मानव इस प्रकृति का सर्वोत्तम प्राणी है तथा वह इस संसार के केंद्र में स्थापित है, और इसलिए उसे प्रकृति पर विजय का अधिकार मिल जाता। हरित राजनीति मूल रूप से पारिस्थितिक-केन्द्रवाद की अवधारणा की स्वीकृति प्रदान करती है। इसके कुछ लक्षण हैं जैसे कि यह मानवीय जगत् तथा गैर मानवीय जगत् के किसी कठोर अलगाव को नहीं स्वीकारती क्योंकि ऐसा कोई तार्किक नियम नहीं है जो मानव को अन्य गैर मानवीय विश्व से विभक्त करता हो।

यहाँ एक बड़ा सवाल यह आता है कि क्या मानव इतना स्वार्थी एवं आत्मकेंद्रित हो गया है कि वह प्रकृति के बाकी पक्षों के प्रति असंवेदनशील होता जा रहा है। इसी को विस्थापित करते हुए परिस्थितिक केन्द्रवाद अपनी सैद्धान्तिक मान्यताएँ रखता है। इसके अनुसार मानवीय जगत् से परे जो प्राकृतिक जगत् है उसके बगैर मानव के हितों व उसके अस्तित्व का कोई महत्व नहीं है। दूसरा यह शेष प्राकृतिक विश्व के हितों को भी इंगित करता है। तीसरा यह संसार में आगे आने वाली उन समस्त मानवीय एवं मानव से इतर पीढ़ियों के हितों को भी पहचानता है। अंतिम लेकिन अत्यंत महत्वपूर्ण है कि यह एक ऐसे परिप्रेक्ष्य को दर्शाता है जिसमें कि मानव जगत् की अणुवादी अवधारणा की बजाय उसमें संसार की समस्त विविधताओं जैसे जल, थल, आकाश में रहने वाले समस्त जीवों को सम्मिलित कर लिया जाता है। मानव तथा प्रकृति के अन्य कणों के मध्य नीतिगत संबंधों की आमूल परिवर्तनकारी सोच ही हरित राजनीति का एक मौलिक हिस्सा है।

हरित राजनीति एवं व्यावहारिक शक्ति राजनीति

हरित राजनीति का एक अत्यंत महत्वपूर्ण दृष्टिकोण हमें यह समझाने में मदद करता है कि मानवीय जगत् का विकास एक निश्चित सीमा के अंदर होता है। मानवीय जगत् आर्थिक संवृद्धि एवं जनसंख्या के विकास के बीच एक विरोधी अवधारणा को दर्शाता है। जहाँ बढ़ती हुई मानव जनसंख्या अपनी भौतिक, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों अथवा कच्चे माल पर निर्भर हो जाती है तथा इसी का तार्किक परिणाम औद्योगीकरण के रूप में सामने आता है। यह प्रवृत्ति पर्यावरण को दूषित करके उस पर दबाव को बढ़ा रही थी। आर्थिक संवृद्धि की सीमा क्या हो यह चिन्हित नहीं किया गया था। एक अनियंत्रित आर्थिक वृद्धि तथा पर्यावरणीय विनाश दोनों ही आपस में गहराई से जुड़े हैं।

इसके साथ तीन तर्क मुख्य रूप से सामने आते हैं, पहला कि इस समस्या का कोई तकनीकी समाधान कार्यरत नहीं है क्योंकि तकनीकी समाधान समस्या को थोड़ा स्थगित तो कर सकता है किंतु इसका चिर-स्थायी समाधान नहीं। दूसरा तीव्र आर्थिक संवृद्धि दीर्घकालिक समय में अपने अत्यंत खतरनाक प्रभाव छोड़ जाएगी। अंतिम आर्थिक संवृद्धि के साथ पर्यावरण समस्या जुड़ती वह दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित है। इसलिए समस्या का समाधान किसी एक सूत्रीय तरीके से संभव नहीं हो सकता।

समसामयिक वैश्विक व्यवस्था एवं पर्यावरणीय संरक्षण

हरित राजनीतिज्ञ एवं पर्यावरणवादी मुख्य रूप से तीन तरह के उपागम अपनाने पर बल देते हैं ताकि पर्यावरणीय समस्याओं का सार्थक हल ढूँढा जा सके। पहला तर्क हार्डिन का है जो कि पर्यावरणीय संरक्षण के लिए पूर्णसात्तावादी हल बताते हैं। इसके तहत वो एक केंद्रीकृत वैश्विक राजनीतिक ढाँचें की आवश्यकता पर बल देते हैं जिसके द्वारा राज्यों को सतत् विकास के लिए बाध्य किया जा सके। इसके तहत पर्यावरणीय संरक्षण के लिए एक वैश्विक सरकार की परिकल्पना की जाती है। जो कि राष्ट्र राज्यों के लिए समान नियम बनाकर इन नियमों को सभी राष्ट्रों पर समान रूप से लागू कर सके।

पर्यावरणीय समस्या एवं इसके बेहतर राजनीतिक समाधान के लिए एक अन्य उपागम हरित अराजकतावादी उपागम भी है। जहाँ राष्ट्र-राज्यों की अधिसत्ता को ही स्वीकार नहीं किया जाता। ये पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु शक्ति के अधिकाधिक विकेंद्रीकरण पर बल देते हैं। इसके अनुसार राजनीतिक शक्ति का विवरण समता के सिद्धांत पर होना चाहिए। इनके अनुसार राज्य एक अनावश्यक बुराई है अतः ये एक राज्य विहीन समाज की परिकल्पना करते हैं, जो कि सबसे सर्वोत्तम एवं व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत करता है, जहाँ राष्ट्र-राज्यों का प्रभुत्व नहीं होगा।

हरित अराजकतावादियों के अनुसार पर्यावरणीय समस्याओं तथा राज्य के मध्य एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण अंतर्संबंध है। और एक अराजकतावादी समाज ही इस समस्या के समाधान का महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। उदाहरण के लिए हरित अराजकतावादी तर्क देते हैं कि राज्य सामान्यतः एक दूसरे के साथ सैनिक व अन्य प्रकार के संघर्षों में लिप्त रहते हैं। इन संघर्षों में लाभ की स्थिति पाने के लिए वे अपनी आर्थिक क्षमताओं में वृद्धि के लिए वे अधिकाधिक पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन करते हैं। इस प्रकार पर्यावरण को बचाने के लिए हरित अराजकतावादी राज्य की परंपरागत भूमिका पर पुनर्विचार की माँग करते हैं।

जॉन ड्रयजेक अपने लेख 'रॅशनल इकॉलॉजी' में विकेंद्रीकरण को हरित सिद्धांतों में विकास का सर्वोत्तम तरीका मानते हैं। क्योंकि हरित अराजकतावादी सिद्धांत के अनुसार छोटे-छोटे स्तर पर समुदायों को आधार बनाकर अत्यंत ही सूक्ष्म स्तर पर विकास की प्रक्रिया को चलाने की पैरवी करता है। क्योंकि जब मानव विकास को बहुत छोटे स्तर पर जारी रखेगा तो वह अपनी आवश्यकताओं को भी छोटे स्तर तक ही सीमित रखेगा। फिर

इसका पर्यावरण पर बहुत ज्यादा गहरा असर नहीं पड़ेगा। साथ ही मानव की आवश्यकताएँ भी सीमित हो जाएँगी।

पर्यावरणीय समस्याओं के निपटान के लिए एक उपागम पारिस्थितिकीय-केंद्रीयवाद भी है, इसका शाब्दिक अर्थ पारिस्थितिकीय-केंद्रियता से संबंधित वैश्विक दृष्टि है। यह मानव से परे का जगत् जिसे हम गैर-मानवीय अथवा प्राकृतिक जगत् भी कहते हैं वह केवल यांत्रिक रूप से ही स्वयं में महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि वह उस मानव-केंद्रीयवाद का उस आधार पर भी खंडन करता है जो कि प्रकृति एवं उसके संसाधनों को केवल कच्चे माल के रूप में प्राप्त होने वाली सामग्री के रूप में देखता है। मानव के केंद्रीयवाद की अवधारणा प्रकृति से प्राप्त होने वाले संसाधनों की महत्ता को केवल मानव के हितों एवं उसके विकास के साथ जोड़कर देखता है। जबकि पारिस्थितिकीय-केंद्रीयवाद पर्यावरणवादी यह विश्वास करते हैं कि आर्थिक संवृद्धि की भौतिक एवं सामाजिक सीमाएँ हैं। क्योंकि इस प्रकृति की सभी वस्तुएँ चाहे वो मानवीय हो अथवा गैर-मानवीय, दोनों आपस में गहरे रूप से अंतर्संबंधित हैं। इस प्राकृतिक जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो की व्यक्तिगत रूप से केवल स्वयं से संबंधित हो। अगर वह उपरी तौर पर केवल स्वयं से जुड़ी हुई प्रतीत भी होती है तो भी वह अपने अंतिम रूप में इस प्रकृति से उस हद तक अंतर-संबंधित होती है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

अंततः पारिस्थितिकीय-केंद्रीयवाद पर्यावरणवादी विकास के दार्शनिक आधार को ही चुनौती प्रस्तुत कर देते हैं। वे भौतिक संसाधनों अथवा उर्जा की लालसा को मानवीय लालसाओं की पूर्ति के लिए न्यूनतम करना चाहते हैं इस प्रकार ये राजनीतिक अवधारणा के रूप में पारिस्थितिकीवादी के दार्शनिक आधार को मजबूत बनाते हैं।

पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद की अवधारणा का विश्लेषण करने के पश्चात हम पाते हैं कि यह वैचारिक परंपरा पारिस्थितिकीय अराजकतावाद एवं पारिस्थितिकीयपूर्ण सत्तावाद से काफी अर्थों में भिन्नता रखती है। जहाँ एक ओर पूर्णसत्तावादी पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु एक वैश्विक सरकार के निर्माण की परिकल्पना करते हुए संपूर्ण विश्व पर एक समान मानकों को कठोरता से लागू करने के पक्षधर थे। वह राष्ट्र-राज्यों की स्वायत्ता व स्वार्थ-परतता की जगह साझे विश्व द्वारा बनाए गये नियमों में विश्वास रखते हैं। क्योंकि उनके अनुसार साझे विश्व द्वारा बनाए गये मानक सर्वस्वीकार्य एवं संपूर्ण विश्व के लिए ज्यादा बेहतर सिद्ध होते हैं। वहीं पारिस्थितिकीय केन्द्रवादी उस किसी भी मानवीय विश्व को शेष प्राकृतिक विश्व से काट कर नहीं देखता इनका मानना है कि यदि एक विश्व सरकार संपूर्ण विश्व के लिए नियम एवं मानकों का निर्माण करेगी तब भी उसके केंद्र में मानवीय समस्याएं एवं मानव का बेहतर आर्थिक विकास ही रहेगा। अतः यह समस्या की मूल प्रकृति पर प्रहार नहीं करती क्योंकि समस्या की मूल जड़ तो उपरोक्त वैचारिक परंपरा का मानव से जुड़ जाना है जबकि पारिस्थितिकी-केन्द्रवाद की आधारभूत आलोचनाओं का केंद्र मानव-केन्द्रवाद है। मानव का संसार के केंद्र में स्थापित होना ही प्रकृति के विनाश का मूल कारण है। मानव केंद्रीय दृष्टिकोण मानवीय सभ्यता के उत्थान को लेकर अत्यंत संवेदनशील है। यह मानता है कि मानव इस विश्व का एक हिस्सा होते हुए भी इस विश्व जगत् का सबसे महत्वपूर्ण प्राणी है (Hayward, 1998)।

पारिस्थितिकीय-केन्द्रवाद अराजकतावादी पर्यावरणवादियों के तर्कों से भी सहमत नहीं होते; क्योंकि अराजकतावादी राज्य को अनावश्यक बुराई मानते हुए राज्य के महत्व को तो अस्वीकार कर देते हैं, किंतु फिर भी वे मानव को ही इस जगत् का सबसे बेहतर प्राणी मानते हैं। अराजकतावादियों के अनुसार मानव स्वभावतः एक अत्यंत ही विवेकशील प्राणी है किंतु राज्य की सत्ता उसे भ्रष्ट बना देती है और यदि राज्य की सत्ता का लोप हो जाए तो मानव इस जगत् की सभी समस्याओं का हल निकाल लेगा। केवल समाधान है नहीं बल्कि राज्य अगर नहीं होगा तो समस्या ही नहीं उत्पन्न नहीं होगी (Marshall, 1993)।

पारिस्थितिकीय केन्द्रवादी तर्क देते हैं कि मानव की विवेकशीलता एवं तथाकथित तार्किकता ही उसे यह

सिखाती है कि वह पर्यावरण पर अपना आधिपत्य स्थापित कर ले। साथ ही यह मानव को वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के लिए प्रोत्साहित करती है। यही तकनीकी एवम् वैज्ञानिक विकास पर्यावरणीय एवं प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के नये मार्ग खोलता है। यह उसे सिखाती है कि मानव किस तरह ज्यादा तीव्र गति से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर प्रकृति को अपने अधीन कर सकता है। अतः पारिस्थितिकी अराजकतावादी तर्क अप्रत्यक्ष रूप से ही मानवता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। यही मानवीय श्रेष्ठता की परिकल्पना मानव केंद्रित अवधारणा में परिवर्तित हो जाती आयी है जो की मनुष्य को अंध विकास के लिए योग्य बनाती है।

पर्यावरणीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण पड़ाव गहरी पारिस्थितिकीय नामक उपागम के रूप में भी सामने आता है। इसका प्रतिपादन 1972 अपने एक लेख में आर्वे नेस ने किया। यही गहरी पारिस्थितिकी की संकल्पना आगे चलकर पारिस्थितिकीय दार्शनिकता का आधार बनी। आर्ने नेसे (1973) ने मूलतः जिस गहरी पारिस्थितिकी की संकल्पना दी वही मूल रूप से पारिस्थितिकीय दर्शनवाद है जो कि पारिस्थितिकीय सामंजस्य अथवा समता मूलकता की अवधारणा को प्रतिपादित करती है।

गहरी पारिस्थितिकी इस जगत् में मानवता को संपूर्ण मानवीयता की सामान्य अथवा साझी समस्या के रूप में पारिभाषित करती है। यह हमें एक पूर्ण एवं व्यापक दृष्टिकोण देती है ताकि हम मानवीय विश्व एवं मानवता की समूची समस्याओं अर्थात् इस संपूर्ण पारिस्थितिकी की समस्याओं को संपूर्णतः एवम् विविधता से समझें (Callicott, 1989)।

गहरी पारिस्थितिकीय संकल्पना इस प्राकृतिक विश्व में मानवीय संबंधों में आमूल परिवर्तन की पैरवी करती है। यही परिवर्तन आगे चलकर हरित राजनीतिक सिद्धांतों की नींव बनता है, यह सिद्धांत इस पृथ्वी अर्थात् प्रकृति को एक घर के रूप में देखता है। यह एक ऐसा घर है जिसमें कि सभी मानव, जीव जन्तु, उनकी विविधता एवम् सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली समस्त वस्तुएँ हैं। यह पृथ्वी नामक ग्रह किसी एक मानवीय समुदाय का नहीं है बल्कि संपूर्ण मानवीय व गैर मानवीय समुदाय इसमें समान रूप से विचरण करने का अधिकार रखते हैं। यह सिद्धांत पर्यावरणीय नीति-शास्त्र की संकल्पना से हमारा साक्षात्कार कराता है। यह एक ऐसा नीति-शास्त्र है जो की नैतिकता के समस्त मानदंडों को पर्यावरण एवं प्राकृतिक नैतिकता के साथ जोड़कर देखने की वैचारिक प्रवृत्ति को विकसित करता है।

गहरी पारिस्थितिकी की अवधारणा मानव को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाने पर बल देती है। चूँकि प्रकृति के विनाश के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार मानव की असंवेदनशीलता ही है। आधुनिक मानव प्रकृति को लेकर लगातार असंवेदनशील होता चला गया। वह स्वयं को तथा अपनी क्षमताओं को इतना महत्व देने लगा कि वह प्रकृति के अन्य उपागमों एवम् कणों से कटता चला गया। आधुनिक मानव केवल स्वयं को लेकर संवेदनशील है। उसकी समस्त संवेदनाएँ, भावनाएँ एवं प्रेम उसके खुद तक ही सीमित है। जब मानव स्वयं तक सीमित हो जाता है तो वह स्वयं को अन्य सबसे प्राथमिक एवं महत्वपूर्ण समझने लगता है। गहरी पारिस्थितिकीय सोच मनुष्य को प्रकृति से प्रेम करना सिखाती है। वह मानव के हृदय को विराट रूप देकर उसे लोक हृदय में परिवर्तित करती है। जिस क्षण हम यह समझने लग जाते हैं कि प्रकृति हमारे घर की तरह है तो उसी क्षण हम उसके प्रति प्रेम भाव से अभिभूत हो जाते हैं, हम समझ जाते हैं कि यह प्रकृति कोई पराई नहीं है बल्कि मेरे जीवन का हिस्सा है तो मानव उसके प्रति संवेदनशील होता चला जाता है (Devall and Sessions, 1985)।

इस प्रकार गहरी पारिस्थितिकीवादी अवधारणात्मक विचारधारा प्रकृति एवं मानव के मध्य पारस्परिक सौहार्द एवं प्रेम पूर्वक संबंधों पर बल देती है। हमने अपने अध्ययन में अंतरराष्ट्रीय राजनीति के अन्य सिद्धांतों को इन पक्षों की पूर्ण अवहेलना करते पाया था। यथार्थवादी परंपरा जो अंतरराष्ट्रीय राजनीति को व्यवहारिक आधार प्रदान

करती है उसके केंद्र में मानव संघर्ष को रखा जाता है। वो मनती है कि मानव सदैव अन्य से संघर्ष की स्थिति में रहता है। यहाँ मानवीय संबंधों में सौहार्द, संवेदनाओं एवं प्रेम के लिए कोई भी स्थान शेष नहीं बचता। जबकि दूसरी ओर गहरी पारिस्थितिकी से जुड़ा दर्शन संपूर्ण दार्शनिक एवं सैद्धांतिक परंपरा के केंद्र में मानवीय संवेदनाओं को ही स्थापित कर देता है। जहाँ मानव को केवल स्वयं से ही नहीं बल्कि प्रकृति से प्रेम की नसीहत दी जाती है।

पर्यावरणीय राजनीति में एक और अन्य वैचारिक परंपरा है जो कि पर्यावरणीय समस्याओं को नारी की दृष्टि से देखती हैं। पारिस्थितिकी अथवा पर्यावरणीय नारीवाद इस बात पर जोर देते हुए यह देखने का प्रयास करता है कि पर्यावरणीय समस्याओं का सर्वाधिक प्रभाव किस पर पड़ता है तथा महिला एवम् पुरुष में से कौन पर्यावरणीय समस्याओं के लिए जिम्मेदार है। साथ ही इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि पुरुष एवम् महिला दोनों पर्यावरणीय सामूहिक क्रिया में क्या एक समान न रूप से शामिल हो जाना चाहिए? क्या दोनों के समान सहयोग, अनुभव व प्रेरणादायक श्रोत हैं? क्या पुरुष एवं महिला दोनों के ही पर्यावरणिये प्रबंधन में समान हित हैं?

महिलावादी हरित परिप्रेक्ष्य बताने का प्रयास करता है कि यह संपूर्ण गैर प्राकृतिक विश्व पुरुषों द्वारा निर्मित विश्व है। पुरुषवादी सदगुण ही प्रकृति के विनाश के लिए जिम्मेदार है। क्योंकि पुरुष अपने मूल स्वभाव से ही हिंसक, आक्रामक, आत्म केंद्रित होता है। पुरुष की मूल प्रवृत्ति यही है कि वह सभी वस्तुओं यहाँ तक कि प्रकृति को भी अपने नियंत्रण में करना चाहता है। पुरुषवादी संरचना जहाँ समाज के भीतर पितृसत्तात्मकता के ढाँचे का निर्माण करती है, वहीं वह राज्य व अंतरराष्ट्रीय राजनीति की संरचना को भी पितृसत्तात्मक ही बना देती है। ये पुरुषवादिता पुरुष को प्राकृतिक संसाधनों के अनवरत दोहन के लिए प्रेरित करती है। इसी को आधार बनाते हुए हरित नारीवादी विचारक पर्यावरणीय समस्याओं के पीछे अन्तर्निहित पुरुष स्वाभाव एवम् लिंग आधारित ज्ञान का पर्दाफाश करते हैं।

इस प्रकार नारीवाद विचारक महिला एवं पुरुषों के सदगुणों को आधार बनाकर पर्यावरणीय समस्या की वास्तविक जड़ तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। पुरुषवादी ज्ञान ने स्वयं के सदगुणों अर्थात् पुरुषवादिता को सर्वोच्च स्थान दे दिया वहीं महिलावादी सदगुण अर्थात् नारीत्व समाज में दोगुनी स्थिति में पहुँच गया। हरित नारीवादी विचारधारा 1970 के आस-पास सामने आती है। यह सीधे तौर पर एक आंदोलन नहीं था क्योंकि इसके पास कोई संगठनात्मक ढाँचा नहीं था, किंतु यह एक वैचारिक परंपरा पर आधारित प्रारूप था जो महिलावादी सक्रिय पर्यावरणीय संवेदनाओं से जुड़ा था। हरित नारीवाद अंतरराष्ट्रीय राजनीति में उग्र-नारीवाद के साथ-साथ विकसित होता है तथा यह विश्व के अनेक देशों तक फैलता चला गया।

हाँलाकि हरित नारीवादी विचारधारा नारीवाद के अन्य मुख्यधारा सिद्धांतों के द्वारा अस्वीकृत किया गया है। क्योंकि हरित नारीवाद पृथ्वी को माता के रूप में परिभाषित करने पर बल देता है, तथा यही माता अथवा मातृत्व की अवधारणा महिलाओं को इस मानवीय संसार में द्वितीयक स्थान पर घसीट देती है जिसके विरुद्ध की मुख्यधारा नारीवादी सिद्धांत लगातार संघर्ष करते रहते हैं क्योंकि मातृत्व की अवधारणा भी पुरुष के द्वारा निर्धारित होती है जैसे सिमोन दी बुआ (1956) में बताती हैं कि, “महिलाएँ पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती हैं”। ये पुरुषवादी सदगुण ही है जो कि महिलाओं को महिला बनने हेतु बाध्य करते हैं। मैं यहाँ एक तर्क और जोड़ना चाहूँगा कि पुरुष भी पैदा नहीं होता बल्कि बनाया जाता है क्योंकि पुरुष के भीतर भी पुरुषवादी सदगुण जन्म से नहीं होते बल्कि पितृसत्तात्मकता का ढाँचा एक शिशु को पुरुषवादी सदगुण से ओत-प्रोत कर उसे पुरुष बना देता है। इस प्रकार वह जन्म से ही प्रकृति के प्रति असंवेदनशील पुरुष निर्मित ज्ञान एवं ढाँचे को अपने स्वाभाविक

सदगुण के रूप में स्थापित कर लेता है।

हालाँकि मुख्यधारा नारीवादी सिद्धांतों के पास हरित नारीवाद के विरुद्ध अनेक तर्क हैं जो काफी हद तक वाजिब भी हैं। किंतु हरित नारीवाद राजनीतिक पर्यावरणीय राजनीति को नये एवं गहरे आयाम प्रदान करती है। यह हमारी समझ को इस आधार पर विकसित करती है कि पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए मूल जिम्मेदारी तो पुरुष की ही होनी चाहिए क्योंकि वही उसके विनाश के लिए उत्तरदायी है। किंतु महिलाएँ क्योंकि प्रकृति के ज्यादा नजदीक होती हैं तथा वे स्वाभाव से ही संवेदनशील होती हैं इसलिए उनकी भागीदारी भी पर्यावरण सुरक्षा में सुनिश्चित होना चाहिए (Salleh, 1997)।

निष्कर्ष

आज पर्यावरणीय राजनीति में प्रदूषण से निपटने हेतु जो सर्वाधिक लोकप्रिय तरीका माना जाता है, वह है पारिस्थितिक पदचिह्न एवं ऋण। विश्लेषण यह बताते हैं कि मानवीय समाज पहले ही आर्थिक संवृद्धि से बहुत आगे निकल चुका है, वो विकास की सारी सीमाओं को पार कर चुका है। अतः अब उसके रुकने का समय आ गया है, क्योंकि अब यह पृथ्वी उसके विकास की कीमत से उपजे विनाश को और अधिक सहन नहीं कर सकती। मानवीय सभ्यता अपने भोग-विलास के कारण प्राकृतिक संसाधनों का इतना अत्यधिक दोहन कर चुकी है कि आज का मानव प्रकृति की दी हुई सीमा से अपार दोहन करने के पश्चात वह नैतिक रूप से और अधिक माँग की सारी संभावनाएँ समाप्त कर चुका है। पहले उसे अपना पुराना पारिस्थितिक कर्ज उतारना होगा तभी वह नये कर्ज के लिए हक माँगने योग्य होगा।

References:

- Aggarwal, Bina (2000), "Conceptualizing Environmental Collective Action: Why Gender Matters", Cambridge Journal of Economics, Vol.24, pp- 280-310
- Beauvoir, Simon (1956), "The second sex", Jonathan Cape, Thirty Bedford Square: London
- Bhargava, Rajiv and Ashok Acharya (2011), *An Introduction to Political Theory*, New Delhi: Pearson.
- Carter, A. (1999), *A Radical Green Political Theory*, London: Routledge.
- Dobson, Andrew. (1990), *Green Political Thought*, New York: HarperCollins Academics.
- Dryzek, John (1987), "Rational Ecology: Environment and Political Economy", New York: Baril Blackwell.
- Fukuyama, Francis. (1993), *The End of History and the Last Man*, UK: Penguin Company.
- Hayward, T. (1998), *Political Theory and Ecological Values*, Cambridge: Polity Press.
- Katz, Richard (2011), "Manufacturing Globalization: The Real Sources of U.S. Inequality and Unemployment", *Foreign Affairs*, Vol. 90(6), pp. 166-168.
- Keohane, O. Robert and Joseph, S. Nye. (1977), *Power and Interdependence: World Politics in Transition*, Boston Little Brown.
- Naess, Arne (1989), *Ecology, Community and Lifestyle: outline of an Ecosophy* Translated by D Rothenberg Cambridge, Cambridge University Press.
- Rootes, C. (1995), "Green in Cold Climate" in D. Richardson and C. Rootes (eds.) *The Green Challenge: The Development in Green Parties in Europe*, London: Routledge.
- Waltz, Kenneth N. (2008), *Realism and International Politics*, UK: Routledge.



हिंद महासागर में बढ़ती भारत और चीन की प्रतिस्पर्धा का समग्र आकलन

○ अरुण यादव¹

○ डॉ. विवेक कुमार मिश्र²

संक्षिप्ति :

प्राचीन काल में मानव ने पृथ्वी पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए समुद्री रास्तों को अपनी उन्नति और व्यापार का मार्ग बनाया। उपनिवेशवाद की संस्कृति ने संपूर्ण विश्व में समुद्र शक्ति के माध्यम से अपने साम्राज्य का विस्तार किया। 21वीं शताब्दी जो कि सूचना प्रौद्योगिकी बैठक पर आधारित है। इस परिदृश्य में विश्व का 90% व्यापार समुद्री मार्गों से हो रहा है। भारत में वर्तमान व्यापारिक गतिविधियां समुद्री मार्ग से अधिक रही है, इस समय अधिकांश व्यापार हिंद महासागर से हो रहा है, महासागर की भूमिका भारत को एक विश्व शक्ति के रूप में स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह समुद्री क्षेत्र दुनिया भर के स्थलखंडों एवं अन्य समुद्री मार्ग से जुड़ा हुआ है। इसी कारण यहां पर अमेरिका सहित दुनिया भर के विकसित देश अपनी व्यापारिक गतिविधियों के साथ-साथ महासागर के खनिज संपादन पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। भारत और चीन हिंद महासागर को अपनी आर्थिक और सामरिक शक्ति बनाकर एशिया सहित दुनिया भर में अपनी क्षमता का परिचय देने का प्रयास कर रहे हैं। दोनों देशों के बीच हिंद महासागर में प्रतिस्पर्धा का दौर बना हुआ है। अतः शोध पत्र में हिंद महासागर में भारत चीन प्रतिस्पर्धा एवं उसके महत्व का अध्ययन वर्णन किया गया है।

बीज शब्द : समुद्री अर्थव्यवस्था, समुद्र का महत्व, उपनिवेशवाद की संस्कृति, 21वीं शताब्दी, सूचना प्रौद्योगिकी, व्यापारिक गतिविधियां, हिंद महासागर खनिज, हिंद महासागर में भारत चीन, आर्थिक और सामरिक शक्ति आदि।

-
1. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग, मानवीय एवं सामाजिक विज्ञान स्कूल,
 2. सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग, मानवीय एवं सामाजिक विज्ञान स्कूल, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, गौतमबुध नगर।

पृथ्वी का लगभग 70% भाग जलमंडल से घिरा हुआ है, जिसके कारण मानव के विकास में नदिया, सागर, खाड़ी और महासागरों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंद महासागर दुनिया भर के सिर्फ महासागरों में से एक है, जिसमें लगभग 20% विश्व समुद्र क्षेत्रफल है इसकी भौगोलिक स्थिति एशिया, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप के मध्य है। जिससे इन तीनों ही महाद्वीपों के बीच व्यापारिक गतिविधियों एवं मानव आवागमन को सरलता से स्थापित करने का हिंद महासागर एक माध्यम बना हुआ है। आर्थिक गतिविधियों के अलावा हिंद महासागर की भूमिका विश्व के मानसून परिवर्तन से भी जुड़ी हुई है। क्योंकि भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ सिंचाई व्यवस्था का कुछ भाग मानसूनी बारिश पर निर्भर है। जिसमें हिंद महासागर से चलने वाली मानसून हवाएं भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश कर यहां पर कृषि अर्थव्यवस्था को भौगोलिक सहायता प्रदान करती हैं, वही इन बरसाती हवाओं का प्रभाव ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका में भी देखने को मिलता है। जिसके कारण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया की कृषि व्यवस्था हिंद महासागर की भौगोलिक गतिविधियों पर निर्भर हैं। हिंद महासागर में सबसे गहरा जावा ट्रेंच है। जिसकी गहराई 24390 फीट हैं, वही हिंद महासागर की औसतन गहराई 13080 फीट है। हिंद महासागर से लगभग विश्व भर के 47 राष्ट्र संबंधित है, जिसमें 15 देश अफ्रीका के दक्षिण एशिया 10 पूर्वी दक्षिण एशिया, दक्षिण पश्चिम एशिया से संबंधित हैं।¹

हिंद महासागर आर्थिक और भौगोलिक गतिविधियों के साथ-साथ सामरिक गतिविधियों के लिए भी विश्व भर में अपनी पहचान बनाए हुए हैं। क्योंकि भारत और चीन अपनी व्यापारिक गतिविधियों को सरल करने के लिए हिंद महासागर में सैन्य शक्ति के माध्यम से अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते हैं। जिसके लिए चीन के द्वारा स्टिंग ऑफ पर्स (मोटियों की माला) नामक रणनीति के आधार पर थाईलैंड, म्यांमार, बांग्लादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि देशों के हिंद महासागर में स्थित हिंद महासागर में स्थित बंदरगाहों पर अधिकार स्थापित कर उन्हें आर्थिक और सामरिक दृष्टिकोण से उपयोग कर रहा है। यद्यपि भारत के द्वारा भी ऑस्ट्रेलिया, सेशेल्स, मालदीव, इंडोनेशिया, ईरान एवं क्वाड नामक संगठन के साथ चीन की विस्तारवादी रणनीति को प्रतिस्पर्धा के माध्यम से प्रतिक्रिया देने का प्रयास कर रहा है।

हिंद महासागर मानव की गतिविधियों के अलावा प्राकृतिक संसाधनों से भी परिपूर्ण है, यहाँ पर दुनिया का 65% खनिज तेल, 34% बॉक्साइट, 67% जिंक के साथ-साथ पॉली मैट्रिक सल्फाइड भी पाया जाता है।² इस अयस्क में अनेक धातुओं की मात्रा पाई जाती है यह दक्षिण-पश्चिम हिंद महासागर के क्षेत्र में पाया जाता है। हिंद महासागर में प्रमुख बंदरगाह **चितगांव, कोलंबो, हंबनटोटा, विशाखापट्टनम कोच्चि, ग्वादर, पोर्ट ऑफ लुईस, विक्टोरिया** आदि हैं।³

हिंद महासागर में भारत :

भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा का अधिकांश भाग समुद्र से सीमांकित है। यह समुद्री रेखा भारत में प्राचीन समय से ही विदेशी शासन व्यवस्थाओं के लिए आकर्षण का केंद्र बनी रही है, और प्रारंभिक तौर में व्यापारिक गतिविधियाँ इसके बाद में उच्च माल का केंद्र बना, जिसने भारत में अलग-अलग अगले दो वर्षों तक उपनिवेश की सीमाओं में बांध रखा, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने हिंद महासागर को एक अवसर के रूप में चुनकर इसका आर्थिक और सामरिक दृष्टि से उपयोग किया। भारतीय उपमहाद्वीप के लिए हिंद महासागर एक उपलब्धि के साथ साथ चुनौती भी रहा है। क्योंकि समुद्री मार्ग से जहाँ व्यापारिक गतिविधियों को बल मिला, वही समुद्री मार्ग से उपनिवेशवाद की जड़ें भारत भी पहुंची। उपनिवेशवाद में भारतीय सामाजिक, आर्थिक, संस्कृति को सैंकड़ों वर्षों तक गुलामी की जंजीरों में बांधे रखा। वर्तमान परिदृश्य में चीन की विस्तारवादी नीति एक नई चुनौती के रूप में भारत के सामने है।

यद्यपि भारत ने आर्थिक एवं सामरिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए हिंद महासागर को एक अवसर के रूप में उपयोग करने का संगठित रणनीति का प्रयास किया है। जिसमें भारत ने अपनी नौसेना एवं समुद्री सीमा पर बंदरगाहों को संस्थागत किया है। जिसमें सैन्य अभ्यास, अंतर्राष्ट्रीय संगठन एवं आर्थिक समझौते शामिल हैं।

भारत की हिंद महासागर में भारतीय रणनीति -

भारत के द्वारा 21वीं शताब्दी में नीले पानी की नीति (ब्लू वाटर पॉलिसी) को प्राथमिकता देते हुए आसियान, बिस्मटेक, ब्रिक्स एवं क्वाड से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का संस्थापक सदस्य बना।⁴

आसियान और भारत -

2014 के बाद भारत में लुक ईस्ट नीति को बदलकर ऐक्ट ईस्ट नीति के द्वारा क्रियान्वित किया जा रहा है⁵, जिससे पूर्वी एशिया में आर्थिक व सामरिक पहुँच सुनिश्चित की जा सके। आसियान देशों में भारत की पहुँच चीन की विस्तारवादी नीति को रोकने का प्रभावी कदम है, क्योंकि चीन, दक्षिण चीन सागर में अवैध गतिविधियाँ कर जहाँ वैश्विक व्यापारिक मार्ग पर अपना कब्जा जमाना चाहता है, वहीं छोटे समुद्री देशों की संप्रभुता चुनौती दे रहा है।⁶

बिस्मटेक (बिस्मटेक बंगाल की खाड़ी से लगे हुए देश का सामूहिक परस्पर निर्भरता का संगठन है।) -

हिंद महासागर में आर्थिक और सामरिक गतिविधियों को सशक्त करने के लिए भारत के द्वारा हिंद महासागर की बंगाल की खाड़ी में कूटनीतिक संबंधों के संगठनात्मक बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है कि भारत के द्वारा इस योजना में बांग्लादेश, म्यांमार अन्य देशों आर्थिक व सामरिक आधार पर समझौता कर हिंद महासागर में हस्तक्षेप किया। इसके माध्यम से चीन जैसे देशों की साम्राज्यवादी नीति को रोकने का प्रयास किया जा रहा है।

ब्रिक्स : यह संगठन ब्राजील रूस इंडिया चीन और साउथ अफ्रीका के परस्पर आर्थिक और सामरिक हितों पर निर्भर संगठन है।

भारत तीसरी दुनिया की उभरती हुई तीसरी अर्थव्यवस्था है। भारत दुनिया की उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के साथ मिलकर संयुक्त राष्ट्र संघ एवं पश्चिम की शक्तियों पर आर्थिक एवं सामाजिक निर्भरता को कम करने एवं 21 वैश्विक शक्ति के सिद्धांत को तोड़ने का हालांकि ब्रिक्स जहाँ भारत, चीन, रूस, दक्षिण अफ्रीका आदि अर्थव्यवस्थाओं का बड़ी जी0डी0पी0 और बड़े बाजार के रूप में संगठन हैं। वहीं भारत और चीन की प्रतिस्पर्धा ने इस संगठन की प्रासंगिकता को कम कर दिया, हालांकि दोनों देशों के बीच आर्थिक आधारों पर अनेक संबंध स्थापित हुए हैं और सहमति पर बल दिया गया है।

क्वाड- Quadrilateral Security Dialogue- (चतुर्भुज सुरक्षा संवाद, यह संगठन चार दुनिया के बड़े देशों का सामरिक गतिविधि पर निर्भर एक संगठन है। जिसमें चीन की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा को नियंत्रित करने का प्रयास किया जा रहा है। 2017 में इसका गठन किया गया।)

हिंद महासागर में दक्षिण चीन सागर में चीन की साम्राज्यवादी एवं बढ़ते एकाधिकार को तोड़ने के लिए भारत, यू0ए0एस0, ऑस्ट्रेलिया, जापान के साथ मिलकर हिंद प्रशांत महासागर में आर्थिक हितों के साथ साथ सामरिक रणनीति को साधने का प्रयास किया जा रहा है। इस संगठन के माध्यम से न केवल आर्थिक गतिविधियों को बल मिलेगा, बल्कि चीन की बढ़ती हुई तानाशाही एवं साम्राज्यवादी नीति से फिलीपींस, जापान, कोरिया आदि देशों की संप्रभुता की रक्षा भी हो सकेगी।⁷

मसाला रूट-

भारत चीन की सिल्क रूट (BRI) स्टिंग ऑफ पल्स को प्रतिरोधित करने के लिए भारत द्वारा मसाला मार्ग तैयार किया जा रहा है। जिसमें इजराइल और संयुक्त अरब अमीरात की मदद लेकर यूरोप एवं पश्चिमी एशिया में अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए भारत का यह प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सशक्त कूटनीति को बढ़ावा देगा। इस मार्ग से हाइफा बंदरगाह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। इस बंदरगाह की तारीफ करते हुए नीदरलैंड के राजदूत फोन्स ने कहा था कि यह बंदरगाह भारत को यूरोप से जोड़ने में मदद करेगा⁸, क्योंकि 600 ईसा पूर्व केरल के मसाले इसी मार्ग से यूरोप पहुँचते थे।

मलाबार युद्ध अभ्यास-

मलाबार युद्ध अभ्यास हिंद महासागर में भारत जैसी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के लिए सामरिक दृष्टि से एक सशक्त राष्ट्र की संकल्पना को दर्शाता है। क्योंकि भारत आर्थिक गतिविधियों के आधार पर जहाँ वैश्विक बाजारों में अपनी पहुँच को सुनिश्चित, सुरक्षित संरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध है। प्रतिबद्धता के लिए अभ्यास जैसे प्रयास अत्यंत प्रासंगिक है। क्योंकि हिंद महासागर में बढ़ रही चीन की तानाशाही साम्राज्यवादी, विस्तारवादी नीति से फिलिपींस जैसे छोटे देश की संप्रभुता खतरे में है। मालाबार युद्ध अभ्यास भारत के मालाबार तट पर होता है, जिसका प्राथमिक उद्देश्य जापान, ऑस्ट्रेलिया, भारत और दक्षिण अफ्रीका की सैनिक शक्ति को सहयोगात्मक स्थिति में लाकर हिंद महासागर में बढ़ रही चीन की विस्तारवादी नीति को प्रति प्रभावित किया जा सके। जिसके परिणाम स्वरूप भारत अपनी कूटनीति में समुद्र कूटनीति में सशक्त होता नजर आ रहा है।

बंदरगाह रणनीति -

भारत अपनी अंतर्राष्ट्रीय युद्ध सीमा रेखा को समुद्री सीमा रेखा को सुरक्षित करने के लिए भारत स्वदेशी एवं विदेशी बंदरगाहों को संगठित संस्थागत कर रहा है जिसका परिणाम भारत की अंतरराष्ट्रीय कूटनीति में चाबहार बंदरगाह, इजराइल व मिन्न के साथ हुए बंदरगाहों के सापेक्ष में समझौता में प्रभाव दिखाई पड़ता है।

- कांडला बंदरगाह
- मुंबई बंदरगाह
- मालाबार बंदरगाह
- जवाहर बंदरगाह

पश्चिम एशिया में चाबहार बंदरगाह -

चाबहार बंदरगाह, दूसरा महत्वपूर्ण उपयोग भारत के द्वारा पश्चिम एशिया में किया गया, जोकि प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच निर्धारित कर भारत की खाड़ी से प्राकृतिक तेल की पहुँच आसान कर सकेगा क्योंकि चीन मोतियों की माला (स्टिंग ऑफ पल्स) सामरिक नीति के माध्यम से जहाँ भारत को हमारे स्तर पर चुनौती दे रहा है, वहीं अरब सागर में बने प्राकृतिक जलमार्ग को प्रभावित करते हुए न केवल तेल कूटनीति बल्कि समुद्री मार्गों पर एकाधिकार करने का प्रयास कर रहा है। क्योंकि चीन के द्वारा स्वेज नहर से लेकर दक्षिण चीन सागर तक पाकिस्तान, श्रीलंका, म्यांमार, बांग्लादेश आदि देशों के बंदरगाहों पर आर्थिक आतंकवाद के माध्यम से समझौता कर वैश्विक आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करने का षड्यंत्र रच रहा है।

विशाखापट्टनम तटीय क्षेत्र -

भारत भविष्य में बढ़ते हुए चीन की विस्तारवादी नीति के खतरे को प्रतिषेध करते हुए समुद्री सामरिकरण नीति को पूर्ण रूप देने का मुहूर्त रूप देने का प्रयास कर रहा है, जिसमें 2016 में भारत के द्वारा विशाखापट्टनम

सागरीय क्षेत्र में नौसैनिक समीक्षा उत्सव आयोजित किया। जिसका सीधा संदेश चीन की नौसेना शक्ति को वास्तविक स्थिति दर्शाने का प्रयास था। क्योंकि भारत हिंद महासागर में दक्षिण चीन सागर प्रशांत महासागर की रणनीति में 2030 तक 100% भारत में निर्मित पोर्ट युद्ध पोत के उपयोग एवं 2030 तक 100 से अधिक नए युद्ध जहाज का निर्माण कर भारत के बेड़े में शामिल करने का लक्ष्य निर्धारित किया है।⁹ अतः समुद्री मार्ग सुरक्षित करने में भारत की आर्थिक गतिविधि भी सुरक्षित होगी।

चीन की भारत को घेरने की हिंद महासागर रणनीति -

हिंद महासागर में बढ़ती चीन की सक्रियता भारत सहित अन्य देशों के लिए चुनौती प्रस्तुत कर रही है। क्योंकि चीन समुद्र से गुजरने वाले सभी रास्तों को सामरिक रूप से सीमित कर रहा है, चीन ऊर्जा संबंधी हित एवं प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच बनाने का सतत रूप में हिंद महासागर में लगातार अपना विस्तारवादी नीति अपना रहा है। चीन के उद्देश्य इस प्रयास की प्रामाणिकता है कि चीन की उपयोग की आवश्यकता एवं चीन बाजार को प्रतिस्पर्धा में बने रखने के लिए चीनी रणनीति प्रशांत महासागर में ही नहीं, बल्कि हिंद महासागर में स्वेज नहर, फारस की खाड़ी एवं पनामा नहर आदि क्षेत्रों तक अपने हित पूर्ति के लिए कूटनीति का विस्तारवादी स्वरूप प्रस्तुत किया है।

हिंद महासागर में चीन भारत सहित अमेरिका ब्रिटेन एवं विकसित देशों को अपनी प्रतिस्पर्धा मान रहा है। जिसके लिए अपनी विस्तारवादी नीति के तहत स्टिंग ऑफ पर्स को वन बेल्ट वन रोड के उद्देश्य के तहत पूर्ति करने का प्रयास कर रहा है। इस कूटनीति में चीन अपनी अर्थव्यवस्था एवं सामरिक विकास का प्रभाव ने केवल भारत बल्कि हिंद महासागर के देशों सहित दुनिया भर पर इसका प्रभाव डालना चाहता है। चीन हिंद महासागर में भारत को प्रभावित करने केवल अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए विकासशील देशों में अपनी आर्थिक पहुँच सुनिश्चित कर उनके बाजार एवं आर्थिक संरचना को चीनी विस्तारवादी नीति के संरक्षण में लेना चाहता है।

चीन वैश्विक शक्तियों को यह दिखाना चाहता है कि वह स्वयं एक वैश्विक शक्ति है, जिसके लिए उसने निम्नलिखित आधारों पर कूटनीति पहल की है-

मोतियों की माला/स्टिंग ऑफ पर्स -

इस कूटनीति के माध्यम से चीन विकासशील देशों में उभरती हुई अर्थव्यवस्था एवं विकसित हो रहे देश को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने का एक कूटनीतिक कारण है। क्योंकि चीन विकासशील देशों में आर्थिक संपन्न अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जिसके लिए उसे व्यापारिक गतिविधियों को दुनिया भर के देशों तक पहुंचाने के लिए सरल और सस्ते मार्ग की जरूरत है। जिसका एकमात्र विकल्प महासागर है, क्योंकि महासागर आर्थिक गतिविधियों को मानव समुदाय के विकास में सदैव महत्वपूर्ण मध्य बनाते रहे हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चीन म्यांमार के कोको आईलैंड, बांग्लादेश के चटगांव, हंबनटोटा श्रीलंका, पाकिस्तान के ग्वादर पोर्ट एवं मालदीप में महासागरीय स्टेशनों का निर्माण कर इन देशों पर परोक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव स्थापित करना है।¹⁰

इन देशों से समझौता कर उक्त स्थान पर चीन आर्थिक गतिविधियों का झांसा देकर सामरिक शक्ति को मजबूत करने का एक विस्तारवादी कूटनीतिक उद्देश्य है, जिसके लिए चीन सर्वप्रथम उसे देश की अर्थव्यवस्थाओं पर वित्त बोझ डालकर चीनी नियंत्रण को प्रभावित करता है। साथ में चीन इन रिश्तों देश को ऋण देकर डेबिट प्रैप पॉलिसी का शिकार बन रहा है। वहीं दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं पर दबाव डालकर अपनी सामरिक रणनीति को भारत के खिलाफ उपयोग करने में अपने

दोहरे राजनीतिक मापदंडों को क्रियान्वित कर रहे हैं।

हंबनटोटा एवं कोको आईलैंड दोनों पर रडार तकनीक के माध्यम से अनेक बार चीन की गुप्त पनडुब्बी को चिह्नित किया गया है। वहीं ग्वादर पोर्ट से चीन भारत को पश्चिम तरफ से गिरने का एक आर्थिक सामरिक मनोविज्ञान दबाव बना रहा है। क्योंकि चीन अरब सागर में ग्वादर पोर्ट अपनी आर्थिक गतिविधियों के लिए पाकिस्तान के साथ समझौता किया, किंतु इसकी सुरक्षा और रक्षा के लिए चीनी सैन्य शक्ति को लगाया गया है। जोकि भारत पर आवश्यक दबाव बनाने का एक माध्यम है, क्योंकि चीन के द्वारा अपने उत्तर-पश्चिमी झिंजियांग उइगुर स्वायत्त क्षेत्र को ग्वादर पोर्ट से जोड़ने के लिए पाकिस्तान से कूटनीतिक प्रयास है। जोकि पाकिस्तान चीन आर्थिक गलियारे (CPEC) का आधार बना हुआ है। चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा ने केवल सामरिक दृष्टि से चुनौती पूर्ण है, बल्कि भारत की संप्रभुता के लिए भी चुनौती दे रहा है। क्योंकि पाकिस्तान व चीन को जोड़ने वाली सीमा क्षेत्र पकिस्तान अधिकृत जम्मू और काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। जिसे पाकिस्तान के द्वारा अवैध एवं अंतर्राष्ट्रीय कानून की अवहेलना करते हुए चीन को हस्तांतरित किया गया है। यह भारत की संप्रभुता का के खिलाफ है। जम्मू एवं काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है।

कृत्रिमिक द्वीपों का निर्माण -

चीन दक्षिण चीन सागर में समुद्री अंतर्राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन करते हुए कृत्रिमिक द्वीपों का निर्माण कर रहा है, जिन्हें मानव निर्मित द्वीपों से जाना जाता है।¹¹ चीन की विस्तारवादी नीति कि यह कूटनीति का काला रूप है। चीन का यह कूटनीतिक स्वरूप दक्षिण चीन सागर से लगे हुए देश की संप्रभुता के लिए खतरा होने के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियों को भी प्रभावित करने का प्रयास है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक गतिविधियों को बाधित करने का परिणाम प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से भारत की आर्थिक एवं सामरिक गतिविधियों में गतिविधियों को प्रभावित किया जा रहा है, क्योंकि भारत का कोरिया, जापान, आसियान देशों में अच्छा सम्बन्ध रहा है। वहीं दूसरी ओर भारत क्वाड जैसे देश अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का हिस्सा बनकर अंतर्राष्ट्रीय संप्रभुता एवं अंतर्राष्ट्रीय नियमों की अवहेलना का विरोध प्रभावी रूप से कर सकेगा क्वाड संगठन में चीन, ऑस्ट्रेलिया संयुक्त राष्ट्र अमेरिका एवं जापान सदस्य हैं। जो सभी सामरिक दृष्टिकोण हेतु कार्य कर रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय सीमा सुरक्षा पर विरोध -

चीन, 1962 के युद्ध के बाद भारत के खिलाफ से ही अंतर्राष्ट्रीय सीमा उल्लंघन को अपना राजनीतिक कूटनीतिक हथियार बनाते आ रहा है। चीन की विस्तारवादी नीति जहाँ शुरुआती दौर में भारत के साथ हिंदी चीनी भाई-भाई के आधार पर विकसित हुई, वहीं सांस्कृतिक आर्थिक विकास के कारण चीन ने भारत के साथ अपनी प्रतिस्पर्धा को एक प्रतिस्पर्धी देश की तरह उपयोग किया है। चीन ने जहाँ अरुणाचल प्रदेश में दक्षिण तिब्बत बताते हुए चीनी संप्रभुता व हिस्से को नक्शा में दिखाकर हमला किया, वहीं लद्दाख को उत्तरी चीनी क्षेत्र मानकर स्वयं के विस्तारवादी मानसिकता को आगे बढ़ाने का प्रयास जैसाकि हाल ही में डोकलाम विवाद एवं गलवान घाटी विवाद से स्पष्ट है। चीन अंतरराष्ट्रीय सीमा पर विवाद खड़ा कर भारत चीन संबंधों को न केवल प्रतिकूल कर रहा है, बल्कि चीन भारत पर कूटनीतिक एकाधिकार को दिखने का प्रयास कर रहा है।

चीन न केवल हिंद महासागर में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं पर भी साम्राज्यवादी विचारधारा की कूटनीति में तेजी से विकास कर भारत की सामरिक व आर्थिक रणनीति को चुनौती दे रहा है, क्योंकि 2009 में चीन के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ने चीन के मूलहितों को परिभाषित करते हुए एक 2011 में एक सफेद पत्र जारी किया। जिसमें चीन ने अपने राष्ट्रीय हितों को परिभाषित करते हुए मन की प्राकृतिक रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा ही

चीन का मूलहित है, जिसके लिए वह आर्थिक एवं सैनिक ताकतों का विस्तार कर एवं समय परिवर्तन में बदलते हुए परिदृश्य की प्राथमिकताओंको भी बदल रहा है।

चीन की कूटनीति के निम्नलिखित अन्य महत्वपूर्ण पहलू-

- 2018 के बाद चीन पीपुल्स लिबरेशन आर्मी की जगह चीनी नौसेना से सोमोलिया डाकू से सुरक्षा करने के बहाने समुद्री व्यापारिक मार्गों पर अपनी पहुंच बढ़ा रहा है।
- चीनी नौसेना ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान की नौसेना के साथ नौसैनिक अभ्यास कर रही है।

भारत और चीन की समारिक शक्ति का तुलनात्मक रूप¹²-

क्र.सं.	मनक	भारत	चीन
1	रक्षा बजट	\$71.6B	\$261B
2	नाभिकीय हथियार	150	320
3	हेलिकॉप्टर	722	911
4	हैलोज	23	281
5	एयर क्राफ्ट कैरिअर	1	2
6	विध्वंस	10	36
7	फाइटर	13	52
8	माइन वेपन	3	29

उक्त सारणी के आधार पर चीन भारत से हथियारों की तुलना में कहीं अधिक भूमिका में है। क्योंकि चीनी रक्षा बजट भारत के रक्षा बजट से तीन गुना अधिक है। नाभिकीय हथियार दोगुना है, हेलीकॉप्टर और एयरक्राफ्ट भारत और चीन के पास लगभग समान अनुपात में है, हेलोज भारत से कहीं अधिक चीन के पास हैं, वहीं दूसरी ओर 9 गुना माइन हथियार चीन के पास हैं।¹³

चीन को समुद्र में चुनौती -

हिंद महासागर की उपयोगिता मानव की आर्थिक गतिविधि एवं मानवीय समाज के सतत रूप से विकास में अत्यंत प्रासंगिकता है। जिसका प्रमुख कारण है यहाँ का प्राकृतिक रूप से समुद्री जल मार्ग एवं समुद्रीय जलसंधि हैं। जिसमें हार्मोज जलसंधि मलक्का जलसंधि, लोम्बुक जलसंधि, सुंडा स्ट्रेट आदि इन क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति सीमित और संकरे जलमार्गों के रूप में है, जहाँ चीनी नौसेना असफल रही है।¹⁴ क्योंकि गैर कानूनी गतिविधियों को इन जल संधियाँ पर आसानी से निषेध किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में वैश्विक विकसित देशों की पहुंच संस्थागत रूप से न केवल व्यापारिक गतिविधियों में बल्कि संबंधित देश की राजनीतिक गतिविधियों में भी अत्यधिक है, वहीं दूसरी ओर भारत की बढ़ती हुई आर्थिक एवं सामाजिक क्षमताओं को चीन एक चुनौती के रूप में स्वीकार कर रहा है, वहीं दूसरी ओर भारत ने सेशेल्स ऑस्ट्रेलिया मॉरीशस आदि देशों के साथ मिलकर हिंद महासागर के दक्षिणी भाग में चीन को घेरने का प्रयास किया जा

रहा है, साथ ही डिगोया गार्सिया पर संयुक्त राज्य अमेरिका की उपस्थिति चीन के लिए निर्णायक चुनौती है।

खुफिया तंत्र -

2003 में चीनी नौसेना की एक पनडुब्बी को हिंद महासागर में तकनीकी रडार पर देखा गया, 2014 में इसे पर देखा गया। 2016 में इसे ग्वादर पोर्ट के पास देखा गया। 2019 में एडमिरल सुनील लांबा ने कहा अभी चीन के 6-7 जहाज व पनडुब्बी हिंद महासागर में लगातार उपस्थिति बनाए हुए हैं।¹⁵

भारत और चीन की प्रतिस्पर्धा की स्थिति -

भारत और चीन विकासशील देशों की बड़ी जनसंख्या वाले देश होने के साथ-साथ बड़ी अर्थव्यवस्था एवं बड़े व्यापारिक बाजारों के देश हैं। जिसके लिए आवश्यक हो जाता है कि भारत और चीन दोनों मिलकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करें, जिसमें आपसी सहयोग और समझौता दोनों देशों की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एकरूपता को संगठित कर सकें, क्योंकि दोनों देश जहाँ विकसित देशों को चुनौती दे सकते हैं, वही दोनों देशों के बीच प्रतिस्पर्धा को समाधान स्वरूप में ले जाना नितांत आवश्यक है, क्योंकि दोनों देशों के ऐतिहासिक संबंधों को उन्हें समीक्षा की जाएगी और दोनों देशों के बीच विवाद और आपसी संघर्ष को सुलझाने के लिए संस्थागत रूप में संगठन का निर्माण हो, जिससे दोनों देशों के बीच उभरे वाले मुद्दों एवं चुनौतियों को तेजी के साथ समाधान से रूप में प्रस्तुत किया जा सके। क्योंकि वर्तमान सूचना प्रौद्योगिकी व तकनीक दौर पूर्ण रूप से आर्थिक गतिविधियों पर निर्भर है, जिसके लिए दुनिया भर की वैश्विक शक्तियाँ हिंद महासागर में अपनी पहुँच बना रही हैं।

यह प्रयास तभी संभव है, जब चीन अपनी विस्तार वाली साम्राज्यवादी नीति का त्याग करे, जो कि आसान नहीं है। जब चीन अपनी विस्तारवादी नीति को दक्षिण एशिया में भारत के विरुद्ध, इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण बी.आर.आई. प्रोजेक्ट के रूप में है। जिसके माध्यम से चीन दक्षिण एशिया में भारत को घेरने का प्रयास कर रहा है। भारत को इससे सावधान रहना होगा और भारत अपने सभी पड़ोसी देशों का सहयोग कर कॉन्फिडेंस जितना पड़ेगा, जिससे चीन के नापाक इरादों को रोका जा सके। भारत को चीन के हर प्रयास जोकि दक्षिण एशिया के देशों में चीन अपनी विस्तारवादी नीति से कर रहा है। उसे सावधान रहना होगा।

सन्दर्भ :

- इनाम, जफर, वर्ल्ड पावर्स इन साउथ एण्ड साउथ ईस्ट एशिया, स्टार्लिंग पब्लिशर्स नई दिल्ली 1972.
- कुमार, अजय, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सिद्धान्त एक परिचय, Pearson Publication Delhi. 2011.
- मल्लप्पा, अमरावती, चाईना, जापान, और इण्डिया इनके सम्बन्धों की समीक्षा, ए0बी0डी0 पब्लिकेशन, जयपुर 2004।
- बिस्वाला, तपन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध MACmillan Publishers India Ltd.k. Delhi, 2013.
- पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ टू पावर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रूस्जिशन, (IDSA) पेन्त्यागन सिक्वोरटी इंटरनेशनल प्रेस-न्यू दिल्ली 2010.
- प्रजापति विष्णु, साउथ एशिया, पावर और पॉलिटिक्स कॉमनवेल्थ पब्लिकेशन, दिल्ली (1998).
- रमेश त्रिवेदी, इण्डियाज रिलेशन विद हर नेबरस इशा बुकस पब्लिकेशन, दिल्ली 1100091 (2008)।
- शर्मा, राज प्रवेश, भारतीय विदेश नीति यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 22/47, 35, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 110002, 2009.

End Notes :

1. सिंह, रहीम, अंतरराष्ट्रीय संबंध, लेक्सिस-नेक्सिस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 250.

2. पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ दू पाँवर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रूसजिशन, IDSA पृ. 187.
3. वही पृ. 87.
4. पंत, पुष्पेश, जैन पाल, पंचौला राखी, अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 2014-15, पृ. 98.
5. वही, पृ. 112.
6. पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ दू पाँवर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रूसजिशन पृ. 171.
7. पंत, पुष्पेश, जैन पाल, पंचौला राखी, अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 2014-15, पृ. 67.
8. सिंह, रहीम, अंतरराष्ट्रीय संबंध, लेक्सिस-नेक्सस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 250.
9. सुरक्षा परिदृश्य, मेरठ Vol.3. No. 2 Aug 2011.
10. प्रजापति विष्णु, साउथ एशिया, पाँवर और पॉलिटिक्स कॉमनवेल्थ पब्लिकेशन, दिल्ली (1998), पृ. 76.
11. चीन ने स्ट्रेटली द्वीपसमूह के सात मानव निर्मित द्वीपों पर निर्माण किया जहां हवाई पट्टियों, जहाजों के ठहरने के लिए गोदी और सैन्य प्रणालियों की व्यवस्था है। *China_2015_08_06.pdf (mea.gov.in) date-09/08/2021.*
12. [https://www.naval-technology.com/features/india-vs-china-indian-and-chinese-pla-navies-compared/date-03-07-2021.](https://www.naval-technology.com/features/india-vs-china-indian-and-chinese-pla-navies-compared/date-03-07-2021)
13. त्रिवेदी रमेश, इण्डियाज रिलेशन विद हर नेबरस इशा बुक्स पब्लिकेशन, दिल्ली पृ. 234.
14. नूरानी, ए.जी., इंडियन चिन्स बाउंडरी प्रॉब्लम (1846-1947), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस-2011, नई दिल्ली, पृ. 234.
15. [https://www.aajtak.in/trending/photo/sipri-report-2020-says-pakistan-china-have-more-nuclearweapons-than-india-tstg-1084350-2020-06-15-1date-02-07-2021.](https://www.aajtak.in/trending/photo/sipri-report-2020-says-pakistan-china-have-more-nuclearweapons-than-india-tstg-1084350-2020-06-15-1date-02-07-2021)



भारतीय संस्कृति और विश्व मानवता का सिद्धांत

○ रेखा यादव¹

संक्षिप्ति :

भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुंबकम्' के विचार पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है। यह सिद्धांत मानवता को व्यक्तित्व, सह-अस्तित्व और पारस्परिक सम्मान के दृष्टिकोण से देखता है। भारतीय दर्शन में यह माना जाता है कि सभी जीवित प्राणियों में एक दिव्य सार है जोकि जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रों की सीमाओं से परे है और मनुष्य की एकता का निर्माण करती है। मानवता के इस सार्वभौमिक सिद्धांत की जड़ें भारतीय संस्कृति में हैं जो न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामाजिक और वैश्विक स्तर पर भी शांति, प्रेम और करुणा को बढ़ावा देती हैं। भारतीय संस्कृति का यह दृष्टिकोण आज के वैश्विक शांति के संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक है, जहाँ एकता और सद्भाव की आवश्यकता अधिक है।

बीज शब्द: भारतीय संस्कृति, विश्व मानवता, धरोहर, अभिव्यक्ति, समृद्ध, आधुनिक, सह-अस्तित्व।

हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति समूचे विश्व की संस्कृतियों में सर्वश्रेष्ठ और समृद्ध संस्कृति है। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता वाला देश है। भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व में जैसे शिष्टाचार, संस्कार, सभ्य संवाद, धार्मिक संस्कार, मान्यताएँ और मूल्य आदि हैं; जबकि हर एक मनुष्य की जीवन शैली आधुनिक हो रही है किन्तु भारतीय लोग आज भी अपनी परंपरा और मूल्यों को बनाए हुए हैं। विभिन्न संस्कृतियों एवं परंपराओं के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने एक अनोखा देश 'भारत' बनाया है। यह संस्कृति ज्ञानमय है और युक्तियुक्त कर्म करने की प्रेरणा देती है। ये वो संस्कृति है, जो तथागत गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, संत कबीर, संत रविदास, संत गुरुनानक, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, जोतिबा फूले, महात्मा गाँधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि जैसी महान विभूतियों की करुणामयी शिक्षाओं पर आधारित है, जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को मानवता का संदेश दिया है।

भारतीय संस्कृति मनुष्य के विचारों एवं व्यवहारों के प्रतिमान को इंगित करती है। इसके अंतर्गत मूल्य

1. शोधार्थी, पी-एच.डी., हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
rekhasinghbhartiya@gmail.com

विश्वास, आचार-विचार, प्रतिमान और संगठन आदि भी शामिल हैं। संस्कृति के यह तत्व एक ही पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रक्रियाओं द्वारा हस्तांतरित किए जाते हैं। इसके फलस्वरूप सामूहिक जीवन की समस्त उपलब्धियों को ही सम्मिलित रूप से संस्कृति कहा जाता है।¹ समूह की भौतिक उपलब्धियों को जिसमें कला, संगीत, साहित्य, दर्शन, धर्म एवं विज्ञान के सिद्धांत शामिल हैं, विशिष्ट संस्कृति कहा जाता है। भारत देश की संस्कृति की व्याख्या करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि “संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किंतु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में वह सभ्यता से एक भिन्न गुण है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है। संस्कृति वह गुण है जो उसमें व्याप्त है।”²

सभ्यता और संस्कृति

सभ्यता समाज का एक संगठित पक्ष है, जोकि संस्कृति की दशाओं का निर्माण करती है। संस्कृति इसी सभ्यता रूपी संगठन की उपज है। जो भाषा, कला, दर्शन, धर्म, सामाजिक परम्पराओं, प्रथाओं, आर्थिक संगठन एवं राजनीतिक संस्थाओं में अभिव्यक्त होता है। संस्कृति एक व्यापक शब्द है, जिसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं,

1. व्यवहार के प्रतिमान एवं तरीके।
2. उत्पादन की तकनीक एवं प्रौद्योगिकी, सामाजिक संगठन, कला, विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य सेवाओं के प्रोत्साहन के लिए बनी संस्थाएँ।
3. बुनियादी मूल्यों, विश्वासों, विश्व दृष्टिकोण आदि जिनकी अभिव्यक्ति कला, संगीत, साहित्य, दर्शन एवं धर्म के माध्यम से होती है।³

सभ्यता शरीर है, तो संस्कृति उसकी आत्मा। सभ्यता जीवन का भौतिक स्वरूप है। संस्कृति का संबंध जीवन के मूल्यों से है जो अभिव्यक्ति, व्यवहार, व्यक्तित्व और विशिष्टता तथा मानवता को प्रकट करते हैं। जीवन के इन मूल्यों के अंतर्गत भक्ति, आस्था, दया, सेवा, एकता, आदर, कला तथा दर्शन के प्रति प्रेम आदि आते हैं।⁴ भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने प्रसिद्ध साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर की प्रसिद्ध पुस्तक ‘संस्कृति के चार अध्याय’ की प्रस्तावना में लिखा है कि “संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गई हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है। संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उनसे उत्पन्न अवस्था है। यह मन आचार अथवा रुचियों की परिष्कृति या शुद्धि है।”⁵ कृष्णचंद्र, सभ्यता और संस्कृति पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि, “साधारणः हम सभ्यता और संस्कृति की चर्चा एक साथ करते हैं। लेकिन दोनों में व्यापक अंतर है। एक मनुष्य या एक समाज भौतिक दृष्टि से सभ्य होता हुआ सांस्कृतिक दृष्टि से हीन हो सकता है। हमारे भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ऋषि, मुनि और जनसाधारण का रहन-सहन बहुत सादा था। किंतु उनमें तत्व चिंतन, दया और मानवता की भावनाएँ बहुत ऊँची थी। आज हम हवाई जहाजों पर सवारी करने वाले हम लोग अणु बम गिराकर लाखों निरपराध शिशुओं, नारियों और वृद्धों की हत्या करने में संकोच नहीं करते हैं। हमारे पूर्वज युद्ध करते हुए भी किसी बालक, नारी या निशस्त्र पर वार नहीं करते थे।”⁶

किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं। इस संस्कृति का सदियों तक विकास होता रहता है और उसके बाद वह निश्चित रूप धारण करती है। उसका यह रूप प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए और उस पर विजय पाने की चेष्टा में विकसित होता रहता है। संभवतः पहले मनुष्य पशुओं की तरह असभ्य और संस्कृति विहीन प्राणी था। अपनी विशेषताओं के कारण मानव ने अपने

स्वभाव में धीरे-धीरे परिवर्तन करना शुरू किया। साथ-ही-साथ पाशविक दुर्गुणों को छोड़कर मानवीय गुणों को धारण करना शुरू किया। एक समाज में रहना, एक दूसरे के सुख-दुःख में सहानुभूति, एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता आदि को अनुभव किया। आत्म-परिमार्जन और आत्म विस्तार ही संस्कृति का विकास करते हैं।⁷ पुरुषोत्तम अग्रवाल भारतीय संस्कृति की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, “संस्कृति का मतलब सांस्कृतिक कार्यक्रम नहीं होता। संस्कृति जिन मूल्यों, मर्यादाओं को समाज में अनुकरणीय बनाती है, वे सामाजिक सत्ता, सामाजिक आत्म-बोध और उसके विकास (अथवा पतन) की दशा-दिशा को सूचित करते हैं।”⁸

संस्कृति को मानव की श्रेष्ठतम धरोहर समझना चाहिए। इसकी सहायता से मनुष्य पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है, अर्थात् वह प्रगति की ओर उन्मुख होता रहता है। यदि किसी मनुष्य से उसकी संस्कृति अथवा सांस्कृतिक विरासत को छीन लिया जाए तो भला उसके पास बाकी बचा ही क्या? उस समय वह अन्य पशुओं अथवा जानवरों जैसा प्राणी हो जाएगा। मनुष्य और मनुष्य के बीच जो सबसे बड़ा अंतर पाया जाता है, वह संस्कृति का ही पाया जाता है। सारे संसार में केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो अपनी विशेषताओं की वजह से आज तक अपनी संस्कृति अथवा सांस्कृतिक विरासत का निर्माण कर पाया है।⁹ इसी बात का समर्थन करते हुए विष्णु प्रभाकर कहते हैं कि,

संस्कृति की नाना व्यक्तियों ने नाना रूप में व्याख्या की है। यदि हम भाषा और शब्दों से अतीत के अर्थ की खोज करें तो दो तत्व समान दिखाई पड़ेंगे जैसे-संस्कार और सृजन की प्रतिभा। वह व्यक्ति की संस्कृति ही है जो उसकी आत्मा को मांझकर दूसरों के उपकार के एवज उसे नम्र और विनीत बनाती है। जितना व्यक्ति मन, कर्म, वचन से दूसरों के प्रति उपकार की भावनाओं और विचारों को प्रधानता देगा, उसी अनुपात से समाज में उसका सांस्कृतिक महत्व बढ़ेगा। दूसरी और सृजन की प्रतिभा है। मनुष्य में यह प्रतिभा न होती तो वह पशुता की स्थिति से ऊपर न उठ पाता और न मनुष्य कहला पाता। मनुष्य को सभ्य बनाने में संस्कृति ही महत्वपूर्ण कारण बनती है।¹⁰

आदि काल में मानव की उत्पत्ति कहाँ हुई और वह भारत में कब आया? इस संबंध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। आर्य भारत में ही उत्पन्न हुए अथवा कहीं और से भारत में आए हैं। इस संबंध में व्यापक मतभेद है। कुछ भी हो अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि मानव आदि सृष्टि में जंगली था। आदिमानव पहले पशुओं की तरह नंगा रहते थे। पत्थरों से बने औजारों द्वारा जंगली पशुओं का शिकार करके वह अपनी भूख मिटाने का प्रयास करता था। आदिमानव जंगलों की गुफाओं में रहता था। धीरे-धीरे वह पत्थरों के बढिया औजार बनाना, घर बनाना, पशुओं का पालन और खेती करना सीख गया। वह आग का प्रयोग करने लगा और मिट्टी के बर्तन बनाने लगा। मिट्टी के बर्तन भट्टियों में पकाकर रंग-बिरंगे बनाए जाने लगे। इस युग को विभिन्न विद्वानों एवं इतिहासकारों ने ‘ऐतिहासिक पाषाण काल’ कहा है। संस्कृति एवं विकास में कला का कितना महत्वपूर्ण योगदान है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए सच्चिदानन्द सिन्हा कहते हैं कि,

कला साहित्य का लोक निर्माण के कामों में संस्कृति ने लोगों के जीवन को साधन संपन्न और आनंददाई बनाने की भूमिका निभाई है। समाज संरचना के क्षेत्र में इसकी भूमिका दो दिशाओं में दिखाई देती है। एक तरफ इसने सामूहिक जीवन को जोड़ कर अनेक तरह की प्राकृतिक एवं आंतरिक आपदाओं से बचाया है। दूसरी तरफ टकराहट पैदा की और विनाश के ऐसे उपक्रम भी प्रदान किए जिसे संसार संहार के कगार पर पहुँच गया है। गंभीरता से विचार करने पर सामाजिक संबंधों में बहुत कुछ है, जो खतरनाक और त्याज्य लगता है। लेकिन सामूहिक जीव के रूप में लोगों का भावनात्मक लगाव इन संबंधों से इतना गहरा है कि विवेक का वश इससे ऊपर नहीं चलता था। यह एक त्रासद

स्थिति है। मनुष्य प्राकृतिक चयन की दौड़ में सफल इसलिए होता रहा क्योंकि आनुवांशिकी पर निर्भरता की बजाए इसने सांस्कृतिक उपकरणों का सहारा लिया। अगर अब वे उपकरण इसके भावनात्मक आवेगों से निरस्त हो जाते हैं तो मनुष्य जीवन के कठिन संघर्ष में कवचविहीन हो अपना अस्तित्व मिटा देगा।¹¹

कुछ समय बाद मानव ने और अधिक उन्नति की और वह धातु का प्रयोग करने लगा। गंगा, यमुना के प्रदेशों से प्राप्त तांबे और कांसे के उपकरणों से यह स्पष्ट होता है कि कुछ समय बाद उसे लोहे का ज्ञान भी प्राप्त हो गया। पशुपालन कृषि और धातु के प्रयोग ने उसके जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया। अब मानव को पेट भरने के लिए दूर-दूर जाने की आवश्यकता नहीं थी। एक ही स्थान पर स्थिर रहकर और घर बनाकर खेती करने लगा। खेती करने के लिए ऐसा करना आवश्यक ही था। खेती के साथ-साथ मानव एक ग्राम (गाँव) बनाकर रहने लगा। ग्राम के संगठन में श्रम का विभाजन भी हुआ और किसी को मुखिया बनाने की प्रवृत्ति भी काम में आई।¹² सच्चिदानन्द सिन्हा पुनः कहते हैं कि, किसी ने किसी तरह के समूह में तो मनुष्य के अर्धमानव आदिम पूर्वज भी रहते होंगे, लेकिन जैसा कि नृशास्त्रियों का मानना है, अनुमानित पचास लाख वर्ष पूर्व मानवों के पूर्वज विलुप्त हो रहे वृक्षों की सुरक्षा छोड़ उन प्रदेशों में रहने लगे जहाँ पर वृक्ष भी आस-पास थे। दूर-दूर तक घास के मैदान फैले थे। तब भोजन के लिए शिकार और जीव भक्षी बड़े जानवरों से अपनी सुरक्षा करते थे। मानव को दोनों ही दृष्टियों से सहयोग पर आधारित, व्यवस्थित समुदायों में रहने की आवश्यकता महसूस हुई होगी। उनके जीवन का सबसे बड़ा आधार आपसी सहयोग ही रहा होगा। इसी हिसाब से उन्होंने अपना समाज विकसित किया।¹³ अतः समाज में वर्ग तथा वर्ण भेद होने लगा। इसी समाज की व्यवस्था के लिए उसे उपद्रव से बचाने के लिए मानव ने कुछ धार्मिक और नैतिक मूल्यों की कल्पना भी की। प्रकृति की अद्भुत रहस्यमई विभूतियों के प्रति आस्था श्रद्धा उत्पन्न हुई। इस तरह भारत की संस्कृति का जन्म हुआ।¹⁴

भारतीय संस्कृति

उर्दू के प्रसिद्ध कवि इकबाल ने अपने एक प्रसिद्ध उर्दू गीत में कहा है कि यूनान, मिश्र और रोम आदि की सभ्यताएँ संसार से मिट गईं परंतु भारत का अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ। यद्यपि सदियों से कालचक्र हमारा शत्रु रहा है। वास्तव में यह इतिहास की एक बड़ी पहेली ही है। यूनान की प्राचीन विशेषताएँ नष्ट हो गईं। किसी समय यूरोप के भाग्य विधाता रोम को भी आज कोई नहीं पूछता। अमेरिका की सभ्यता और शक्ति का केंद्र रहा मिश्र, आज अपने पिरामिडों के रूप में ही बचा हुआ है परंतु हमारा भारत युग युगांतर के परिवर्तनों, क्रांतियों और तूफानों से निकलकर भी अपनी संस्कृति की परंपरा को कायम रखे हुए है। असल में भारत की संस्कृति का प्रवाह नदी गंगा के प्रवाह की भांति रहा है। दाएँ से बाएँ जो नाले आए हैं, वह गंगा में विलीन हो गए। हमारे भारत में शक, कुषाण, तुर्क अफगान, मुगल और अंग्रेज आदि आए। उन्होंने यहाँ की सभ्यता व संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न भी किया। परंतु वह स्वयं नष्ट हो गए, लेकिन भारत की संस्कृति आज भी फल-फूल रही है, अर्थात् भारतीय संस्कृति ने इन सभी संस्कृतियों को अपने में विलीन कर लिया है।¹⁵ इसी संदर्भ में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी कहते हैं कि,

संस्कृतियाँ लगातार बदलती हैं। समाज लगातार बदलते हैं और साहित्य लगातार बदलता है। इसलिए मानव संस्कृति की बात करते हुए हम आरम्भ यहाँ से भी कर सकते हैं कि मानव पहला आत्मचेतन प्राणी है। ऐसा प्राणी जो पूछ सकता है कि मैं कौन हूँ? मैं कहाँ जा रहा हूँ? ऐसा प्राणी जो अपनी मृत्यु की पूर्व कल्पना कर सकता है और इसलिए अमरत्व का प्रयास करता है जो इस प्रकार इतिहास का श्रेष्ठा बन जाता है, जैविक स्तर पर अपने विकास को प्रभावित करने का सामर्थ्य पा लेता है। संस्कृति का उद्भव स्रोत बन जाता है। स्पष्ट है

कि ऐसा मानव प्राणी न केवल संस्कृति को बदलने में समर्थ है, बल्कि लगातार उसे बदलना चाहता है। परिवर्तन की कामना, योग्यता और उसका संकल्प उसकी आत्मा का सहज विस्तार है।¹⁶

भारत की संस्कृति का जन्म एवं उसका विकास भारत की विशिष्ट और भौगोलिक परिस्थितियों में हुआ। भारत की भौगोलिक परिस्थितियाँ अद्भुत हैं। उत्तर में हिमालय की गगनचुंबी शिखर शृंखलाएँ हैं। यह शृंखलाएँ 1600 मील तक फैली हैं। भारत की ये महान पर्वत शृंखलाएँ प्राचीर का काम करती हैं। दूसरी ओर विशाल सुदृढ़ एवं गहरे समुद्र हैं। जोकि भारत की दक्षिण और पश्चिम दिशा में रक्षा करते हैं। इस प्राकृतिक दुर्ग से सुरक्षित भारत की जो अनेकों नदियाँ भारत के ऋषि-मुनियों और महापुरुषों को नई स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करती आई हैं। उनसे भारतीय संस्कृति फली फूली है।¹⁷

भारत की संस्कृति विश्व के अन्य देशों की संस्कृति से इस बात में महान है कि जहाँ अन्य राष्ट्रों में मनुष्य की आर्थिक उन्नति एवं भौतिक प्रगति को प्रथम स्थान दिया जाता है वहीं भारत देश में मानव की आध्यात्मिक उन्नति एवं जीवन मूल्यों के विकास पर जोर दिया जाता है। यहाँ की संस्कृति में परोपकार, दया, क्षमा और उदारता जैसे तत्व ही प्रमुख रहे हैं। ये विभिन्न तत्व ही भारत की संस्कृति की विशेषता हैं। यहाँ हम कुछ ऐसे ही सांस्कृतिक मूल्यों एवं तत्वों को समझने का प्रयत्न करेंगे। जैसे- “महापुरुषों के सद-वचन, जीवन का अनुसंधान, सत्यमेव जयते, अहिंसा और प्रेम की शक्ति, क्रोध निवारण, सुखी पारिवारिक जीवन, नारी का गौरवपूर्ण स्थान, मनुष्यता, महानता के चिन्ह, बिना सत्संग विवेक न होई, चरित्र, मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी, सच्ची कमाई, सबसे मित्रता, अंधविश्वास से दूर रहें, पुरुषार्थ से ही सफलता, शिक्षा कैसी हो, आध्यात्मिक चिंतन धारा, त्याग की परंपरा, सदाचरण की शिक्षा, ईश्वर, प्रेम, उपासना, अनेकता में एकता और विश्व मानवता का सिद्धांत आदि हमारे भारत में समाहित हैं।”¹⁸ भारतीय संस्कृति की विशेषताओं की चर्चा करते हुए विमलेश कान्ति वर्मा कहते हैं कि,

संस्कृति का अर्थग्रहण हम अपने जीवन मूल्यों के रूप में करते हैं। लेकिन यह भी सच है कि संस्कृति, मूल्य अथवा मान्यता से अधिक आंतरिक आस्था पर निर्भर है। भारतीय संस्कृति में कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों को महत्व दिया गया है। भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। संसार में जो भी सत्य और सुंदर है, उसे ग्रहण कर अपना हिस्सा बना लेना और आगे बढ़ते जाना। यही कारण है कि विश्व की अनेक महान संस्कृतियाँ लुप्त हो गई। अब केवल उनके अवशेष ही मिलते हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति निरंतर प्रवहमान है। गंगा की निर्मल धारा की तरह जिसमें अनेक धाराएँ मिलकर एक हो जाती हैं। भारतीय संस्कृति का अर्थ है- सामान्य, मेल, सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग, करुणा आदि जीवन के शाश्वत मूल्य इसमें समाहित हैं।¹⁹

अर्थात् भारतीय संस्कृति अपने अंदर अनेक ऐसी विशेषताओं को समेटे हुए है, जिन्होंने इसको विपरीत परिस्थितियों में लड़ने की क्षमता प्रदान करके इसको अमरता का वरदान दिया, जिसके कारण यह सदियों से चली आ रही है। ऐसी ही विशेषताओं में से एक ‘विश्व मानवता का सिद्धांत’ है, जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार माना है।

विश्व मानवता का सिद्धांत

सहस्र वर्षों से भारतीय संस्कृति विविधता में एकता का प्रतीक रही है। प्राचीन काल में भारतीय समाज को विभिन्न प्रकार की जातियों या वर्णों में बांटा गया था। भिन्न-भिन्न वर्णों के होते हुए भी यहाँ के लोग आपस में लड़ते झगड़ते नहीं थे। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक मनुष्य के अंतर मन में वैसे ही आत्मशक्ति या आत्म ज्योति निवास करती है। जैसे कि दूसरे वर्ण या जाति के मनुष्य के अंदर निवास करती है। प्राचीन काल का

आध्यात्मिक माहौल आज के वातावरण की अपेक्षा काफी ऊँचा था। ऋषि-मुनियों ने गांव-गांव में यह ज्ञान फैला दिया था कि गरीब हो या अमीर, ब्राह्मण हो या शूद्र, सभी का परमपिता परमात्मा अथवा ईश्वर एक ही है। इस आध्यात्मिक ज्ञान ने भिन्न वर्णों वाले भारतीयों को आपस में बांधे रखा था।²⁰ इसी संबंध में पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि, “सामाजिक न्याय और समता की दिशा में परिवर्तन का संकल्प तभी एक भौतिक शक्ति का रूप लेता है, जब उसका वास्ता मनुष्य की भावनात्मक समग्रता से हो, केवल तर्क-बुद्धि से नहीं। हमारी सांस्कृतिक की पहचान और परंपरा का बोध इसी भावनात्मक समग्रता के सामाजिक पहलू को व्याप्त करता है। इसीलिए न्यायकारी तथा समताप्रेमी जन पहचान और परंपरा की उपेक्षा नहीं कर सकते।”²¹

इसके अतिरिक्त अनेक वर्षों से भारत विविध जाति, धर्म, भाषा, वेश-भूषा, रीति-रिवाज और परंपराओं की भूमि रहा है। अनेक प्रकार के संस्कार और धर्मों को मानने वाले लोग यहाँ रहते हैं। लेकिन फिर भी इस महान देश में विविधताओं के अंदर भी एकता का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है और यह यहाँ की संस्कृति की शान है। भारतीयों के भाव और विचार चाहे कितने ही अलग क्यों न हो? लेकिन मन से सभी एक हैं। सबके जीवन का लक्ष्य भी एक ही है। वह लक्ष्य है- राष्ट्र में खुशहाली और सुख शांति की स्थापना करना। हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन और पारसी आदि अनेक मत एवं संप्रदायों के लोग भारत में रहते हैं। सभी इस भारत भूमि को अपना ही देश, अपना ही घर समझते हैं। अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति के गौरव और आदर्श का प्रतीक मानी जाती है। यहाँ की धरती सभी वर्णों, जातियों, धर्मों के लिए एक समान है। यहाँ का आकाश, यहाँ की नदियाँ और यहाँ के वृक्ष सभी के लिए एक जैसे हैं। ये सभी किसी के प्रति भेदभाव नहीं रखते और ना किसी को गैर समझते हैं। भारत के सभी धर्म ग्रंथ सत्यता, अहिंसा, सदाचार, प्रेम और एकता का ही उपदेश देते हैं, जोकि भारतीय संस्कृति का आधार है।²² संस्कृति और भाषा के संबंधों पर प्रकाश डालते हुए विमलेश कान्ति वर्मा कहते हैं कि-

संस्कृति और भाषा का पारस्परिक संबंध है। किसी भी देश की संस्कृति की विकास यात्रा का मापन उसकी भाषा की विकास यात्रा द्वारा किया जा सकता है। हर देश व समाज की संस्कृति किसी न किसी भाषा या भाषाओं द्वारा अपने को अभिव्यक्त करती है। संस्कृति एक व्यापक प्रत्यय है और संदर्भ के अनुसार इसमें अर्थ की परिवर्तनशीलता दिखाई पड़ती है। किसी भी संस्कृति के विकास और संरक्षण के लिए उस भाषा का विकास और संरक्षण आवश्यक है, जिसमें वह संस्कृति अपनी अभिव्यक्ति पा रही है। यदि हम विश्व इतिहास और विश्व संस्कृति पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि आज सम्पूर्ण विश्व संस्कृति या तो पुरावशेषों में संरक्षित है, या भाषा में। पुरावशेषों में संरक्षित संस्कृति काल की मार से धीरे-धीरे संरक्षित हो रही है, जबकि भाषा में संरक्षित काल के आयामों को पार कर आज भी बनी हुई है।²³

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की भावना भारतीय संस्कृति की बड़ी प्राचीन एवं कल्याणकारी भावना है। हमारे देश के प्राचीन ऋषि-मुनियों का दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक और महान था। वे केवल अपने समाज और राष्ट्र को ही नहीं बल्कि पूरी धरती को अपना मानकर चलते थे। पूरी बसुंधा या पृथ्वी ही अपना परिवार है। ऐसी उनकी धारणा थी। इस वैश्विक मानवीय सिद्धांत का प्रचार ऋषियों ने वेदों और उपनिषदों के माध्यम से किया। जब मनुष्य उदारचित्त धारण करके पूरी वसुंधरा या पृथ्वी को अपना कुटुम्ब या घर मानने लगता है। उसी समय उसके मन से घृणा, द्वेष, दुश्मनी और ऊँच-नीच के सारे भेदभाव समाप्त हो जाते हैं। यह मेरा, यह तेरा, इस प्रकार का विचार छोटे हृदय वाले व्यक्ति ही किया करते हैं। उदार हृदय वाले व्यक्ति के लिए तो पूरी धरती ही अपना परिवार होता है।

यथा अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥²⁴

एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जो चीज जोड़े रखती है, वह उदारता की भावना या दूसरों को अपना समझने की भावना ही है। जब एक मनुष्य किसी को अपना समझ कर चलता है। तभी वह मानसिक तौर पर उस से जुड़ता है। यही हमारी मानवीय एकता का रहस्य है। मनुष्य को मनुष्य से दूर या अलग रखने वाली जो चीजें हैं, वे इस प्रकार हैं -

- धर्म और मजहबों की दीवारें
- जातिभेद
- राष्ट्र-भेद
- रंगभेद और भाषा भेद आदि।²⁵

इस तरह की दीवारें तब पैदा होती हैं, जब हम मनुष्य के उस मूल स्वरूप या उसके आत्मस्वरूप की ओर नहीं देखते हैं। मनुष्य मूल रूप में आत्मा-शक्ति है। उसका अपना कोई स्थूल, आकार, शरीर, भाषा और अंग अलग नहीं है। संसार के सभी मनुष्यों की आत्माएँ ईश्वर के एक ही परमधाम से आई हैं। शांति, प्रेम, अहिंसा और सद्भावना ही आत्मा के धर्म हैं। इससे भिन्न कुछ भी समझना अज्ञानता ही है। भारत में रहने वाले विभिन्न वर्ण, धर्म, रंग, भाषा और वेशभूषा के लोगों की तुलना एक सुंदर गुलदस्ते के विभिन्न आकार रूप रंग एवं सुगंध वाले फूलों से की जा सकती है। हमारा भारतवर्ष ऐसा ही प्यारा गुलदस्ता है, जिसमें विभिन्न बोलियों, रीति रिवाज एवं वेशभूषा वाले लोग रहते हैं। इन सबकी आपसी एकता के कारण विश्व रूपी रंगमंच पर हमारा भारत देश बड़ा ही खूबसूरत दिखाई देता है। हमारी राष्ट्रीय एकता ही हमारी मजबूती का आधार है, हमारी शक्ति है और यही हमारे देश की सबसे बड़ी पहचान है। भारतवर्ष का हृदय इतना विशाल है कि इसके अंदर विश्व समुदाय के सभी प्राणियों को अपने अंदर समा लेने की क्षमता है।²⁶

निष्कर्ष

अंत में हम कह सकते हैं कि भारत देश और यहाँ की संस्कृति अनेक धर्मों को और उनकी शिक्षाओं को न केवल अपने में संजोय हुए है, अपितु हमारे देश की संस्कृति ने किसी भी धर्म को श्रेष्ठ या निम्न नहीं माना है। भारतीय संस्कृति यथार्थ के बहुआयामी पक्ष को स्वीकार करती हैं। हमारे देश भारत की महान संस्कृति दृष्टिकोणों, व्यवहारों, प्रथाओं एवं संस्थाओं की विविधता का स्वागत करती है। यह एकरूपता के विस्तार के लिए विविधता के दमन की कोशिश नहीं करती हैं। भारतीय संस्कृति का आदर्श-वाक्य 'अनेकता में एकता' है। हमारे देश की महान संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव रखने वाली संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ने न केवल भारत को अपितु समूची धरा को सदैव एक कुटुंब (परिवार) माना है, जबकि अन्य देशों ने भारत को केवल बाजार माना है। लेकिन भारतीय संस्कृति और इसमें रचे बसे लोग इतने उदार हैं कि हम सभी भारतीयों ने सदैव अन्य देशों की संस्कृतियों का दोनों बाहें फैलाकर स्वागत किया है।

आज से हजारों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर विभिन्न वर्णों, जातियों और धर्मों के लोग बड़े ही प्रेम एकता और सद्भाव के साथ यहां रहते थे। आज फिर से भारत को वैसा ही शक्तिशाली देश बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए जरूरी है कि यहाँ रहने वाले सभी धर्मों, जातियों, के व्यक्तियों का हृदय अत्यंत उदार हो। साथ ही साथ उनके अंदर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना होनी चाहिए। हमें यह भ्रम तोड़ना होगा कि भारत किसी एक धर्म विशेष के लोगों का है। वह जितना हिंदुओं का है उतना ही मुसलमानों, ईसाई, बौद्ध और पारसी धर्म के लोगों का भी

है। यदि भारतीय संस्कृति में एकता की विशेषताएँ न होती तो इस देश की सभ्यता और संस्कृति दुनिया के प्राचीन संस्कृति की तरह ही टूट कर बिखर जाती हैं। हमारे देश की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता को जब भी नष्ट करने का प्रयास किया गया है। हमारे देश के निवासियों ने बड़े ही धैर्य, संयम और समझदारी से काम लेकर उसके खतरे को टाला है। यह सभी भारतियों का नैतिक कर्तव्य है कि भविष्य में जब भी हमारी राष्ट्रीय एकता के सम्मुख किसी भी प्रकार का संकट एवं खतरा उत्पन्न होगा। तब हमारे देश के सभी देशवासियों को एक साथ मिलकर उन सभी खतरों का डटकर मुकाबला करना होगा और अपनी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करनी होगी।

संदर्भ :

1. शर्मा, अमित कुमार, भारतीय संस्कृति का स्वरूप, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006. पृ. 19
2. दिनकर, रामधारी सिंह, हमारी सांस्कृतिक एकता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2019, पृ. 13
3. शर्मा, अमित कुमार, भारतीय संस्कृति का स्वरूप, कौटिल्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 19-20
4. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति : भारतीय संस्कृति का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास, सूर्यभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 6
5. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ. 11
6. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति: भारतीय संस्कृति का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास, सूर्यभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 6
7. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति : भारतीय संस्कृति का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास, सूर्यभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 9
8. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 29
9. शर्मा, डॉ. पवित्र कुमार, भारतीय संस्कृति, कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 7
10. प्रभाकर, विष्णु, संस्कृति क्या है?, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 1
11. सिन्हा, सच्चिदानन्द, संस्कृति और समाजवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 73
12. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति: भारतीय संस्कृति का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास, सूर्यभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 10
13. सिन्हा, सच्चिदानन्द, संस्कृति और समाजवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 64
14. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति: भारतीय संस्कृति का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास, सूर्यभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 10
15. पूर्वोक्त, पृ. 7
16. 'अज्ञेय', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, साहित्य संस्कृति और समाज परिवर्तन कि प्रक्रिया, (सम्पादन) कन्हैयालाल नन्दन, हिन्दी समय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) भारत, ऑनलाइन शोध पत्रिका, www.hindisamay.com/content/2006/1अज्ञेय-निबंध-साहित्य-संस्कृति-और-समाज-परिवर्तन-की-प्रक्रिया.csp
17. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति: भारतीय संस्कृति का परिचय एवं संक्षिप्त इतिहास, सूर्यभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. सं. 8
18. शर्मा, डॉ. पवित्र कुमार, भारतीय संस्कृति, कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 207-208
19. वर्मा, विमलेश कान्ति, भाषा साहित्य और संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2009, पृ. 383

20. शर्मा, डॉ. पवित्र कुमार, भारतीय संस्कृति, कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 189
21. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 37.
22. शर्मा, डॉ. पवित्र कुमार, भारतीय संस्कृति, कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 115
23. वर्मा, विमलेश कान्ति, भाषा साहित्य और संस्कृति, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2009, पृ. 383
24. महोपनिषद्, अध्याय 4, श्लोक. 71
25. शर्मा, डॉ. पवित्र कुमार, भारतीय संस्कृति, कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 203-204
26. पूर्वोक्त, पृ. 204



सामाजिक संरचना का संविधान : याज्ञवल्क्यस्मृति

- सुबोधकांत मिश्र¹
- श्वेता तिवारी²

संक्षिप्ति

याज्ञवल्क्यस्मृति, मनुस्मृति के बाद सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इस ग्रंथ का नाम वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य के नाम पर रखा गया है। हो सकता है कि इस ग्रंथ का श्रेय उन्हें सम्मान के तौर पर दिया गया हो, जैसा कि हिंदू परंपराओं में प्रचलित है। भागवत में कहा गया है कि याज्ञवल्क्य न केवल एक महान योगी, परमज्ञानी, धर्मात्मा हैं, बल्कि अध्यात्मवेशव भी हैं। पुराणों में उन्हें ब्रह्मा का अवतार कहा गया है। वायु पुराण के अनुसार, वे प्रथम महायुग में चतुर्मुख के शरीर से उत्पन्न हुए थे। विष्णु पुराण में भी कहा गया है कि वे ब्रह्मरथ नामक ऋषि के पुत्र थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें गुरु महर्षि वैशम्पायन से वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ था।

बीज शब्द : अध्यात्मवेशव, स्मृतिवाक्य, वास्तुशुद्धि, अशौच, स्त्रीधर्म, राजधर्म।

मनुस्मृति के बाद याज्ञवल्क्यस्मृति सबसे महत्वपूर्ण कृति है। इस पाठ का नाम वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य के नाम पर रखा गया है। जैसा कि हिंदू परंपराओं में प्रचलित है, इस पाठ का श्रेय उनके सम्मान में दिया गया होगा। भागवत कहते हैं कि याज्ञवल्क्य न केवल एक महान योगी, परमज्ञानी, धर्मात्मा हैं बल्कि अध्यात्मवेशव भी हैं। पुराणों में उन्हें ब्रह्मा का अवतार कहा गया है। वायु पुराण के अनुसार उनका जन्म प्रथम महायुग में चतुर्मुख के शरीर से हुआ था। विष्णुपुराण में यह भी कहा गया है कि वह ब्रह्मरथ नामक ऋषि का पुत्र था। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें वेदों का ज्ञान गुरु महर्षि वैशम्पायन से मिला था। याज्ञवल्क्यस्मृति की शैली मनुस्मृति से अधिक व्यवस्थित प्रतीत होती है। मनुस्मृति को छोड़कर याज्ञवल्क्यस्मृति अन्य स्मृति ग्रंथों से अधिक लोकप्रिय है। याज्ञवल्क्यस्मृति जितनी व्यापक कोई अन्य स्मृति नहीं है। स्मृति से संबंधित सभी विषय अध्यायों में व्यवस्थित हैं। इसमें समस्त श्लोक अनुष्टुप छंद में अनुबद्ध हैं।

-
1. शोध-छात्र, धर्मगम विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
 2. शोध-छात्रा, प्रयोजनमूलक हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

यह कार्य कई पहलुओं में मनुस्मृति के समान है। हालाँकि, यह नियोग, उत्तराधिकार, जुआ आदि जैसे महत्वपूर्ण मामलों में इससे भिन्न है।¹ इसमें बृहदारण्यकोपनिषद् और वाजसनेय शाखा के शुक्लयजुर्वेद के पारस्करगृह्यसूत्रों में प्राप्त विचारों को एकत्र किया गया है। याज्ञवल्क्य ने चौदह विद्याएँ प्रस्तुत की हैं : चार वेद, छह वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र।

पुराण न्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रितः।

वेदः स्थानानि विद्यां धर्मस्य च चतुर्दशाः।²

उन्होंने नियोग की निंदा नहीं की है बल्कि विधवाओं को संपत्ति का उत्तराधिकार दिया। याज्ञवल्क्य ने जुए पर प्रतिबंध नहीं लगाया, बल्कि इसे राज्य के नियंत्रण में लाया तथा इसे राज्य के राजस्व का हिस्सा बनाया। व्यवहाराध्याय में आधार, प्रमाण, ऋण आदि के बारे में नियम बताए गए हैं।

महान विद्वानों की गणना के अनुसार स्मृतियों का युग लगभग एक हजार पांच सौ वर्ष पूर्व से लेकर आज तक का है। दूसरे शब्दों में स्मृतियों या स्मृति-निर्देशित जीवन-पथ को समझने के लिए, इसकी अवधि को वैदिक काल से लेकर सबसे हाल के, पिछली सदी के मध्य तक आगे बढ़ाना होगा।

याज्ञवल्क्यस्मृति पर कई टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क, शूलपाणि तथा मित्रमिश्र की टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। ऐसा कहा जाता है कि याज्ञवल्क्यस्मृति के साथ-साथ तीन स्मृतियाँ हैं, जिनके नाम हैं वृद्धयाज्ञवल्क्य, योगयाज्ञवल्क्य और बृहदयाज्ञवल्क्य। वृद्धयाज्ञवल्क्य व्यापार और प्रायश्चित्त संबंधी मामलों से संबंधित हैं। योगयाज्ञवल्क्य में प्रायश्चित्त पर 12 अध्याय हैं। यह योग के बारे में चर्चा करता है। अध्याय में हठ योग की व्याख्या है। यह धर्मशास्त्र के बारे में अधिक चर्चा नहीं करता है। बृहदयाज्ञवल्क्य में 12 अध्याय और लगभग 930 श्लोक हैं। यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें मंत्र, गायत्री, संध्योपासना, स्नान, तर्पण और प्राणायाम का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह धार्मिक विषयों का पक्षधर है तथा उनका अमूचीत सम्यक वर्णन करता है।

याज्ञवल्क्य एक हिंदू वैदिक ऋषि थे। यद्यपि याज्ञवल्क्य नाम यज्ञ से निकला है, जिसका अर्थ अनुष्ठान है, याज्ञवल्क्य को एक विचारक के रूप में वर्णित किया गया है, न कि एक कर्मकांडी के रूप में। याज्ञवल्क्य को भारतवर्ष के सबसे महान ऋषियों में से एक माना जाता है। वे यज्ञ करने में पारंगत अध्वर्यु गुरु थे, जिन्हें मुख्य रूप से यजुर्वेदीय यज्ञों और शास्त्रों की उत्पत्ति में उनके योगदान के लिए जाना जाता है। वे उन दुर्लभ ऋषियों में से एक हैं, जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही स्वयं को कर्मकांड के माध्यम से ब्रह्मज्ञानी के रूप में परिवर्तन किया। ब्रह्मज्ञान के बारे में उनके उत्कृष्ट तर्क और तर्क विभिन्न सामवेदों में प्रकट होते हैं। जनक महाराज के समक्ष गार्गी और मैत्रेयी जैसी ब्रह्मवादिनियों के साथ संवाद इसे स्पष्ट करते हैं। उनका उल्लेख उपनिषदों और पुराणों में व्यापक रूप से किया गया है। वे 'नेतिनेति' दर्शन के प्रतिपादक हैं, जिसका शानदार वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद् में किया गया है। याज्ञवल्क्यस्मृति प्राचीन स्मृति साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है और यह भारत में पालन किए जाने वाले कर्तव्यों और धर्म के लिए मार्गदर्शक ग्रंथ है।³

उनकी रचनाएँ हैं :

1. याज्ञवल्क्यस्मृति
2. याज्ञवल्क्यगीता
3. याज्ञवल्क्य उपनिषद्
4. याज्ञवल्क्यशिक्षा
5. गायत्रीभाष्य।

स्मृति का अर्थ :

‘स्मृति’ एक संस्कृत शब्द है जो स्मार धातु से बना है जिसका अर्थ है स्मृति या जो ज्ञात है उसका स्मरण। इससे यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि स्मृति ग्रंथ उन ऋषियों की लिखित स्मृतियाँ हैं जिन्होंने वेदों का गहन अध्ययन किया और उनके द्वारा प्रतिपादित उपदेशों को सीखा। वेद अलौकिक एवं अपौरुषेय हैं। अर्थात् मनुष्य ने इसे नहीं लिखा। इसके विपरीत, स्मृतियाँ प्रामाणिक ग्रंथ हैं क्योंकि वे महर्षियों द्वारा रचित थीं; जिन्हें वेदों का व्यापक ज्ञान था, जिसका अर्थ है कि स्मृतियों की वैधता वैदिक शिक्षाओं के अनुरूप है। भले ही कुछ स्मृति वाक्यों के आधार के रूप में कोई वैदिक श्लोक उपलब्ध न हों, लेकिन वे कालगर्भ में छिपे हुए होंगे।¹⁴

स्मृतियाँ केवल धर्मग्रंथ ही नहीं हैं, बल्कि इनमें सांसारिक व्यापार, दंड विधान, उत्तराधिकार विधान, विवाद और पारिवारिक नियम जैसे कई अन्य विषय भी भरे पड़े हैं। स्मृति साहित्य में मनुष्य के दैनिक जीवन का हर विवरण समाहित है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक व्यवस्थाएँ और उसके सभी अन्य सहायक संगठन इसमें शामिल हैं। देश के आंतरिक और बाह्य मामलों से संबंधित कर्तव्यों का भी इसमें वर्णन किया गया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ऐसा कोई व्यक्ति, समूह, समाज या मानवीय मामला नहीं है जो स्मृतियों की सीमा के भीतर न आता हो। स्मृतियाँ धर्मशास्त्र, मृतकों की याद के लिए श्राद्ध कर्म, जन्म और मृत्यु, प्रायश्चित्त, बलिदान, दैनिक जीवन और व्यवसाय में पालन किए जाने वाले रीति-रिवाजों का भी वर्णन करती हैं।

प्राचीन धर्म के विद्वान :

वेद, वेदांग, उपवेद, आगम, इतिहास, पुराण, स्मृति और दर्शन भारतीय संस्कृति के स्तंभ हैं। हिंदू धर्मशास्त्र प्राचीन विरासत के साथ बहुत व्यापक हैं। प्राचीन ग्रंथ धर्म विद्वानों का श्रद्धापूर्वक उल्लेख करके शुरू होते हैं। निम्नलिखित ऋषियों ने बहुत से धर्मशास्त्र लिखा है, इनमें से अधिकांश इतिहास में खो गए हैं। इनमें प्रमुख हैं: मनु, अत्रि, विष्णु, हरिता, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंकर, लिखित, दक्ष, गौतम शततप और वशिष्ठ।

मन्वत्रिविष्णुहरिता याज्ञवल्क्य उषानोनिग्रा यम, आपस्तम्बसंवर्तः कात्यायन बृहस्पतिः पराशरव्यासशांकरलिखिता दक्षगौतमौ शततपावसिष्ठश्चधर्मशास्त्रप्रयोजकः ।¹⁵

धर्मशास्त्र संस्कृत धार्मिक ग्रंथों की एक शैली है और धर्म पर प्रारंभिक हिंदू धर्म के ग्रंथों (शास्त्रों) को संदर्भित करता है।

धर्मशास्त्रों में, हम सामान्य तौर पर तीन मुख्य विषय पाते हैं: आचार, व्यवहार और प्रायश्चित्त। वेदों में, ये तत्व बीज रूप में रखे गए हैं। नारद और पराशरस्मृति में, एक शास्त्रीय विषय विभाजन है। बाद के टीकाकारों के कार्यों में प्रत्येक भाग को मामलों में विभाजित किया गया है, जिससे सामग्री को समझना आसान हो जाता है।

धर्म की प्रकृति और उनका विवरण :

धर्म शब्द ध्रु अवस्थाने नामक धातु से बना है। यह धातु पालन, समर्थन और पोषण का अर्थ देती है। वेदों और उपनिषदों में, धर्म शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर किया गया है। यहाँ धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक अवधारणाओं और संस्कारों के अर्थ में किया गया है।

ऋग्वेद में प्रयुक्त धर्मशास्त्र यहाँ प्रदर्शित किया गया है;

तानि धर्माणि प्रथममान्यसं ।¹⁶ (1.164.43)

समिद्धमानः प्रथमानुधर्म ।¹⁷ (3.17.1)

सुवितो धर्म प्रथमानुसत्य ।¹⁸ (10.56.3)

ऋग्वेद के कई मंत्र 'धर्मन्' शब्द के साथ अथर्ववेद में मिलते हैं।

अचित्यचेत्तव धर्मं युयोपि मा।⁹ (6.51.3)

यज्ञैनयज्ञमयजन्त देवा।¹⁰ (7.5.1)

त्रिनिपादविचक्रमे।¹¹ (7.21.5)

इन मंत्रों में धर्म के आचरण से पुण्य की भावना उत्पन्न होती है। गौतम ने कहा; यतो अभ्युदयनिश्रेयस सिद्धि स धर्मः।

यह धर्म है जिससे सुख और जन्म की प्राप्ति होती है। मनु ने धर्म का सुन्दर अर्थ इस प्रकार दिया है—
विद्वद्भिः सेवितःसद्भिर्हि नित्यमद्वेशरगिभिः ।

हृदयेनाभ्यानुजनाथः यो धर्मः तम निबोधतः ॥¹²

मनु ने कहा है कि जो भी बुद्धिमान और ज्ञानी लोग द्वेष और कटुता से मुक्त होकर जो कुछ भी करते हैं, जिस पर वे पूरे मन से सहमत होते हैं, वही धर्म है।¹⁴

अहिंसा परमोधर्मः :

अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। महाभारत के धर्मलक्षण को प्रभावशाली कहा जा सकता है। यह इस प्रकार है।

धारणाधर्ममित्याहुः धर्मो धार्यते प्रजाः ।

यत्स्याद्धरणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥¹⁵

इसका अर्थ है कि जो भी धर्म हमारे पालन के योग्य है, वह सर्वमान्य और सबके लिए हितकारी होना चाहिए। यह धार्मिकता रक्षा करती है। लगभग 20 धर्मसूत्र ज्ञात हैं, जिनमें से कुछ आधुनिक युग में अपने मूल अंशों के रूप में बचे हुए हैं। चार धर्मसूत्रों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है, और अधिकांश पांडुलिपियों में बचे हुए हैं, जिन सभी पर उनके लेखकों के नाम हैं। हालाँकि, यह निर्धारित करना अभी भी मुश्किल है कि असली लेखक कौन हैं। वर्तमान प्राप्त धर्मसूत्र नीचे सूचीबद्ध हैं:

1. आपस्तम्बधर्मसूत्र (450-350 ईसा पूर्व) आपस्तम्ब के बड़े कल्पसूत्र का एक हिस्सा है। इसमें 1,364 सूत्र हैं।
2. गौतम (600-200 ईसा पूर्व) हालाँकि यह धर्मसूत्र एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में आता है, लेकिन यह कभी सामवेद से जुड़े कल्पसूत्र का हिस्सा रहा होगा। यह संभवतः सबसे पुराना मौजूदा धार्मिक ग्रंथ है और आधुनिक महाराष्ट्र-गुजरात में उत्पन्न हुआ था। इसमें 973 सूत्र हैं।
3. बौधायनधर्मसूत्र (500-200 ईसा पूर्व) बौधायन के आपस्तम्ब की तरह बड़े कल्पसूत्र का एक हिस्सा है। इसमें 1,236 सूत्र हैं।
4. वशिष्ठ धर्मसूत्र (300-100 ईसा पूर्व) एक स्वतंत्र ग्रंथ है, और कल्पसूत्र के कुछ हिस्से, यानी श्रौत-और गृह्य-सूत्र, गायब हैं। इसमें 1,038 सूत्र हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति :

इसमें 1010 श्लोक हैं और इसे तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है: आचार और नैतिक संहिता, व्यवहार या नागरिक कानून और प्रायश्चित (तपस्या) या दंड संहिता। प्रत्येक अध्याय में निम्नलिखित संख्या में श्लोक हैं; आचार में 368 श्लोक। व्यवहार में 307 श्लोक। प्रायश्चित में 335 श्लोक। संपूर्ण आचार अध्याय 13 प्रकरणों में विभाजित है।¹⁶ जो इस प्रकारा है:

- परिचय (उपोद्गाता) 1-9 श्लोक, इसमें चौदह विद्याओं, धर्म के बीस व्याख्याताओं और परिषद के संविधान का वर्णन है।
- ब्रह्मचारी 10-50 श्लोक, जिसमें विवाह तक के संस्कारों का वर्णन है।
- विवाह (विवाह) 51-89
- वर्ण-जाति 90-96
- गृहस्थ-धर्म 97-128 गृहस्थ के कर्तव्यों की व्याख्या करता है।
- स्नेक-धर्म 129-166 स्नेक के कर्तव्य।
- भोजन (भक्ष्याभक्ष्य) 167-181 निषिद्ध और अनुमत खाद्य पदार्थों के बारे में नियम बताता है।
- वस्तुओं की शुद्धि (द्रव्यशुद्धि) 182-197 विभिन्न पदार्थों की शुद्धि से संबंधित विषयों की व्याख्या की गई है।
- दान (दान) 198-216 दान पुण्य करने वाले को देना चाहिए, यदि वह अपात्र को दिया जाए तो तामस का फल मिलता है। गोदान सभी चीजों में सबसे बड़ा है।
- श्राद्ध 217-270 श्राद्धों का विस्तृत विवरण देता है।
- गणेश की पूजा (गणपतिकल्प) 271-294 क्रमशः विनायक और नौ ग्रहों के तृप्ति समारोहों से संबंधित है।
- ग्रह-शांति 295-308 यह समझाया गया है कि जो व्यक्ति धन, विपत्तियों को दूर करना, वर्षा, अमरता और शक्ति चाहता है, उसे गृह यज्ञ करना चाहिए।
- राज-धर्म 309-368 श्लोक, राजा के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है।

आचार का अर्थ है सदाचार, व्यवहार और रीति-रिवाज। यह एक समुदाय के आदर्श व्यवहार, प्रथाओं, परंपराओं और व्यवहारों को संदर्भित करता है जो समाज और विभिन्न व्यक्तियों को कार्य करने में सक्षम बनाते हैं। आचार में धार्मिक अनुष्ठानों और समारोहों के प्रदर्शन से संबंधित नियमों और पुरुषों के सामान्य कर्तव्यों को उनके वर्ण और आश्रमों के अनुसार भी शामिल किया गया है। अर्थात् औपचारिक आचरण, व्यक्तिगत जीवन, गृहस्थ जीवन और सामाजिक जीवन। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य द्वारा पालन की जाने वाली आचार संहिता।

व्यवहार का अर्थ है न्यायिक-प्रक्रिया, प्रक्रिया, अभ्यास, आचरण और व्यवहार। राजा, एक दंडधर, आम लोगों को नियंत्रण में रखने के लिए एक योग्य व्यक्ति होता है। याज्ञवल्क्यस्मृति के व्यवहार अध्याय का पहला श्लोक है:

व्यवहारं नृपः पश्येत विद्वाद्भिर्ह ब्राह्मणैर्ह सह ।

धर्मशास्त्रनुसरेण क्रोधलोभविवर्जितः ॥¹⁷

हालाँकि, न्याय के निर्णय के लिए वैदिक धर्मशास्त्र में पारंगत, सत्यनिष्ठ और निष्पक्ष विद्वानों की एक परिषद होती थी। इसके सदस्यों की संख्या के बारे में अलग-अलग राय हैं। कात्यायन कहते हैं कि राजा को न्याय के लिए सम्मानित और धनी व्यापारियों को आमंत्रित करना चाहिए। राजा अपनी अनुपस्थिति में एक न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकता था। छोटे से गांव में राजा द्वारा नियुक्त एक न्यायाधीश होता था, जिसके इतर पूग, श्रेणी, कुल नामक मंडलों के मत अनुसार गठित परिषदें मामले की जांच करती थीं। दीवानी और फौजदारी न्यायालय एक ही थीं।

प्रत्येक मामले को चार चरणों से गुजरना पड़ता था: शिकायत, लिखित बयान, साक्ष्य का मूल्यांकन और निष्कर्ष। जो पक्ष शपथ नहीं लेता था, उसे दैवीय शपथ मिलती थी। शपथ दो प्रकार की होती है (मानवीय

और दैवीय)।

व्यवहारध्याय भारतीय न्याय की उत्पत्ति और विकास के बारे में पूरी जानकारी का स्रोत है। दीवानी न्यायालयों में प्रचलित न्याय की प्रथा प्राचीन भारतीय न्याय प्रणाली से बहुत मिलती-जुलती है।

व्यवहारध्याय, जो 25 प्रकरणों में विभाजित है, विवाद के अठारह बिंदुओं (अष्टादसव्यवहारस्थानि) पर चर्चा करने के लिए समर्पित है।

याज्ञवल्क्य ने इन 18 विषयों से निपटने में कुछ परिवर्तन किए हैं। पहले और दूसरे प्रकरण में सामान्य नियमों और विनियमों (साधारणव्यवहारमात्रकप्रकरण) और असाधारण विनियमों (असाधारणव्यवहारमात्रकप्रकरण) से संबंधित हैं। तीसरा प्रकरण ऋण से संबंधित कानूनों पर है। अगले पाँच प्रकरण जमा, गवाह, लिखित दस्तावेज, दैवीय परीक्षण और संपत्ति और विरासत के विभाजन से संबंधित हैं। सीमाओं के बारे में विवादों और स्वामी और सेवक के बीच विवादों से संबंधित कानूनों पर अगले दो प्रकरणों में चर्चा की गई है। ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें प्रकरण में क्रमशः वस्तुओं की बिक्री, उपहार और उनकी स्वीकृति और विक्रेता को खरीदी गई वस्तु को वापस करने के कानूनों से संबंधित है। अगले दो प्रकरणों में अनुबंध के उल्लंघन और स्थापित प्रथा (संवित्प्रतिक्रम) के उल्लंघन से संबंधित कानूनों का वर्णन किया गया है। आगामी नौ प्रकरणों में मजदूरी के भुगतान, सट्टा और जुआ, मानहानि, हमला, डकैती, बेची गई वस्तुओं की डिलीवरी न करना, साझेदारी, चोरी, व्यभिचार और प्रलोभन से संबंधित विषयों का वर्णन है। अंतिम प्रकरण प्रकीर्णप्रकरण है, जिसमें कुछ विविध नियमों को संहिताबद्ध किया गया है।

धर्म ग्रंथों के व्यवहार खंडों में राजा के कर्तव्यों, न्यायालय प्रणाली, न्यायाधीशों और गवाहों, न्यायिक प्रक्रिया, अपराधों और प्रायश्चित या दंड पर अध्याय शामिल हैं। हालांकि, विभिन्न धर्मसूत्र और धर्मशास्त्र ग्रंथों में चर्चा और प्रक्रियाएं काफी भिन्न हैं। कुछ धर्मशास्त्र ग्रंथ, जैसे कि बृहस्पति को जिम्मेदार ठहराया गया, लगभग पूरी तरह से व्यवहार से संबंधित ग्रंथ हैं। इनकी रचना संभवतः सामान्य युग में, पहली सहस्राब्दी की 5वीं शताब्दी के आसपास या उसके बाद की गई थी।

न्यायालयी प्रक्रिया के सर्वोच्च आधार के रूप में लिखित साक्ष्य :

याज्ञवल्क्य ने साक्ष्य को पदानुक्रमिक रूप में चित्रित किया, जिसमें प्रमाणित लिखित साक्ष्य को सर्वोच्च विचार प्राप्त हुआ, उसके बाद साक्षियों के कथन और अंत में, अग्निपरीक्षा (सत्यापन योग्य साक्ष्य के पाँच प्रकार)। याज्ञवल्क्य ने राजा द्वारा नियुक्त न्यायालयों और समुदायों द्वारा गठित न्यायालयों के बीच अंतर किया। फिर उन्होंने इन न्यायालयों को पदानुक्रमिक अपील की एक प्रणाली के हिस्से के रूप में चित्रित किया।

प्रायश्चित्ताध्याय, जो मुख्य रूप से प्रायश्चित के विभिन्न अनुष्ठानों से संबंधित है, पाँच प्रकारों में विभाजित है, अर्थात्, आशौच, आपद्धर्म, वानप्रस्थधर्म, यतिधर्म और प्रायश्चित।

पहले प्रकार में आशौच या अशुद्धता के बारे में नियमों का वर्णन किया गया है। आपद्धर्मप्रकरण उन प्रक्रियाओं से संबंधित है जो सामान्यतः किसी जाति के लिए उचित नहीं होती हैं, लेकिन कठिनाई या विपत्ति के समय में स्वीकार्य होती हैं। जीवन के तीसरे चरण, वानप्रस्थ से संबंधित नियमों का वर्णन तीसरे प्रकार में किया गया है। चौथा भाग यति या संसार त्यागने वाले के कर्तव्यों से संबंधित है। प्रायश्चित नामक अंतिम प्रकरण में कई प्रकार के प्रायश्चित अनुष्ठानों की चर्चा की गई है।

निष्कर्ष :

याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति के बाद सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें अनुष्ठान के तीन मुख्य भाग, व्यवसाय और प्रायश्चित प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें धर्म, किसे धर्म मनाना चाहिए, धर्म कैसे मनाना चाहिए, अध्ययन,

ब्रह्मचर्य धर्म, गृहस्थ कर्म, पंचयज्ञ, दान, भक्ष अभक्षविवेचन, वास्तुशुद्धि, अशौच, श्राद्ध, स्त्रीधर्म, राजधर्म, आत्मा, आत्मनिग्रह, मोक्ष का विचार, प्रायश्चित्त, शांति आदि का वर्णन है। स्मृतियाँ हमें उस समय के समाज की प्रकृति की समझ प्रदान करती हैं। धर्मशास्त्र साहित्य भारतीय संस्कृति के वास्तविक सजीव चित्र का शाश्वत प्रमाण है।

संदर्भ :

1. धर्मशास्त्र का इतिहास पी.वी.काणे, भाग-3 उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, 1995
2. श्लोक 1.3, याज्ञवल्क्यस्मृतिः दत्त एम. विज्ञानेश्वर के मिताक्षरा भाष्य सहित, भारतीयकलाप्रकाशन, जनवरी 2011
3. याज्ञवल्क्यस्मृति संस्कृतपाठ, तुकारामजावजेनम, निर्णयसागरमुद्रण, 1931
4. स्मृति खंडहा, डॉ. श्रीकृष्णसोमवलाहा
5. श्लोक 1.4-5, व्यास महाभारतम, भारतदर्शनप्रकाशन, बेंगलुरु, 2002
6. ऋग्वेदसंहिता, मैक्समूलर, चौखम्बा कृष्णदास एकेडमी, वाराणसी, 1984
7. ऋग्वेदसंहिता, मैक्समूलर, चौखम्बा कृष्णदास एकेडमी, वाराणसी, 1984
8. वेद संस्कृति परिचय, प्रो.के.एस. नारायणाचार्य, वेदविद्याप्रकाशन, धारवाड़.1983 आईजेएचए - इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री एंड आर्कियोलॉजी खंड-4, अंक-2, जुलाई-अगस्त-2022, पृ. 92-100
9. ऋग्वेदसंहिता, मैक्समूलर, चौखम्बा कृष्णदास एकेडमी, वाराणसी, 1984
10. ऋग्वेदसंहिता, मैक्समूलर, चौखम्बा कृष्णदास एकेडमी, वाराणसी, 1984
11. ऋग्वेदसंहिता, मैक्समूलर, चौखम्बा कृष्णदास एकेडमी, वाराणसी, 1984
12. वैशेषिक सूत्र आचार्य उदयवीर शास्त्री, विजय कुमार गोविंदराम हासानंद 2023
13. मनुस्मृति, 3.2.1 हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2019
14. मनु स्मृति, हरगोविंद शास्त्री, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2019
15. महाभारत, अनुशासनपर्व, 115.1 गीता प्रेस गोरखपुर 2006
16. याज्ञवल्क्यस्मृति डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2013.
17. याज्ञवल्क्यस्मृति, कमलनयन शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, 2018.



‘बूया’ : जिशी जनजाति का लोकनृत्य

○ तेची यापेरा¹

○ प्रो. शिवम चतुर्वेदी²

जिशी अरुणाचल प्रदेश की एक प्रमुख जनजाति मानी जाती है। ये प्रकृति पूजक हैं इसलिए इस समुदाय के लोग ‘दोजी’ सूर्य देवी को माँ के रूप में और ‘फोलो’ चाँद को पिता के रूप में स्वीकार करते हैं। जिशी जनजाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ये लोग स्वयं को आदि पुरुष आबू ताजी के वंशज मानते हैं। जिशी लोग मूलतः आठ जिलों में निवास करते हैं- पापूम पोर, क्रा दादी, सुबनसिरि कुरुड, कुमे, लोवर सुबनसिरि कामले, इस्ट कामेंग, वेस्ट कामेंग आदि। जिशी समाज पितृसत्तात्मक समाज है इसलिए इस समाज में प्रत्येक कार्य पुरुष प्रधान ही है। ये लोग बहुत सीधे और सरल होते हैं। ये लोग बहुत ही साधारण जीवन जीते हैं। इस समुदाय के लोग निडर एवं वर्गहीन होते हैं और ये लोग बहुत ही कल्याणकारी स्वभाव के होते हैं।

भारत विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं एवं परम्पराओं का देश है; अर्थात् भारत अपने लोक नृत्यों की विविधता के लिए विख्यात है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी एक विशिष्ट लोक नृत्य की परम्पराएँ हैं। वास्तव में लोक नृत्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। जिसमें आभूषण, वस्त्र, शारीरिक चाल, सजावट आदि का समावेश जुड़ा होता है। लोक नृत्य का प्रदर्शन विविध अवसरों पर- बच्चे के जन्म, मौसम के आगमन, विवाह आदि को मनाने के लिए किया जाता है। अतः लोक नृत्य किसी विशेष क्षेत्र का एक प्रसिद्ध नृत्य होता है। यह किसी व्यक्ति विशेष का ना होकर समाज के लिए समाज द्वारा ही रचा जाता है। लोक साहित्य की तरह लोक नृत्य भी किसी राष्ट्रीय, समाज एवं क्षेत्र का परिचायक होता है। लोक नृत्य का मुख्य अर्थ भावों को नृत्य द्वारा अभिव्यक्त करने के साथ लोक को आनन्द प्रदान करना होता है।

बूया जिशी समुदाय का एक प्रमुख लोक नृत्य है जिसमें समूह द्वारा किसी भी अवसर पर त्योहार पर हाथ पकड़कर नृत्य किया जाता है। यह मुख्यतः जिशी समाज के विवाह समारोह, गृह प्रवेश, त्योहारों में किये जाते हैं। जिसमें बुजुर्ग, महिलाएँ, बच्चे आदि सभी लोग भाग लेते हैं। नृत्य के दौरान दो पक्ष होते हैं जिसमें एक पक्ष द्वारा प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके पुछे गये प्रश्नों का दुसरा पक्ष व्यंग्यपूर्वक उत्तर देता है। यह नृत्य प्रश्नावली शैली में गाये जाते हैं। इसमें बहुत लोग शामिल होते हैं। इसलिए नृत्य के लिए बहुत बड़े स्थान की आवश्यकता

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अरुणाचल युनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज, नामसाई

2. एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अरुणाचल युनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज, नामसाई

होती है। यह नृत्य शिी घरों के अन्दर और बाहर भी किये जाते हैं।

जिशी बूया मूलतः चार प्रकार होते हैं- 1. जेदा बूया, 2. यूलो बूया, 3. माजी बूया और 4. नामा बूया

1. जेदा बूया : जिशी विवाह पद्धति में यह सबसे प्राचीन एवं प्रमुख लोक नृत्य है, जिशी विवाह समारोह संस्कार की यह एक अनिवार्य तत्व है। जिसे किये बिना किसी भी विवाह को पूर्ण नहीं माना जाता है। यह नृत्य मुलतः दो पक्षों के बीच प्रश्नावली शैली में इसे गाकर प्रदर्शन करते हैं। जिसमें एक वधु पक्ष हाता है और दूसरा वर पक्ष होता है। नृत्य के दौरान एक पक्ष के पूछे गये प्रश्नों को दुसरा पक्ष व्यंगपूर्ण रूप से उत्तर देते हैं जिससे वातावरण और रोचक एवं दिलचस्प हो जाता है। विवाह में मौजूद सभी जन भाग लेते हैं। यह नृत्य किसी भी विवाह समारोह में संस्कृतिक तौर तरिके से किया जाता है।

तूगूड बो तापा देबे - रियापिड बो कापा देबे
ताई ला दूयी डूजि - दोजी कित्ते किरीक जीपा
ताई ला दूयी डूजियाम - सा यामत्ते यामरिक जीपा
ताई ला दूयी डूजियाम - लालंग डो कोबूड जोर।

भावार्थ - हमारे सृष्टिकर्ता तक यह बात पहुँचे आज के दि हम ताई वशं और दूयी के लोग एक वैवाहिक संबन्ध बनाने जा रहे हैं। आज का यह दिन हमारे 'आने दोजी' सूर्य देवी के इच्छानुसार ही हुआ है। यह संबन्ध हमारे आने दोजी ने बहुत पहले तय कर चुकी थी।

आज के दिन हम दोनों वंश बहुत खुशी के साथ विवाहिक संबन्ध में जोड़ने जा रहे हैं। आज के इस शुभ अवसर पर हमें 'आने दोजी' आशीर्वाद प्रदान करें ताकि विवाह में कोई बाधा ना आए और विवाह सफल हो।

2. यूलो बूया : यह लोक नृत्य जिशी समाज के लिए महत्वपूर्ण नृत्य है। यह शिी समाज के मुख्य त्योहार 'जोकूम' में किए जाने वाले नृत्य है। जिशी समाज प्रकृति पूजक एवं कृषि प्रधान समाज है। इसलिए इनका जीवन प्रकृति से ही जुड़ा होता है। यह नृत्य मनोरंजन के साथ-साथ लोक कल्याण के लिए किये जाते हैं। यह लोक नृत्य 'जोकूम' त्योहार में समूह द्वारा उत्साहित होकर हाथ पकड़कर किये जाते हैं। इस बीच लोक कल्याण के लिए 'मिथुन' (स्थानीय जानवर) की बलि चढ़ाई जाती है। त्योहार में अपूड (मदिरा) मांस आदि परोसा जाता है। महिलाएँ उत्साहित होकर पारम्परिक कपड़े, आभूषण पहनकर इस नृत्य में भाग लेती हैं। महिलाएँ 'गीर इगीन' (स्थानीय टोकरी) सर पर लेकर बहुत ही आनन्दित होकर इस नृत्य का प्रदर्शन करती हैं। जिशी लोग प्रकृति पूजक है इसलिए 'जोकूम' त्योहार में नृत्य के दौरान बलि चढ़ाते हुए पूरे संसार के प्राकृतिक देवी-देवताओं का अहवाहन किया जाता है। जिसके आशीर्वाद से हम मानव जाति के लोक कल्याण के साथ-साथ फसलों की पैदावार भी हो।

तूगूड बो तापा देबे
रियापीन बो कापा देबे
तू बो - हिमे बो ना
दोजी बो - सी बो आ
गामदू बो - रिडदू बो ना
अरके बो - आरो बो ना
गमद बो - पामीड बो ना
मीगंद बो - करदू बो ना

भावार्थ - आज 'जोकूम' त्योहार का दिन है यह बात सृष्टिकर्ता तक पहुँचे आज के इस शुभ अवसर पर

हम मानव जाति के लोग इस नृत्य के दौरान प्रकृति के उन हितकारी, कल्याणकारी देवी-देवताओं का अह्वाहन कर रहे हैं। नृत्य के दौरान उन 'उई' (अदृश्य शक्तियों) का भी आह्वाहन कर रहे हैं ताकि वे अपनी शक्ति द्वारा समस्त मानव जाति को रोग, दुःख आदि से मुक्त कर दें। इसलिए आज इस 'जोकूम' त्योहार पर सभी देवी-देवताओं का आह्वाहन कर रहे हैं और यह प्रार्थना कर रहे हैं कि हम मानव जाति के पास आएँ और हमें आशीर्वाद प्रदान करें, हमारे जीवन समृद्धि से बढ़े।

3. माज बूया : माज बूया का सम्बंध 'माजी' (स्थानीय थाली) से है किन्तु यह नृत्य जिशी समाज के विवाह समारोह में किया जाता है। अर्थात् जिशी विवाह पद्धति में यह एक महत्वपूर्ण एवं प्राचीनतम अंग है। वास्तव में यह लोक नृत्य 'माजी' (स्थानीय थाली) की उत्पत्ति कथा पर आधारित है किन्तु इसे विवाह समारोह में ही किए जाते हैं। यह मौखिक रूप से लोक कण्ठों में जीवित कथा है जो पीढ़ी से पीढ़ी होकर आज तक बसी है। जिशी विवाह समारोह में इस नृत्य के माध्यम से 'माजी' (स्थानीय थाली) की उत्पत्ति के साथ-साथ इसके निर्माण प्रक्रियाओं को भी दर्शाता है। इसमें एक प्रमुख गायक या गायिका चुने जाते हैं जिनको 'माजी' सम्बन्धी कथाओं की अच्छी जानकारी हो और उसके पीछे-पीछे समूह द्वारा दोहराया जाता है।

जिशी समुदाय के लोगों की यह मान्यता है कि 'माजी' (स्थानीय थाली, आभूषण) उत्पत्ति की कथा उतनी ही महत्वपूर्ण एवं प्राचीन है जितनी मानव जाति की। इस प्रकार से 'माजी' की उत्पत्ति कसन श्रसर मसपच जाति के साथ ही मानी जाती है। इसलिए आज भी इस समाज में मानव जाति की कथा सुनने को मिलती है उतनी ही माजी उत्पत्ति की कथा को भी सुनने को मिलती है। 'माजी' जिशी समाज के लिए सम्पन्नता एवं समृद्धि का प्रतीक है। 'माजी' की गणना से ही आज भी लोगों के धन की गिनती होती है। जिसके पास जितना 'माजी' होगा उतना ही धनी माना जाता है।

तुगूड बो तेपा दबे - रियापित बो कापा दबे
 अरकी बो किजीक पाबो - अरो बो रोजिक पाबो
 दोजी तादूम पोपूम तोलो - दोजी अंगूम डूमजी
 सी तादूम पोपूम तोलो - सी अंगूम डूमजी पाबो
 जोदड जीमि जोदड हुरे नोचा रिबो
 कोदा जायमा कोदा हुरे पीचा रिबो
 गुड गुड तान यड तीगू बे - तेपा माचो?
 गुडत्ते ताते कागू बे - कापा माचो?
 तुगूड बे, पोरू दिडबे - संलंड बे दिडका पेजू
 रियापीड बे, दिडका पेजू - हुगू बे हा-हा पेजू

भावार्थ - सृष्टिकर्ता तुगूड रियापीड से आज के दिन यह हम प्रार्थना कर रहे हैं। आज के इस अवसर पर हम जो 'माजी' (स्थानीय थाली, आभूषण) उत्पत्ति व निर्माण प्रक्रिया की जो कथा सुना रहे हैं उनके और हमारे बीच आकर आशीर्वाद प्रदान करें। नृत्य के दौरान वर पक्ष, वधु पक्ष से यह पूछ रहे हैं कि उसके खानदान में 'माजी' (आभूषण) कितने हैं? और वर पक्ष यह आग्रह कर रहे हैं कि उन्हें जल्द से जल्द 'माजी' व स्थानीय आभूषण उनके सामने प्रस्तुत करें। क्योंकि वर पक्ष, वधु पक्ष के घर परिवेश में ही उस आभूषणों की कीमत दे चुके हैं, इस दौरान वर पक्ष बहुत उत्साहित होकर वधु पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गये आभूषणों को देखना चाहते हैं।

4. नामा बूया : (नव गृह प्रवेश में किये जाने वाला लोक नृत्य) नामा बूया नव गृह प्रवेश में किये जाने

वाला प्रसिद्ध लोक नृत्य है। यह जिशी समाज की एक प्रसिद्ध एवं पारम्परिक लोक नृत्य है। इस नृत्य को नव गृह प्रवेश में देवी-देवताओं का आह्वान करने के लिए किया जाता है। जिशी घर बाँस और पट्टों से बनते हैं। इस नव गृह प्रवेश के दौरान सबसे पहले घर में चूल्हे में आग जलाते हैं फिर उस पर पानी उबालते हैं। फिर उसमें मौजूद सभी सदस्यों को 'आपोड' (मदिरा) परोसा जाता है। उसके बाद ही चावल, माँस आदि खाद्य पदार्थों की शुरुआत की जाती है। नव घर प्रवेश में सबसे पहले जो आपोड (मदिरा) परोसा जाता है उसे 'मामदू लिङने ओपो' कहते हैं जो इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। जिशी लोगों का यह मानना है कि उस 'मदिरा' को परोसने से घर की छत-दीवार आदि समाग्री और भी मजबूत बन जाते हैं। उसके बाद 'कज' (स्थानीय खिचड़ी) भी परोसा जाता है। इस प्रकार नव गृह प्रवेश के दौरान गाँव के सभी सदस्यों को खाना, पीना, माँस आदि सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों को परोसा जाता है। इन सभी प्रक्रियाओं के बाद गाँव के सभी लोग बड़े उत्साहित मन के साथ यह लोक नृत्य करते हैं। यह एक बहुत ही रोचक एवं दिलचस्प प्रकार के नृत्य होते हैं।

तार बो आबू डोना.....आने बो मिंगोयों सोना
चंगी चंमा कुरियूम कुलडगो - पोपी योयी नाचड नेगे ना
सूपुड नामचड साम, साम नामचड - दरकू देरा देवीड होविड
नरबा नामचड रादे - चक्का नाम चड

भावार्थ - हम तार वंश के लोगों न आज सब मिलकर इस मिगीयों गाँव में एक घर का निर्माण किया है। घर का निर्माण पूरे पारम्परिक तौर तरिके से किया गया है जिस प्रकार हमारे आदि पुरुष ने सिखाया है उसी के अनुरूप हमने भी घर का निर्माण किया है। जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने 'दौ नामचड' (प्राचीन घर) का निर्माण किया है उसी के अनुरूप हमने भी इस घर का निर्माण किया है। जिस प्रकार पूर्वजों ने घर निर्माण में बाँस, पत्ते, श्रससी आदि समाग्रियों के उपयोग से घर का निर्माण किया था। सामग्रियों का उपयो करके घर बनाने में सफल हुये।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि शिी समुदाय के विभिन्न क्षेत्रों में भी अपने एक विशिष्ट प्रकार के लोक नृत्य की परम्पराएँ हैं। जो उनके सांस्कृतिक विविधता को दर्शाता है। यह लोक नृत्य प्राचीन काल से आज भी लोक कण्ठों में पीढ़ी से पीढ़ी हस्तांतरित है। जिसका निर्माण किसी व्यक्ति विशेष द्वारा ना होकर समाज द्वारा ही रचा जाता है। यह लोक नृत्य इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके माध्यम से ही हम इस समुदाय के संस्कृति, परम्पराएँ, वेश-भूषा, आभुषण की जानकारी प्राप्त होती है। इनके लोक नृत्य में ही हमें इस समुदाय की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की झलक मिलती है।

सन्दर्भ :

1. तोब तारा तरीन: 'जिशी वर्ल' दी बी प्रिंटर्स, एन. एच. बनदरदेवा, लोकनिपुर।
2. डॉ. शिवम चतुर्वेदी, लोक साहित्य और व्यवहारिक भाषा, फर्स्ट पब्लिकेशन, टैगोर, इलाहाबाद।
3. बी.बी. पाण्डेय, "फोक सोंग्स ऑफ अरुणाचल प्रदेश", हिमालय पब्लिशर, इटानगर, अरुणाचल प्रदेश एण्ड शालिमार ऑफ सेट प्रेस, नई दिल्ली।
4. कृष्ण देव उपाध्याय, 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन', वाराणसी हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय।



मानवतावाद और धर्म : एक दार्शनिक अनुशीलन

○ प्रियंका देवी¹

संक्षिप्ति :

मानवतावाद और धर्म दर्शनशास्त्र की वे महत्वपूर्ण विचारधाराएँ हैं जिनसे प्रायः सभी व्यक्ति किसी न किसी रूप में अवश्य ही परिचित हैं। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो जिसने इनके बारे में न सुना हो। महान विचारकों से लेकर सामान्य मानव तक सभी इनके स्वरूप से पूर्णतया या अंशतया अवश्य ही अवगत हैं। मानवतावाद व धर्म का मुख्य उद्देश्य मानव-जीवन का सर्वांगीण विकास ही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों मानव-जीवन की समस्याओं को पहचान कर उसका उचित निराकरण करने का प्रयास करते हैं ताकि मानव का अधिकतम कल्याण सम्भव हो सके। इस प्रयास के फलस्वरूप दोनों अपनी-अपनी मान्यताओं व सिद्धान्तों के आधार पर आगे बढ़ते हैं, जिसके फलस्वरूप इनके बीच गतिरोध भी उत्पन्न होता है। यही कारण है कि मानवतावाद को धर्म के विरुद्ध एक गम्भीर चुनौती के रूप में भी स्वीकार किया जाता है तथा इनको एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न या विरोधी भी मान लिया जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि मानवतावाद और धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? दोनों किस प्रकार एक-दूसरे से भिन्न हैं तथा इनमें क्या समानताएँ पाई जाती हैं। साथ ही हम यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि इन दोनों का सामन्जस्य किस प्रकार सम्भव है?

बीज शब्द : मानवतावाद, धर्म, अलौकिक सत्ता, बौद्धिकता।

मानवतावाद वह महत्वपूर्ण दर्शन है जिसका केन्द्रीय विषय ईश्वर या अन्य कोई अलौकिक सत्ता व शक्ति न होकर मानवमात्र ही है। यह समस्त मानवजाति का विश्वदर्शन है।¹ इसके अन्तर्गत मानव-जीवन की मूल समस्याओं, उसकी उत्पत्ति, विकास एवं समाधान पर विचार किया जाता है। आक्सफोर्ड शब्दकोष की परिभाषा के अनुसार मानवतावाद वह कार्य-प्रणाली या विचार है जिसका सम्बन्ध केवल मानवीय हितों से है या मानव

1. शोध छात्रा, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
ईमेल: priyankadevi925@gmail.com

जाति से है।² यह मनुष्य की बौद्धिकता में विश्वास करता है। इसका कहना है कि मनुष्य की तर्क बुद्धि में इतनी क्षमता या सामर्थ्य है कि वह अपने जीवन की समस्याओं का समाधान स्वयं ही कर सकता है। इसके लिए उसे ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक सत्ता में विश्वास की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इन सत्ताओं का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है, ये मानव मन की कल्पना-मात्र हैं। यही कारण है कि यह मानवीय-मूल्यों एवं मानवीय गरिमा को विशेष महत्त्व देता है। इसका मानना है कि मानवीय मूल्यों जैसे-दया, प्रेम एवं सहानुभूति आदि के उद्भव व विकास से मानव में मनुष्यता का संचार होता है जिससे वह स्वयं के तथा दूसरों के समुचित विकास में सहयोग प्रदान कर सकता है।

मानवतावाद वैयक्तिक स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व आदि लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास करता है। इसका मानना है कि मानव स्वतन्त्रता, संवेदना एवं ज्ञान से बढ़कर कोई भी वस्तु नहीं है। ये मूल्य मानव में सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास करते हैं, जिससे व्यक्ति में सकारात्मक एवं नवीन विचारों का उदय होता है। इन सकारात्मक एवं नवीन विचारों के कारण ही मध्ययुग में पुनर्जागरण का उदय हुआ जिसने व्यक्ति को धर्म की बेड़ियों में जकड़े हुए चर्च के अन्धकारपूर्ण युग से मुक्ति दिलायी तथा उसे अधिकारों एवं कर्तव्यों का उचित ज्ञान कराया जिससे वे स्वयं के साथ-साथ सम्पूर्ण मानव व समाज के कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान दे सके।

मानवतावादी दर्शन का प्रारम्भ ग्रीक युग के भौतिकवादी विचारकों थैल्स, ऐनेक्जीमेनीज एवं ऐनेक्जीमेन्डर आदि के दर्शन से ही होता है। इन सभी दार्शनिकों ने भौतिक तत्त्वों जैसे - अग्नि, जल, वायु आदि को विश्व के मूलतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है। इनका मानना है कि इन्हीं भौतिक तत्त्वों से ही समस्त संसार की रचना हुई है। ये सभी तत्त्व या तो अकेले या एक-दूसरे के साथ मिलकर इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करते हैं; जैसे, थैलीज का मानना है कि मूलतत्त्व जल है तथा उसी से संसार के सभी पदार्थों की रचना हुई है, वहीं एम्पीडोक्लीज ने पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि आदि चारों तत्त्वों को सृष्टि के निर्माण में स्वीकार किया है। इन भौतिकवादी विचारकों के अतिरिक्त महान यूनानी दार्शनिक प्रोटोगोरस ने मनुष्य व मनुष्य की समस्याओं के अध्ययन व उनके समाधान को ही महत्वपूर्ण माना है। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है कि “मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है।”³ अर्थात् सभी वस्तुओं की तुलना में मनुष्य का महत्त्व सर्वाधिक है। अतः मनुष्य को केन्द्र में रखकर ही सभी निर्णय लिये जाने चाहिए। प्रोटोगोरस भी मनुष्य की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हुए ईश्वर व अन्य अलौकिक शक्ति की सत्ता में विश्वास नहीं करते। इन सत्ताओं के सम्बन्ध में वे अज्ञेयवाद को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि हम यह नहीं जान सकते कि इनका अस्तित्व है या नहीं क्योंकि इनको जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। प्रोटोगोरस की भाँति ‘सोफिस्ट’ भी मानवतावाद का समर्थन करते हैं। सोफिस्ट उन यूनानी विचारकों को कहा जाता है जो मानव व उनकी समस्याओं को ही केन्द्रीय विषय बनाकर उसपर विचार-विमर्श करते थे। वे विचारक घूम-घूम कर लोगों की समस्याओं को समझने तथा इनके समाधान का प्रयास भी करते थे।

ग्रीक युग के पश्चात् मध्ययुग का प्रारम्भ हुआ। इस युग में चर्च व धर्म का ही अधिक बोलबाला रहा। चर्च के नियमों को ही अधिक प्रमुखता दी गयी तथा सम्पूर्ण मानवजाति को इन नियमों के अधीन समझा गया। इन नियमों को तोड़ने का अधिकार किसी को भी नहीं था तथा इन्हें तोड़ना पाप समझा जाता था। इस युग में मानव की स्वतन्त्रता व उसकी तर्कबुद्धि को भी चर्च के अधीन ही समझा जाता था। यही कारण है कि इस मध्ययुग को अन्धकार युग की संज्ञा दी गयी है। इस अन्धकार युग के कारण मानवजाति व राष्ट्र की अत्यधिक क्षति हुई जिसके कारण लोगों के मन में धर्म व चर्च के विरुद्ध क्रोध की भावना उत्पन्न हुई। इस क्रोध के

कारण ही लोगों ने धार्मिक-नियमों को अस्वीकार करना शुरू कर दिया जिससे जन-जागरण का उदय हुआ। चौदहवीं शताब्दी तक लगभग अन्धकार पूर्ण मध्ययुग का अन्त हो गया। अब व्यक्ति पुनः मानव तर्क-शक्ति तथा स्वतन्त्रता व समानता के आदर्श में विश्वास करने लगा। इसी कारण इसे पुनर्जागरण काल भी कहा जाता है। इस पुनर्जागरण काल के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते मानवतावाद का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया।⁴ इस युग के प्रमुख विचारकों में मिल, बेन्थम एवं सिजविक आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये विचारक भी किसी अलौकिक सत्ता व शक्ति को महत्त्व न देकर मानवी बुद्धि व मानवीय भावनाओं को ही विशेष महत्त्व देते हैं। इनके अतिरिक्त वर्तमान युग के प्रमुख विचारकों में बट्रेन्ड रसल, जान ड्यूक, जे.पी. सार्त्र, जार्ज सैन्टायन आदि ने भी रूढ़िवादिता एवं अलौकिक सत्ताओं का निषेध करके मानवीय ज्ञान एवं अनुभव को विशेष महत्त्व दिया है।

पाश्चात्य दर्शन की भांति भारतीय दर्शन में भी मानवतावाद का उल्लेख मिलता है। भारतीय दर्शन में मानवतावाद का प्रारम्भ वेदों से होता है। वैदिक-दर्शन मानव-केन्द्रित दर्शन है। यह मानव के सर्वांगीण विकास को बहुत महत्त्व देता है। वेद मानवत्व में देवत्व के अस्तित्व को स्वीकार करता है। उसका कहना है कि मानव अपने भाग्य का निर्माता स्वयं ही है।⁵ इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने कर्तव्यों का पूर्ण निष्ठा से पालन करे जिससे उसका सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके क्योंकि व्यक्ति का विकास उसके कर्मों पर ही निर्भर करता है। वैदिक दर्शन के अतिरिक्त अन्य भारतीय दर्शनों में भी मानवतावाद की झलक अवश्य मिलती है परन्तु चार्वाक व बौद्ध दर्शन को इसके प्रमुख समर्थक के रूप में माना जाता है।

चार्वाक के अनुसार सुखप्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है तथा इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे स्वयं ही प्रयास करना पड़ता है क्योंकि ईश्वर आदि अलौकिक सत्ताओं का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है। इसलिए यह ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, पाप-पुण्य आदि अतिन्द्रिय सत्ताओं के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। इसके अनुसार इस सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु आदि चार भौतिक तत्त्वों के मिश्रण से ही हुआ है न कि किसी अलौकिक सत्ता की कृपा से। इसी प्रकार बौद्ध दर्शन में भी ईश्वर आत्मा आदि अलौकिक तत्त्वों का खण्डन करते हुए मानव-कल्याण को विशेष महत्त्व दिया गया है। भगवान बुद्ध ने मानव को दुःखों से मुक्ति दिलाने के लिए ही अष्टांगिक मार्ग का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि यह अनिवार्य सत्य है कि मानव जीवन दुःखों से परिपूर्ण है, मानव जीवन में दुःखों का होना स्वाभाविक है परन्तु इन दुःखों का निराकरण भी सम्भव है। भगवान बुद्ध ने मानव जीवन को दुःखों से मुक्ति दिलाने के लिए जिस मार्ग का निरूपण किया है उसे ही बौद्ध दर्शन में अष्टांगिक मार्ग की संज्ञा दी गई है। जो व्यक्ति अष्टांगिक मार्ग में वर्णित आठों मार्गों का पूर्ण निष्ठा से पालन करता है उसे अवश्य ही दुःखों से मुक्ति मिलती है। इन दर्शनों के अतिरिक्त आधुनिक भारतीय दर्शन में एम. एन. रॉय का नाम मानवतावादी दार्शनिकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मानवतावाद के सम्बन्ध में इनका प्रसिद्ध सिद्धान्त नव-मानवतावाद है जिसमें इन्होंने मानव की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करते हुए मानवीय अनुभव एवं बौद्धिकता को विशेष महत्त्व दिया है। इनका कहना है कि मानवीय बुद्धि में इतनी अधिक क्षमता विद्यमान है कि वह बिना किसी अलौकिक सत्ता की कृपा के अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है।

मानवतावाद की विशेषताएँ:

मानवतावाद निरीश्वरवादी विचारधारा है जो ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक सत्ता में विश्वास न करके मानव की ही सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार करता है। उसका मानना है कि मानव में इतनी क्षमता व शक्ति निहित है कि वह अपनी बौद्धिकता एवं अनुभव के आधार पर अपने सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। मानव

स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है। इसके लिए उसे किसी भी अन्य अलौकिक सत्ता या शक्ति की आवश्यकता नहीं है। उसकी वास्तविक शक्ति उसकी बौद्धिकता में निहित है। अपनी बौद्धिकता के बल पर वह अपने लिए सर्वोत्कृष्ट मार्ग का चुनाव करने में सक्षम हो पाता है जिससे वह इस मार्ग पर चलते हुए अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है।

मानवतावाद मानवीय अनुभव व बुद्धि को ही सर्वप्रमुख मानता है। इसका मानना है कि हमारा सारा ज्ञान मानवीय अनुभव व बुद्धि पर ही आधारित है। जो कुछ भी मानवीय अनुभव व बुद्धि से परे है वह सब अज्ञेय है, अर्थात् हम इनको नहीं जान सकते तथा ये हमारी ज्ञान की सीमा के पार हैं। यही कारण है कि मानवतावाद ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग-नर्क आदि अलौकिक तत्त्वों की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है। इसका कहना है कि चूंकि हम इन तत्त्वों को न तो अपनी इन्द्रियों के द्वारा अनुभव कर सकते हैं और न ही बुद्धि के द्वारा जान सकते हैं। अतः इनके अस्तित्व को स्वीकार करना हमारे लिए उचित नहीं है।

मानवतावाद प्रकृतिवाद व भौतिकवाद का भी समर्थक है। इसके अनुसार विश्व का परमतत्त्व कोई आध्यात्मिक सत्ता न होकर जड़ ही है। चेतन का निर्माण भी इस जड़ से ही हुआ है। विभिन्न भौतिक व प्राकृतिक वस्तुओं का मिश्रण इस प्रकार से हुआ है कि इनके द्वारा चेतन का उदय अपने आप ही हो गया। इस भौतिक तत्त्व या प्रकृति की रचना भी स्वयं ही हुई है न कि किसी अलौकिक सत्ता या शक्ति के द्वारा। यह भौतिक प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील है। इसकी उत्पत्ति व विकास स्वयं ही होता है।

मानवतावाद प्रत्यक्ष को ही सर्वाधिक विश्वसनीय प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है। इसके अनुसार जिन व्यक्तियों व वस्तुओं का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष के द्वारा होता है वही सर्वाधिक विश्वसनीय ज्ञान है, अनुमान, शब्द आदि प्रत्यक्ष ज्ञान के सहायक मात्र हैं। ये प्रत्यक्ष की सहायता मात्र करते हैं। स्वतन्त्र रूप से इनके द्वारा विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं है। इसके साथ ही अन्तःप्रज्ञा को भी बहुत से विचारकों ने एक प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु मानवतावाद अन्तःप्रज्ञा को कभी भी प्रमाण नहीं मानता। इसका कहना है कि अन्तः प्रज्ञा के द्वारा कभी भी किसी वस्तु का विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

मानवतावाद का मूल आदर्श मानव भ्रातृत्व व विश्व बन्धुत्व की भावना है। इसका मानना है कि सम्पूर्ण पृथ्वी हमारे परिवार के समान ही है। हम सभी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी एक समुद्र तथा एक व्यक्ति उस समुद्र की एक बूंद के समान है।⁶ अतः हमें सभी की भावनाओं का सम्मान करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता, समानता एवं धार्मिक भावनाओं का सम्मान करना हमारा परम कर्तव्य है। मानव को चाहिए कि वह अपने सर्वांगीण विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज के कल्याण का प्रयास करे। ऐसा करने से ही व्यक्ति तथा समाज की प्रगति सम्भव है। जो व्यक्ति लोभ व लालचवश दूसरे को हानि पहुँचाते हैं उनका भी विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा वे अपने लक्ष्य को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अतः यह अवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थवाद जैसी संकुचित व संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठकर सर्व-कल्याणवाद जैसी वृहद् विचारधारा का अनुसरण करें।

धर्म का स्वरूप:

धर्म एक व्यापक शब्द है। विश्व के अधिकांश मानव किसी-न-किसी रूप में धर्म को अवश्य ही स्वीकार करते हैं। मानव जीवन में धर्म के इस महत्त्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि हमें धर्म के वास्तविक स्वरूप की पहचान हो। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इसके स्वरूप की पूर्णतः निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा दे पाना अत्यन्त ही कठिन है। सामान्यतः धर्म शब्द का अभिप्राय पूजा-पाठ व विभिन्न अवसरों पर किये जाने वाले धार्मिक कर्मकाण्डों से ही लिया जाता है। परन्तु धर्म शब्द की यह परिभाषा पूर्णतः सन्तोषप्रद

नहीं है। पूजा-पाठ व अन्य धार्मिक अनुष्ठानों का संबंध केवल धर्म के बाध्य पक्ष से ही है। जबकि धर्म का अर्थ उससे कहीं अधिक व्यापक है। यही कारण है कि विभिन्न दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके स्वरूप को परिभाषित करते हुए कुछ दार्शनिक इसके सैद्धान्तिक व बौद्धिक पक्ष को महत्त्व देते हैं तो कुछ उसके भावनात्मक पक्ष को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसी तरह कुछ ऐसे अन्य दार्शनिक भी हैं जो इसके दोनों पक्षों को महत्त्व न देकर केवल व्यावहारिक एवं क्रियात्मक पक्ष को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि धर्म इनमें से कोई एक पक्ष न होकर सभी पक्षों को समेटने वाली एक अभिवृत्ति है।

धर्म के स्वरूप को भलीभाँति समझने के लिए यह अनिवार्य है कि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से इस शब्द पर विचार किया जाय। धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धि' नामक धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'धारण करना'।⁷ अतः धर्म वह है जो धारण करे। यह मानव जीवन का आधार स्तम्भ है क्योंकि इसके द्वारा ही मानव-जीवन नियमित व नियन्त्रित होता है। अतः स्पष्ट है कि धर्म वह है जो मानव-जीवन को नियमित व नियन्त्रित करके उसके सर्वांगीण विकास में सहायता प्रदान करे। भारतीय दर्शन में धर्म के इसी अर्थ को विशेष महत्ता प्रदान की गई है। महाभारत में कहा गया है कि जो प्रजा को धारण करे वह धर्म है।⁸ महाभारत की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि धर्म प्रजा अर्थात् सम्पूर्ण मानव-जाति के संवर्धन एवं प्रोन्नयन का प्रयास करता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार जिससे यथार्थ उन्नति और परम कल्याण की सिद्धि होती है, वह धर्म है।⁹ मनु ने मनुस्मृति में धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए धर्म के दस लक्षणों-धृति, क्षमा, संयम, अचौर्य, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, विवेकशीलता, विद्या, सत्य बोलना, अक्रोध आदि का उल्लेख किया है।¹⁰ अतः स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन में धर्म को एक ऐसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है जो मानव-जीवन का सर्वांगीण विकास करता है तथा उसके स्वकर्तव्य पालन में उचित मार्गदर्शन प्रदान करता है।

धर्म के लिए अंग्रेजी भाषा में रिलिजन शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस शब्द का भी लगभग वही अर्थ है जो धर्म शब्द का है। रिलिजन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'रिलिजेयर' नामक शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'बाँधना' अतः स्पष्ट है कि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से रिलिजन शब्द का अर्थ है- मानव व ईश्वर को जोड़ना या बाँधना।¹¹ यह मानव व ईश्वर में सम्बन्ध स्थापित करता है। समाज में एक व्यवस्था स्थापित करता है तथा लोगों के बीच प्रेम व सहानुभूति का वातावरण बनाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय व पाश्चात्य दोनों ही दर्शनों में धर्म को एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था व संगठन के रूप में देखा जाता है जो मानव का उचित मार्गदर्शन करते हुए उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराता है साथ ही लोककल्याण का भी प्रयास करता है।

धर्म के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसमें निहित कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को स्पष्ट करने का प्रयास करें। इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के द्वारा ही हम धर्म के स्वरूप को भलीभाँति समझ सकेंगे। धर्म का पहला महत्त्वपूर्ण तत्त्व है- ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक सत्ता में विश्वास। इसके बिना धर्म का अस्तित्व सम्भव ही नहीं है। प्रायः सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में इसे स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसके बिना धर्म का अस्तित्व सम्भव ही नहीं है। जब भी व्यक्ति किसी धर्म में आस्था या विश्वास करता है तो वह अवश्य ही एक ऐसी अलौकिक सत्ता या शक्ति की कल्पना करता है जो सर्वोच्च, सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान हो।

धर्म का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है- ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक सत्ता की पूजा व उपासना। जब भी कोई व्यक्ति किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास करता है तो वह उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करना चाहता है। इसके लिए वह अपने उपास्य देव को तरह-तरह के फल-फूल, मिठाइयाँ व पकवानों को चढ़ा कर उसकी

पूजा-अर्चना करता है। अतः स्पष्ट है कि यह भी धर्म का एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्त्व है जिसके बिना धर्म की कल्पना सम्भव ही नहीं है।

धर्म का तीसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है – उन सभी वस्तुओं व स्थानों को पवित्र मानना जो इस अलौकिक सत्ता से सम्बन्धित हैं। इसके अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, ग्रन्थ आदि जैसे – गीता, कुरान आदि को समाहित किया जाता है जो किसी अलौकिक सत्ता से सम्बन्धित होते हैं। धार्मिक व्यक्ति के मन में इन चीजों के प्रति बहुत ही आदर व सम्मान की भावना होती है।

धर्म का चौथा महत्वपूर्ण तत्त्व है- एक ऐसे सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान अलौकिक सत्ता की कल्पना जो व्यक्ति के सभी दुःखों व कष्टों को दूर कर सके। प्रायः सभी धर्म किसी न किसी रूप में व्यक्ति के दुःखों को दूर करने का आश्वसन देते हैं, जिससे व्यक्ति के मन में एक शान्ति की अनुभूति होती है और व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा एवं निष्ठा से अपने धार्मिक कर्तव्यों को पूरा कर पाता है। अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी तत्त्व धर्म के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं तथा इनके बिना व्यक्ति के लिए धर्म का पालन सम्भव ही नहीं है।

यह सत्य है कि धर्म की पूर्णतः निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा दे पाना अत्यन्त ही कठिन है परन्तु धर्म के सम्बन्ध में उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि धर्म मानव-जीवन की वह व्यापक अभिवृत्ति है, जिसकी उत्पत्ति आध्यात्मिक भूख से होती है तथा जिसका उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों की वास्तविक प्राप्ति ही है। इन आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति अलौकिक सत्ता के प्रति अखण्ड आस्था एवं पूर्ण प्रतिबद्धता तथा पूजा-पाठ व जप-तप आदि बाह्य कर्मकाण्डों से होती है। धर्म की यह परिभाषा विश्व के प्रायः सभी धर्मों पर लागू होती है। चाहे ईश्वरवादी धर्म जैसे-हिन्दू, ईसाई, यहूदी, इस्लाम आदि हो या निरीश्वरवादी धर्म जैसे- बौद्ध, जैन आदि हो, सभी धर्मों में धर्म के ये मूल तत्त्व किसी-न-किसी रूप में अवश्य व्याप्त रहते हैं। अतः स्पष्ट है कि धर्म में कुछ-न-कुछ ऐसे सर्वमान्य तत्त्व हैं, जो सभी धर्मों में विद्यमान रहते हैं, जिसके आधार पर हम धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करने के पश्चात् यह अनिवार्य हो जाता है कि हम इसके महत्वपूर्ण पक्षों का भी विवेचन करें। धर्म के ये महत्वपूर्ण तत्त्व तीन हैं- सैद्धान्तिक पक्ष, संवेगात्मक पक्ष तथा व्यावहारिक पक्ष। अब हम यहाँ संक्षेप में इनकी व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

सैद्धान्तिक पक्ष:

जब धर्मपरायण व्यक्ति किसी धर्म को स्वीकार करता है तो उसके मन में अपने अलौकिक उपास्य विषय के अस्तित्व, स्वरूप तथा विश्व के साथ उसके सम्बन्ध को लेकर कुछ विश्वास होते हैं, जिन्हें धार्मिक विश्वास कहा जाता है। धार्मिक व्यक्ति इन विश्वासों को जानना तथा समझना चाहता है। इसके लिए कुछ ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन अनिवार्य हो जाता है जिससे धर्मपरायण व्यक्ति को उपास्य विषय के संबंध में स्वीकृत विश्वासों का समुचित एवं सन्तोषप्रद समाधान मिल सके। धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष के अन्तर्गत ऐसे ही तत्त्व आते हैं, जो इन विश्वासों का समुचित एवं सन्तोषप्रद समाधान देने का प्रयास करते हैं।

संवेगात्मक पक्ष:

धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष संवेगात्मक पक्ष है। इसका सम्बन्ध उपास्य विषय के प्रति धर्मपरायण व्यक्ति के मन में विद्यमान भावना से है। इसी भावना से प्रेरित होकर ही व्यक्ति उपास्य विषय की पूजा-पाठ, जप-तप आदि कर्मकाण्डों को करता है। इस संवेग के कारण ही धर्मपरायण व्यक्ति के मन में अपने उपास्य विषय के प्रति श्रद्धा, भय, सम्मान, विनम्रता, प्रेम आदि संवेगों का उदय होता है। इस संवेग के कारण ही सभी धर्मपरायण व्यक्ति एक-दूसरे से परस्पर सम्बन्धित होते हैं। वे एक जैसे कर्मकाण्डों को करते हैं तथा अपने उपास्य विषय

को अत्यधिक पवित्र मानकर उसके प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि किसी भी धर्म में इन धार्मिक संवेगों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। यदि इन संवेगों का सकारात्मक रूप से पालन हो तो समाज में शान्ति एवं सौहार्द की स्थापना हो सकेगी। इसके विपरीत यदि ये धार्मिक संवेग नकारात्मक रूप में हो तो धार्मिक कलह एवं अराजकता की स्थिति पैदा हो जाएगी।

क्रियात्मक पक्ष:

धर्म का तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष है- क्रियात्मक पक्ष इसका सम्बन्ध मनुष्य के आचरण तथा विशेष प्रकार के धार्मिक अनुष्ठानों या कर्मकाण्डों से है। इसे धर्म की आचार-पद्धति कहा जाता है। इस आचार-पद्धति के अन्तर्गत वे सभी नैतिक-नियम आते हैं जो व्यक्ति को यह बताते हैं कि उसे क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए। धार्मिक अनुष्ठान तथा पूजा-पाठ सम्बन्धी सभी कर्मकाण्ड भी इस आचार-पद्धति के अन्तर्गत ही आते हैं, जिससे यह बतलाया जाता है कि व्यक्ति को किस प्रकार से पूजा-पाठ आदि धार्मिक कर्मकाण्डों को सम्पन्न करना चाहिए। जीवन के विभिन्न अवसरों जैसे- शादी-विवाह, जन्म-मरण आदि पर कौन-कौन से अनुष्ठान किस-किस प्रकार से सम्पन्न करना आवश्यक है। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यक्ति इन धार्मिक अनुष्ठानों को बड़ी ही श्रद्धा एवं प्रतिबद्धता के साथ सम्पन्न करता है। अतः स्पष्ट है कि धर्म का यह क्रियात्मक पक्ष मानव-जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव-जीवन में धर्म के इन तीनों पक्षों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से यदि एक का भी अभाव हो तो धर्म के स्वरूप व अर्थ को स्पष्ट करना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है।

मानवतावाद और धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करने के पश्चात् यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन दोनों में किस प्रकार का सम्बन्ध पाया जाता है। क्या ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं या इनमें कुछ समानताएँ भी विद्यमान हैं। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः इन दोनों को एक-दूसरे का विरोधी मान लिया जाता है परन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। वास्तव में मानवतावाद और धर्म के बीच बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है और वह सम्बन्ध इनके लक्ष्य या उद्देश्य को लेकर है। दोनों का ही उद्देश्य मानव व समाज का कल्याण है। दोनों ही उन तत्त्वों को विशेष महत्व देते हैं, जिससे मानव का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके। दोनों मानव जीवन की समस्याओं पर विचार करके उसका समुचित समाधान खोजने का प्रयास करते हैं। लेकिन उपर्युक्त समानताओं के बावजूद मानवतावाद और धर्म के बीच महत्वपूर्ण अन्तर भी पाया जाता है। वास्तव में यह अन्तर इनके विचार करने के तरीके अर्थात् साधन को लेकर है। मानवतावाद उन सभी मान्यताओं व सिद्धान्तों का निषेध करता है जिनको धर्म में स्वीकार किया गया है। उदाहरण स्वरूप जहाँ मानवतावाद मानव को ही सर्वप्रमुख मानकर उसे ही उसके भाग्य का निर्माता तथा समस्त नैतिकता का आधार बताता है वहीं धर्म एक ऐसी अलौकिक सत्ता की कल्पना करता है जो सर्वोच्च, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा समस्त विश्व का आधार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों के साधन भले ही भिन्न-भिन्न हो पर साध्य अर्थात् लक्ष्य एक ही है और वह है समस्त मानव व समाज का कल्याण। अलग-अलग साधनों के द्वारा दोनों एक ही लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि दोनों के बीच अनेक असमानताओं के होते हुए भी एक सामन्जस्य विद्यमान है।

संदर्भ :

1. लामेण्ट, कालिस, द फिलॉसफी ऑफ ह्यूमैनिज्म, पृ. 23
2. सिम्पसन, जे.ए., आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 475

3. शर्मा, चन्द्रधर (2016), पाश्चात्य दर्शन, (वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास), पृ. 15
4. डॉ. डी. डी. बंदिष्टे (सं.), भारतीय दार्शनिक निबंध, पृ. 263
5. डॉ. विमला गुरु, मानवतावादः भारतीय परम्परायें, पृ. 6
6. आप्टे, उमाकान्त केशव (1990), भारतीय समाज चिन्तन (नोएडा: जागृति प्रकाशन), पृ. 49
7. वर्मा, वेदप्रकाश (1991), धर्म दर्शन की मूल समस्याएँ (दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय), पृ. 8
8. महाभारत, कर्णपर्व, 69.58
9. वैशेषिक सूत्र, 1.1.2
10. मनुस्मृति, 6.92
11. वर्मा (1991), पूर्वोक्त, पृ. 9



राष्ट्रवाद एवं बिहार में पत्रकारिता

○ अक्षय कुमार¹

○ डॉ. मो. निजामुद्दीन रिजवी²

संक्षिप्ति

भारतीय स्वराज के लिए संघर्ष का एक वृहद् इतिहास रहा है। अनेक संघर्ष एवं बलिदानों के बावजूद भारतीय राष्ट्रीय चेतना अथवा राष्ट्रवाद पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता रहा है। साम्राज्यवादी इतिहासकार भारत में राष्ट्रवाद जैसी कोई चीज नहीं थी, ऐसा मानते हैं। अनिल सील का वक्तव्य है, “भारत न तो राष्ट्र था न ही राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में था, यह तो अलग-अलग धर्म क्षेत्र एवं समुदायों का समुच्चय भर था”। दूसरी विचारधारा में पार्थ चटर्जी जैसे इतिहासकार हैं जो भारतीय राष्ट्रवाद को मिश्रित मानते हैं। वह अपनी पुस्तक ‘द नेशन एंड इट्स फ्रेगमेंट्स’ में लिखते हैं, भारतीय राष्ट्रवाद पश्चिम से भिन्न किंतु उससे उत्पन्न संवाद है यानी यह भौतिक रूप से पश्चिमी एवं आध्यात्मिक रूप से भारतीय हैं। सुमित सरकार एवं बिपिन चंद्र जैसे इतिहासकार ब्रिटिश एवं भारतीय हितों के टकराव को राष्ट्रीय चेतना का उद्भव मानते हैं। प्रति आधुनिकतावादी टैगोर एवं गांधी जैसे व्यक्ति राष्ट्रवाद को ब्रिटिश प्रतिरोध के साथ-साथ अतीत के गौरव की भावना की विचारधारा पर आधारित मानते हैं। इन सबों से निकटतम वक्तव्य पंडित नेहरू का प्रतीत होता है। वह कहते हैं, भारत में विभिन्नताओं में एकता है भले ही यह विभिन्न धर्म जाति क्षेत्रों का समूह है परंतु इन साझे समूहों में एकता है। यूरोपीय अथवा साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारतीय एवं यूरोपीय राष्ट्रवाद को हूबहू मिलाने की कोशिश में अथवा उसके स्वरूप को पहचानने में चूक कर दी। राष्ट्रीय चेतना एक विचारधारा है जिसमें राष्ट्र के हित के लिए एक मानसिक संवेदना का विकास होता है। यह राष्ट्रवाद के निकट है या यूं कहें कि राष्ट्रवाद का आधार। राष्ट्रवाद ‘Natio’ शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है feeling of oneness यानी ‘एकत्व की भावना’। जब राष्ट्रहित में अधिकतम जनता एक जैसी सोचती है तो वह विचारधारा राष्ट्रवाद है और उन

1. शोधप्रज्ञ, इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर, बिहार

2. एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग, आर.डी.एस कॉलेज, मुजफ्फरपुर

विचारधाराओं की जो आधारशिला है, वह राष्ट्रीय चेतना है। आदिवासियों- किसानों के द्वारा प्रारंभिक प्रतिरोध देखने को मिलते हैं, इसके बाद 1857 की क्रांति महत्वपूर्ण है जिसके द्वारा स्वतंत्रता संघर्ष की नींव डाली गई। भारत में पत्रकारिता तो 1780 में बंगाल गजट से प्रारंभ हो गया था परंतु बिहार में पत्रकारिता इसके लगभग 100 वर्षों बाद बिहार बंधु (1874, पटना) जिसे केशव राम भट्ट द्वारा संपादित किया गया था। संस्कृत में प्रथम समाचार पत्र विद्यार्थी था एवं उर्दू में नुरुल अनवर जैसे समाचार पत्र बिहार से निकले थे। महाराज कामेश्वर सिंह द्वारा द इंडियन नेशन नामक पत्रिका 1932 में निकाली गई। सहजानंद सरस्वती ने हुंकार नामक पत्रिका के द्वारा किसानों के आंदोलन को मजबूत किया। हजारीबाग जेल के कैदियों द्वारा कारागार एवं बंदी जीवन जैसे पत्रिकाएँ निकाली जाती रहीं जिसने सामान्य जनमानस में राष्ट्रभक्ति की भावना जागृत की, उन्हें आंदोलन के लिए प्रेरित किया तथा तत्कालीन वैश्विक घटनाओं से परिचित करा कर उनमें सामाजिक जागरूकता कायम की। अधिकांश जनता अशिक्षित थी जिसके कारण इसकी एक सीमा रही। फिर भी बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हम महिलाओं एवं छात्रों की विशेष भूमिका देखते हैं। यह कहीं ना कहीं सामाजिक जागरूकता एवं सूचना की जो क्रांति हुई उसका परिणाम था। सच कहें तो राष्ट्रीय चेतना बिहारियों में पनप चुकी थी। इतना अवश्य कहा जा सकता है समाचार पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से सामान्य जनमानस एवं सरकार के मध्य संवाद स्थापित हुआ और इससे वैचारिक परिवर्तन के साथ साथ आंदोलनों के परिणाम में सुगमता आई।

बीज शब्द : पत्रकारिता, वैचारिक परिवर्तन, सामाजिक जागरूकता, सूचना की क्रांति, वैश्विक क्रांति, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रवाद ।

राष्ट्रवाद : दुनिया में कहीं भी जो क्रांति आई वह उस राज्य में फैल रही नवीन विचारधारा, राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीय चेतना का परिणाम था। यह विचारधारा जब अधिकतम जनमानस के मस्तिष्क में घर कर जाती है। तब उससे पनपने वाली क्रियाविधि राष्ट्र को क्रांति के लिए अभिप्रेरित करती हैं। खासकर उन राष्ट्रों को जो अधीन हो अथवा विकसित होने के लिए संघर्ष कर रहे हों। आश्चर्य की बात यह भी है जो राष्ट्र आज विकसित है वहाँ भी राष्ट्रवाद की विचारधारा प्रबल रही है। चाहे वह अमेरिका हो, जापान हो, रूसिया हो, चाइना हो इजराइल हो अथवा कोई अन्य यूरोपिय देश।

राष्ट्रवाद एक विचारधारा के रूप में एक विशेष राष्ट्र के हितों को बढ़ावा देता है।¹ इसकी मान्यता है प्रत्येक राष्ट्र को पर नियंत्रण से मुक्त होकर खुद नियंत्रित होना चाहिए। इसका उद्देश्य जाति धर्म भाषा क्षेत्र राजनीति एवं संस्कृति के साझे संयोजन के आधार पर एकल राष्ट्रीय पहचान निर्मित करना है।² इसके प्रकार को देखें तो इसमें मुख्य दो भाग हैं जातीय एवं नागरिक राष्ट्रवाद। हालांकि, इसके अन्य रूप भी देखने को मिलते हैं जैसे कि आर्थिक राष्ट्रवाद, वामपंथी राष्ट्रवाद, उदार राष्ट्रवाद, लिंग मांसल राष्ट्रवाद एवं स्वदेशी राष्ट्रवाद इत्यादि। राष्ट्रवाद कि कुछ नकारात्मक परिणाम भी देखने को मिलते हैं। जैसे जर्मनी नाजीवाद एवं इटली में फासीवाद के कारण नस्लीय नरसंहार जातीय राष्ट्रवाद का ही परिणाम था। इस विचारधारा के प्रभाव वाले देश में तानाशाही शासन होने की प्रबल संभावना होती है। इस विचारधारा को उसके परिणाम के आधार पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में देखा जाता है। नेशन शब्द का प्रयोग यूरोप में सामूहिक पहचान के लिए किया जाता था। राष्ट्रवादी विचारधारा का विकसित रूप फ्रांसीसी क्रांति के बाद देखने को मिलती है। राष्ट्र-राज्य का सिद्धांत फ्रेडरिक हीगल ने दिया। अर्नेस्ट गैलेनर ने राष्ट्रवाद पर व्यापक शोध किया। उनकी पहली रचना विचार और परिवर्तन 'Thought and change' 1964 से प्रारंभ होकर राष्ट्र और राष्ट्रवाद 'Nation and Nationalism' 1983 में जाकर समाप्त हुई। गैलेनर महोदय ने कहा कि आधुनिकता की खोज में मानवता का इतिहास समाप्त

हो रहा है। इनका मानना है कि आधुनिकीकरण कृषि समाज से औद्योगिक समाज में जाने का परिणाम था।³ आलोचकों में ऐ.सी. ग्रेलींग का तर्क है “पृथ्वी पर ऐसा कोई देश नहीं है जो एक से अधिक भिन्न लेकिन आमतौर पर सह-अस्तित्व वाली संस्कृति का घर नहीं है। सांस्कृतिक विरासत राष्ट्रीय पहचान के समान नहीं है”।⁴ लिसा वीडन के अनुसार राज्य एवं जनता सर्वांगसम है।⁵ प्रशिया के विद्वान जोहान गॉटफ्रीड हेरडर (1744-1803) ने 1772 में अपने “ग्रंथ ऑन द ओरिजिन ऑफ लैंग्वेज” में एक सामान्य भाषा की भूमिका पर बल देते हुए इस शब्द की उत्पत्ति की।⁶ उन्होंने राष्ट्रीयता और देशभक्ति की अवधारणाओं को असाधारण महत्व दिया। “वह जिसने अपनी देशभक्ति की भावना खो दी है, उसने खुद को और अपने बारे में पूरी दुनिया को खो दिया है”, यह सिखाते हुए कि “एक निश्चित अर्थ में प्रत्येक मानव पूर्णता राष्ट्रीय”।⁷ इतिहास का राष्ट्रीयकरण इतिहासलेखन में इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है जो सामान्य सार्वभौमिक इतिहास से “स्वयं के” इतिहास को अलग करने की प्रक्रिया का वर्णन करता है, अतीत को समझने, समझने और व्यवहार करने के तरीके से इतिहास के निर्माण के परिणामस्वरूप एक राष्ट्र के इतिहास के रूप में।⁸ विभिन्न देशों में राष्ट्रवाद के समर्थन एवं विरोध में विचारधाराएं व्याप्त हैं। सऊदी अरब इत्यादि देशों में सर्व-इस्लामवाद खुद को सर्व-राष्ट्रवादी विचारधाराओं से अलग करता है। यह अंतरराष्ट्रीयवाद का समर्थन करता है। वही 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में कोरियाई राष्ट्रवादियों द्वारा “ सदाएजुई “ शब्द का प्रयोग किया गया। इस आधुनिक शब्द का पूर्ववर्ती ऐतिहासिक शब्द “साडे” है, जो मेनसियस से आया है, जिसका अर्थ है “छोटे द्वारा महान की सेवा” या “एक छोटा राज्य एक बड़े को समायोजित करता है।”⁹ सियनीज्म या यहूदीवाद वह विचारधारा है जो यहूदियों के लिए मातृभूमि की स्थापना का समर्थन करता है। जो यहूदियों के विचार से मेल खाता हो और उनके हितों का संरक्षक हो। जैसे कि इजरायल-फिलिस्तीन।¹⁰ इस प्रकार हमने देखा कि राष्ट्रवाद विभिन्न देशों में अनेक अर्थों में व्याप्त है। जबकि आलोचकों के अनुसार राष्ट्रवाद जैसी कोई चीज है ही नहीं।

बिहार में पत्रकारिता का अभ्युदय

बिहार में हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत एवं क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार पत्र निकलने के प्रमाण मिलते हैं। बिहार में पत्रकारिता का शुभारंभ बिहार बंधु (1872-74) से होता है। ऐसा माना जाता है कि बिहार बंधु से पहले ‘पाटलिपुत्र सौरभ’ नाम की एक पत्रिका निकलती थी जो हस्तलिखित होती थी परंतु इसके साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। अतः इसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता। हालांकि पटना के कमिश्नर विलियम टेलर ने 3 सितंबर 1856 को ‘अखबार ए बिहार’ का प्रकाशन पटना से किया जो एक उर्दू समाचार पत्र था। बिहार बंधु “हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को लेकर इस सप्ताहिक अखबार का प्रकाशन किया गया था। केशवराम भट्ट तथा मदन मोहन भट्ट ने सन 1872 में बिहार बंधु का प्रकाशन कोलकाता से किया। यह कोलकाता के मनिक तल्ला स्ट्रीट नामक स्थान में गोपाल चंद्र डे द्वारा पूरन प्रकाश प्रेस से छपती थी। बिहार में इसके प्रथम संपादक मुंशी हसन अली रहे जो हिंदी, उर्दू फारसी के विद्वान थे। बिहार बंधु के प्रकाशन के लिए मदन मोहन भट्ट ने बिहार (पटना) में पहला हिन्दी प्रेस 1874 में कायम किया”।¹¹ प्रारंभ में यह पटना कॉलेज के पास किसी जगह से छपती थी फिर यह कुनकुन सिंह लेन से छपने लगी। बिहार बंधु का ध्येय वाक्य था “सत्य नास्ति भयं क्वचित्”। सच तो यह है कि डर कहीं नहीं है। हिंदी के लगभग सभी पत्रों में ऋग्वेद का “यतेमहि स्वराज्ये” अर्थात् हम स्वराज के लिए सदा यत्न करें का उद्धोषित रहता था। बिहार बंधु के एक अंक में छपा था। “हम लोग राज भक्त हैं, खुशामदी नहीं। हम तो अपने मुल्क के दोस्त हैं। बस, जो हमारे मुल्क का दोस्त है, वह हमारा भी दोस्त जो हमारे मुल्क का दुश्मन है, वह बेशक हमारा भी दुश्मन है”।¹² बिहार में अंग्रेजी समाचार पत्रों का अभ्युदय बिहार में पहला अंग्रेजी समाचार पत्र पटना के बांकीपुर से 1875

में प्रकाशित हुआ। इसका नाम 'बिहार हेराल्ड' था। इसके मुद्रक एवं प्रकाशक नारायण चंद्र चक्रवर्ती थे। यह 12 पृष्ठों में छपती थी जिसमें सभी प्रकार के खबरों का कवरेज किया जाता था। इसके प्रथम संपादक गुरु प्रसाद सेन हुए। "पत्रिका का आकार 33 गुना 21 सेमी होता था एवं इसका अपना प्रेस था। इसमें फोन एंड फैसी समाचार संक्षेप ताजे स्थानीय और प्रांतीय समाचार लंदन की खबरें और समाचार संजोए जाते थे"।¹³ जमीन मालिकों या लैंड ओनर्स एसोसिएशन के सदस्य गुरु प्रसाद सेन जो ढाका से आकर पटना बस गये। यह अखबार 1874 से 1987 तक चला। इसका पुनः प्रकाशन जुलाई 2015 में हुआ।¹⁴ सर्व लाइट एवं द इंडियन नेशन अन्य महत्वपूर्ण समाचार पत्र थे।

बिहार में उर्दू पत्रकारिता का प्रारंभ 'नुर-उल-अनवर' नामक पत्रिका से होता है। 'बिहार में पहला उर्दू प्रेस कमरुद्दीन अहमद द्वारा 1850 में आरा में स्थापित किया गया और यह 1853 तक आरा से ही निकलता रहा'। हालांकि इससे पूर्व मौलवी अकरम अली के एडिटरशिप में 'उर्दू अखबार' निकला था। बिहार में उर्दू के साथ फारसी भाषा का भी उतना ही महत्व था परंतु अधिकांश जनता उर्दू को ज्यादा पसंद करती थी। सरकारी सेवाओं में जाने के लिए उर्दू का ज्ञान होना आवश्यक था। 3 सितम्बर, 1856 को पटना के अंग्रेज कमीशनर विलियम टेलर द्वारा की गई व्यवस्था से उर्दू साप्ताहिकी 'अखबार ई बिहार' का प्रकाशन हुआ। अखबार उल अखबार एक सप्ताहिक उर्दू पत्रिका थी।

साइंटिफिक सोसायटी के द्वारा 1866 में प्रारंभ हुआ। अलीगढ़ की एक शाखा मुजफ्फरपुर में स्थापित हुई जिसका नाम मुजफ्फरपुर साइंटिफिक सोसायटी था। इस पत्रिका में समसामयिक मुद्दे एवं लेखों का संचार होता था। 1866 में ही पटना से 188 पत्रिका निकलती थी जिसका नाम था 'चश्म ए इल्म' एक पाक्षिक पत्रिका थी।¹⁵ नादिर उल अखबार एक उर्दू साप्ताहिक पत्रिका थी जो मुंगेर से प्रकाशित होती थी।¹⁶ इन समाचार पत्र को छपवाने से पूर्व उसकी प्रति सरकार को सौंपने होती थी। 1875 में तिरहुत क्षेत्र में एक भयंकर अकाल आया। अखबार उल अखबार ने एक लेख छपा जिसमें सरकार को जनता की मदद करने की बात कही गई। जबकि दूसरी तरफ चश्मे इल्म में भारत में हो रहे आर्थिक दोहन को लेकर दुख व्यक्त किया जाता था। इसके लेखों में इस बात की चर्चा होती थी कि कैसे ब्रिटिश व्यापार भारतीय उद्योग धंधों को नष्ट कर रहा है और सरकार की नीतियाँ एकपक्षीय हैं। सरकार को भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने हेतु प्रोत्साहन राशि देने की बात भी कही जाती थी। उर्दू पत्रिकाओं में सामाजिक एवं राष्ट्रीय मुद्दों का विस्तृत विवरण होता था। अल पंच का प्रकाशन द लंदन पंच के आधार पर हुआ था इसमें कार्टूनों द्वारा राजनीतिक आर्थिक मुद्दों पर व्यंग व्यक्त किया जाता था। कार्टूनों का प्रयोग पहली बार इस पत्रिका में देखने को मिलता है। बिहार की उर्दू पत्रिकाओं में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त पत्रिकाओं में एक 'मुर्ग ए सुलेमान' था। यही एक पाक्षिक पत्रिका थी जो 1870 मुंगेर से प्रकाशित होती थी। मुरुग ए सुलेमान ने "बिहार बिहारियों के लिए" का नारा दिया एवं बंगाल से अलग होने की बात कही।¹⁷ इस अलगाव का मुख्य कारण बिहार में नौकरियों पर बंगालियों का कब्जा होना था साथ ही बिहार के निवासी अंग्रेजी पर कमजोर पकड़ रखते थे जिस कारण बिहारियों की उपेक्षा होती रही। 1906 बिहार में एक भी सरकारी इंजीनियर नहीं था किसी भी महत्वपूर्ण विभाग में दस में नौ अधिकारी बंगाली ही होते थे। वहीं कलरकी अल पोस्ट पर 75% तक बंगालियों की नियुक्ति थी। अतः बिहारियों के उत्थान के लिए बिहार को एक अलग प्रांत के रूप में स्वीकृत कराना बुद्धिजीवियों का प्रथम उपदेश हो गया। 1905 में बंगाल विभाजन के बाद बिहार को भी अलग प्रांत बनाने की घोषणा 22 मार्च 1912 में की गई।

बिहार में संस्कृत समाचार पत्र : बिहार में संस्कृत में भी कुछ पत्र पत्रिकाएं छपे। धर्मनीति तत्वम् (1880, मासिक), बिहार में पहला संस्कृत समाचार पत्र 'धर्मनीति तत्वम्' जो एक मासिक पत्रिका थी इसका प्रकाशन

1880 में पटना से हुआ था। इसके बाद 1918 में त्रैमासिक 'मित्रम' एवं 1940 में 'संस्कृत संजीवनम' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित हुई। आजादी के बाद देववाणी विद्यार्थी एवं भारतीय जैसे समाचार पत्रों के संपादन किए गए। 'द पटना टाइम्स' का संपादन मोहम्मद यूनस द्वारा किया गया था यह सप्ताहिक पत्रिका के रूप में 1924 से शुरू हुआ और 1943 में शंभू नाथ झा के नेतृत्व में दैनिक हो गया 1944 में इस पत्रिका का संपादन बंद हो गया।¹⁸ बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीनतम प्रयास किए गए। इस दौरान बाबू महेश्वर प्रसाद के जगह अल्फ्रेड कनिंघम को 'द बिहारी' का चीफ एडिटर बना दिया गया। बिहार की पत्रकार अब नया नेतृत्व खोज रहे थे। प्यारे दास के सुझाव से सच्चिदानंद सिन्हा ने समाचार पत्रों के संपादन का संकल्प लिया। बिहार जनरल लिमिटेड कंपनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ने 'द सर्चलाइट' को 15 जुलाई 1918 में सैयद हैदर हुसैन के नेतृत्व में ले लिया। सैयद हैदर हुसैन, गोपाल कृष्ण गोखले के सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसाइटी से जुड़े हुए थे। सर्च लाइट एक महत्वपूर्ण समाचार पत्र था जो दैनिक प्रारूप में प्रतिदिन पटना से छपता था। द सर्च लाइट एक राष्ट्रवादी समाचार पत्र था कांग्रेस समाचार पत्र की समर्थक थी इसमें लगातार सरकार के उन नीतियों की आलोचना की जाती थी जो जनता के अहित में थे।¹⁹ 'द इंडियन नेशन' नामक समाचार पत्र का संपादन दरभंगा महाराज कामेश्वर सिंह के नेतृत्व में पटना से 9 फरवरी 1931 को हुआ।

अखबारों पर प्रतिबंध

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारतीयों द्वारा संचालित सभी राजनीतिक संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित करने एवं क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट लागू करने के बाद सरकार ने अखबारों पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया। यूनाइटेड प्रेस दरभंगा के मालिक बाबू तारापद बनर्जी एवं उनके मुद्रण पर 'विदेशिया' नामक इश्टिहार छापने के कारण मुकदमा चलाया गया और जब्त कर लिया गया।²⁰ मजरुल हक के मद्रलैंड से सविनय अवज्ञा का समर्थन करने के कारण प्रबंध मुचालिका मांगी गई। अखबार ने उसे देने से इनकार किया तो उसे भी बंद कर दिया गया। मुजफ्फरपुर के मजिस्ट्रेट ने स्वामी विद्यानंद से 30 जनवरी के किसान समाचार में प्रकाशित दो निबंध के लिए बड़ी धनराशि की मांग की, यह पत्र मुजफ्फरपुर के बिहार बंधु प्रेस से निकलता था। उन पर 'अंग्रेज की कुकुर कु' शीर्षक नाम से लेख छापने का आरोप था। इसे भी जब्त कर लिया गया।²¹ महात्मा गांधी की रिहाई पर सर्चलाइट ने 8 फरवरी 1924 को लिखा "गांधी जी जैसे नेता को कैद करना मानवता के विरुद्ध अपराध था।"²²

निष्कर्ष

राष्ट्रवाद एक ऐसी विचारधारा है जो राष्ट्र को प्रथम मानकर कार्य करती है। लोगों के द्वारा राष्ट्र को सशक्त एवं महान बनाने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहना होता है। देश के लिए प्रेम एवं उसके उत्थान के लिए निरंतर कार्य करने होते हैं। छोटे देश में प्रबल राष्ट्रवाद देखने को मिलता है जबकि बड़े देशों में यह बहुआयामी स्वरूप में पाया जाता है। क्योंकि जाति क्षेत्र एवं भाषा की विविधता का प्रभाव भी राष्ट्रवाद पर पड़ता है। सच्चे अर्थ में देखे तो राष्ट्र के लिए जो वैचारिक एकता है, वही राष्ट्रवाद है। कई बार राष्ट्रवाद दूसरे देश के लिए नकारात्मक भी हो जाता है। यह राष्ट्रवाद का विकृत रूप है। राष्ट्रवाद में कोई समस्या नहीं है। समस्या उसके मानने वालों में है। मानव ही इसे कल्याणकारी एवं विध्वंसकारी बनाता है। सभी महत्वपूर्ण क्रांतियां राष्ट्रवादी विचारधारा का परिणाम रही हैं। क्रांतियों के विस्तार में समाचार पत्रों ने उत्प्रेरक का कार्य किया। भारत ही नहीं विश्व में भी इसके प्रमाण देखने को मिलते हैं। स्वदेशी आंदोलन की आधारशिला समाचार पत्रों ने ही रखी। सर्वप्रथम संजीवनी पत्रिका में बहिष्कार का सुझाव दिया गया। होम रूल आंदोलन पूर्णतः समाचार पत्रों द्वारा नियंत्रित होता था। महात्मा गांधी भी अपने विचारों को अपने समाचार पत्र 'यंग इंडिया' एवं 'हरिजन' जैसे पत्रों में अंकित करते थे। बिहार में मजरुलहक का मद्रलैंड हो कामेश्वर सिंह का इंडियन नेशन हो या सच्चिदानंद

सिन्हा का बिहार हेराल्ड इन सभी के द्वारा बिहार में नवजागरण एवं क्रांतियों को गति प्रदान किया गया। सहजानंद सरस्वती ने हुंकार पत्रिका के माध्यम से किसानों के समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर का बना दिया। कैदियों द्वारा 'कारागार एवं बंदी जीवन' जैसे पत्र निकाले गए। इस प्रकार समाचार पत्रों ने समाज के प्रत्येक वर्ग को छूने का कार्य किया। चूंकि शिक्षितों की संख्या कम थी, अतः शिक्षित छात्र शिक्षक एवं क्रांतिकारी गांव-गांव जाकर क्रांति के बारे में लोगों को प्रेरित करते रहे। विचारों को लोगों में तक पहुंचाने के लिए समाचार पत्र अत्यंत महत्वपूर्ण साधन रहा है। भारतीय स्वतंत्रता में समाचार पत्रों का स्थान उतना ही है जितना की किसी क्रांतिवीर का रहा है।

संदर्भ :

1. स्मिथ, एंथोनी. राष्ट्रवाद : सिद्धांत, विचारधारा, इतिहास, राजनीति. 2010, पृ. 9, 25-30
2. डोनाल्ड, इपरशील. राष्ट्र और राष्ट्रवाद, वॉल्यूम 13, अंक 3, 2007. पृ. 395 से 416
3. मिनोथ, कैनेथ. गैलनर थ्याोरी ऑफ नेशनलिज्म : ए क्रिटिकल एसेसमेंट, राष्ट्रवाद का विश्वकोश. पृ. 107-9
4. ए.सी, ग्रेलींग. द मीनिंग ऑफ थिंग्स : अपलाइन्ग फिलासफी की ऑफ लाइफ, विडफील्ड - निकोलसन, लंदन 2001. पृ. 78-79
5. विडेन, लिसा. पेरीफेरल विजन : पब्लिक पावर एंड परफॉर्मेंस इन येमेन, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 2008, पृ. 85
6. क्रिस्टोफर, डांडेकर. नेशनलिज्म एंड वायलेंस, ट्रांजैक्शन पब्लिशर, न्यू जर्सी, 1998, पृ. 52
7. टी.सी. डब्ल्यू क्लानिंग. द कल्चर आफ पावर एंड पावर एंड आफ कल्चर ओल्ड रिज्यूम यूरोप 1660-1789. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 2003, पृ. 259-260
8. कासयनोव, जॉर्ज फिलिप. ए लैबोरेट्री आफ ट्रांजैक्शनल हिस्ट्री यूक्रेन एंड रीसेंट यूक्रेन हिस्टोरियोग्राफी बुडापेस्ट, हंगरी, सेंट्रल यूरोपीयन यूनिवर्सिटी प्रेस, बुडापेस्ट, 2009, पृ. 7
9. आर्मस्ट्रांग चार्ल्स के. द कोरियाज, रुटलेज पब्लिशर, मिल्टन पार्क लंदन, 2013, पृ. 5
10. बिगर गेडियोन, द बाउंड्रीज ऑफ मॉडर्न फिलिस्तीन, रुटलेज पब्लिशर, न्यूयॉर्क 2004, पृ. 5-9, 57- 62
11. श्रीधर, विजय दत्त. भारतीय पत्रकारिता कोश, खंड 1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010 पृ. 227
12. बिहार बंधु, 9 फरवरी 1878. बांकीपुर, पटना
13. श्रीधर, विजय दत्त. 2010 भारतीय पत्रकारिता कोश, खंड 1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 245
14. बीबीसी न्यूजहिंदी 17 अगस्त 2015, पटना,
15. बंगाल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट 1872-73, पृ. 459
16. रिपोर्ट ऑन द नेटिव पेपर्स फॉर द वीकेंड इनडिग. 9 जनवरी 1875, पृ. 7-8
17. रिपोर्ट ऑन नेटिव न्यूजपेपर, 5 फरवरी 1876, पृ. 4
18. एन कुमार, जर्नलिज्म इन बिहार, पृ. 55
19. चीफ सेक्रेटरी डिपार्टमेंट, स्पेशल सेक्शन, समाचार पत्रों पर वार्षिक रिपोर्ट 1937 में प्रकाशित फाइल 1-38, 1938 पृ. 2
20. दत्ता, के.के. खंड एक, पूर्वोक्त, पृ. 425
21. मुजफ्फरपुर के मजिस्ट्रेट टी ब्रिज का तिरहुत के आयुक्त को 30 मार्च 1922 का पत्र
22. द सर्वलाइट, 8 फरवरी 1924, पटना



इक्कीसवीं सदी के संदर्भ में भारत और चीन के समकालीन आर्थिक एवं सामरिक संबंधों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

○ अरुण यादव¹

○ डॉ. विवेक कुमार मिश्र²

संक्षिप्ति :

मानवीय विकास की संभावनाओं को अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के स्तर पर सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप में यथार्थवादी स्वरूप के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का व्यावहारिक आधार मानव के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूपों में 19वीं शताब्दी से शुरू हो गया, किंतु इसे यथार्थ एवं मूर्त रूप 20वीं शताब्दी में राजनीति विज्ञान और अंतरराष्ट्रीय संबंध विषय के पृथक्करण पर देना शुरू किया गया। इसका व्यावहारिक रूप 1940-50 के दशक में स्वतंत्र हुए उपनिवेश देशों के व्यवहार से भी वंचित नहीं रखा जा सका। जिसका संबंध एवं परिणामात्मक अध्ययन भारत और चीन के रूप में देखा जा सकता है दोनों ही देश की नवीन संरचना एवं राज्य की उत्पत्ति समकालीन हुई। जहाँ दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग और समन्वय का रास्ता बहुत सीमित रहा, चीन राष्ट्रहित हठधर्मिता की विस्तारवादी नीति के कारण दोनों देशों के बीच में संबंध मधुर नहीं रहे। हालांकि 21वीं शताब्दी में दोनों देशों ने आर्थिक नीतियों को स्वीकार करते हुए आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया, वहीं चीन ने वैश्विक शक्ति के रूप में स्वयं को स्थापित करने के लिए न केवल पड़ोसी देशों की संप्रभुताओं का उल्लंघन किया, बल्कि अपनी विस्तारवादी नीति से अंतर्राष्ट्रीय कानूनों की अवहेलना की है। भारत और चीन के संबंधों में जहाँ आर्थिक संबंधों पर सरलता दिखाई पड़ती है, वहीं हिंद महासागर एवं भारत की लद्दाख एवं अरुणाचल प्रदेश सहित उत्तर पूर्व की सीमाओं पर चीन की विस्तारवादी

-
1. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग, मानवीय एवं सामाजिक विज्ञान स्कूल, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर।
 2. सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग, मानवीय एवं सामाजिक विज्ञान स्कूल, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा गौतम बुद्ध नगर।

नीतियां भारत को सामरिक चुनौतियां दे रही हैं। अतः इस लेख में दोनों देशों के बीच समकालीन आर्थिक और सामरिक संबंधों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

बीज शब्द : मानव विकास, सामरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, यथार्थ एवं मूर्त रूप, राष्ट्र हठधर्मिता, विस्तारवादी नीति।

भारत और चीन का सांस्कृतिक और सामाजिक साझा इतिहास रहा है। लेकिन विश्व युद्ध के बाद दोनों की राजनीतिक एवं आर्थिक विकास की विभिन्न संस्थाओं और विचारों का मार्ग द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बदल गया, जहां भारत को 15 अगस्त 1947 को स्वराज प्राप्त हुआ, वहीं 1949 को माओ के द्वारा पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना का उदय हुआ, इन परिस्थितियों में दोनों देशों ने विकास के अपने साधनों को अलग-अलग तौर तरीकों से विकसित किया। जिसमें भारत ने अपने विकास की अवधारणा को लोकतांत्रिक ढंग से गंभीरतापूर्वक प्रस्तुत किया। शुरुआती दौर से ही भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू भारत और चीन को एशिया के विकास को मुख्य लिया, क्योंकि उपनिवेशवाद की संस्कृति के बाद दोनों देशों ने अपने राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आयाम को न केवल भारत और चीन तक सीमित रखने का उद्देश्य निर्धारित किया, बल्कि समस्त एशिया में शांति और सुरक्षा को एक जिम्मेदारी और उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुति दी।¹ इसी संदर्भ में भारत ने चीन को न केवल सुरक्षा परिषद के मामले में बल्कि चीन के द्वारा 38वीं समांतर रेखा के समझौते में सकारात्मक सहायता दी; हालांकि, भारत ने शुरुआती दौर से ही, चीन के द्वारा 24 अक्टूबर 1950 को पीकिंग रेडियो² पर तिब्बत को साम्राज्यवादी षड्यंत्र से मुक्ति दिलाने की घोषणा प्रकाशित कर, सैनिक कार्यवाही करने की चीन की इस नीति की आलोचना की।³

1950 के दशक के मध्य में भारत और चीन के बीच बौद्ध संस्कृति को आधार बनाते हुए पंचशील समझौता 1954 में किया गया। इस समझौते में गौतम बुद्ध के दर्शन की झलक दिखाई पड़ी क्योंकि दोनों ही देश में बौद्ध धर्म को मानने करने वाले करोड़ों लोग हैं जिसके कारण तत्कालीन परिस्थितियों में दोनों के राजनीतिक राज्य कार्यकर्ताओं के द्वारा यह निश्चित किया गया कि बौद्ध धर्म के आधार पर दोनों देशों के बीच पंचशील समझौता किया जाएगा। जोकि एक शांतिपूर्ण और सहअस्तित्व पर आधारित संधि थी। जिससे दोनों देशों में हिंदी चीनी भाई-भाई का भाईचारा पैदा होगा। अतः भारत और चीन के बीच 23 मई 1954 को तिब्बत पठार के भारतीय भाग को लेकर एक समझौता हुआ, जिसमें 29 जून 1954 को भारत और चीन के बीच एक आठ वर्षीय व्यापारिक समझौते के मध्य के माध्यम को बल देते हुए सकारात्मक दिखाई दिए। जिसमें अतिरिक्त देसी अधिकार चीन को सौंपे गए।

इस पंचशील⁴ (29 अप्रैल 1954 को हस्ताक्षर हुए) समझौते में निम्नलिखित बिंदु शामिल किए गए हैं जिसमें

- दोनों देश एक दूसरे की संप्रभुता की रक्षा एवं आदर करेंगे।
- अनाक्रमण की नीति का अनुसरण करेंगे।
- एक दूसरे के अंतरिक मामलों में हस्तक्षेप ना करना।
- समानता और आपसी लाभ।
- शांति पूर्वक सह-अस्तित्व का अनुसरण।⁵

आदि उक्त बिंदुओं के आधार पर ही भारत और चीन के बीच 'हिंदी चीनी भाई-भाई' की एक विशिष्ट आदर्शवादी अवधारणा का अनुभव हुआ।

1954 में हिंदी चीनी भाई-भाई, की जो भविष्य आधारित परिकल्पना निश्चित की गई थी, उसे शुरुआती दौर में दोनों देशों के द्वारा गंभीरता से लिया गया, क्योंकि 1954 में हुए इंडोनेशिया के बांडुंग में एशिया और अफ्रीका देशों के सम्मेलन में चीन के द्वारा सहयोग देकर इसका निर्वहन किया गया, लेकिन चीन ने 1956 में अक्साई चीन में सैनिक महत्व के लिए सड़क बनाकर भारत और चीन के संबंधों में नकारात्मक शुरुआत कर दी⁶ जिसके दूरगामी परिणाम यह हुए कि चीन और पाकिस्तान नजदीक आ गए और पहाड़ी क्षेत्र के माध्यम से चीन और पाकिस्तान की दूरी को कम करने के लिए स्थल मार्ग स्थापित करना, इस संबंध का आधार बन गया। जिसे कालांतर में चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारा, सी.पी.ई.सी. के नाम से जाना जाता है।

1958 में चाइना पिक्टोरियल में दूसरी बार ऐसा मानचित्र प्रकाशित किया गया, जिसमें चीन ने लगभग 50000 वर्ग मील का भारतीय क्षेत्र अपनी सीमा के अंदर दर्शाया। भारत और चीन की पश्चिम सीमा रेखा 1600 किलोमीटर लंबी है⁷, जो जम्मू-कश्मीर को चीन के शिंजियांग उइगर स्वायत्त क्षेत्र, तथा तिब्बत को लद्दाख से अलग करती है। इस सीमा रेखा को 1684 में लद्दाख तिब्बत संधि तथा 1842 कि कश्मीर तिब्बत संधि के द्वारा इसे तय किया गया था। मध्य क्षेत्र की सीमा लगभग 450 किलोमीटर लंबी है, जो हिमाचल की स्पीति और नीला रंग की पहाड़ियों के क्षेत्र को अलग करती है। यह तिब्बत चीन संधि जो कि 29 अप्रैल 1954 को समझौते के रूप में स्वीकार की गई। वहीं दूसरी ओर पूर्वी सीमा रेखा जो 11 किलोमीटर लंबी है, अरुणाचल प्रदेश को तिब्बत से अलग करती है। जिसका निर्धारण 1914 में चीन में अंग्रेजों के मध्य हुए शिमला सम्मेलन में किया गया था। यह मैकमोहन रेखा के नाम से जानी जाती है।⁸

चीन का तिब्बत पर आक्रमण एवम् भारत के साथ संबंधों में तनाव -

1958 में चीन की विस्तारवादी नीति के कारण तिब्बत में अराजकता का माहौल स्थापित हुआ, जिसके कारण तिब्बत के धर्मगुरु दलाई लामा 14000 अनुयायियों सहित भारत में घुस कर शरण ली।⁹ न तो दलाई लामा के इस आब्रजन के बाद भारत ने नेता दलाई लामा सरकार को मान्यता दी और न ही उनके द्वारा स्थापित की गई तिब्बत सरकार को मान्यता दी। लेकिन चीन ने इस पर सैनिक कार्यवाही के रूप में भारत के प्रति नकारात्मक कार्यवाही की।

फलस्वरूप 8 सितंबर 1962 को चीन ने मैकमोहन सीमा रेखा पार कर एक हफ्ते तक हिमाचल अरुणाचल प्रदेश वाले क्षेत्र पर आक्रमण कर उसे हथियाने का प्रयास किया।¹⁰ 20 अक्टूबर 1962 को दोनों देशों के बीच युद्ध प्रारंभ हुआ तथा 21 नवंबर को चीन के द्वारा एकतरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी गई। इस युद्ध के कारण भारत के समक्ष न केवल विदेश नीति की संप्रभुता की सुरक्षा की चुनौती थी, बल्कि भौगोलिक सीमा रेखाओं पर भारत की संप्रभुता की चुनौती भारत के समक्ष थी।¹¹ युद्ध की इस रणनीति से न केवल भारत और चीन के आपसी संबंधों में दरार पैदा हुई बल्कि एक लंबे समय तक एशिया में युद्ध के रूप में तनावपूर्ण स्थिति बनी रही। जिसके कारण शीतयुद्ध कालखंड में विकासशील देशों के बीच परमाणु हथियारों की दौड़ शुरू हुई। जिसका प्रभाव मानव विकास को चुनौती और समाधान दोनों प्रस्तुत हुए, क्योंकि भारत जैसे देशों में जहाँ गरीबी के साथ-साथ बेरोजगारी अपने चरम स्तर पर थी, वहीं परमाणु हथियारों के लिए एक बड़ी धनराशि का खर्च करना पड़ा जिसे आर्थिक असंतुलन हुआ।

दोनों देशों के समकालीन संबंधों का तुलनात्मक विवरण -

भारत तथा चीन दोनों ही देश केवल विकासशील देशों की उभरती हुई अर्थव्यवस्था ही नहीं, बल्कि विश्व के स्तर पर विकसित देशों को स्थिर व प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करने वाली वैश्विक

आर्थिक शक्ति है। दोनों देशों ने जहाँ दुनिया की सबसे बड़ी जनसंख्या का प्रतिनिधि होने का नेतृत्व प्राप्त किया है, वही यह जनसंख्या विश्व की सबसे बड़ी जी.डी.पी. का प्रतिशत है और दुनिया में सबसे बड़े बाजार के अवसर का प्रतिनिधि कर रहे हैं। जिसके फलस्वरूप दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्था के लिए भारत और चीन आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं। इसका व्यावहारिक पक्ष भारत चीन एवं भारत-पाकिस्तान के संबंधों के अवलोकन से किया जा सकता है, क्योंकि तीनों ही देश लगभग समान परिस्थितियों में स्वतंत्र हुए किंतु विचारधारा एवं संस्कृति के साथ-साथ राजव्यवस्था अलग होने के कारण भारत के पाकिस्तान और चीन के साथ संबंध एक लंबे समय तक मधुर नहीं रहे। क्योंकि भारतीय उपमहाद्वीप में चीन एवं पाकिस्तान के द्वारा भारत प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष की रणनीति स्थानीय स्तर पर संप्रभुता को चुनौती देने के साथ-साथ वैश्विक पटल पर छद्म कूटनीति के माध्यम से दिखाई पड़ती है, जिसका परिणाम 1962 के चीन के द्वारा युद्ध थोपे जाने एवं वर्तमान परिदृश्य में स्ट्रिंग ऑफ पर्स से भारत को आर्थिक और सामरिक रूप से चुनौती देना चीन की विस्तारवादी साम्राज्यवादी नीति का परिणाम है। जिसमें अरब सागर में पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह से लेकर और बंगाल की खाड़ी में चिटगांव बंदरगाह तक चीन के द्वारा आर्थिक गतिविधियों के आधार पर विकसित किया जा रहा, आर्थिक गलियारा के माध्यम से भारत को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करने का प्रयास किया जा रहा है।

भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान से ही विकासशील एवं अल्प विकसित राज्यों के साथ लोकतांत्रिक संप्रभुता संरक्षण एवं सह-अस्तित्व की भावना के साथ संबंधों को स्थापित करते हुए दुनिया भर के देशों के साथ 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भारतीय भावनाओं को व्यावहारिक रूप दिया, किंतु चीन के द्वारा 1950 के दशक में अपनी अनियमित राजनीतिक अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए विस्तारवादी नीति के कारण, जिसका उदाहरण 1962 का भारत चीन युद्ध है।

1962 के युद्ध के बाद भारत ने चीन के साथ आपसी संबंधों को सुधारने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर सुधारात्मक पहल की¹² -

1. 1976 में 15 वर्षों के बाद के.आर. नारायण चीन के राजदूत बने, क्योंकि 1962 के युद्ध के बाद भारत और चीन ने आपसी संबंधों को राजनीतिक स्तर पर समाप्त कर दिया गया था।
2. 1979 में विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के द्वारा चीन की यात्रा एक राजनीतिक प्रतिनिधि के तौर पर की गई।
3. 1988-99 तक भारत चीन संबंधों का प्रभावी परिवर्तन काल रहा, जिसमें राजनीतिक विचारक दोनों देशों में हुए वैश्वीकरण के बदलावों का परिणाम मानते हैं।
4. 1992 में भारत के राष्ट्रपति के.आर. वेंकटरमन चीन की यात्रा पर गए।
5. 21वीं शताब्दी के शुरुआत में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के द्वारा चीन के विशेष आर्थिक क्षेत्र की परिकल्पना से प्रभावित होकर भारत में विशेष आर्थिक क्षेत्र समझौता किया एवं आर्थिक संबंधों को आगे बढ़ाया।
6. डॉ. मनमोहन सिंह, 2004-2014 की सरकार में भारत चीन संबंधों को सूचना प्रौद्योगिकी-तकनीकी के दौर में नया रूप दिया गया।
7. 2014 के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार में जहां दोनों देशों में आर्थिक एकरूपता को बल देने का प्रयास किया गया, वही चीन की बी आर आई (बेल्ट रोड इनीशिएटिव) शामिल इसलिए नहीं हुआ क्योंकि यह एक उपनिवेशवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है तथा यह असमानता के साथ

अंतरराष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन भी करता है। भारत चीन संबंधों के लिए एक चुनौतीपूर्ण पक्ष है, किंतु दोनों देशों ने व्यापारिक गतिविधियों को परस्पर कूटनीति से दूर रखकर स्थापित किया हुआ है। यद्यपि चीन के द्वारा अनेक बार लद्दाख और उत्तर पूर्वी भारत में अंतराष्ट्रीय सीमा रेखा का उल्लंघन करते हुए भारत के संप्रभुता को चुनौती दी है। गलवान घाटी का उदाहरण अत्यंत संवेदनशील है। उक्त संबंधों की वार्ता एवं समझौता के बाद भी चीन भारत के प्रति छद्म कूटनीति का प्रयोग कर रहा है।

अंतराष्ट्रीय सीमा रेखा को चुनौती -

चीन 1962 से लेकर गलवान घाटी की घटना तक अनेकों बार चीन, भारत की संप्रभुता को चुनौती पैदा कर चुका है। चीन की विस्तारवादी नीति उपनिवेश कालखंड में निश्चित हुई, अंतराष्ट्रीय सीमा रेखा मैकमोहन एवं भारत चीन के बीच तिब्बत और लद्दाख में अंतराष्ट्रीय सीमा को चीन द्वारा स्वीकार नहीं करता, जिसके कारण अनेक बार चीन के द्वारा लद्दाख सिक्किम अरुणाचल प्रदेश आदि क्षेत्रों में अपनी अवैध सैनिक गतिविधि से भारत को चुनौती दे चुका है, ब्रह्मपुत्र नदी पर बांध बनाकर अंतराष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करते हुए चीन-भारत की संप्रभुता को बार-बार चुनौती दे रहा है, क्योंकि चीन के द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी पर बांध बनाकर भारत के उत्तरी पूर्वी भाग को बाढ़ के कृत्रिम जसे प्रभावित कर सकता है। चीन के द्वारा ब्रह्मपुत्र नदी पर बनाए गए बांध के संदर्भ में भू-वैज्ञानिकों का मानना है कि ब्रह्मपुत्र नदी पर बांध से अंत की भौगोलिक संरचना में नकारात्मक प्रभाव होंगे।¹³

हिंद महासागर में चुनौती-

हिंद महासागर की परिस्थितियों एक निश्चित आर्थिक क्षेत्र से आगे अंतराष्ट्रीय कानून के दायरे में निर्धारित होती हैं, यद्यपि हिंद महासागर की आर्थिक और व्यापारिक गतिविधियां प्राकृतिक रूप से विकसित हुए जल मार्ग एवं जल संधियों का परिणाम है। जिससे न केवल एशिया बल्कि पूरी दुनिया में आर्थिक गतिविधियाँ संचालित हो रही हैं, किंतु चीन की विस्तारवादी-साम्राज्यवादी नीति के कारण न केवल चीन प्रशांत महासागर में कृत्रिम दीप बनाकर इस प्राकृतिक मार्ग के साथ-साथ विकासशील एवं अल्प विकसित देशों की संप्रभुता को चुनौती दे रहा है, बल्कि एशिया में अपने प्रतिनिधित्व भारत को स्ट्रिंग आफ पलर्स एवं बी.आर.आई. प्रोजेक्ट के माध्यम से आर्थिक और सामरिक रूप से घेरने का प्रयास कर रहा है। जिसका उद्देश्य चीन के द्वारा ग्वादर पोर्ट से लेकर चीन के उत्तरी पश्चिमी शिंजियांग उइगर स्वायत्त क्षेत्र तक भारत की संप्रभुता को चुनौती देते हुए चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारा का निर्माण किया है, वही हिंद महासागर में पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह, श्रीलंका में हंबनटोटा बंदरगाह, बांग्लादेश में चिटगांव बंदरगाह, कोको आईलैंड आदि चीन की रणनीति का भाग है, अंतराष्ट्रीय स्तर पर चीन भारत के प्रति अंतराष्ट्रीय कूटनीति में विरोध के साथ दोहरीनीति अपनाता रहा है, क्योंकि सुरक्षा परिषद और नाभिकीय आपूर्ति समूह में सदस्य के लिए अपनी वीटो पावर को चीन भारत के राष्ट्रीय हितों के विरोध में उपयोग करता रहा है, धारा 370 और आतंकवाद के खिलाफ भारत की लड़ाई में चीन ने पाकिस्तान का साथ हर अंतराष्ट्रीय फोरम में दिया है।¹⁴ जिसे दोनों देश के बीच के संबंध में तनाव की स्थिति बनी।

भारत और चीन सहयोगात्मक सम्बन्ध -

उक्त विवेचना के बावजूद भारत और चीन के बीच संबंधों में ऐतिहासिक एवं आर्थिक आधारों पर सांस्कृतिक रूप में सहयोग नजर आता है, क्योंकि चीन की महात्मा बुद्ध की बौद्ध संस्कृति भारत का अभिन्न अंग है, जिसके आधार पर दोनों देशों के बीच संबंधों की प्रकृति ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नजर आती है,

वहीं दूसरी ओर 21वीं शताब्दी के विकासशील देशों में भारत और चीन दुनिया भर के लिए सस्ते श्रम एवं आर्थिक आपूर्ति के लिए उत्पादक के साथ-साथ बड़े बाजार के रूप में भी आकर्षण का केंद्र है। इसी आकलन के आधार पर दोनों देशों ने अपने आर्थिक संबंधों को वर्तमान 21वीं शताब्दी के सूचना एवं तकनीक पर आधारित दौर में सतत रूप से बने हुए हैं, हालांकि आर्थिक संबंधों की इस कल्पना में चीन, भारत पर प्रभावी है। क्योंकि भारत और चीन के व्यापारिक घाटे का आकलन यदि 2016 के बाद करें तो यह आंकड़ा 50 बिलियन डॉलर के आसपास है।¹⁵

दोनों देशों के बीच की आर्थिक गतिविधि का निम्नलिखित सारणी के आधार पर अवलोकन -

मानक	भारत से निर्यात	चीन से आयात	भारत का कुल व्यापार घाटा
2016-17	10.2	61.3	51.1
2017-18	13.3	76.4	63.1
2018-19	16.7	70.3	53.6
2019-20	16.61	65.26	48.65

India-China Economic and Trade Relations - Chintan (indiafoundation.in).

उक्त सारणी में भारत से चीन भेजे जाने वाला उत्पादन (2016-17 और 2019-20 के बीच) 10 मिलियन डॉलर से लेकर 16.61 मिलियन डॉलर तक है। जबकि चीन से भारत भेजे जाने वाला उत्पादन 61 मिलियन डॉलर से लेकर 76 मिलियन डॉलर तक निर्यात है, जो कि व्यापारिक घाटे की दृष्टि से भारत के लिए चुनौती पूर्ण है, क्योंकि भारत और चीन के बीच व्यापार घाटा 48 मिलियन डॉलर से लेकर 63 मिलियन डॉलर तक है।¹⁶ अतः भारत और चीन के इस व्यापारिक संबंधों में जहाँ भारत व्यापारिक दृष्टिकोण से चीन से पीछे है, वहीं आर्थिक आधार पर विकसित हुए संबंध दोनों देशों की सहमति और समन्वय को दर्शाते हुए बड़े बाजार की उपलब्धता के अवसर का आर्थिक उपयोग करने का सहअस्तित्व आर्थिक कूटनीति का उदाहरण है।

भारत द्वारा चीन कूटनीति का विरोध :-

चीन के द्वारा जहाँ भारत का वैश्विक स्तर पर परमाणु आपूर्ति करता सदस्य देश में शामिल होने का विरोध किया जाता है वहीं भारत का अपने पड़ोसी देशों के साथ आर्थिक और सामाजिक स्तर पर परस्पर सहयोग का विरोध एवं छद्म कूटनीति का प्रयोग होता रहता है क्योंकि 2017 में बी.आर.आई में भारत ने भाग नहीं लिया। भारत के बी.आर.आई. परियोजना का विरोध के चलते चीन ने 2019 में बी.सी.आई.एम. सम्मेलन में बी.सी.आई.एम. यानी बांग्लादेश, चीन, भारत, म्यांमार गलियारे को भारत को परियोजना से हटा दिया है। चीन अब दक्षिण एशिया में सीएससी, चीन म्यांमार आर्थिक गलियारा, नेपाल चीन गलियारा और चीन पाकिस्तान इकोनामिक कॉरिडोर पर काम कर रहा है।¹⁷

भारत और चीन जहाँ समकालीन परिदृश्य में प्रतिस्पर्धी देशों की भूमिका निभा रहे हैं, वहीं दोनों देश आपसी सहयोग और समझौते के माध्यम से दक्षिण एशिया सहित संपूर्ण विकासशील देशों के प्रतिनिधि के रूप में विकसित देशों के समक्ष सशक्त अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक दृष्टि से स्वयं को प्रस्तुत कर रहे हैं। जिसमें सर्वप्रथम दोनों देशों के माध्यम से एशिया इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक¹⁸ की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम है। भारत और चीन एशिया के शंघाई सहयोग संगठन के तहत एक दूसरे के लिए सहयोगात्मक कार्य कर सकते

हैं। दूसरी ओर दोनों देश वैश्विक स्तर पर विश्व बैंक संयुक्त राष्ट्र संघ एवं आई.एम.एफ. जैसी संस्थाओं में सुधार एवं लोकतांत्रिक प्रणाली के समर्थक हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मामलों में प्रशासनिक ढांचे में विकासशील देशों की भूमिका को सतत रूप से बनाए रखने एवं दक्षिण दक्षिण संवाद एवं उत्तर दक्षिण संवाद के मामलों को वैश्विक मंच देने का प्रयास संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से दोनों देशों के द्वारा किया जागरूकता है। वैश्विक व्यापार संगठन की वार्ता में भारत और चीन कई मामलों पर विकसित देशों की अपेक्षा नीतियों का विरोध करते रहते हैं जिसमें दोहा वार्ता प्रमुख है। भारत और चीन दोनों ही विश्व की 20 बड़ी अर्थव्यवस्था अर्थात् जी-20 के सदस्य हैं, क्योंकि भारत और चीन केवल बाजार और श्रम की उपलब्धता ही नहीं बल्कि सूचना प्रौद्योगिकी एवं तकनीक के नए दौर में पर्यावरण से लेकर परमाणु तक सभी वार्ताओं पर एक साथ नजर आते हैं। क्योंकि पर्यावरण नीति पर शिखर सम्मेलनों में विकसित देश विकासशील देशों को सीमित करने का प्रयास करते हैं। इसके संदर्भ में भारत और चीन दोनों ही औद्योगिक क्रांति का नया रूप देने का प्रयास कर रहे हैं, जिसको विकसित देश पर्यावरण प्रदूषण की संज्ञा देकर सीमित करने का प्रयास करते हैं।

विश्लेषणात्मक निष्कर्ष -

भारत और चीन जहाँ विकासशील देशों की बड़ी अर्थव्यवस्था सक्षम सामाजिक स्थिति सैन्य शक्ति के साथ-साथ बड़े औद्योगिक देशों में वर्तमान परिदृश्य में शामिल हैं, वही वैश्विक राजनीति की पहल और विकसित देशों के साथ शक्ति संतुलन को स्थापित करने के लिए विकासशील देशों के अग्रणी राज्य हैं, क्योंकि उत्तर-दक्षिण संवाद में हमेशा से विकासशील देशों पर विकसित देशों के निर्णय थोपे जाते रहे हैं। दूसरी ओर दक्षिण-दक्षिण सहयोग समझौते में विकसित देशों की राजनीति के कारण इस विकासशील देशों के सहयोग में परस्पर सहयोगात्मक संगठन को भी प्रभावित किया जाता रहा है। किंतु भारत और चीन की वैश्विक परिदृश्य में बढ़ती आर्थिक, सैन्य शक्ति एवं कूटनीति के परिणामस्वरूप विकसित देशों का दृष्टिकोण बदल रहा है। इसलिए दोनों देशों को आपसी संबंधों की कटुता को चुनौती और जटिलता को दूर करते हुए एशिया अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका में वैश्विक शक्तियों के दुष्प्रभाव को चुनौती देनी चाहिए, क्योंकि वर्तमान परिदृश्य में आर्थिक शक्ति का दौर है इसलिए दोनों देशों के बीच जहां एक बड़े बाजार की उपलब्धता है और लाभांश के लिए एक बड़ी जनसंख्या श्रम शक्ति के रूप में है। इस अवसर का दोनों देशों को मिलकर लाभ लेना चाहिए, किंतु उक्त विश्लेषण के आधार पर दोनों देशों के बीच संबंधों में जहां आर्थिक आधार पर भारत का व्यापार घाटा संवेदनशील है। वहीं दूसरी ओर चीन अपनी विस्तारवादी साम्राज्यवादी नीति के कारण न केवल भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा को प्रभावित कर रहा है, बल्कि हिंद महासागर और प्रशांत महासागर में अंतर्राष्ट्रीय कानून के खिलाफ जाकर भारत को चुनौती दे रहा है जिसके कारण विकसित देश या पश्चिम की शक्तियां पर्यावरण नीति व्यापार नीति समुद्री नीति अंतरिक्ष नीति एवं सूचना प्रौद्योगिकी पर एक अधिकार बनाए हुए हैं। अतः दोनों देशों को कूटनीतिक संबंधों में सरलता और परस्पर सहयोग कर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी चीनी भाई-भाई के नारे को की अवधारणा को पुनः जीवित करना चाहिए, जिससे दोनों देशों में न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक और राजनीतिक लाभ प्राप्त होंगे। यह नीति तभी प्रयोग में लाई जा सकेगी, जब भारत चीन के खिलाफ षड्यंत्र रचना बंद कर देगा, चीन पाकिस्तान को भारत के खिलाफ हर मामले में समर्थन तथा बी.आर.आई. प्रोजेक्ट के माध्यम से दक्षिण एशिया के अन्य देश में अपनी पहुँच के माध्यम से भारत विरोधी गतिविधियों को बंद करना होगा। भारत चीन के बीच हम सांस्कृतिक संबंधों को अधिक उपयोगी बना सकते हैं।

चीन की भारत को चुनौतियाँ :

- चीन साउथ एशिया के सभी देशों में अपने भारत के प्रति उपस्थित बना रहा है
- चीन भारत के सभी पड़ोसी देशों में अपनी पहुंच बना रहा है
- चीन और पाकिस्तान के बीच भारत के खिलाफ षड्यंत्र
- भारत के खिलाफ चीन की विस्तारवादी नीति
- चीन का सैनिक राष्ट्रवाद

इन सभी से भारत की सुरक्षा को खतरा है।

संदर्भ :

1. पंत, पुष्पेश, जैन पाल, पंचौला राखी, अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मेरठ 2014-15, पृ. 121।
2. पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ टू पॉवर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रॉसजिशन, (IDSA) पेन्टागन सिक्वोरटी ईटरनेशनल प्रेस-न्यू, दिल्ली 2010, पृ. 187।
3. शर्मा, राज प्रवेश, भारतीय विदेश नीति यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 22/47, 35, नई दिल्ली, 2009, पृ. 111.
4. प्रजापति विष्णु, साउथ एशिया, पॉवर और पॉलिटिक्स कॉमनवेल्थ पब्लिकेशन, दिल्ली (1998) पृ. 143.
5. शर्मा, राज प्रवेश, भारतीय विदेश नीति यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 22/47, 35, नई दिल्ली, 2009, पृ. 111.
6. पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ टू पॉवर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रॉसजिशन, (IDSA), न्यू दिल्ली, 2010.
7. बिस्वाला, तपन, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध MAcmillan Publishers India Ltd. Delhi, 2013.
8. सिंह, रहीम, अंतरराष्ट्रीय संबंध, लेक्सिस-नेक्सिस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 269.
9. <https://www.dalailama.com/the-dalai-lama/biography-and-daily-life/birth-to-exile> date 02/04/2020.
10. पंत, पुष्पेश, जैन पाल, पंचौला राखी, अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मेरठ 2014-15, पृ. 112.
11. पंत, पुष्पेश, जैन पाल, पंचौला राखी, अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मेरठ पृ. 65.
12. कुमार, अजय, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सिद्धान्त एक परिचय, Pearson Publication Delhi, 2011, पृ. 211.
13. पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ टू पॉवर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रॉसजिशन, IDSA, न्यू दिल्ली 2010.
14. पंत, पुष्पेश, 21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध Total Mc-Crow Hill Education Private Limited New Delhi, 2012, पृ. 56.
15. सिंह, रहीम, अंतरराष्ट्रीय संबंध, नई दिल्ली, 2020, पृ. 171।
16. [India-China Economic and Trade Relations - Chintan \(indiafoundation.in\)](http://indiafoundation.in/), दिनांक 12/05/2021.
17. सिंह, रहीम, अंतरराष्ट्रीय संबंध, नई दिल्ली, 2020, पृ. 71.
18. पंत, पुष्पेश, अंतर्राष्ट्रीय संगठन Tata Mc-Craw Hill Education Privated Limited New Delhi, 2012 पृ. 112.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. खन्ना, वी.एन., अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध Vivkas Publishing House Pvt. Ltd. New Delhi, 2013.

2. इनाम, जफर, वर्ल्ड पावर्स इन साउथ एण्ड साउथ ईस्ट एशिया, स्टार्लिंग पब्लिशर्स नई दिल्ली 1972.
3. कुमार, अजय, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सिद्धान्त एक परिचय, Pearson Publication Delhi. 2011.
4. मल्लप्पा, अमरावती, चाईना, जापान, और इण्डिया इनके सम्बन्धों की समीक्षा, ए.बी.डी. पब्लिकेशन, जयपुर 2004.
5. बिस्वाला, तपन, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध MAcmillan Publishers India Ltd. Delhi, 2013.
6. हंस, जे. मारगेन्थाउ, Politics Among Nations हरियाणा हिन्दी ग्रंथ अकादमी, चण्डीगढ़.
7. हार्डी, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास CCSU Meerut, Lib.
8. पंत, पुष्पेश, 21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध Total Mc-Crow Hill Education Private Limited New Delhi, 2012.
9. पंत, पुष्पेश, जैन पाल, पंचौला राखी, अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सिद्धान्त, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 2014-15।
10. पंत, पुष्पेश, अंतर्राष्ट्रीय संगठन Tata Mc-Crow Hill Education Privated Limited New Delhi, 2012.
11. पाण्डे जगननाथ प्रसाद, चाझाज पथ टू पॉवर पार्टी सिलाई एण्ड पॉलिटिकल ऑफ ट्रूसजिशन, IDSA, पेन्टागन सिक्वोरटी ईटरनेशनल प्रेस-न्यू दिल्ली 2010.
12. सिंह, रहीम, अंतरराष्ट्रीय संबंध, लेक्सिस-नेक्सस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2020.



भगवद्गीता में कर्म, भक्ति एवं ज्ञानयोग का समन्वय

○ वरुण प्रकाश¹

भगवद्गीता भारतीय संस्कृति का धार्मिक एवं लोकप्रिय दार्शनिक काव्य है। यह महाभारत के 'भीष्म पर्व' का अंश है। सभी उपनिषदों का निचोड़ कहना गीता के लिए सार्थक अर्थ होगा।

गीता माहात्म्य में कहा गया है कि “सभी उपनिषद गाय है और कृष्ण दूध निकालने वाले (दोग्धा) हैं। अर्जुन बछड़ा है और उससे निकलने वाला दूध गीता रूपी अमृत हैं। सुधी जन दुग्ध पान करने वाले हैं।”¹

वेदान्त दर्शन के 'प्रस्थानत्रयी' में इसे स्मृति प्रस्थान की संज्ञा दी गई है। महर्षि व्यास को इसका रचनाकार बताया गया है।

भगवद्गीता को ईश्वर-संगीत कहा गया है। “महात्मा गांधी गीता को विश्वजनीन माता कहे हैं, जिसका द्वार जो खटखटाता है उसके लिए हमेशा खुला रहता है।”² गीता में योग विचार को बहुत महत्त्व दिया गया है। योग को महत्त्व देने के कारण इसे 'योगशास्त्र' कहते हैं। योग का तात्पर्य जोड़ना है। यानी आत्मा का परमात्मा से संबंध स्थापित करना ही इस ग्रंथ का मूल लक्ष्य है। आत्मा और परमात्मा के संबंध में तीन मार्ग विचारे गये हैं- कर्म, भक्ति और ज्ञान अर्थात् कर्म-योग, भक्ति योग और ज्ञान योग।

श्री शंकराचार्य गीता में ज्ञान योग का प्रतिपादन करते हैं। श्री रामानुजाचार्य के अनुसार गीता में भक्ति-योग की प्रधानता है। जबकी लोकमान्य तिलक ने गीता को कर्मशास्त्र का ग्रंथ माना है, क्योंकि तीनों का लक्ष्य एक ही है। कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों का समन्वय ही गीता का वास्तविक तात्पर्य है।

समन्वय को भारतीय संस्कृति का प्राण माना गया है और गीता संदेश प्रत्येक युग में मानवता के लिए प्रेरणादायी रहा है। उसका मूल कारण भी संभवतः यही है कि उसमें विभिन्न साधना पद्धतियों का समन्वय कर उनमें कोई विरोध नहीं है, दर्शाया गया है। मानव मन के अंदर तीन प्रवृत्तियों का उल्लेख मिलता है- क्रिया, भाव और ज्ञान। जिस व्यक्ति में जिस भाव का आधिक्य होगा उसी के अनुसार उसका आचरण आचरित होगा। क्रियात्मक पक्ष प्रबल व्यक्ति संकल्प प्रधान होता है। ऐसे मानव बहिर्मुखी होते हैं। भाव प्रधान व्यक्ति भावुक

1. शोधार्थी, स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा।

तथा अंतर्मुखी होते हैं। इनके जीवन का निर्णय तर्क या बुद्धि पर कम आधारित होते हैं, भावना पर ज्यादा केंद्रित होते हैं। तीसरे वर्ग में लोगों का मनःस्थिति ज्ञानात्मक पक्ष के प्रबल होने के कारण किसी भी कार्य का सम्भावित परिणाम पर विचार कर ही कोई कार्य करते हैं। गीता के संदेश की भव्यता का रहस्य यही है कि इसमें सभी रूचियों एवं प्रवृत्तियों के अनुकूल शिक्षा प्राप्त होती है।

आचार्य शंकर तथा उनके अनुयायियों के अनुसार ईश्वर-साक्षात्कार ज्ञानयोग के माध्यम से ही हो सकता है। गीता की दृष्टि में “ज्ञान के समान पवित्र अन्य कुछ भी नहीं है”³ (न हि ज्ञानेन पवित्रमहे विद्यते)। “भक्तियोग ज्ञान एवं कर्म दोनों से भिन्न भवनामयी आसक्ति का नाम है।”⁴ वैष्णव वेदाति इसके प्रबल पक्षधर है। उनके अनुसार ईश्वर प्राप्ति केवल भक्ति से हो सकती है। तीसरे वर्ग कर्मयोग का सशक्त प्रतिनिधित्व लोकमान्य तिलक करते हैं। उनका कहना है कि निष्काम भाव से कर्म करना ही भगवद्गीता का संदेश है। “गीता स्थान-स्थान पर यह स्वीकार करती है कि कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म का परित्याग नहीं कर सकता (न हि कश्चित् क्षणमणि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्)⁵” गीता का निष्काम कर्म ज्ञानी के द्वारा ही संभव हो सकता है। अतः कर्म योग का ज्ञान योग से कोई विरोध नहीं हो सकता है। “देहधारी प्राणी के लिए कर्मों का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है।”⁶

बहुत सारे गीता भाष्यकारों का मानना है कि अलग-अलग विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले तीनों आचार्य चाहे वो शंकर हो, रामानुज हो, या तिलक को एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

गीता ने तीनों मार्गों को एक साथ पिरोकर एक ऐसी साधना पद्धति विकसित की है जिसमें ज्ञान, भक्ति और कर्म एक-दूसरे के पूरक हैं। गीता में ‘स्थितप्रज्ञ’ की अवधारणा आती है जिसमें तीनों योगों का समन्वय दर्शित होता है- “स्थितप्रज्ञ पूर्ण ज्ञानी तो है ही, परंतु साथ ही साथ वह एक उच्च कोटि का भक्त भी है जो स्वयं को ईश्वर का केवल एक निमित्त समझकर सब कार्य करता है।”⁷

अब विस्तार से तीनों योगों की पूरकता की चर्चा करते हैं। गीता का एक प्रसिद्ध श्लोक है -

“कर्मव्येवधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूमो ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥”

यानी इसका तात्पर्य है मनुष्य का कर्म मात्र में ही अधिकार है, फल में कभी नहीं। “गीता सन्यास और त्याग में भेद करती है: सब प्रकार के ऐसे कर्मों का त्याग जो फल की आकांक्षा को लेकर किए जाते हैं, संन्यास है तथा त्याग कर्मों के फल छोड़ देने का नाम है।”⁸ संसार में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिसमें मनुष्य को कर्म का अपेक्षित फल नहीं मिल पाता। जिसके कारण निराशा और हतोत्साहन का सामना करना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व विच्छेदित हो जाता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए गीता ने बहुत ही श्रेयस्कर मार्ग प्रतिपादित किया है, व्यक्ति केवल कर्म करे फल कि इच्छा न करें। फल के प्रति आसक्ति न रहने पर निराशा जैसे दलदल से बचा जा सकता है।

गीता का आदर्श है कि हमें साधारण जीवन के व्यवहार से घृणा नहीं करनी चाहिए, किंतु सब स्वार्थमय इच्छाओं का दमन करना आवश्यक है। कर्मों से निवृत्त रहना सच्चा त्याग नहीं है। हम निश्चल रह सकते हैं किन्तु इच्छाएँ अपने कार्य में व्यस्त रहती है। “अज्ञानियों द्वारा किया गया कर्मों का त्याग वस्तुतः एक विद्यात्मक कर्म है, ज्ञानियों का कर्म वस्तुतः अकर्म है।”⁹

भगवद्गीता में कहा गया है कि अनासक्त भाव से अपने स्वधर्म में स्थिर रहना ही निष्काम कर्म योग है। गीता का निष्काम कर्म ज्ञानी के लिए है, साधारण जन के लिए नहीं। गीता का निष्काम कर्म ज्ञान और भक्ति

दोनों अनुप्राणित है।

भक्ति योग भक्ति के द्वारा ईश्वरत्व पाने का मार्ग है। श्रीमद्भागवत पुराण में 9 प्रकार की भक्ति की चर्चा की गई है जो इस प्रकार है -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥

ईश्वर नाम का श्रवण करना, उसका कीर्तन, उसे स्मरण करना उसके चरणों की सेवा करना, उसकी अर्चना तथा वंदना करना, स्वयं को उसका सेवक समझना एवं स्वयं को उसका मित्र मानकर ईश्वर के प्रति आत्म निवेदन करना ये भक्ति के नौ प्रकार हैं। गीता ज्ञान का सार भक्ति ही है, भक्ति गीता का हृदय है। गीता के उपदेश का प्रारम्भ प्रपत्ति या शरणागति से होता है। भगवद्गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को बहुत सारे उपदेश देने के बाद कहते हैं, यदि तेरे को इनमें से कोई भी मार्ग नहीं सूझ रहा है तो तू इन सबको छोड़कर केवल एक काम कर, मेरी शरण में आ जा, तेरे कल्याण की चिन्ता मैं करूँगा।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (18.66)

गीता भक्तों में भी ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बताती है। गीता में ज्ञानी ईश्वर सदृश होते हैं। जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को जलाकर राख के रूप में परिणत कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि सभी कर्मों को जला देती है।

गीता का मानना है कि ज्ञानी व्यक्ति जीवन के कार्यों से अपने को विमुख नहीं करता। वह मानव कल्याण के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। कृष्ण पूर्ण होते हुए भी लोक कल्याण के लिए हमेशा प्रतिबद्ध रहे। जनक और बुद्ध भी इसी श्रेणी से सारोकार रखते हैं। गीता की दृष्टि में पर कल्याणार्थ कर्म करने वाला व्यक्ति कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होती।

गीता प्रत्येक मनुष्य से अपने कर्तव्य कर्मों के, सामाजिक कर्तव्यों के, स्वधर्म के सम्पादन का आग्रह करती है। इसीलिए यह अकर्मण्यता का विरोध करती है। पुनः गीता फलाकांक्षा का परित्याग करके कर्म को ईश्वर को समर्पित करने का आग्रह करती है। उसके अनुसार प्राणी अपने कर्मों से उसकी आराधना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार इसमें भक्ति का भी तत्त्व आ जाते हैं। वह प्राणियों में आत्मसंयम और इन्द्रियनिग्रह की भी अपेक्षा करती है, क्योंकि इसके अभाव में फलाकांक्षा का त्याग संभव नहीं है। वह सफलता और असफलता, सुख और दुःख, जय और पराजय, लाभ और हानि, इन निम्नतर प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने का आदेश देती है। उसका यह भी आग्रह है कि हमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, अस्मिता-अहंकार आदि निम्न कोटि के 'मनोवेगों' से परिचालित होकर कर्म नहीं करना चाहिए। यह स्थिति आत्मसंयम और ज्ञान से आती है। इस प्रकार गीता का निष्काम कर्मयोग ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तीनों का अनुपम समन्वय है।

जो व्यक्ति संकल्प प्रधान है उन्हें गीता कहती है, अपने सभी कर्म यज्ञ के लिए करना चाहिए। क्योंकि संकल्प प्रधान व्यक्ति में कर्म करने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। भगवद्गीता में यज्ञ का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य है व्यक्ति केवल अपने लाभ के लिए नहीं, अपितु समष्टि के लाभ के लिए करता है। विशुद्ध निःस्वार्थ भाव से किया गया कर्म जो दूसरों के परोपकार तथा समाज कल्याण के लिए हो 'यज्ञ' होता है।

जो लोग भावना प्रधान है, वे अपना कर्म ईश्वर को समर्पित करते हुए करें। निरंतर ऐसे अभ्यास से व्यक्ति

में कर्तृत्व भाव का लोप होने लगता है। अतः उसका फल भी, वह चाहे जो हो ईश्वर का ही है। निरंतर इस प्रकार के कार्य करने से उसे फल की आशा नहीं रहेगी और फल के प्रति अनासक्त भाव से वह कार्य कर सकेगा।

ज्ञानी व्यक्ति को कार्य करते समय गीता का शिक्षा यही है कि वह यह समझे कि वह कुछ नहीं कर रहा बल्कि “केवल गुण ही गुणों में बरत रहे हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष दृष्टा है, कर्ता नहीं है। सम्पूर्ण जगत त्रिगुणत्मिका प्रकृति का ही विकार है। हमारा मन, बुद्धि, अहंकार, कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ ये सभी प्रकृति के ही विकार हैं। इसी प्रकार पंच महाभूत एवं उनसे उत्पन्न जगत के विभिन्न पदार्थ भी प्रकृति के ही विकार हैं। अब जब कोई कार्य हम करते हैं तो कर्म करने वाली कर्मेन्द्रियाँ प्रकृति के ही विकार हैं, तथा कर्म के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले सुखद या दुखद फल को भोगने वाला मन भी प्रकृति का विकार है। इस प्रकार कर्म के प्रारम्भ से लेकर इसके अंत तक, अर्थात् बीज रूप में कर्म के मन में उत्पन्न होने से लेकर उसके फलोत्पादन एवं उपभोग तक के सम्पूर्ण व्यापार में प्रकृति ही गतिमान है। पुरुष तो सम्पूर्ण व्यापार में केवल द्रष्टा मात्र हैं। ज्ञानी साधक को भी अपने को पुरुष जानना होगा, जो न कार्यों को कर रहा है, और न उनके फलों को भोग रहा है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भगवद्गीता का शिक्षा का केन्द्र ‘कर्म फल-त्याग’ है। इस शिक्षा को वह संकल्प प्रधान व्यक्ति के लिए भावना प्रधान व्यक्ति के लिए एवं ज्ञान प्रधान व्यक्ति के लिए अलग-अलग प्रकार से प्रदान करती है। तीन अलग-अलग मनोवृत्तियों से काम करने पर भी परिणाम उन सबका एक ही होता है और वह है अनासक्त भाव से स्वधर्म का आचरण करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवद्गीता निष्काम भाव से कर्म करने की शिक्षा इस प्रकार देती है कि वह संसार में विविध स्वभावों और मनोवृत्तियों में लोगों के लिए रूचिकर लगती है। सब अपनी मनोवृत्ति, रूचि, स्वभाव एवं आवश्यकता के अनुसार अपना मार्ग चुन सकते हैं और अपने आचरण को आचरित कर सकते हैं।

सन्दर्भ :

1. राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ. 41
2. चट्टोपाध्याय एवं दत्त, भारतीय दर्शन पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस, पटना, 1994, पृ. 35
3. राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ. 46
4. गाण्डिल्य सूत्र, 1:4-5 और 7
5. राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017, पृ. 49
6. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1957, पृ. 18
7. सं० (डी. डी बंदिष्ट, डॉ. रमाशंकर शर्मा), डॉ. अशोक लाड, भगवद्गीता में कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 2008, पृ. 305
8. डॉ० राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन-1, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली 2022, पृ. 466
9. अष्टावक्र गीता, 18: 61



निम्नवर्गीय समुदायों के लिए फुले के सामाजिक-सांस्कृतिक विचारों की प्रासंगिकता : झारखंड के भुइया समुदाय का विशेष संदर्भ

○ प्रीति गुप्ता¹

संक्षिप्ति :

जोतिराव फुले, एक अग्रणी भारतीय समाज सुधारक, ने गहरी जड़ें जमाए हुए अंधविश्वासों, दमनकारी जाति संरचनाओं और लैंगिक असमानताओं का सामना किया। उनका काम विवाह पर ब्राह्मणवादी नियंत्रण और महिलाओं की अधीनता का विरोध करने तक फैला हुआ था। फुले के सुधारों का उद्देश्य दलित समुदायों के भीतर अस्पृश्यता, निरक्षरता और अन्य सामाजिक अन्याय को मिटाना था, जिसने क्षेत्रीय सीमाओं को पार करते हुए एक महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा, जिसने दक्षिण और उत्तर भारत दोनों में हाशिए पर पड़े समूहों को प्रभावित किया।

यह शोधपत्र झारखंड में भुइया (या मुसहर) समुदाय पर केंद्रित है, जिसे अनुसूचित जाति की स्थिति वाले हाशिए पर पड़े समूह के रूप में पहचाना जाता है। मूल रूप से एक आदिवासी समूह, मुसहरों का जाति व्यवस्था में धीरे-धीरे एकीकरण समय के साथ प्रमुख सांस्कृतिक ताकतों द्वारा डाले गए दबावों को दर्शाता है। हालाँकि उनकी कई आदिवासी प्रथाएँ और रीति-रिवाज कायम हैं, फिर भी उन्होंने एक स्तरीकृत समाज के भीतर सामाजिक समानता कायम रखने के साधन के रूप में हिंदू प्रथाओं को तेजी से अपनाया है। हालाँकि, इन अनुकूलनों के बावजूद, अस्पृश्यता और जाति-आधारित शोषण मुसहर समुदाय के लिए उनके रोजमर्रा के जीवन में व्यापक चुनौतियाँ बनी हुई हैं। प्राथमिक डेटा और क्षेत्र अनुसंधान का उपयोग करते हुए, यह पत्र झारखंड के दलित समुदायों, विशेष रूप से भुइया के संदर्भ में फुले के विचारों की चल रही प्रासंगिकता की जाँच करना चाहता है। शिक्षा के लिए फुले की वकालत, जाति-आधारित पदानुक्रमों के प्रतिरोध और आत्म-सम्मान को बढ़ावा देने के उनके प्रयासों की खोज करके, यह अध्ययन इस बात पर प्रकाश डालने का लक्ष्य रखता है कि कैसे उनके सामाजिक-सांस्कृतिक विचार आज दलित समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य को सकारात्मक रूप से बदल सकते हैं। विशेष रूप से, यह पत्र संबोधित करेगा कि कैसे फुले के दर्शन सम्मान

1. पीएचडी शोधार्थी, जेएनयू, नई दिल्ली। ईमेल : Priti.omprakash@gmail.com

को पुनः प्राप्त करने, सांस्कृतिक वर्चस्व का विरोध करने और झारखंड के भुइया समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को बेहतर बनाने के मार्ग प्रदान करते हैं।

परिचय

जोतिबा फुले एक सच्चे सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारक थे जो हाशिए पर पड़े समुदायों के उत्थान के लिए समर्पित थे। उन्होंने जाति व्यवस्था और उससे जुड़े रीति-रिवाजों की दमनकारी प्रकृति को उजागर किया। ब्राह्मणवादी विवाह प्रणाली को खारिज करते हुए, उन्होंने निचली जातियों के लिए एक नया मंत्र पेश किया, जिसे आमतौर पर 'मंगलस्तक' के रूप में जाना जाता है। इस मंत्र का उद्देश्य विवाह में ब्राह्मणवादी पुजारियों की भूमिका को खत्म करना था। इस प्रणाली में, दुल्हन अपने पति से अपने विवाहित जीवन के दौरान उसकी स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध होने का अनुरोध करती थी। फुले ने अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले को भी शिक्षित किया, जिससे वह सामाजिक बुराइयों के बारे में जागरूकता बढ़ाने, महिलाओं की शिक्षा की वकालत करने और जाति-आधारित उत्पीड़न को चुनौती देने में सक्षम हुईं। सत्यशोधक समाज (सत्य की खोज करने वाला समाज) की स्थापना के माध्यम से, फुले ने ब्राह्मणवादी विचारधाराओं की आलोचना की और निम्न वर्ग के समुदायों के लिए रचनात्मक रूप से काम किया।

झारखंड में सबसे अधिक हाशिए पर पड़े भुइया समुदाय को झारखंड सरकार द्वारा दलित जाति के रूप में वर्गीकृत किया गया है। उन्हें स्थानीय जमींदारों और साहूकारों द्वारा गंभीर भेदभाव और शोषण का सामना करना पड़ता है। आम तौर पर जमींदारों की जमीन पर बसे होने के कारण, उन्हें अक्सर दैनिक श्रम करने के लिए मजबूर किया जाता है, मना करने पर मौखिक दुर्व्यवहार और धमकियों का सामना करना पड़ता है। यह सामाजिक-आर्थिक अभाव सांस्कृतिक और सामाजिक स्तरों तक फैला हुआ है, क्योंकि भुइया महिलाओं को घरों में प्रवेश करने, बर्तन इस्तेमाल करने या हैंडपाइप छूने से रोक दिया जाता है। छठ जैसे त्योहारों के दौरान, भुइया को अलग स्थान आवंटित किया जाता है, जो उनके बहिष्कार को उजागर करता है।

भुइया समुदाय ऐतिहासिक रूप से अत्यधिक गरीबी में रहता है, अक्सर जमींदारों के स्वामित्व वाली जमीन पर रहता है। वे अपने समुदाय के भीतर सामान्य जबरन श्रम और शारीरिक हिंसा सहते हैं। इसके अलावा, अस्पृश्यता बनी रहती है, क्योंकि प्रमुख जातियां रहने, पूजा करने और शुद्धिकरण के स्थानों में सख्त अलगाव बनाए रखती हैं। ऐसे संदर्भ में, अंबेडकर और जोतिबा फुले के विचार महत्वपूर्ण हैं, इस संदर्भ में, फुले के विचार मुसहर समुदाय के लिए अत्यधिक प्रासंगिक हैं, जो इसी तरह सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों पर व्यापक भेदभाव का सामना करता है। जमींदारों और साहूकारों के हाथों भुइयां द्वारा झेले जाने वाले शोषण को समझने और ब्राह्मणवादी त्योहारों और अनुष्ठानों को चुनौती देने के लिए एक गहन अध्ययन आवश्यक है। यह अध्ययन ऐतिहासिक भौतिकवादी परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हुए भुइयां समुदाय के भीतर जोतिबा फुले के विचारों को संदर्भित करने का प्रयास करता है। यह रूपरेखा भुइयां की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और व्यापक सामाजिक गतिशीलता पर प्रकाश डालती है। भुइयां के बीच सांस्कृतिक गतिशीलता एक महत्वपूर्ण चुनौती पेश करती है, जो उनके हाशिए पर रहने में योगदान देती है। हालांकि कुछ अध्ययनों ने सांस्कृतिक गतिशीलता के मुद्दों को संबोधित किया है, लेकिन कुछ ने फुले के दृष्टिकोण से इन चुनौतियों का पता लगाया है। इस अध्ययन का उद्देश्य उस अंतर को भरना है

समीक्षा किए गए शोध कार्य

जोतिबा फुले पर शोध को मोटे तौर पर दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है: प्राथमिक और द्वितीयक

अध्ययन। अधिकांश मौजूदा कार्य द्वितीयक डेटा पर निर्भर करते हैं, जो मुख्य रूप से उनके सांस्कृतिक और सामाजिक विचारों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, विशेष रूप से उनके मौलिक कार्य गुलामगिरी में व्यक्त किए गए। इनमें से, गेल ओमवेट का योगदान विशेष रूप से प्रभावशाली है। अपने काम में, वह फुले के विचारों और दृष्टि को समर्पित एक अलग अध्याय समर्पित करती है, जिसमें शूद्र और अति-शूद्र समुदायों को संगठित करने और उन्हें उत्थान के लिए एक रूपरेखा प्रदान करने के उनके प्रयासों का विवरण दिया गया है। उन्होंने जाति, वर्ग और लिंग आधारित उत्पीड़न का कड़ा विरोध किया और विभिन्न समुदायों के साथ संवाद शुरू किया (ओमवेट, गेल; 2006 और 2013)।

एस.एस. जोडका द्वारा एक और महत्वपूर्ण कार्य, जिसका शीर्षक विकास के नाम पर महाराष्ट्र में आस्था आधारित संगठनों का मानचित्रण है, धार्मिक गतिविधियों के इर्द-गिर्द बहस का पता लगाता है। जोडका का तर्क है कि धार्मिक प्रथाएँ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में गहराई से अंतर्निहित हैं। वह इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे नागरिक समाज और नागरिकता आंदोलनों जैसी नई श्रेणियों ने जमीनी स्तर पर सक्रियता को बढ़ावा दिया है और लोकतांत्रिक भागीदारी की एक नई भाषा को बढ़ावा दिया है (जोडका और बोरा; 2012, थापर, रोमिला; 2014 और कुमार, नरेंद्र; 2000)।

हालांकि, जाति व्यवस्था के बारे में फुले के विचारों को कुछ विद्वानों की आलोचना का सामना करना पड़ा है। ये आलोचक उनके काम में 'समाज' की व्याख्या एक धार्मिक संप्रदाय के रूप में करते हैं। धार्मिक दावों के प्रति संदेह के बावजूद, फुले ने सत्य की खोज के अपने दृष्टिकोण को धार्मिक संदर्भ में तैयार किया, जो उनके प्रोटेस्टेंट ईसाई पालन-पोषण से प्रभावित था लेकिन पूरी तरह से उससे बंधा नहीं था (वेंडेल, डोमिनिक; 2014)। गोपाल गुरु और जीपी देशपांडे द्वारा एक अन्य प्रमुख अध्ययन, जो फुले द्वारा चयनित लेखों पर केंद्रित है फिर भी, गोपाल गुरु फुले के विचारों का बचाव करते हैं, स्थानीय जमींदारों और साहूकारों के खिलाफ उनके संघर्ष पर जोर देते हैं, जिन्हें वे साम्राज्यवाद के प्रतीक मानते थे। सत्य की ऐतिहासिक निरंतरता को तोड़ना: शूद्रों के व्यक्तित्व की खोज में जोतिबा फुले (दास, स्नेहाशीष; 2012) नामक एक महत्वपूर्ण कार्य शूद्रों जैसे हाशिए पर पड़े लोगों के सार और व्यक्तित्व को उजागर करने के फुले के प्रयास की जांच करता है। यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि फुले ने जाति-आधारित सामाजिक संरचनाओं की छिपी हुई सच्चाइयों को कैसे उजागर किया। कुमार अरुण (2013) का काम समकालीन संदर्भों में मुसहर जैसे समुदायों के सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान को समझने के लिए फुले के विचारों की प्रासंगिकता को और रेखांकित करता है। गेल ओमवेट (1973 और 2006), गोपाल गुरु, एसएस जोडका (2012), रोमिला थापर (2014), स्नेहाशीष दास (2021), जगन्नातम (2020), और सोमाली कैलाशचंद (2023) के योगदान सहित मौजूदा विद्वानों का परिदृश्य मुख्य रूप से माध्यमिक व्याख्याओं और विश्लेषणों पर केंद्रित है। हालांकि, फुले के विचारों के मूलभूत स्रोतों से सीधे जुड़ने वाले प्राथमिक कार्यों की कमी ध्यान देने योग्य है। इस शोध का उद्देश्य प्राथमिक स्रोत-आधारित लेंस के माध्यम से अति-शूद्र समुदाय के भीतर एक उपसमूह मुसहर समुदाय का अध्ययन करके इस अंतर को पाटना है। फुले के विचार अति-शूद्र जाति के जीवन के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को कैसे प्रभावित और बदलते हैं, इसकी खोज करके, यह अध्ययन उनके जीवित अनुभवों की बारीकियों को उजागर करना चाहता है। इस दृष्टिकोण की विशिष्टता फुले के लेखन और समकालीन सामग्रियों से सीधे जुड़ने में निहित है, जो उनके विचारों की परिवर्तनकारी क्षमता पर नए दृष्टिकोण प्रदान करता है। विद्वानों के बीच अंतर को संबोधित करने से परे, इस अध्ययन का उद्देश्य सामाजिक सुधार और जाति गतिशीलता पर व्यापक बातचीत में योगदान देना है। यह भुइया समुदाय के भीतर फुले के विचारों के व्यावहारिक निहितार्थों को उजागर करेगा, समकालीन संदर्भों में

उनकी प्रासंगिकता और प्रभाव की जांच करेगा। इस अभिनव शोध के माध्यम से, अध्ययन अकादमिक समझ को समृद्ध करने और हाशिए के समुदायों पर फुले के स्थायी प्रभाव की गहरी समझ को बढ़ावा देने की इच्छा रखता है।

इस शोध के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था और उससे जुड़ी सांस्कृतिक प्रथाओं को चुनौती देने के उद्देश्य से फुले के विचारों का गहन अध्ययन करना।
- जांच करना कि किस तरह ब्राह्मणवादी प्रथाएँ बिहार में भुइया समुदाय के भीतर अस्पृश्यता में योगदान करती हैं और उनके उन्मूलन की आवश्यकता पर बल देना।
- जमीनी स्तर पर फुले के विचारों के व्यावहारिक कार्यान्वयन का विश्लेषण करना, इस बात पर ध्यान केंद्रित करना कि कैसे ये सिद्धांत भुइया समुदाय के रोजमर्रा के जीवन में जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए सक्रिय रूप से काम करते हैं।
- हाशिए पर पड़े समुदायों के भीतर जड़ जमाए सामाजिक मुद्दों को संबोधित करने और परिवर्तनकारी बदलाव को बढ़ावा देने में फुले की विचारधारा की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

शोध के लिए प्रस्तावित पद्धति

इस अध्ययन के लिए, भुइया समुदाय के भीतर व्यवस्थित जाति-आधारित शोषण को समझने के लिए ऐतिहासिक भौतिकवाद बहुत उपयोगी है। प्रारंभ में, फुले के विचार को हिंदू अनुष्ठान प्रथाओं जैसे विवाह, मृत्यु और त्योहारों के विभिन्न पहलुओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। इस वर्गीकरण का उद्देश्य यह समझना है कि भुइया सांस्कृतिक प्रथाएँ ब्राह्मणवादी प्रथाओं से कैसे जुड़ी हैं और इस समुदाय में उनके विकास के पीछे क्या कारण हैं। इन सांस्कृतिक प्रथाओं को बदलने में ज्योतिबा फुले के विचार की प्रासंगिकता का पता लगाया गया है। अध्ययन में मुसहर समुदाय की दिन-प्रतिदिन की सांस्कृतिक प्रथाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए केंद्रित समूह चर्चा और बातचीत का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त, इस शोध में अर्ध-सहभागी अवलोकन विधियों के उपयोग के माध्यम से डेटा की सटीकता सुनिश्चित की गई है।

शोध क्षेत्र चुनने का औचित्य

झारखंड का चतरा जिला उपनिवेशवाद और सामंतवाद द्वारा आकारित एक समृद्ध ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है, जो इसकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को प्रभावित करता रहता है। गांधी, अंबेडकर, जोतिबा फुले और काशीराम जैसे नेताओं के सुधारवादी आंदोलनों से भी जिले पर काफी प्रभाव पड़ा है। वर्तमान में, जिले में लगभग 10,000 की एक बड़ी भुइया आबादी रहती है, जो विभिन्न गांवों में फैली हुई है। यह जनसांख्यिकीय सांद्रता इसे प्रवास, जातिगत गतिशीलता और सांस्कृतिक प्रथाओं के परस्पर क्रिया का अध्ययन करने के लिए एक आदर्श स्थल बनाती है।

भुइया लोगों के प्रवास पैटर्न इस शोध के लिए केंद्रीय हैं, क्योंकि अध्ययन का उद्देश्य इन समुदायों से अन्य स्थानों पर व्यक्तियों के वार्षिक प्रवास को मापना है। जिले के सभी ब्लॉकों में अन्य जातियों के साथ भुइया टोला (गांव) का सह-अस्तित्व अंतर-जातीय संबंधों की जांच करने के लिए एक अनूठी पृष्ठभूमि प्रदान करता है, विशेष रूप से मुसहर महिलाओं के साथ बातचीत पर ध्यान केंद्रित करता है।

इसके अलावा, क्षेत्र की पहुंच और शोधकर्ता की क्षेत्र से परिचितता अध्ययन की व्यवहार्यता और गहराई को बढ़ाती है। यह परिचय कुशल फील्डवर्क और अधिक प्रभावी डेटा संग्रह सुनिश्चित करता है, जिससे

सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक गतिशीलता की गहन जांच संभव हो पाती है।

फील्ड एरिया का विवरण

झारखंड के चतरा जिले के चतरा ब्लॉक में एक छोटा सा गांव/टोला गेरी प्राथमिक फील्ड साइट के रूप में कार्य करता है। जिला मुख्यालय से 18 किलोमीटर उत्तर और चतरा मुख्य शहर से 9 किलोमीटर दूर स्थित यह गांव गेरी पंचायत के अंतर्गत आता है। गेरी में भुइया समुदाय दो अलग-अलग टोलों में रहता है- लरकटिया और कटुटिया- जो थोड़ी दूरी पर अलग-अलग हैं।

लरकटिया टोला : एक समतल क्षेत्र में स्थित यह समुदाय जीवन निर्वाह के लिए कृषि पर बहुत अधिक निर्भर करता है। हालाँकि वे जमीन पर खेती करते हैं, लेकिन उनके पास खेती के लिए जमीन का कानूनी स्वामित्व (खतियानी कागजात) नहीं है।

कठुटिया टोला : इसके विपरीत, यह समुदाय सरकारी जमीन पर रहता है और मुख्य रूप से दिहाड़ी मजदूर के रूप में अपना जीवन यापन करता है, अक्सर ईंट बनाने वाली फैक्ट्रियों में काम करता है।

दोनों टोलों के बीच एक मुख्य अंतर उनकी जमीन की स्थिति है: जहाँ लरकटिया निवासी वन भूमि पर रहते हैं, वहीं कटुटिया निवासी सरकारी जमीन पर रहते हैं। किसी भी समुदाय के पास स्वामित्व का दावा करने के लिए कानूनी दस्तावेज नहीं हैं, जिससे उन्हें बेदखल किए जाने और सरकारी कल्याण कार्यक्रमों से अयोग्य ठहराए जाने का खतरा बना रहता है। भूमि स्वामित्व की अनुपस्थिति शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और रोजगार के अवसरों तक उनकी पहुँच को भी बाधित करती है, जिससे उनका हाशिए पर रहना जारी रहता है।

मुसहर समुदाय की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियाँ

भुइया समुदाय दोनों टोलों में साझा और अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताएँ प्रदर्शित करता है। जहाँ लरकटिया निवासी कृषि गतिविधियों में संलग्न हैं, वहीं कटुटिया निवासी दैनिक मजदूर के रूप में काम करते हैं, जो अलग-अलग सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को दर्शाता है।

इन मतभेदों के बावजूद, दोनों समुदायों को प्रणालीगत बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। वे आधिकारिक तौर पर भूमिहीन हैं, उनके पास भारतीय नागरिक के रूप में अपने अधिकारों का दावा करने के लिए कोई कानूनी दस्तावेज नहीं है। कानूनी पहचान की यह कमी उन्हें स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा और आवास योजनाओं जैसी आवश्यक सरकारी सेवाओं तक पहुँचने से रोकती है। यहाँ तक कि जो लोग मैट्रिक या इंटरमीडिएट स्तर तक की कुछ शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे अक्सर अपनी अनिर्धारित स्थिति के कारण सरकारी नौकरियों के लिए अयोग्य होते हैं।

पलामू, हजारीबाग और संथाल परगना जैसे पहाड़ी क्षेत्रों में भुइया समुदायों की जीवनशैली उत्तर बिहार के समुदायों से काफी भिन्न है। उत्तर बिहार में हिंदू-प्रधान प्रथाओं के विपरीत, ये क्षेत्र मजबूत आदिवासी सांस्कृतिक प्रभावों को बनाए रखते हैं। ऐतिहासिक रूप से, इन क्षेत्रों में आदिवासी समुदायों ने हिंदू सांस्कृतिक वर्चस्व का विरोध किया है, इसके बजाय ईसाई धर्म, सरना धर्म या कबीर पंथ की विचारधाराओं को अपनाया है। समय के साथ, हिंदू धार्मिक हस्तक्षेपों ने आदिवासी एकता को खंडित कर दिया है, जिससे वर्ग और धार्मिक विभाजन शुरू हो गए हैं। हालाँकि, कई आदिवासी समूहों ने इन प्रभावों का विरोध किया है, अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान बनाए रखी है। गेरी में भुइया समुदाय इस द्वंद्व को दर्शाता है, आदिवासी परंपराओं को हिंदू प्रथाओं के साथ मिलाता है। वर्तमान में, दोनों टोलों में भुइया लोग हिंदू और ईसाई परंपराओं से प्रभावित एक समन्वित संस्कृति का प्रदर्शन करते हैं। जबकि उन्होंने कुछ हद तक हिंदू प्रथाओं को अपनाया है, उनके अनुष्ठानों में अक्सर आदिवासी तत्व बने रहते हैं। उदाहरण के लिए, वे कर्मा और सरन मनाते हैं, पूर्वजों की पूजा करते हैं,

और पारंपरिक हिंदू देवताओं के बजाय पेड़ों, आग और सूर्य जैसे प्राकृतिक प्रतीकों की पूजा करते हैं। यह संकरण उनकी सांस्कृतिक लचीलापन और अनुकूलन को दर्शाता है। 4. भुइया संदर्भ में फुले के विचारों का अनुप्रयोग भुइया समुदाय पर फुले के शैक्षिक विचारों का प्रभाव भुइया टोला में, एक स्कूल है जहाँ कई भुइया बच्चे नियमित रूप से जाते हैं। नियुक्त शिक्षक, जो 2007 से इस पद पर कार्यरत हैं, को 9,000 रुपये मासिक वेतन मिलता है। स्कूल सुबह 8 बजे से दोपहर 2-3 बजे तक संचालित होता है, जिसमें लगभग 50 बच्चे नामांकित हैं। शिक्षक ने बताया कि सख्त नियमों के कारण उपस्थिति कम हो सकती है, क्योंकि दबाव महसूस होने पर बच्चे स्कूल आना बंद कर सकते हैं।

जब बच्चों को उनके परिवारों से मिलने वाले समर्थन के बारे में पूछा गया, तो शिक्षक ने संकेत दिया कि बहुत कम समर्थन मिलता है। कई बच्चों के पास साफ कपड़े नहीं होते, वे गंदे बालों के साथ स्कूल आते हैं और उनके पास उचित यूनिफॉर्म नहीं होती। जबकि शिक्षक माता-पिता की अधिक भागीदारी की आवश्यकता को पहचानते हैं, वे समुदाय के भीतर शैक्षिक जागरूकता के निम्न स्तर को समर्थन की कमी के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, अंबेडकर, फुले और बिरसा मुंडा जैसे नेताओं से प्रेरित प्रभावशाली सामाजिक आंदोलनों के कारण शैक्षिक दृष्टिकोण में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। भुइया समुदाय शिक्षा को अपनी स्थिति सुधारने के साधन के रूप में तेजी से देख रहा है। उदाहरण के लिए, जब भुइया महिलाएँ काम पर जाती हैं, तो उनके बच्चे स्कूल जाना जारी रखते हैं। हालांकि, स्कूल में केवल दो शिक्षक हैं जो 100-150 बच्चों को पढ़ाने के लिए जिम्मेदार हैं, जिससे व्यक्तिगत ध्यान सीमित हो जाता है।

लारकटिया टोला की एक किशोरी लड़की ने एक निश्चित स्तर तक अपनी शिक्षा पूरी करने के बावजूद स्कूल छोड़ने का अपना अनुभव साझा किया। उसने कहा कि स्कूल के माहौल में सीखने पर ध्यान देने की कमी थी, शिक्षक अक्सर स्कूल के घंटों के बाहर निजी कोचिंग सत्र चलाने में अधिक निवेश करते थे। दोनों गांवों में, केवल एक प्राथमिक विद्यालय समुदाय की सेवा करता है, और जो लोग अपनी पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं उन्हें गेरी या बरनी जैसे आस-पास के शहरों की यात्रा करनी पड़ती है।

भुइया समुदाय के दैनिक जीवन में ब्राह्मणवादी वैचारिक प्रतिरोध

झारखंड में भुइया समुदाय हिंदू और आदिवासी परंपराओं को मिलाकर एक संस्कृति का पालन करता है। हालाँकि वे कुछ हिंदू रीति-रिवाजों का पालन करते हैं, लेकिन वे अपनी प्रथाओं में आदिवासी तत्वों को बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए, विवाह समारोहों में, वे अनुष्ठान करने के लिए पुरोहित (ब्राह्मण पुजारी) को आमंत्रित नहीं करते हैं; इसके बजाय, एक ठाकुर (एक सामुदायिक नाई या नाई) समारोह आयोजित करता है। इसी तरह, अंतिम संस्कार के दौरान, ब्राह्मण के बजाय नाई अनुष्ठान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इस समुदाय की महिलाएँ 20-30 वर्षों से इस गाँव में रह रही हैं और अक्सर कम उम्र में ही शादी कर लेती हैं। विवाह की रस्में मुख्य रूप से कन्यादान और सिंदूरदान के रीति-रिवाजों पर केंद्रित होती हैं, जबकि कुछ जोड़े अग्नि के चारों ओर पारंपरिक सात फेरे नहीं लेना चुनते हैं। दिलचस्प बात यह है कि यहाँ दहेज का प्रचलन आम नहीं है; इसके बजाय, शादी के हिस्से के रूप में दुल्हन को आवश्यक वस्तुएँ प्रदान की जाती हैं। दफनाने की रीति-रिवाजों के संदर्भ में, कुछ भुइया परिवार दाह संस्कार के बजाय दफनाना पसंद करते हैं और ऐसा अपनी जमीन पर करते हैं।

भुइया महिलाएँ वैवाहिक स्थिति के पारंपरिक हिंदू प्रतीकों, जैसे कि विशिष्ट आभूषणों का भी पालन नहीं

करती हैं, जिससे विवाहित महिलाओं और अविवाहित महिलाओं के बीच अंतर करना मुश्किल हो जाता है। फील्डवर्क के दौरान, यह देखा गया कि कम उम्र में बाल विवाह, जो कभी समुदाय में प्रचलित था, में काफी कमी आई है। माता-पिता अपनी बेटियों की शिक्षा के लिए अधिक सहायक हैं, और कम उम्र में विवाह की तुलना में स्कूली शिक्षा को प्रोत्साहित करने की ओर एक बदलाव आया है, जो शिक्षा और बाल विवाह के प्रति दृष्टिकोण पर फुले के प्रभाव को दर्शाता है।

भुइया सांस्कृतिक प्रथाओं पर फुले का प्रभाव

भुइया समुदाय ने हिंदू जाति संरचनाओं में एकीकरण के बाद भी अपने कई आदिवासी रीति-रिवाजों को बरकरार रखा है। आज, भुइया महिलाएँ कर्मा और सरना जैसे आदिवासी त्योहार मनाती हैं, जहाँ वे हिंदू देवताओं के बजाय प्राकृतिक तत्वों और पूर्वजों की पूजा करती हैं। इन प्रथाओं में न्यूनतम खर्च शामिल है और इसके लिए पुरोहित की आवश्यकता नहीं है, जो उनकी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान पर जोर देता है। वे विभिन्न उद्देश्यों के लिए जितिया, बीर बाबा और छठ पूजा मनाते हैं, जैसे कि बच्चों की भलाई सुनिश्चित करना या दुर्घटनाओं से सुरक्षा की माँग करना। हालाँकि छठ पूजा उनकी प्रथाओं में हाल ही में शामिल की गई है, लेकिन यह उनकी अपनी परंपराओं का सम्मान करते हुए व्यापक सांस्कृतिक प्रभावों के अनुकूलन को दर्शाता है।

भुइया समुदाय के लिए फुले के विचारों को लागू करने में चुनौतियाँ

भुइया समुदाय को उच्च जाति समूहों के निरंतर प्रभुत्व के कारण फुले के विचारों को अपनाने और लागू करने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। एक प्राथमिक मुद्दा सांस्कृतिक प्रभुत्व है – भुइया समुदाय अपनी विशिष्ट आदिवासी विरासत के बावजूद होली, दिवाली और जितिया जैसे मुख्यधारा के हिंदू त्योहारों को मनाने के लिए बाध्य महसूस करता है।

भूमि अधिकार एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है। कई भुइया परिवार प्रमुख जातियों द्वारा दावा की गई भूमि पर रहते हैं। जब इस बारे में पूछा गया, तो कुछ भुइया महिलाओं ने अपनी जमीन खाली करने के लिए दबाव डाले जाने के अनुभव साझा किए। उदाहरण के लिए, एक महिला, अमिया ने याद किया कि लगभग डेढ़ साल पहले, कोई व्यक्ति आया और उन्हें बेदखल करने की धमकी दी। उसने उससे कहा कि अगर वह वापस आया, तो वे अपने घरों की रक्षा के लिए उबलते पानी के साथ तैयार रहेंगी। एक अन्य महिला, कुंती ने साझा किया कि महतो जाति का एक सदस्य, जो पास में रहता है, ने उनकी जमीन के कुछ हिस्सों को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया, जिससे लगातार तनाव पैदा हो रहा है। सरकार और प्रमुख जाति के सदस्य अक्सर भुइया परिवारों पर अपनी जमीन और घर खाली करने का दबाव डालते हैं, लेकिन वे अपने पैतृक घरों में रहने के लिए अपनी दृढ़ता पर भरोसा करते हुए इसका विरोध करते हैं।

चुनौतियों के बावजूद, समय के साथ सकारात्मक बदलाव हुए हैं। भुइया महिलाओं के पास अब पशुपालन और मक्का, बाजरा और सब्जियाँ जैसी छोटी फसलें उगाने जैसे काम के ज्यादा विकल्प हैं। ये आर्थिक गतिविधियाँ एक ऐसा स्तर प्रदान करती हैं जो पहले अप्राप्य था।

हालाँकि समय के साथ अस्पृश्यता कम हुई है, लेकिन भुइया समुदाय को अभी भी अपनी अनूठी सांस्कृतिक प्रथाओं और जीवनशैली के कारण भेदभाव का सामना करना पड़ता है। प्रमुख जातियाँ कभी-कभी उनकी आलोचना करती हैं, उन पर हिंदू मानदंडों का पालन न करने का आरोप लगाती हैं। यहाँ तक कि भुइया ईसाइयों को भी ताने और बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। मुस्मात नाम की एक विधवा ने अपने अनुभव को साझा किया कि उसे 'चुड़ैल' करार दिया गया और गाँव में बच्चों की बीमारियों सहित कई दुर्भाग्य के

लिए दोषी ठहराया गया। 2007 में, उसने वार्ड सदस्य के पद के लिए चुनाव लड़ने का प्रयास किया, लेकिन समुदाय ने उसका समर्थन नहीं किया, जिससे वहाँ मौजूद गहरे पूर्वाग्रहों पर प्रकाश डाला गया।

निष्कर्ष और संस्तुतियाँ

झारखंड में भुइया समुदाय की जीवनशैली गैर-हिंदू विचारधाराओं में निहित है, जो मुख्यधारा की हिंदू परंपराओं से अलग प्रथाओं और मान्यताओं को बनाए रखते हैं। हालाँकि, एक हाशिए के समूह के रूप में, उन्हें अक्सर हिंदू धर्म से सांस्कृतिक दबाव और प्रभावों का सामना करना पड़ता है, जो पौराणिक कथाओं, दिखावटी प्रदर्शनों, अनावश्यक खर्चों और ब्राह्मणवाद के प्रभुत्व पर आधारित प्रथाओं को सामने लाते हैं। ये प्रभाव समुदाय के संसाधनों को कमजोर करते हैं और उन्हें उन प्रथाओं से विचलित कर सकते हैं जो उनके मूल्यों और जीवन के पारंपरिक तरीकों से मेल खाती हैं। अपने पूरे जीवन में, जोतिराव फुले ने ऐसी प्रथाओं के खिलाफ वकालत की, इस बात पर जोर दिया कि वे गरीबों को गरीबी और पुरोहित (पुजारी) विचारधाराओं पर निर्भरता के चक्र में फँसाते हैं। भुइया समुदाय के विकास और सांस्कृतिक सशक्तीकरण के लिए, फुले के विचार एक मार्गदर्शक ढाँचा प्रदान करते हैं। पहले कदम के रूप में, सरकार को कानूनी भूमि के कागजात जारी करके भुइया समुदाय के लिए भूमि स्वामित्व को औपचारिक बनाना चाहिए, जिससे उन्हें सम्मान और सुरक्षा के साथ रहने की अनुमति मिल सके। यह कानूनी मान्यता उनके आत्मविश्वास को मजबूत करेगी, जिससे वे बाहरी दबावों के प्रभाव के बिना अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित और मना सकेंगे। इसके अलावा, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर सरकारी पहल भुइया के अनूठे त्योहारों और परंपराओं, जैसे कर्मा, सरना और छठ को बढ़ावा दे सकती है। इन प्रथाओं को मान्यता देने और मनाने से उनकी संस्कृति, परंपराओं और इन त्योहारों के महत्व को व्यापक रूप से समझने में मदद मिलेगी, जिससे भुइया समुदाय के लिए सम्मान और समर्थन बढ़ेगा। प्रकृति और एक स्थायी जीवन शैली पर आधारित ये परंपराएँ उन वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुरूप हैं, जिनका समर्थन खुद फुले ने किया था।

इन उपायों के माध्यम से, भुइया समुदाय सांस्कृतिक गौरव और मजबूत सामाजिक-आर्थिक आधार दोनों प्राप्त कर सकता है, जिससे अंततः उन्हें अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार करते हुए अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने में मदद मिलेगी।

संदर्भ

- वेंडेल, डोमिनिक (2014). जोतिराव फुले सत्यशोधक और सबाल्टर्न चेतना की समस्या बहुत हानिकारक है, दक्षिण एशिया, अफ्रीका और मध्य पूर्व का तुलनात्मक अध्ययन, खंड 34, 1, पृ. 53
- बेगारी, जगन्नाथम (2020) ज्योतिराव फुले; एक क्रांतिकारी समाज सुधारक, भारतीय राजनीति विज्ञान पत्रिका, खंड 71, संख्या 2, पृ. 399-412
- नीता (2020), दलित जागृति और ज्योतिराव का सत्यशोधक समाज, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ इन्वेस्टिव सोशल साइंसेज एंड ह्यूमैनिटीज रिसर्च, खंड (7), संख्या 2, पृ. 3
- ओमवेट गेल (1973) सत्यशोधक समाज और किसान आंदोलन, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 8, संख्या 44, पृ. 1971-182
- ओमवेट गेल (2006), दलित विजन: जाति विरोधी आंदोलन और दलित पहचान का निर्माण, ओरिएंट लॉन्गमैन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
- टापर, रोमिला (2014), सवाल करना है या नहीं? यही सवाल है, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 49, संख्या 50, पृ. 33-39

- जोदका सुरिंदर और प्रद्युम्न बोरा (2012), विकास के नाम पर: महाराष्ट्र में आस्था आधारित संगठन बनाना, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 1 47, सं. 1, पृ. 77-85
- बेगारी, जगरनाथम (2010), जोतिबा फुले : एक क्रांतिकारी समाज सुधारक, भारतीय राजनीति विज्ञान पत्रिका, खंड 17, सं.2, पृ. 399-412
- बी.बी. मोहंती (2001) अनुसूचित जाति और जनजाति के बीच भूमि वितरण, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 36, सं. 40, पृ. 3854-3863
- रूमा मुखर्जी (2023) महिला सशक्तिकरण पर महात्मा जोतिबा फुले की विरासत, अंतरराष्ट्रीय शोध और विश्लेषणात्मक समीक्षा पत्रिका, खंड 10, सं. 1
- गुरु गोपाल (2003) ज्योतिबा फुले को मुक्त करना, जी.पी.देशपांडी और ज्योतिबा फुले द्वारा जोतिबा फुले के चयनित लेख, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 48, सं. 35, पृ. 3703-3704
- कुमार, नरेंद्र (2000) दलित और शूद्र राजनीति और ब्राह्मण विरोधी आंदोलन, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 35 नंबर 45, पृ. 3977-3979
- सोमाणी, कैलाशचंद अकुश और विजयकुमार एल. भांगडिया (2023), महात्मा ज्योतिबा फुले जन आरोग्य योजना 213-2023 की चुनौतियों और अवसरों की जांच, अंतराष्ट्रीय जर्नल ऑफ कॉमर्स एंड मैनेजमेंट स्टडीज, बीपीएल परिवारों के लिए, खंड 3 नंबर 1 पृ. 468-471
- दास स्नेहाशीष (2021) सत्य की ऐतिहासिक निरंतरता को तोड़ना, सामाजिक बहिष्कार का एक वैश्विक जर्नल, खंड 2 नंबर 1, पृ. 30-46
- नारायण सचिंद्र (....) मुसहर सामाजिक-आर्थिक अध्ययन, ए.एन. सिन्हा सामाजिक विज्ञान संस्थान, पटना, बिहार
- बी. सिद्धरामू (2013) महात्मा ज्योति के लेखन में वंचितों की मुक्ति
- बा फुले, संघर्ष/संघर्ष, खंड 2 इशु. 1, पृ. 30
- शर्मा अरविंद (2005), डॉ. बी.आर. अंबेडकर आर्यन आक्रमण और भारत में जाति व्यवस्था के उद्भव पर, जर्नल ऑफ द अमेरिकन एकेडमी ऑफ रिलीजन, खंड 73, संख्या 3, पृ. 843-8701
- जोतिराव गोविंद राव फुले (2017) गुलामगिरी, वन्नी पार्कसन, नई दिल्ली,
- रत्नम. के.वाई. (2008) आंध्र प्रदेश में दलित आंदोलन और लोकतंत्रीकरण, ईस्ट-वेस्ट वाशिंगटन वर्किंग पेपर्स, वाशिंगटन, संख्या 13.
- गोर राजेश सखाराम (2023) समाज के उत्थान में शिक्षा की भूमिका: महात्मा फुले, मुक्त शब्द जर्नल, खंड XII, अंक V, मई, पृ. 85-92



सीरियाई गृह युद्ध : एक विस्तृत विश्लेषण

○ सुभाष सिंह¹

○ सलीम अहमद²

संक्षिप्ति

वर्ष 2011 में शुरू हुआ सीरियाई गृह युद्ध एक जटिल और बहुआयामी संघर्ष है, जिसने सीरिया, पश्चिम एशिया और वैश्विक राजनीति पर गहरा प्रभाव डाला है। यह युद्ध लंबे समय से चले आ रहे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक असंतोष का परिणाम था, जो अरब स्प्रिंग के दौरान लोकतंत्र समर्थक विरोध प्रदर्शनों के रूप में सामने आया। प्रदर्शनकारियों ने राष्ट्रपति बशर अल-असद के शासन में सुधारों की मांग की, लेकिन सरकार की हिंसक प्रतिक्रिया ने इसे एक बड़े संघर्ष में बदल दिया। इस संघर्ष में विद्रोही गुट, इस्लामवादी चरमपंथी और कुर्दिश बल शामिल थे, जिससे यह युद्ध और भी जटिल हो गया। विदेशी हस्तक्षेप ने युद्ध की दिशा को काफी प्रभावित किया। ईरान, रूस और हिजबुल्लाह ने असद शासन को समर्थन दिया, जबकि अमेरिका, तुर्की और खाड़ी देशों ने विभिन्न विपक्षी गुटों का समर्थन किया। इसके साथ ही, इस्लामिक स्टेट का उदय हुआ, जिससे आतंकवाद विरोधी अभियान में वैश्विक स्तर पर भागीदारी बढ़ी। इस युद्ध में पांच लाख से अधिक लोगों की जान गई है और लाखों लोग विस्थापित हुए हैं, जिससे व्यापक विनाश और मानवीय संकट पैदा हुआ है। इस संघर्ष ने क्षेत्रीय राजनीति को नया रूप दिया है, जिसमें बड़े पैमाने पर शरणार्थी संकट, चरमपंथी गुटों का उभार और शक्ति संतुलन में बदलाव देखने को मिला है। भले ही असद ने सीरिया के अधिकांश क्षेत्रों पर फिर से नियंत्रण स्थापित कर लिया हो, लेकिन देश में राजनीतिक, मानवीय और आर्थिक समस्याएँ अभी भी बरकरार हैं। यह युद्ध न केवल क्षेत्रीय स्थिरता बल्कि वैश्विक सुरक्षा को भी प्रभावित कर रहा है। इस लेख में, गृह युद्ध के प्रमुख कारणों का विश्लेषण किया जाएगा और क्षेत्रीय एवं वैश्विक राजनीति पर इसके प्रभावों की पड़ताल की जाएगी। साथ ही, संघर्ष में शामिल बाहरी शक्तियों की भूमिका का भी आलोचनात्मक मूल्यांकन

-
1. सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय संबंध विभाग, मानविकी और सामाजिक विज्ञान संकाय, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश।
 2. सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, एमिटी इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज (AISS), एमिटी यूनिवर्सिटी, ग्वालियर, मध्य प्रदेश।

किया जायेगा

बीज शब्द : सीरियाई गृहयुद्ध, अरब स्प्रिंग, बशर अल-असद, सत्तावादी शासन, आईएसआईएस, कुर्द बल, ईरान, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, तुर्की, खाड़ी राज्य, हिजबुल्लाह, वैश्विक सुरक्षा और मानवीय संकट आदि।

सीरियाई गृह युद्ध, जिसकी शुरुआत 2011 में हुई और जो समय के साथ और भीषण होता गया, 21वीं सदी के सबसे विध्वंसकारी संघर्षों में से एक बन गया है। राजनीतिक दमन, सामाजिक अस्थिरता और आर्थिक कठिनाइयों की उलझनों से जन्मा यह युद्ध, राष्ट्रपति बशर अल-असद के निरंकुश शासन के खिलाफ लोकतांत्रिक सुधारों की मांग करने वाले शांतिपूर्ण प्रदर्शनों से उत्पन्न हुआ। बदलाव के इस जन आंदोलन ने जल्द ही घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय ताकतों को अपनी ओर खींच लिया, और यह एक बहुस्तरीय युद्ध में परिवर्तित हो गया, जिसने पश्चिम एशिया के परिदृश्य को पूरी तरह से बदल दिया।¹

वर्ष 2012 तक सीरिया की स्थिति पूरी तरह से संघर्ष में बदल चुकी थी, जहाँ असद सरकार के विरोध में कई विपक्षी गुट सक्रिय हो गए थे। गृहयुद्ध में विद्रोही ताकतें कई गुटों में बंट गईं, जिनमें उदारवादी समूहों के साथ-साथ इस्लामिक मिलिशिया और इस्लामिक स्टेट जैसे कट्टरपंथी संगठन शामिल थे। इन गुटों की जटिलता और रूस, ईरान तथा संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी बाहरी ताकतों की भागीदारी ने सीरिया को आपसी हितों के लिए एक संघर्ष क्षेत्र बना दिया, जिससे शांतिपूर्ण समाधान के प्रयास और भी चुनौतीपूर्ण हो गए। हिंसा के बढ़ने के साथ ही मानवीय संकट गहराता गया, जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए और नागरिकों को गंभीर पीड़ा का सामना करना पड़ा।²

वर्षों तक चले संघर्ष के दौरान, सीरिया ने भयानक तबाही झेली है; शहर खंडहरों में बदल गए हैं और समुदाय टूट चुके हैं। इस युद्ध का असर देश की सीमाओं से बाहर तक फैला, जिससे एक गंभीर शरणार्थी संकट उत्पन्न हुआ जिसने पड़ोसी देशों के साथ-साथ यूरोप को भी प्रभावित किया।³ वर्ष 2021 तक, सीरियाई गृहयुद्ध के चलते लाखों लोगों की जान चली गई, और लाखों लोग मानवीय सहायता पर निर्भर हो गए। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए इस संघर्ष में हस्तक्षेप करना और कूटनीतिक समाधान खोजना कठिन हो गया, और एक स्थायी शांति अब भी एक दूर की उम्मीद बनी हुई थी। इस गृह युद्ध ने आधुनिक युद्ध की जटिलताओं और लंबे संघर्ष के भीषण परिणामों को उजागर कर दिया।

गृह युद्ध के कारण

सीरियाई गृहयुद्ध के प्रमुख कारण राजनीतिक दमन, आर्थिक कठिनाई, सामाजिक असमानता, और सांप्रदायिक विभाजन की जटिलताओं में गहराई से जुड़े हुए हैं, जो 2011 में हुए विद्रोह से काफी पहले से सीरिया को प्रभावित कर रहे थे। संघर्ष की तात्कालिक वजह अरब स्प्रिंग से प्रेरित विरोध प्रदर्शन थे, लेकिन सीरिया की गहरी समस्याएँ असद परिवार के दशकों पुराने सत्तावादी शासन में पनप रही थीं। इन गहरे मुद्दों ने एक अस्थिर माहौल तैयार किया, जिसमें असंतोष को हिंसा में बदलना आसान हो गया।

तानाशाही शासन

सीरिया में गृहयुद्ध शुरू होने से पहले, असद परिवार ने 40 से अधिक वर्षों तक देश पर शासन किया था। 1971 में हाफिज अल-असद ने तख्तापलट कर सत्ता अपने हाथ में ली और बाथ पार्टी के प्रभुत्व के साथ एक सख्त एकपक्षीय तानाशाही स्थापित की। उनके शासन का आधार सेना और सुरक्षा तंत्र पर निर्भरता और अलावी अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति वफादारी को बढ़ावा देना था, जो शिया शाखा से ताल्लुक रखते थे और असद परिवार से जुड़े हुए थे। जबकि अलावी सीरिया की कुल आबादी का केवल 12% थे, उन्हें सेना, सरकार और

खुफिया एजेंसियों में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया गया, जिससे सुन्नी बहुसंख्यक (जो देश की लगभग 74% आबादी का हिस्सा हैं) के बीच असंतोष बढ़ा।⁴

हाफिज अल-असद के शासनकाल में विरोध को बेरहमी से दबाया गया। इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण 1982 में देखने को मिला, जब सीरियाई सरकार ने हामा शहर में एक इस्लामी विद्रोह को हिंसक तरीके से कुचला, जिसके कारण हजारों निर्दोष नागरिकों की जान चली गई। इस अत्याचार ने सीरियाई जनता को एक स्पष्ट संदेश दिया कि असद शासन किसी भी चुनौती का सामना अत्यधिक बल से करेगा।⁵ 2000 में हाफिज अल-असद के निधन के बाद, उनके बेटे बशर अल-असद ने सत्ता की कमान संभाली। प्रारंभ में, बशर को एक सुधारक के रूप में देखा गया था और इससे राजनीतिक उदारता की उम्मीदें उत्पन्न हुईं। हालांकि, यह उम्मीदें जल्दी ही टूट गईं क्योंकि बशर ने अपने पिता की तरह ही कड़े और दमनकारी उपायों को अपनाया। उनके शासन ने मीडिया, राजनीतिक दलों और नागरिक समाज पर सख्त नियंत्रण बनाए रखा, जिसके कारण असहमति की बहुत कम गुंजाइश रही।⁶

आर्थिक कठिनाइयाँ और सामाजिक असमानता

राजनीतिक दमन के साथ-साथ, सीरियाई गृहयुद्ध की शुरुआत में आर्थिक संकट भी एक महत्वपूर्ण कारण था। हालांकि 2000 के दशक में सीरिया ने कुछ आर्थिक विकास देखा, लेकिन वह विकास असमान रूप से वितरित हुआ, जिसका अधिकांश लाभ शासन से जुड़े उच्च वर्ग को मिला। भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद का बोलबाला था, और देश की बड़ी आबादी, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, गरीबी में जी रही थी। 2006 और 2010 के बीच आए गंभीर सूखे ने इन आर्थिक समस्याओं को और बढ़ा दिया। यह सूखा, जो देश के आधुनिक इतिहास का सबसे भयंकर सूखा था, ने उत्तर-पूर्वी सीरिया के कृषि समुदायों को बर्बाद कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, कई किसानों को अपनी जमीन छोड़नी पड़ी और वे रोजगार की तलाश में शहरी इलाकों की ओर पलायन करने लगे। दमिश्क और अलेप्पो जैसे शहरों में विस्थापित लोगों की अचानक बाढ़ ने सार्वजनिक सेवाओं पर अतिरिक्त दबाव डाला और नौकरी के अवसरों के लिए प्रतिस्पर्धा को बढ़ा दिया, जिससे सामाजिक तनाव भी बढ़ गया।⁷

सांप्रदायिक और जातीय तनाव

सांप्रदायिक और जातीय तनावों ने सीरियाई संघर्ष की शुरुआत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सीरिया एक विविधतापूर्ण देश है, जहां सुन्नी, अलावी, ईसाई, ड्रूज, कुर्द और अन्य धार्मिक एवं जातीय समुदायों का मिश्रण है। हालांकि असद शासन ने धर्मनिरपेक्षता की छवि प्रस्तुत की, उसने मुख्य रूप से अलावी अल्पसंख्यक समुदाय के पक्ष में काम किया, जिनके पास सत्ता का एक अत्यधिक हिस्सा था। इसके परिणामस्वरूप सुन्नी बहुसंख्यक समुदाय में असंतोष बढ़ा, जिन्होंने खुद को हाशिए पर और राजनीतिक एवं आर्थिक अवसरों से वंचित महसूस किया।⁸

इस समय, सीरिया के पूर्वोत्तर क्षेत्र में कुर्द आबादी भी असद सरकार के खिलाफ अपनी शिकायतें व्यक्त करती रही है। सीरिया की कुल आबादी का लगभग 10% हिस्सा कुर्दों का है, जिन्हें लंबे समय से बुनियादी अधिकारों से वंचित किया गया था, जिसमें कई लोगों के लिए नागरिकता भी शामिल थी। इसके साथ ही, उन्हें अरबीकरण की नीतियों का सामना करना पड़ा, जो उनकी पहचान और भाषा को दबाने का प्रयास करती थीं। कुर्दों का असंतोष एक और अस्थिरता का कारण था, जिसने देश के पहले से ही कमजोर सामाजिक ताने-बाने को और अधिक खराब कर दिया।⁹

अरब स्प्रिंग और विद्रोह की चिंगारी

सीरियाई गृहयुद्ध का मुख्य कारण अरब स्प्रिंग था, जो 2011 की शुरुआत में पश्चिम एशिया और उत्तरी

अफ्रीका में फैले लोकतंत्र समर्थक प्रदर्शनों की एक लहर थी। ट्यूनीशिया और मिस्र में सफल विद्रोहों से प्रेरित होकर, सीरिया में लोगों ने मार्च 2011 में राजनीतिक सुधारों, राजनीतिक कैदियों की रिहाई और भ्रष्टाचार के खिलाफ शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन शुरू कर दिए। शासन ने तीव्र और क्रूर प्रतिक्रिया दी। सुरक्षा बलों ने प्रदर्शनकारियों पर गोलियां चलाई, जिसके परिणामस्वरूप व्यापक आक्रोश फैल गया और विरोध बढ़ने लगे।¹⁰ हिंसा के इस प्रारंभिक दौर ने बड़े संघर्ष के लिए आधार तैयार किया, क्योंकि विपक्षी गुटों ने सरकार के दमन का विरोध करते हुए संगठित होना और हथियार उठाना शुरू कर दिया। शांतिपूर्ण प्रदर्शनों ने जल्द ही एक पूर्ण गृहयुद्ध का रूप ले लिया, जो सीरिया को दशकों से प्रभावित कर रहे गहरे राजनीतिक, आर्थिक और सांप्रदायिक समस्याओं से प्रेरित था।

प्रमुख खिलाड़ी और गुट

जैसे-जैसे संघर्ष बढ़ता गया, सीरिया कई घरेलू और अंतरराष्ट्रीय शक्तियों के लिए युद्ध का मैदान बन गया। युद्ध जल्दी ही एक बहुपक्षीय संघर्ष में बदल गया, जिसमें कई गुट अपने हितों की पूर्ति के लिए होड़ कर रहे थे। प्रमुख खिलाड़ी इस प्रकार हैं:

- **असद शासन :** राष्ट्रपति बशर अल-असद के नेतृत्व में, शासन ने सेना और विभिन्न वफादार मिलिशिया के समर्थन से सत्ता बनाए रखी। इसे रूस और ईरान से महत्वपूर्ण समर्थन मिला, दोनों ने सैन्य, आर्थिक और राजनीतिक सहायता प्रदान की। 2015 में रूस के हस्तक्षेप ने असद के पक्ष में रुख मोड़ दिया, क्योंकि उसके हवाई हमलों और सैन्य उपस्थिति ने सीरियाई सेना को मजबूत किया।¹¹
- **सीरियाई विपक्ष :** शुरू में इसमें कई धर्मनिरपेक्ष और इस्लामवादी समूह शामिल थे, लेकिन युद्ध के चलते विपक्ष बिखर गया। संघर्ष की शुरुआत में फ्री सीरियन आर्मी (FSA) एक प्रमुख विपक्षी ताकत के रूप में उभरी, लेकिन आंतरिक मतभेदों और इस्लामवादी गुटों के उदय ने इसके प्रभाव को कमजोर कर दिया। तुर्की ने उत्तरी सीरिया में प्रभाव स्थापित करने के लिए विभिन्न विपक्षी समूहों को समर्थन दिया।¹²
- **इस्लामी समूह :** अल-नुसरा फ्रंट (जिसे बाद में हयात तहरीर अल-शाम के नाम से जाना गया) और इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एंड सीरिया (आईएसआईएस) जैसे उग्रवादी इस्लामी संगठनों ने सीरियाई गृह युद्ध की अराजकता का लाभ उठाया। विशेष रूप से आईएसआईएस ने सीरिया और इराक में बड़े इलाके पर कब्जा किया और 2014 में खिलाफत की घोषणा करके अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कुख्याति हासिल की। इन समूहों ने न केवल सरकारी बलों बल्कि विपक्षी ताकतों के लिए भी गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कीं।¹³
- **कुर्द बल :** सीरिया की कुर्द जनसंख्या, जिसे मुख्य रूप से कुर्द पीपुल्स प्रोटेक्शन यूनिट्स (YPG) का प्रतिनिधित्व प्राप्त है, ने उत्तर-पूर्वी सीरिया में रोजावा नामक एक स्वायत्त क्षेत्र स्थापित किया। वे इस्लामिक स्टेट के खिलाफ लड़ाई में अमेरिका के नेतृत्व वाले गठबंधन के प्रमुख सहयोगी थे, लेकिन तुर्की उन्हें शत्रुतापूर्ण दृष्टि से देखता था, क्योंकि उसे अपनी सीमाओं के पास कुर्द अलगाववाद के बढ़ने का डर था।¹⁴
- **अंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ :** इस संघर्ष में विभिन्न वैश्विक शक्तियाँ अपने-अपने हितों के साथ शामिल हुईं। रूस, ईरान और हिज्बुल्लाह ने असद सरकार का समर्थन किया, जबकि अमेरिका, तुर्की और खाड़ी देशों (विशेष रूप से सऊदी अरब और कतर) ने विपक्षी समूहों की मदद की। अमेरिका ने

इस्लामिक स्टेट को पराजित करने, हवाई हमले करने और कुर्द बलों को सहायता देने पर जोर दिया।

संघर्ष के प्रमुख चरण

1. प्रारंभिक विद्रोह (2011-2012)

वर्ष 2011 में सीरिया में शुरू हुआ पहला विद्रोह अरब स्प्रिंग के तहत होने वाले व्यापक विरोध प्रदर्शनों का हिस्सा था। यह विद्रोह मुख्य रूप से राष्ट्रपति बशर अल-असद के सत्तावादी शासन के खिलाफ असंतोष से प्रेरित था, जिन्हें वर्ष 2000 में अपने पिता हाफिज अल-असद से सत्ता विरासत में मिली थी। प्रारंभ में, विरोध प्रदर्शन शांतिपूर्वक राजनीतिक सुधार, अधिक स्वतंत्रता और सरकारी भ्रष्टाचार को समाप्त करने की मांग कर रहे थे। हालांकि, असद शासन ने प्रदर्शनकारियों को दबाने के लिए सेना का इस्तेमाल किया, जिसके परिणामस्वरूप तनाव बढ़ गया। दारा शहर में, जहां बच्चों को सरकार विरोधी भित्तिचित्रों के आरोप में गिरफ्तार किया गया और प्रताड़ित किया गया, वहाँ हिंसा ने लोगों के बीच आक्रोश पैदा किया, जिससे पूरे देश में विरोध फैल गया।¹⁵

वर्ष 2012 तक, शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन एक पूर्ण नागरिक संघर्ष में परिवर्तित हो गया था। जैसे-जैसे सरकार द्वारा हिंसक दमन बढ़ता गया, विपक्षी समूहों ने हथियारों का सहारा लेना शुरू कर दिया और विभिन्न विद्रोही गुट उभरे। इन गुटों के उद्देश्यों में भिन्नता थी, कुछ लोकतांत्रिक सुधारों की मांग कर रहे उदारवादी थे, तो कुछ इस्लामिक राज्य स्थापित करने की चाहत रखने वाले कट्टरपंथी इस्लामवादी थे। इसके साथ ही विदेशी शक्तियाँ भी इसमें शामिल हो गईं, और क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय ताकतों ने असद सरकार और विभिन्न विपक्षी गुटों दोनों को समर्थन देना शुरू किया। इस समय ने सीरिया के लंबे गृहयुद्ध की शुरुआत को चिह्नित किया, जिसने आने वाले वर्षों में देश को बर्बाद कर दिया।¹⁶

2. इस्लामी उग्रवादियों और सांप्रदायिकता का उदय (2013-2014)

वर्ष 2013 और 2014 के बीच सीरिया में इस्लामवादी उग्रवादियों का उभार और सांप्रदायिक तनाव का बढ़ना, सीरियाई गृह युद्ध में एक अहम मोड़ साबित हुआ। शुरुआत में बशर अल-असद की सरकार और सुधार की मांग करने वाले विद्रोही समूहों के बीच संघर्ष था, लेकिन यह युद्ध धीरे-धीरे धार्मिक और वैचारिक विभाजन से प्रेरित एक जटिल संघर्ष में बदल गया। अल-नुसरा फ्रंट (जो अल-कायदा से जुड़ा था) और इस्लामिक स्टेट जैसे इस्लामवादी समूह विपक्ष में प्रमुख ताकतों के रूप में सामने आए। इन समूहों ने युद्ध के कारण पैदा हुई अराजकता और सत्ता के खालीपन का फायदा उठाया, विदेशी लड़ाकों को आकर्षित किया और बड़े क्षेत्रों पर कब्जा किया। उनकी उग्रवादी विचारधाराएँ न केवल असद की सरकार को गिराना चाहती थीं, बल्कि एक सख्त इस्लामी शासन लागू करने की भी कोशिश कर रही थीं, जिससे संघर्ष और जटिल हो गया। जैसे-जैसे ये उग्रवादी ताकतें सीरिया में मजबूत हुईं, उन्होंने नागरिकों और प्रतिद्वंद्वी गुटों पर हिंसा बढ़ाई, जिसके कारण सीरियाई समाज सांप्रदायिक आधार पर और अधिक विभाजित हो गया।¹⁷

इस अवधि में, सीरियाई समाज में एक निहित तनाव के रूप में मौजूद सांप्रदायिकता प्रमुख रूप से सामने आई। सुन्नी बहुसंख्यक, जिनमें से कई विद्रोही कारणों का समर्थन कर रहे थे, खुद को असद शासन के खिलाफ पाया, जो अलावी अल्पसंख्यक द्वारा नियंत्रित था। यह विभाजन इस्लामवादी समूहों के उभार से और गहरा हुआ, जिन्होंने संघर्ष को धार्मिक युद्ध के रूप में पेश किया, जिसमें शिया, अलावी, ईसाई और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को निशाना बनाया गया। असद सरकार के समर्थन में ईरान और हिजबुल्लाह जैसी विदेशी शक्तियों की भूमिका, साथ ही सुन्नी विद्रोही समूहों का समर्थन करने वाले खाड़ी देशों ने सांप्रदायिक शत्रुता को और बढ़ाया। 2014 तक, सीरिया सिर्फ भू-राजनीतिक हितों के लिए नहीं, बल्कि धार्मिक और सांप्रदायिक पहचान के संघर्ष

के कारण भी एक हिंसक युद्धक्षेत्र बन चुका था, जिससे यह युद्ध आधुनिक इतिहास के सबसे विनाशकारी और जटिल संघर्षों में से एक बन गया।¹⁸

3. अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप और रूसी भागीदारी (2015-2017)

वर्ष 2015 और 2017 के बीच, सीरिया में अंतर्राष्ट्रीय भागीदारी में तेजी से वृद्धि हुई, क्योंकि विभिन्न वैश्विक और क्षेत्रीय शक्तियों ने संघर्ष में अपनी सैन्य, राजनीतिक और कूटनीतिक भूमिका को और अधिक मजबूती प्रदान की। रूस विशेष रूप से एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरा, जब इसने सितंबर 2015 में सीरियाई राष्ट्रपति बशर अल-असद की सरकार का समर्थन करते हुए सीधे सैन्य हस्तक्षेप शुरू किया। इस हस्तक्षेप में हवाई हमले, जमीनी अभियानों और रसद सहायता को शामिल किया गया, जिसने सीरियाई शासन के पक्ष में शक्ति संतुलन को महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित किया। दूसरी ओर, अमेरिका के नेतृत्व वाला गठबंधन अपनी सैन्य कार्रवाइयों को आईएसआईएस के खिलाफ केंद्रित करता हुआ विशेष रूप से उत्तरी सीरिया में सक्रिय था, जबकि अमेरिका ने कुर्द नेतृत्व वाले सीरियाई डेमोक्रेटिक फोर्स (एसडीएफ) को अपने मुख्य जमीनी साझेदार के रूप में समर्थन दिया।¹⁹

इस अवधि में क्षेत्रीय शक्तियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, और अक्सर वे विरोधी गुटों का समर्थन करतीं दिखीं। ईरान ने हिजबुल्लाह के साथ मिलकर असद को समर्थन देना जारी रखा, जिसमें सैन्य और वित्तीय सहायता शामिल थी। तुर्की ने अपनी भागीदारी को बढ़ाया, खासकर 2016 में ऑपरेशन यूफ्रेट्स शील्ड के तहत, जिसका मुख्य उद्देश्य इस्लामिक स्टेट और कुर्द बलों को अपनी सीमा से बाहर करना था।²⁰ इस बीच, सऊदी अरब और कतर ने विभिन्न विद्रोही समूहों का समर्थन किया, हालांकि उनका प्रभाव कम हो गया क्योंकि असद की सेनाओं ने रूसी और ईरानी समर्थन के साथ महत्वपूर्ण क्षेत्रों को फिर से हासिल कर लिया। इन अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेपों के संयोजन ने सीरिया को प्रतिस्पर्धी वैश्विक और क्षेत्रीय हितों के लिए युद्ध के मैदान में बदल दिया, जिससे राजनीतिक समाधान की कोई भी संभावना दिखाई नहीं दे रही है।²¹

4. इस्लामिक स्टेट की हार और असद की सत्ता का पुनः सुदृढ़ीकरण (2018-2021)

वर्ष 2018 और 2021 के बीच, सीरिया में इस्लामिक स्टेट की हार ने देश में लंबे समय से चल रहे गृहयुद्ध में महत्वपूर्ण बदलाव किया। इस्लामिक स्टेट ने एक समय सीरिया और इराक के बड़े हिस्से पर नियंत्रण किया था, अपनी स्वयं की खिलाफत स्थापित की और पूरे क्षेत्र में आतंक फैलाया। 2019 तक, संयुक्त राज्य अमेरिका और क्षेत्रीय कुर्द बलों के नेतृत्व में अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन के समर्थन से इस्लामिक स्टेट ने सीरिया के बागौज में अपना अंतिम क्षेत्रीय गढ़ खो दिया। इस हार ने समूह की ताकत को काफी कम कर दिया, फिर भी यह सीरिया और इराक में स्लीपर सेल और विद्रोही रणनीति के माध्यम से खतरा उत्पन्न करता रहा।²² इस्लामिक स्टेट की हार ने उसके द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों में कुछ हद तक शांति स्थापित की, लेकिन इसके साथ ही एक संकट भी पैदा कर दिया, जहां सीरियाई डेमोक्रेटिक फोर्स (SDF) और सीरियाई विपक्ष के बाकी हिस्सों सहित विभिन्न गुटों को व्यवस्था बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ा।

इस दौरान, राष्ट्रपति बशर अल-असद की सरकार ने इस्लामिक स्टेट के पतन का फायदा उठाते हुए सीरिया के अधिकांश हिस्सों में अपनी सत्ता को फिर से सशक्त किया। रूस और ईरान जैसे महत्वपूर्ण सहयोगियों के समर्थन से, असद की सेना ने सैन्य हमलों और बातचीत के माध्यम से विद्रोहियों के कब्जे वाले क्षेत्रों पर फिर से नियंत्रण स्थापित किया। 2021 तक, असद शासन ने देश के अधिकांश हिस्से पर पुनः कब्जा कर लिया, केवल उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व के कुछ क्षेत्रों को छोड़कर, जो अब भी कुर्द बलों और तुर्की समर्थित विद्रोहियों के अधीन हैं। असद सरकार का अस्तित्व और पुनर्निर्माण एक बड़ी मानवीय लागत पर हुआ, जिसमें

युद्ध अपराधों और मानवाधिकार उल्लंघनों के गंभीर आरोप शामिल थे। हालांकि, बाहरी शक्तियों के समर्थन ने शासन को प्रभावी रूप से अपनी स्थिति मजबूत करने में मदद की, जो गृहयुद्ध के प्रारंभिक वर्षों में जब इसका भविष्य अनिश्चित था, एक बड़े बदलाव के रूप में उभरा।²³

मानवीय संकट

मार्च 2011 से सीरिया सरकार और विपक्षी ताकतों के बीच एक सशस्त्र संघर्ष जारी है। यह संकट राष्ट्रपति बशर अल-असद द्वारा विरोध प्रदर्शनों पर सख्त कार्रवाई से शुरू हुआ, जो जल्दी ही एक राष्ट्रीय संघर्ष में बदल गया, जिसमें व्यापक अत्याचार और रासायनिक हथियारों का अवैध उपयोग भी शामिल था। सितंबर 2015 से सीरियाई सरकारी बलों को रूसी हवाई हमलों का समर्थन प्राप्त है। संघर्ष की शुरुआत से लेकर अब तक कम से कम 580,000 लोग अपनी जान गवा चुके हैं, जिनमें 1 मार्च 2011 से 31 मार्च 2021 तक अनुमानित 306,887 नागरिक भी शामिल हैं, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त ने बताया है।²⁴ संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, सीरिया की युद्ध से पहले की आबादी का लगभग आधा हिस्सा – यानी लगभग 13 मिलियन लोग – अपने घरों से भाग चुके हैं, जिनमें से 6.6 मिलियन लोग आंतरिक रूप से विस्थापित हो गए हैं और 5.6 मिलियन लोग तुर्की, लेबनान और जॉर्डन जैसे पड़ोसी देशों में शरण ले रहे हैं। इस शरणार्थी संकट ने मेजबान देशों में संसाधनों की कमी उत्पन्न कर दी है और यूरोप में आव्रजन को लेकर राजनीतिक विवादों को जन्म दिया है।²⁵

वर्ष 2021 तक, मानवीय स्थिति और भी बदतर हो गई, शरणार्थी शिविरों में अत्यधिक भीड़-भाड़ और रहने की खराब परिस्थितियों के कारण लाखों लोग बुनियादी आवश्यकताओं जैसे स्वच्छ पानी, भोजन और स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित रह गए। विशेष रूप से बच्चों को मानसिक आघात और शिक्षा तथा सुरक्षा की महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ा। मानवीय प्रयासों को लगातार चल रही हिंसा और युद्धरत गुटों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों ने बाधित किया, जिससे घिरे हुए क्षेत्रों में सहायता का वितरण सीमित हो गया। संघर्ष के कारण आर्थिक स्थिति गंभीर रूप से बिगड़ी, सीरिया का बुनियादी ढांचा और स्वास्थ्य सेवा प्रणाली पूरी तरह से नष्ट हो गई, जिससे लाखों लोग अपनी जिंदगी बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहायता पर निर्भर हो गए।²⁶

भू-राजनीतिक परिणाम

सीरियाई गृह युद्ध ने पश्चिम एशिया और उससे आगे के भू-राजनीतिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है। इसके मुख्य परिणाम इस प्रकार हैं:

पश्चिम एशिया की शक्ति गतिशीलता में बदलाव

वर्ष 2011 और 2021 के बीच, सीरियाई संघर्ष क्षेत्रीय शक्तियों के लिए एक युद्धभूमि बन गया, जो अपने प्रभाव को फैलाने की कोशिश कर रही थीं। सीरियाई गृह युद्ध, जो अरब स्प्रिंग के व्यापक आंदोलन का हिस्सा था, जल्दी ही एक छद्म संघर्ष में बदल गया, जिसमें विभिन्न पक्ष शामिल हो गए। ईरान एक महत्वपूर्ण ताकत के रूप में उभरा, जिसने सीरिया में बशर अल-असद की सरकार को सैन्य और वित्तीय सहायता प्रदान की, ताकि वह क्षेत्र में अपनी रणनीतिक स्थिति बनाए रख सके। असद के समर्थन के माध्यम से, ईरान ने तेहरान से इराक और सीरिया होते हुए लेबनान तक अपने प्रभाव का गलियारा सुरक्षित करने का लक्ष्य रखा, जहां उसका सहयोगी हिज़बुल्लाह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।²⁷ इस दौरान, तुर्की ने अपने एजेंडे को आगे बढ़ाते हुए शुरू में असद शासन का विरोध किया और अपनी सीमा पर कुर्दों की स्वायत्तता की आकांक्षाओं को दबाने की कोशिश की। तुर्की के सैन्य हस्तक्षेप, खासकर उत्तरी सीरिया में, का उद्देश्य अपनी सीमा को सुरक्षित करना

और कुर्द-नेतृत्व वाली सीरियन डेमोक्रेटिक फोर्स (एसडीएफ) के खिलाफ सीरियाई क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाना था।²⁸

इसके अलावा, खाड़ी देशों, विशेष रूप से सऊदी अरब और कतर ने असद के विरोधी विद्रोही समूहों को समर्थन देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने इस संघर्ष को सीरिया और व्यापक क्षेत्र में ईरानी प्रभाव का सामना करने के अवसर के रूप में देखा। सऊदी अरब ने असद के सत्ता से हटने को ईरान की रणनीतिक स्थिति को कमजोर करने का एक तरीका माना।²⁹ जैसे-जैसे संघर्ष बढ़ता गया, इस्लामिक स्टेट जैसे चरमपंथी समूहों के उभरने से स्थिति में बदलाव आया, जिसके परिणामस्वरूप रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी बाहरी शक्तियाँ इसमें हस्तक्षेप करने लगीं।³⁰

रूसी प्रभाव

वर्ष 2012 से 2021 के दौरान रूस ने सीरियाई गृहयुद्ध के परिणामों को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूस का सीरियाई राष्ट्रपति बशर अल-असद के समर्थन में सैन्य हस्तक्षेप 2015 में शुरू हुआ। रूस के सहयोग, जिसमें मुख्य रूप से हवाई हमले, खुफिया सहायता और जमीनी समर्थन शामिल थे, ने असद सरकार को विद्रोही समूहों के खिलाफ वर्षों की चुनौतियों के बाद मजबूती प्रदान की। इस हस्तक्षेप के माध्यम से, रूस ने टार्टस में अपने एकमात्र भूमध्यसागरीय नौसैनिक अड्डे की सुरक्षा, क्षेत्र में अपनी उपस्थिति बनाए रखने और पश्चिम एशिया में पश्चिमी प्रभुत्व को चुनौती देने का प्रयास किया। इसके साथ ही, मॉस्को ने अपनी वैश्विक शक्ति की स्थिति को प्रदर्शित करते हुए अपने प्रमुख सहयोगियों की रक्षा और भू-राजनीतिक हितों की सुरक्षा के प्रति अपनी तत्परता का संकेत दिया।³⁰

रूस ने सीरिया में शांति स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जहाँ उसने सैन्य सहयोग के साथ-साथ कूटनीतिक प्रयास भी किए। उसने ईरान और तुर्की के साथ मिलकर अस्ताना प्रारूप में शांति वार्ता का नेतृत्व किया और संघर्षरत दलों के बीच मध्यस्थता की। अमेरिका की शांति पहल विफल होने के बाद रूस ने एक शक्ति मध्यस्थ के रूप में खुद को स्थापित किया। रूस का उद्देश्य असद सरकार को समर्थन देते हुए क्षेत्रीय स्थिरता और अपने भू-राजनीतिक हितों की रक्षा करना था। उसने सोची और अस्ताना जैसी वार्ताओं के जरिए राजनीतिक समाधान को बढ़ावा दिया। इस अवधि में रूस और ईरान के बीच गठबंधन मजबूत हुआ, जहाँ दोनों ने असद का समर्थन किया। सीरियाई शासन में एक स्थिर शक्ति के रूप में रूस की भूमिका ने उसे वैश्विक कूटनीति में लाभ दिलाया। रूसी हस्तक्षेप ने न केवल असद के शासन को सुरक्षित किया, बल्कि युद्ध के बाद सीरिया के पुनर्निर्माण और क्षेत्रीय भू-राजनीति में भी रूसी प्रभाव को बढ़ावा दिया।³¹

अमेरिका और यूरोपीय देशों की वापसी

वर्ष 2012 से 2021 के बीच, सीरिया में अमेरिका और यूरोप की भागीदारी में बड़े बदलाव देखने को मिले, जिसमें सैन्य हस्तक्षेप, प्राथमिकताओं में बदलाव और अंततः वापसी शामिल थी। उनकी भागीदारी का शुरुआती चरण अरब स्प्रिंग के प्रभाव से असद शासन के खिलाफ उठे विद्रोह से प्रेरित था, जिसमें पश्चिमी देशों ने शुरू में विद्रोही समूहों का समर्थन किया और असद को सत्ता से हटाने की मांग की।³² वर्ष 2014 में इस्लामिक स्टेट के उभार ने प्राथमिकताओं में बदलाव ला दिया, जिससे अमेरिका और उसके यूरोपीय सहयोगी शासन परिवर्तन के बजाय आतंकवाद विरोधी कार्यों को महत्व देने लगे। अमेरिका के नेतृत्व में कई यूरोपीय देशों वाले गठबंधन ने इस्लामिक स्टेट के खिलाफ हवाई हमले किए और कुर्द नेतृत्व वाली सेना, जिसे सीरियन डेमोक्रेटिक फोर्स (SDF) के नाम से जाना जाता है, को सहयोग प्रदान किया। हालांकि, अधिकांश यूरोपीय देश जमीनी सैनिक भेजने में हिचकिचा रहे थे और इसके बजाय हवाई शक्ति और स्थानीय बलों को प्रशिक्षण

देने पर निर्भर रहे।³³

2019 तक, इस्लामिक स्टेट की क्षेत्रीय हार के साथ, अमेरिका ने राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के नेतृत्व में सीरिया से अपनी सैन्य उपस्थिति घटाने की इच्छा जताई, जिससे पश्चिम एशिया में अपनी सैन्य तैनाती कम करने पर जोर दिया गया। 2019 में उत्तरी सीरिया से अमेरिकी सैनिकों की वापसी के निर्णय ने तुर्की को कुर्द बलों के खिलाफ आक्रामक कार्रवाई शुरू करने की अनुमति दी, जिसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण विवाद उत्पन्न हुआ और अमेरिका के कुर्द सहयोगियों के भविष्य को लेकर चिंता उत्पन्न हुई। सीमित सैन्य भागीदारी वाले यूरोपीय देशों को सीरियाई संघर्ष में शामिल होने से बचने के लिए बढ़ते घरेलू दबाव का सामना करना पड़ा, विशेष रूप से शरणार्थी संकट और मानवीय मुद्दों के बढ़ने के कारण।³⁴ वर्ष 2021 तक, सीरिया में पश्चिमी सैन्य उपस्थिति में काफी कमी आई, जिसके परिणामस्वरूप रूस, ईरान और तुर्की प्रमुख बाहरी शक्तियाँ बन गईं और पश्चिमी शक्तियाँ सीरिया के भविष्य को पुनः आकार देने की पूर्व की योजनाओं से पीछे हट गईं।

कुर्द प्रश्न

कुर्द प्रश्न पश्चिम एशिया में एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना रहा है, विशेष रूप से वर्ष 2012 से 2021 तक, क्योंकि यह सीरियाई गृहयुद्ध की व्यापक परिप्रेक्ष्य से जुड़ा हुआ था। वर्ष 2011 में शुरू हुए सीरियाई संघर्ष ने कुर्द आबादी के लिए एक शक्ति का खालीपन और अवसर उत्पन्न किया, जिसे मुख्य रूप से डेमोक्रेटिक यूनियन पार्टी (PYD) और उसकी सशस्त्र शाखा, पीपुल्स प्रोटेक्शन यूनिट्स (YPG) द्वारा प्रस्तुत किया गया। कुर्द, जो लंबे समय से सीरिया में अधिक स्वायत्तता और अधिकारों की मांग कर रहे थे, ने देश के उत्तरी हिस्से में स्व-शासित क्षेत्र बनाने के लिए अराजकता का लाभ उठाया, जिसे रोजावा के नाम से जाना जाता है। उनका उद्देश्य केवल एक स्वायत्त कुर्द इकाई की स्थापना नहीं था, बल्कि लोकतंत्र, लैंगिक समानता और जातीय सह-अस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित शासन का एक अनूठा मॉडल भी प्रस्तुत करना था। हालांकि, इस नई स्वायत्तता ने सीरियाई सरकार और पड़ोसी तुर्की को नाराज कर दिया, जिसने कुर्द बलों को PKK (कुर्दिस्तान वर्कर्स पार्टी) आतंकवादी खतरे के रूप में देखा।³⁵

सीरियाई गृहयुद्ध में कुर्दों की भागीदारी ने क्षेत्रीय राजनीति पर गहरा प्रभाव डाला, विशेष रूप से जब कुर्द बलों ने इस्लामिक स्टेट के खिलाफ संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस युद्ध में YPG और अमेरिकी सेना के गठबंधन ने एक साझा दुश्मन के खिलाफ लड़ते हुए कुर्द बलों की रणनीतिक अहमियत को स्पष्ट किया। हालांकि, यह सहयोग कई जटिलताओं से घिरा हुआ था।³⁶ कुर्द समूहों को अमेरिकी समर्थन ने NATO सहयोगी तुर्की को अलग-थलग कर दिया और अमेरिका-तुर्की रिश्तों में तनाव उत्पन्न किया। 2019 में, उत्तरी सीरिया से अमेरिका की वापसी ने तुर्की को कुर्द बलों पर हमला करने के लिए 'ऑपरेशन पीस स्प्रिंग' शुरू करने का अवसर प्रदान किया। इस आक्रमण ने कुर्दों द्वारा स्थापित स्वायत्तता को खतरे में डाल दिया, जिसके कारण क्षेत्र में पहले से ही जटिल मानवीय स्थिति और अधिक जटिल हो गई।³⁷ वर्ष 2021 तक, कुर्द मुद्दा अनसुलझा रहा, जो सीरियाई सरकार और तुर्की के बीच चल रहे तनावों से प्रभावित था, जबकि कुर्दों की अधिक अधिकारों और मान्यता की आकांक्षाएँ पश्चिम एशियाई राजनीति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण तत्व बनी रही।

निष्कर्ष

सीरियाई गृह युद्ध, जो 2011 में असद शासन के खिलाफ एक शांतिपूर्ण विद्रोह के रूप में शुरू हुआ था, अब 21वीं सदी के सबसे जटिल और विनाशकारी संघर्षों में से एक बन चुका है। इस संघर्ष के दौरान, कई घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय पक्षों ने भाग लिया है, जिससे एक गंभीर मानवीय संकट उत्पन्न हुआ है। लाखों लोग विस्थापित हो गए हैं और अनगिनत जानें गयीं। सीरिया का विभिन्न गुटों में विभाजन, जिनमें सरकारी सेना ,

कुर्द बल और चरमपंथी समूह शामिल हैं, एक संयुक्त समाधान को प्राप्त करने में गंभीर चुनौतियों का सामना कराता है। शांति वार्ता और युद्धविराम के कई प्रयासों के बावजूद, लगातार हिंसा और राजनीतिक गतिरोध यह दर्शाते हैं कि स्थानीय और विदेशी शक्तियों के विभिन्न हितों ने सुलह की राह को कठिन बना दिया है।

सीरियाई गृह युद्ध के मानवीय प्रभाव को कम करके नहीं आंका जा सकता। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, 13 मिलियन से अधिक सीरियाई नागरिकों को मानवीय सहायता की आवश्यकता है, जिनमें लाखों लोग भयंकर परिस्थितियों में जीवन बिता रहे हैं, जैसे कि खाद्य असुरक्षा और चिकित्सा सुविधाओं की कमी। इस संघर्ष ने हाल के समय के सबसे बड़े शरणार्थी संकटों में से एक को जन्म दिया है, जिसके कारण लाखों लोग पड़ोसी देशों और यूरोप में पलायन कर रहे हैं। सीरिया के समाज का ताना-बाना बुरी तरह प्रभावित हुआ है, जहाँ समुदायों के बीच सांप्रदायिक तनाव और हिंसा ने उन्हें अलग-थलग कर दिया है। इस संकट में न केवल तत्काल मानवीय सहायता की आवश्यकता है, बल्कि समाज के पुनर्निर्माण और उपचार के लिए दीर्घकालिक रणनीतियाँ भी जरूरी हैं।

भविष्य में, शांति का रास्ता अभी भी अनिश्चित है। कुछ क्षेत्रों में स्थानीय युद्धविराम के कारण कुछ शांति का माहौल बना है, लेकिन व्यापक शक्ति संघर्ष और कूटनीतिक गतिरोध एक व्यापक शांति समझौते को मुश्किल बना रहे हैं। रूस और अमेरिका जैसी महाशक्तियाँ अपने-अपने हितों के कारण अक्सर आपस में संघर्ष करती रही हैं, जिससे शांति प्रयासों में और जटिलता बनी हुई है। सीरियाई लोगों के लिए, पुनर्निर्माण और स्थिरता की दिशा में न केवल राजनीतिक संवाद की आवश्यकता होगी, बल्कि उन गहरी समस्याओं और असमानताओं को भी हल करना होगा, जिन्होंने संघर्ष को बढ़ावा दिया। केवल समावेशी संवाद और समुदायों के बीच विश्वास के पुनर्निर्माण के प्रयासों से ही सीरिया अपने दर्दनाक अतीत से उबरने की उम्मीद कर सकता है।

संदर्भ :

1. “सिरियास वॉर एक्सप्लेनैड फ्रॉम दी बिगनिंग”, अल जजीरा, 14 अप्रैल 2018; <https://www.aljazeera.com/news/2018/4/14/syrias-war-explained-from-the-beginning>
2. लीपमैन, ए.एम., निचिपोरुक , बी., और किलमेयर , जे. (2014), “अल्टरनेटिव फ्यूचर फॉर सीरिया : रीजनल इम्प्लिकेसन एंड चलेंजेस फॉर दी यूनाइटेड स्टेट्स”, रैंड कॉर्पोरेशन; <http://www.jstor.org/stable/resrep02399>
3. ‘सीरिया: दी स्टोरी ऑफ थे कनफ्लिक्ट’, बीबीसी समाचार, 11 मार्च 2016, <https://www.bbc.com/news/world-middle-east-26116868>
4. डेइनम, डोमिनिक (2019), “दी अलावाईट मिनोटीस पोलिटिकल दोमिनंस”, <https://jasoninstitute.com/the-alawite-minoritys-political-dominance-in-syria/>
5. रोड्रिग्स, जेसन (2011), ‘1982 : सीरियाज प्रिंसिडेंट हाफिज अल-असद क्रुशेस रिबेलियन इन हामा”, <https://www.theguardian.com/theguardian/from-the-archive-blog/2011/aug/01/hama-syria-massacre-1982-archive>
6. “दी राइज ऑफ सीरियाज कंट्रोवर्सीअल प्रेसिडेंट बशर अल-असद”, एबीसी न्यूज। 7 अप्रैल 2017. <https://abcnews.go.com/Politics/rise-syrias-controversial-president-bashar-al-assad/story?id=46649146>
7. यजीगी , जिहाद (2021), “सीरियन अप्रिजिंग 10 इयर्स अनिवर्सरी: ए पॉलिटिकल इकॉनमी पर्सपेक्टिव”, <https://www.brookings.edu/articles/syrian-uprising-10-year-anniversary-a-political-economy-perspec->

tive/

8. फिलिप्स, सी. (2015), “सेक्टेरियन एंड कनफ्लिक्ट इन सीरिया”, थर्ड वर्ल्ड क्वार्टरली, 36(2), 357-376. <http://www.jstor.org/stable/24523162>
9. “पर्सिक्नुस एंड दिस्क्रिमिनेसन अगेस्ट कुर्दिश सिटीजन्स इन सीरिया”, <https://www.ohchr.org/sites/default/files/lib-docs/HRBodies/UPR/Documents/session12/SY/KIS-KurdsinSyria-eng.pdf>
10. एल्लिडन, कमाल उस्मान सालेह (2013), “दी रूट्स एंड काउजेज ऑफ दी 2011 अरब स्प्रिंग्स”, अरब स्टडीज क्वार्टरली, 35(2), 184-206. <https://doi.org/10.13169/arabstudquar.35.2.0184>
11. “सीरियन प्रिंसिपल बशर अल-असद: फेक्टिंग डाउन रिबेलियन”, बीबीसी समाचार, 31 अगस्त, <https://www.bbc.com/news/10338256>
12. हद्दाद, बी., और विंड, ई. (2014), “दी फ्रेम्वर्क स्टेट ऑफ दी सिरियन ओपोजिशन”, एम. कामरावा (संपादक), बियॉन्ड दी अरब स्प्रिंग: दी एक्लोजिंग रूलिंग इन दी मिडिल ईस्ट (ऑनलाइन संस्करण)। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। <https://doi.org/10.1093/acprof:oso/9780199384419.003.0015>
13. “टाइमलाइन : दी राइज, स्प्रेड एंड फॉल ऑफ दी इस्लामिक स्टेट”, विल्सन सेंटर, 28 अक्टूबर 2019, <https://www.wilsoncenter.org/article/timeline-the-rise-spread-and-fall-the-islamic-state>
14. पोर्टजर, लेफ्टिनेंट कमांडर जोशुआ एमएम (2020), “दी पीपुल्स प्रोटेक्शन यूनिट्स ब्रांडिंग प्रॉब्लम: सीरियन कुर्द एंड पोलेसियल डिस्टेबलाइज इन नार्थईस्टर्न सीरिया”, <https://www.armyupress.army.mil/Journals/Military-Review/English-Edition-Archives/May-June-2020/Portzer-Peoples-Protection-Unit/>
15. ड्रोज -विसेंट, पी. (2014), “स्टेट ऑफ बारबरी” (टेक टू): फ्रॉम अरब स्प्रिंग टू दी रिटर्न ऑफ बायलेस इन सीरिया”, मिडिल ईस्ट जर्नल, 68(1), 33-58. <http://www.jstor.org/stable/43698560>
16. कोन, डेविड (2017), “सीरिया : प्लेयिंग इनटू देआर हैंड्स”, <file:///C:/Users/SUBHASH%20SINGH/Downloads/syria-playing-into-their-hands.pdf>
17. राइट, रॉबिन, जेएम बर्गर, कोल बन्जेल (2017), “दी जिहादी थ्रेट: आईएसआईएस, अल-कायदा एंड बियॉन्ड”, विल्सन सेंटर, दिसंबर 2016- जनवरी 2017, <https://www.usip.org/sites/default/files/The-Jihadi-Threat-ISIS-Al-Qaeda-and-Beyond.pdf>
18. रॉबसन, एंटोनिया (2021), दी मोबिलाइजेशन ऑफ सेक्टेरियन आइडेंटिटीज इन दी सीरियन सिविल वार”, 3 मई 2021, <https://www.e-ir.info/2021/05/03/the-mobilisation-of-sectarian-identities-in-the-syrian-civil-war/>
19. “कंट्री रिपोर्ट्स ऑन टेररिज्म 2019”, यू.एस. डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट, <https://www.state.gov/reports/country-reports-on-terrorism-2019/>
20. सलीम, रंडा (2019), “व्हाई अस्सादस अलायन्स विद ईरान एंड हेजबोल्लाह विल एन्डयोर”, <https://www.atlanticcouncil.org/blogs/iransource/why-assad-s-alliance-with-iran-and-hezbollah-will-endure-2/>
21. हुआ टैन, किम और अलीरुपेंडी पेरुडिन (2019), दी जिओपोलिटिकल फ़ैक्टर इन दी सीरियन सिविल वॉर: ए कार्पस-बेस्ड थीमेटिक”, <https://journals.sagepub.com/doi/pdf/10.1177/2158244019856729>
22. “टाइमलाइन: दी राइज, स्प्रेड एंड फॉल ऑफ दी इस्लामिक स्टेट”, विल्सन सेंटर, 28 अक्टूबर 2019, <https://www.wilsoncenter.org/article/timeline-the-rise-spread-and-fall-the-islamic-state>

- /www.wilsoncenter.org/article/timeline-the-rise-spread-and-fall-the-islamic-state
23. “सीरियन प्रेसिडेंट बशर अल-असद: फेसिंग डाउन रेबेलीयन”, बीबीसी समाचार, 31 अगस्त 2020, <https://www.bbc.com/news/10338256>
 24. सीरिया (2021), “ग्लोबल सेंटर फॉर दी रेस्पॉन्सिबिलिटी तो प्रोटेक्ट”, <https://web.archive.org/web/20230516182116/https://www.globalr2p.org/countries/syria/>
 25. “सीरिया इमरजेंसी”, UNHCR, <https://www.unhcr.org/emergencies/syria-emergency>
 26. “सीरियाज वॉर एक्स्प्लैनेड फ्रॉम दी बिगनिंग”, अल जजीरा, 14 अप्रैल 2018, <https://www.aljazeera.com/news/2018/4/14/syrias-war-explained-from-the-beginning>
 27. गुडारजी , जुबिन एम. (2020), “ईरान एंड सीरियन सिविल वॉर: टू दी बिटर एंड”, <https://shs.cairn.info/journal-confluences-mediterranee-2020-2-page-177?lang=en>
 28. सिकाडी , फ्रांसेस्को (2021), <https://carnegieendowment.org/research/2021/09/how-syria-changed-turkeys-foreign-policy?lang=en¢er=europe>
 29. “ दी गल्फ एंड सीरिया क्राइसिस: विद ओर विदआउट असाद”, <https://gulrif.org/event/the-gulf-and-the-syrian-crisis-with-or-without-assad/>; दी रोल ऑफ दी गुलद स्टेट्स इन दी’ ओनगोइंग कनफ्लिक्ट इन सीरिया”, <http://css.wp.st-andrews.ac.uk/files/2021/11/The-Role-of-The-Gulf-States-in-The-Ongoing-Conflict-in-Syria.pdf>
 30. पेटकोवा , मारिया (2020), “ व्हाट हेज रसिया गैड फ्रॉम फाइव इयर्स ऑफ फाइटिंग इन सीरिया”, अल जजीरा, 1 अक्टूबर 2020, <https://www.aljazeera.com/features/2020/10/1/what-has-russia-gained-from-five-years-of-fighting-in-syria>
 31. हैमिल्टन, रॉबर्ट, क्रिस मिलर, और आरोन स्टीन (2020), “ रसियाज इंटरवेंशन इन सीरिया: हिस्टोरिकल एंड जिओपॉलिटिकल कॉन्टेक्ट”, <https://www.fpri.org/wp-content/uploads/2020/09/report-1-hamilton-stein-miller.pdf>
 32. “यू एस. एंड यूरोपियन सेक्सन ऑन सीरिया”, द कार्टर सेंटर, सितंबर 2020, https://www.cartercenter.org/resources/pdfs/peace/conflict_resolution/syria-conflict/us-and-european-sanctions-on-syria-091620.pdf
 33. क्रैगिन , आर. किम, हसन अब्बास, जाचरी एम. अबुजा , और मारिया ओमेलिचवा (2020), “ <https://ndupress.ndu.edu/Media/News/News-Article-View/Article/2404591/11-counterterrorism-and-the-united-states-in-a-new-era-of-great-power-competiti/>
 34. “ कंट्री रिपोर्ट्स ऑन टेरिज्म 2019”, यू. एस. डिपार्टमेंट ऑफ स्टेट, <https://www.state.gov/reports/country-reports-on-terrorism-2019/>
 35. “वेअर डू दी कुर्दस फिट ईंटो सीरियाज वॉर”, , 3 जनवरी 2019, <https://www.reuters.com/article/world/where-do-the-kurds-fit-into-syrias-war-idUSKCN1OX16A/>
 36. अप्ताडिलियन , ग्रेगरी (2021), “कुर्दीश दिल्लेम्मा इन सीरिया”, <https://arabcenterdc.org/resource/kurdish-dilemmas-in-syria/>
 37. “टर्की-सीरिया बॉर्डर: कुर्दस बिटर एज यू. एस. टूप्स विडरॉ”, बीबीसी समाचार, 7 अक्टूबर 2019, <https://www.bbc.com/news/world-middle-east-49960973>



नव प्रवेशित स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के व्यावसायिक रुचि का अध्ययन

- दिग्विजय सिंह¹
- राहुल बाल्मीकि²

संक्षिप्ति:

यह अध्ययन नव प्रवेशित स्नातक विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों का विश्लेषण करता है, जिसका उद्देश्य उनकी अकादमिक यात्रा के प्रारंभिक चरण में उनके कैरियर विकल्पों को प्रभावित करने वाले कारकों को समझना है। लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान, वाणिज्य, और कला वर्ग के कुल 300 विद्यार्थियों पर आधारित इस अध्ययन में विचलित नमूना विधि (Disproportionate Sampling Technique) का उपयोग किया गया है। 'कंप्रिहेंसिव इंटरैस्ट शेड्यूल' उपकरण द्वारा प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि विज्ञान के छात्र तकनीकी और रक्षा क्षेत्रों में उत्कृष्ट हैं, जबकि कला और वाणिज्य के छात्र शिक्षा और मानवीय कार्यों में अग्रणी हैं। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में रुचि और प्रदर्शन विभाग के अनुसार भिन्न होते हैं, जिससे छात्रों के लिए उपयुक्त कैरियर मार्गदर्शन की आवश्यकता उजागर होती है।

बीज शब्द : नव प्रवेशित स्नातक विद्यार्थियों, व्यावसायिक रुचि

विद्यार्थियों के जीवन में शिक्षा और व्यवसाय दोनों का अद्वितीय महत्व और आवश्यकता होती है, और दोनों एक-दूसरे पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। व्यक्ति के मूलभूत आधार जैसे रोटी, कपड़ा, और मकान के बाद शिक्षा और जीविकोपार्जन व्यक्ति की अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ बन जाती हैं। शिक्षा को अक्सर विशेषकर व्यवसाय का आधार कहा जाता है।

कैरियर का चुनाव किसी भी छात्र के जीवन के सबसे महत्वपूर्ण निर्णयों में से एक है, विशेष रूप से उन

1. शोधार्थी, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, भारत, ईमेल: singhdivijay4@gmail.com

2. संयोजक लेखक, शोधार्थी, शिक्षा विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, भारत, ईमेल: rahul07.edu@gmail.com

नव-प्रवेशित स्नातक विद्यार्थियों के लिए, जो अपनी शैक्षिक यात्रा की शुरुआत कर रहे होते हैं, व्यावसायिक रुचियाँ न केवल उनके भविष्य की आकांक्षाओं को आकार देती हैं, बल्कि उनके शैक्षणिक प्रदर्शन, प्रेरणा, और अध्ययन में संलग्नता को भी प्रभावित करती हैं। स्कूल से विश्वविद्यालय में परिवर्तन के समय, इन रुचियों को समझना छात्रों को उपयुक्त और संतोषजनक कैरियर की दिशा में मार्गदर्शन करने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है।

अनुसंधानों से पता चला है कि कैरियर के निर्णय व्यक्तिगत रुचियों, सामाजिक अपेक्षाओं, और जानकारी की उपलब्धता के संयोजन से प्रभावित होते हैं (Amani, 2013)। विशेष रूप से नव-प्रवेशित स्नातक छात्रों के लिए, व्यावसायिक रुचियों की स्पष्टता उन्हें सूचित कैरियर विकल्प बनाने में सहायक होती है। Low, Yoon, Roberts, और Rounds (2005) के अनुसार, व्यावसायिक रुचियाँ समय के साथ अपेक्षाकृत स्थिर रहती हैं, लेकिन इन रुचियों की प्रारंभिक पहचान और प्रोत्साहन छात्रों की दीर्घकालिक व्यावसायिक सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

इस संदर्भ में, यह अध्ययन नव-प्रवेशित स्नातक छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का पता लगाने का प्रयास करता है, जिससे इन रुचियों के पैटर्न, कारकों और संभावित कैरियर मार्गों की जानकारी प्राप्त हो सके। इन रुचियों की जाँच करके, हम यह बेहतर समझ सकते हैं कि छात्रों के शैक्षिक प्रयासों को उनके भविष्य के कैरियर लक्ष्यों के साथ कैसे बेहतर ढंग से संरेखित किया जाए, जो अंततः उनके लिए अधिक अर्थपूर्ण शैक्षिक अनुभवों में योगदान करेगा।

संबंधित साहित्य की समीक्षा

- **त्रिपाठी और श्रीवास्तव (2017)** का अध्ययन 200 कक्षा X के छात्रों के व्यावसायिक रुचियों को समझने और तुलना करने पर केंद्रित था, जिसमें C.B.S.E. और U.P. बोर्ड के छात्रों को शामिल किया गया था। इस अध्ययन का उद्देश्य छात्रों को उनकी व्यावसायिक रुचियों के आधार पर उपयुक्त करियर मार्गदर्शन देना था। डॉ. एस.पी. कुलश्रेष्ठ द्वारा विकसित 'व्यावसायिक रुचि रिकॉर्ड' का उपयोग करके डेटा एकत्र किया गया और इसका विश्लेषण मीन, एस.डी. और ज-टेस्ट द्वारा किया गया। शून्य परिकल्पना को 0.01 के महत्व स्तर पर जांचा गया। परिणामों में दिखाया गया कि कुछ व्यावसायिक क्षेत्रों में छात्रों की रुचि उच्च थी, जबकि अन्य में औसत से लेकर बहुत कम थी। हालांकि, दोनों बोर्ड के छात्रों के बीच व्यावसायिक रुचियों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया।
- **अमानी (2013)** ने तंजानिया में स्नातक छात्रों के करियर में शामिल होने के इरादों पर पेशेवर ज्ञान और सामाजिक प्रभाव का अनुमान लगाया। अध्ययन में पाया गया कि स्नातक छात्रों के करियर में शामिल होने के इरादे उनके पेशेवर ज्ञान और माता-पिता, दोस्तों और शिक्षकों जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलने वाले सामाजिक प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। यह भी पाया गया कि पेशेवर ज्ञान और करियर चयन के इरादों के बीच एक सकारात्मक लेकिन निम्न संबंध था। कुल मिलाकर, अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश छात्र अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद अपने करियर में शामिल होने का इरादा रखते हैं।
- **मोंडल (2018)** का अध्ययन माता-पिता के व्यवसाय, मासिक आय और शैक्षिक पृष्ठभूमि का माध्यमिक स्कूल के छात्रों की व्यावसायिक रुचियों पर प्रभाव की जांच करता है। पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद से 200 छात्रों के नमूने का उपयोग करके, व्यावसायिक रुचि रिकॉर्ड उपकरण द्वारा डेटा

एकत्र किया गया। मीन, एस.डी., और प्रतिशत के विश्लेषण से यह पाया गया कि माता-पिता के कारकों का छात्रों की व्यावसायिक रुचियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव था। विशेष रूप से, माता-पिता की आय के आधार पर व्यावसायिक रुचि के पैटर्न में एक बड़ा अंतर पाया गया, और माता-पिता की शैक्षिक पृष्ठभूमि और व्यवसाय के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण अंतर पाए गए।

- **कुमार (2022)** का अध्ययन हिमाचल प्रदेश के 10वीं कक्षा के छात्रों पर केंद्रित था और इसमें पाया गया कि लड़के और लड़कियों की साहित्यिक (L) व्यावसायिक रुचियों में महत्वपूर्ण अंतर था। लड़कियों ने इस क्षेत्र में लड़कों की तुलना में अधिक रुचि दिखाई, चाहे वे किसी भी स्थान या नियंत्रण के केंद्र (locus of control) से हों। शहरी या ग्रामीण क्षेत्र के आधार पर साहित्यिक व्यावसायिक रुचियों पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं देखा गया। साथ ही, आंतरिक या बाह्य नियंत्रण केंद्र वाले छात्रों के बीच साहित्यिक रुचियों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया। हालांकि, रुझानों से पता चला कि आंतरिक नियंत्रण केंद्र वाले ग्रामीण लड़के और शहरी लड़कियों ने साहित्यिक व्यवसायों में अधिक रुचि दिखाई, जबकि बाह्य नियंत्रण केंद्र वाली ग्रामीण और शहरी लड़कियों ने लड़कों की तुलना में अधिक रुचि दिखाई।
- **नदीम और अहमद (2016)** ने जिला बडगाम में उच्चतर माध्यमिक छात्रों में करियर प्राथमिकताओं पर एक तुलनात्मक अध्ययन किया। 200 छात्रों (100 लड़के और 100 लड़कियां) के नमूने का विश्लेषण किया गया। अध्ययन में पाया गया कि लड़के शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, और कानून में करियर पसंद करते थे, जबकि लड़कियां शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, चिकित्सा क्षेत्र, और कला से संबंधित करियर की ओर झुकी हुई थीं। दूसरे और तीसरे करियर विकल्पों में भी लड़के और लड़कियों के बीच भिन्नताएं देखी गईं।
- **वर्मा और बक्षी (2017)** ने करियर प्राथमिकताओं और शैक्षणिक प्रदर्शन का अध्ययन किया, जिसमें लिंग, स्थान, और माता-पिता के व्यवसाय को ध्यान में रखा गया। अध्ययन में 60 केंद्रीय विश्वविद्यालय के छात्रों का विश्लेषण किया गया। परिणामों ने दर्शाया कि करियर प्राथमिकताओं में स्थान के आधार पर महत्वपूर्ण अंतर थे, जहाँ शहरी छात्रों ने ग्रामीण छात्रों की तुलना में अधिक विविध करियर प्राथमिकताएँ दिखाई।
- **यादव (2021)** ने माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की रचनात्मकता की जांच की और इसे उनके व्यावसायिक रुचियों, समायोजन, और पारिवारिक माहौल से जोड़ा। अध्ययन में पाया गया कि विभिन्न व्यावसायिक रुचियों के बीच लड़कों और लड़कियों की रचनात्मकता में महत्वपूर्ण अंतर था। साथ ही, जिन छात्रों का भावनात्मक, सामाजिक, और शैक्षिक समायोजन उच्च था, उन्होंने रचनात्मकता के उच्च स्तर दिखाए।
- **मोंडल और मजुमदार (2018)** ने लिंग के आधार पर व्यावसायिक रुचियों की तुलना की, जिसमें यह पाया गया कि लड़कियों ने कलात्मक, वाणिज्यिक, घरेलू, और सामाजिक क्षेत्रों में थोड़ी अधिक रुचि दिखाई, जबकि लड़कों ने कृषि, प्रबंधकीय, और साहित्यिक क्षेत्रों में अधिक रुचि दिखाई।
- **लो एट अल (2005)** द्वारा किए गए मेटा-विश्लेषण ने किशोरावस्था के प्रारंभ (आयु 12) से लेकर मध्य वयस्कता (आयु 40) तक व्यावसायिक रुचियों की स्थिरता की जांच की। अध्ययन में पाया गया कि रुचि की स्थिरता रैंक-ऑर्डर और प्रोफाइल सहसंबंधों के माध्यम से आंकी गई थी। अध्ययन

में दिखाया गया कि किशोरावस्था के दौरान रुचि की स्थिरता में कोई खास बदलाव नहीं हुआ, लेकिन कॉलेज के वर्षों (आयु 18-21.9) में यह नाटकीय रूप से बढ़ गई और इसके बाद के दो दशकों तक स्थिर रही। विश्लेषणों ने यह भी दिखाया कि पुनः परीक्षण के समयांतराल ने रुचि की स्थिरता को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया, और रैंक-ऑर्डर स्थिरता प्रोफाइल स्थिरता की तुलना में कम स्थिर थी। यद्यपि समूह के खड़े होने से स्थिरता प्रभावित नहीं हुई, 1940 के दशक में जन्मे व्यक्तियों की रुचियों की स्थिरता अन्य समूहों की तुलना में कम थी। इसके अलावा, व्यावहारिक और कलात्मक गतिविधियों से संबंधित रुचियाँ वैज्ञानिक, सामाजिक, उद्यमी, और लिपिकीय रुचियों की तुलना में अधिक स्थिर पाई गई। कुल मिलाकर, अध्ययन ने समय के साथ व्यावसायिक रुचियों की उच्च स्थिरता का प्रदर्शन किया, विशेष रूप से व्यक्तित्व लक्षणों की रैंक-ऑर्डर स्थिरता की तुलना में। इन निष्कर्षों पर मनोवैज्ञानिक विकास के संदर्भ में चर्चा की गई।

- **ट्रॉन और खरबिर्मबाई (2021)** ने मेघालय के ईस्ट खासी हिल्स जिले के माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का उनके शैक्षणिक प्रदर्शन के साथ संबंध का अध्ययन किया। शोधकर्ताओं ने व्यावसायिक रुचियों के मूल्यांकन के महत्व पर जोर दिया, क्योंकि केवल विषयों की शिक्षा से छात्रों का समग्र विकास संभव नहीं है। उनके निष्कर्षों से यह पता चला कि छात्रों की व्यावसायिक रुचि और शैक्षणिक प्रदर्शन के बीच एक महत्वपूर्ण नकारात्मक संबंध था। इसके अलावा, अध्ययन में लिंग के आधार पर व्यावसायिक रुचियों में एक महत्वपूर्ण अंतर पाया गया; हालांकि, स्थानों के बीच व्यावसायिक रुचियों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था।

अध्ययन का औचित्य

स्कूल से विश्वविद्यालय में परिवर्तन छात्रों के जीवन का एक महत्वपूर्ण चरण होता है, विशेष रूप से कैरियर से संबंधित निर्णयों के संदर्भ में। इस चरण में, नव प्रवेशित स्नातक विद्यार्थी अक्सर अपनी व्यावसायिक रुचियों की पहचान करने की चुनौती का सामना करते हैं, जो उनके शैक्षणिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। इन रुचियों को समझना आवश्यक है क्योंकि यह न केवल छात्रों की भविष्य की आकांक्षाओं को आकार देती है, बल्कि उनकी प्रेरणा, शैक्षणिक प्रदर्शन और अध्ययन में संलग्नता को भी प्रभावित करती है।

व्यावसायिक रुचियों के महत्व के बावजूद, इस पर सीमित शोध किया गया है कि नव प्रवेशित स्नातक विद्यार्थियों की कैरियर विकल्पों में उनके उच्च शिक्षा के शुरुआती दौर में कैसे विकास होता है। इस चरण में कई विद्यार्थियों को कैरियर काउंसलिंग और व्यावसायिक मार्गदर्शन की पर्याप्त पहुँच नहीं होती, जिससे गलत कैरियर मार्गों का चुनाव और उनके शैक्षणिक जीवन में असंतोष हो सकता है।

यह अध्ययन इस शून्य को भरने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह नव प्रवेशित स्नातक विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों और उनके कैरियर निर्णयों को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करेगा। ऐसा करने से, यह शोध शिक्षकों, कैरियर काउंसलरों और नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी जानकारी प्रदान करेगा, जिससे वे छात्रों की कैरियर आकांक्षाओं को बेहतर ढंग से समझ सकें और उन्हें विश्वविद्यालय शिक्षा की शुरुआत से ही उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के लिए प्रभावी कैरियर मार्गदर्शन कार्यक्रम तैयार कर सकें।

लंबी अवधि में, अध्ययन के निष्कर्ष विश्वविद्यालयों को ऐसे वातावरण बनाने में मदद कर सकते हैं जो

सूचित कैरियर निर्णय लेने को प्रोत्साहित करें, जिससे छात्रों के शैक्षणिक अनुभव और व्यावसायिक लक्ष्यों के बीच संतुलन बने और उनके शैक्षणिक और व्यावसायिक सफलता की संभावनाएँ बढ़ें।

अध्ययन का उद्देश्य

1. नव प्रवेशित स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियाँ ज्ञात करना
2. नव प्रवेशित विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन हेतु सुझाव देना

प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रतिदर्श

अध्ययन के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के विज्ञान वर्ग, वाणिज्य वर्ग एवं कला वर्ग से प्रत्येक में 100 विद्यार्थियों का डाटा लिया गया है।

विभाग	पुरुष विद्यार्थियों की संख्या	महिला विद्यार्थियों की संख्या	कुल विद्यार्थी
विज्ञान वर्ग	60	40	100
वाणिज्य वर्ग	45	55	100
कला वर्ग	30	70	100
कुल	135	165	300

इस अध्ययन में विभिन्न लिंग अनुपातों को ध्यान में रखते हुए विचलित नमूना विधि (Disproportionate Sampling Technique) का उपयोग किया गया है। इस विधि का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि प्रत्येक विभाग (विज्ञान, वाणिज्य, कला) में पुरुषों और महिलाओं की संख्या बराबर नहीं है। यहां, प्रत्येक विभाग से विद्यार्थियों का चयन किया गया ताकि पुरुष और महिला विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों का अध्ययन किया जा सके।

शोध उपकरण

इस अध्ययन में पुरुष एवं महिला विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों का पता लगाने के लिए 'कंप्रिहेंसिव इंटरैस्ट शेड्यूल' नामक उपकरण का उपयोग किया गया है।

निर्देश

इस प्रपत्र में विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों में से यह चुनना है कि वे किसे श्रेष्ठ मानते हैं। सभी व्यवसायों को जोड़ों में प्रस्तुत किया गया है।

- अपनी वरीयता के आधार पर व्यवसायों का चयन करना है।
- प्रत्येक बॉक्स में व्यवसाय का चुनाव करना अनिवार्य है।
- यदि किसी एक व्यवसाय में रुचि है, तो संबंधित बॉक्स में गोले का निशान लगाना है; यदि किसी में भी रुचि नहीं है, तो दोनों पर क्रॉस का निशान लगाना है।
- यदि दोनों ही व्यवसायों में रुचि है, तो दोनों पर गोले का निशान लगाना है।
- किसी भी बॉक्स को खाली नहीं छोड़ना है।

परिणाम और चर्चा

रुचियाँ के क्षेत्र के आधार पर बीए, बीएससी, एवं बीकॉम के नव प्रवेशित स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियाँ के अध्ययन का परिणाम

1. एडमिनिस्ट्रेटिव

Area	Stream	High	Average	Low
Administrative	B.A	12	11	7
	B.SC	13	9	8
	B.COM	6	17	8

इस डेटा की व्याख्या करने पर, हम पाते हैं कि प्रशासनिक क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्र उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किए गए हैं। B.A स्ट्रीम के छात्रों में 12 छात्र उच्च श्रेणी में आते हैं, 11 छात्र औसत श्रेणी में और 7 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc के 13 छात्र उच्च श्रेणी में, 9 औसत श्रेणी में, और 8 निम्न श्रेणी में हैं। वहीं, B.Com के 6 छात्र उच्च श्रेणी में, 17 औसत श्रेणी में, और 8 निम्न श्रेणी में आते हैं। कुल मिलाकर, टैब स्ट्रीम के छात्रों की उच्च श्रेणी में सबसे अधिक संख्या है, जबकि ट.व्वड के छात्रों की औसत श्रेणी में अधिक संख्या पाई गई है।

2. एंटरप्राइजिंग

Area	Stream	High	Average	Low
Enterprising	B.A	4	8	19
	B.SC	1	10	20
	B.COM	6	6	19

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम पाते हैं कि उद्यमिता (Enterprising) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A स्ट्रीम के केवल 4 छात्र उच्च श्रेणी में हैं, 8 छात्र औसत श्रेणी में, जबकि 19 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। B.Sc के 1 छात्र उच्च श्रेणी में, 10 औसत श्रेणी में, और 20 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। वहीं, B.Com में 6 छात्र उच्च श्रेणी में, 6 औसत श्रेणी में, और 19 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, तीनों स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) में निम्न श्रेणी के छात्रों की संख्या बहुत अधिक है, जबकि उच्च श्रेणी में बहुत कम छात्र आते हैं। यह दर्शाता है कि उद्यमिता के क्षेत्र में अधिकांश छात्रों की प्रदर्शन क्षमता अपेक्षाकृत कम है।

3. डिफेंस

Area	Stream	High	Average	Low
Defence	B.A	12	11	8
	B.SC	14	12	4
	B.COM	15	10	4

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि रक्षा (Defence) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc., B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A स्ट्रीम के

12 छात्र उच्च श्रेणी में, 11 औसत श्रेणी में, और 8 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। B.Sc के 14 छात्र उच्च श्रेणी में, 12 औसत श्रेणी में, और 4 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। वहीं, B.Com के 15 छात्र उच्च श्रेणी में, 10 औसत श्रेणी में, और 4 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, ठै.ब और ठ.ब्वउ स्ट्रीम्स में उच्च श्रेणी में छात्रों की संख्या सबसे अधिक है, जबकि निम्न श्रेणी में सबसे कम छात्र हैं। यह दर्शाता है कि रक्षा क्षेत्र में B.Sc और B.Com के छात्रों का प्रदर्शन अपेक्षाकृत बेहतर है, जबकि B.A. के छात्रों में औसत और निम्न श्रेणियों में अधिक संख्या है।

4. स्पोर्ट्स

Area	Stream	High	Average	Low
Sport	B.A	2	15	15
	B.SC	2	15	15
	B.COM	2	15	13

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि खेल (Sport) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A, B.Sc, और B.Com, तीनों ही स्ट्रीम्स में उच्च श्रेणी के केवल 2-2 छात्र हैं। औसत श्रेणी में तीनों स्ट्रीम्स के 15-15 छात्र हैं, जबकि B.A और B.Sc में निम्न श्रेणी के 15-15 छात्र हैं, और B.Com में 13 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, खेल के क्षेत्र में सभी स्ट्रीम्स के छात्रों का प्रदर्शन एक जैसा है, जहाँ अधिकांश छात्र औसत और निम्न श्रेणियों में हैं। उच्च श्रेणी में बहुत कम छात्रों की संख्या है, जो यह दर्शाता है कि खेल में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले छात्रों की संख्या काफी कम है।

5. क्रिएटिव

Area	Stream	High	Average	Low
Creative	B.A	3	17	10
	B.SC	4	14	13
	B.COM	2	15	12

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि रचनात्मक (Creative) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A स्ट्रीम में 3 छात्र उच्च श्रेणी में, 17 औसत श्रेणी में, और 10 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। B.Sc में 4 छात्र उच्च श्रेणी में, 14 औसत श्रेणी में, और 13 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। वहीं, B.Com में 2 छात्र उच्च श्रेणी में, 15 औसत श्रेणी में, और 12 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, रचनात्मकता के क्षेत्र में औसत श्रेणी के छात्रों की संख्या सभी स्ट्रीम्स में सबसे अधिक है। उच्च श्रेणी में बहुत कम छात्र हैं, विशेष रूप से B.A और B.Com में। यह दर्शाता है कि अधिकांश छात्र रचनात्मक क्षेत्र में औसत प्रदर्शन कर रहे हैं, जबकि उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वालों की संख्या कम है।

6. परफोर्मिंग

Area	Stream	High	Average	Low
Performing	B.A	1	15	14
	B.SC	4	10	16
	B.COM	1	13	16

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि प्रदर्शन कला (Performing) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में केवल 1 छात्र उच्च श्रेणी में, 15 छात्र औसत श्रेणी में, और 14 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 4 छात्र उच्च श्रेणी में, 10 औसत श्रेणी में, और 16 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, B.Com में 1 छात्र उच्च श्रेणी में, 13 औसत श्रेणी में, और 16 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, प्रदर्शन कला के क्षेत्र में अधिकांश छात्र औसत और निम्न श्रेणियों में हैं, खासकर B.Sc और B.Com स्ट्रीम्स में, जहां निम्न श्रेणी में छात्रों की संख्या अधिक है। उच्च श्रेणी में छात्रों की संख्या बहुत कम है, जो यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाले छात्रों की संख्या काफी सीमित है।

7. मेडिकल

Area	Stream	High	Average	Low
Medical	B.A	0	5	24
	B.SC	19	4	7
	B.COM	0	5	25

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि चिकित्सा (Medical) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में कोई भी छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है, 5 छात्र औसत श्रेणी में, और 24 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 19 छात्र उच्च श्रेणी में, 4 औसत श्रेणी में, और 7 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, B.Com में भी कोई छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है, 5 छात्र औसत श्रेणी में, और 25 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, चिकित्सा क्षेत्र में B.Sc के छात्रों का प्रदर्शन सबसे बेहतर है, क्योंकि 19 छात्र उच्च श्रेणी में हैं, जबकि B.A और B.Com स्ट्रीम्स में अधिकतर छात्र निम्न श्रेणी में हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि चिकित्सा क्षेत्र में B.A और ट.ब्वउ स्ट्रीम्स के छात्रों का प्रदर्शन अपेक्षाकृत कमजोर है।

8. टेक्निकल

Area	Stream	High	Average	Low
Technical	B.A	4	12	14
	B.SC	8	7	15
	B.COM	0	18	12

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि तकनीकी (Technical) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में 4 छात्र उच्च श्रेणी में, 12 औसत श्रेणी में, और 14 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 8 छात्र उच्च श्रेणी में, 7 औसत श्रेणी में, और 15 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। वहीं, ट.व्वड में कोई भी छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है, 18 छात्र औसत श्रेणी में, और 12 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, तकनीकी क्षेत्र में B.Sc के छात्रों का प्रदर्शन बेहतर है, क्योंकि उच्च श्रेणी में 8 छात्र हैं, जबकि B.A और B.Com के अधिकांश छात्र औसत और निम्न श्रेणियों में हैं। B.Com के छात्रों में कोई भी उच्च श्रेणी में नहीं है, जो यह दर्शाता है कि तकनीकी क्षेत्र में उनका प्रदर्शन कमजोर है।

9. एक्सप्रेसिव

Area	Stream	High	Average	Low
Expressive	B.A	4	12	14
	B.SC	8	7	15
	B.COM	0	18	12

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि अभिव्यक्तिमूलक (Expressive) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A स्ट्रीम में 4 छात्र उच्च श्रेणी में, 12 छात्र औसत श्रेणी में, और 14 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 8 छात्र उच्च श्रेणी में, 7 औसत श्रेणी में, और 15 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। वहीं, B.Com में कोई भी छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है, 18 छात्र औसत श्रेणी में, और 12 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, अभिव्यक्तिमूलक क्षेत्र में ट.व्वड के छात्रों का प्रदर्शन सबसे बेहतर है, क्योंकि उनके पास उच्च श्रेणी में 8 छात्र हैं। जबकि B.A और B.Com स्ट्रीम्स के छात्रों में अधिकांश छात्र औसत और निम्न श्रेणियों में हैं, खासकर B.Com में कोई भी छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है, जो यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र में उनकी प्रदर्शन क्षमता कम है।

Area	Stream	High	Average	Low
Computational	B.A	0	10	20
	B.SC	3	17	20
	B.COM	15	7	8

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि कंप्यूटेशनल (Computational) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में कोई भी छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है, 10 छात्र औसत श्रेणी में, और 20 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 3 छात्र उच्च श्रेणी में, 17 छात्र औसत श्रेणी में, और 20 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, B.Com में 15 छात्र उच्च श्रेणी में, 7 छात्र औसत श्रेणी में, और 8 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, कंप्यूटेशनल

क्षेत्र में B.Com स्ट्रीम के छात्रों का प्रदर्शन सबसे बेहतर है, क्योंकि 15 छात्र उच्च श्रेणी में हैं। इसके विपरीत, B.A और B.Sc स्ट्रीम के छात्रों की उच्च श्रेणी में संख्या बहुत कम है, विशेषकर B.A में जहां कोई भी छात्र उच्च श्रेणी में नहीं है। यह दर्शाता है कि कंप्यूटेशनल क्षेत्र में B.Com के छात्रों की प्रदर्शन क्षमता अधिक है, जबकि अन्य स्ट्रीम्स के छात्रों का प्रदर्शन कमजोर है।

11. ह्यूमेनिटेरियन

Area	Stream	High	Average	Low
Humanitarian	B.A	12	13	2
	B.SC	8	12	10
	B.COM	15	18	7

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि मानवतावादी (Humanitarian) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में 12 छात्र उच्च श्रेणी में, 13 छात्र औसत श्रेणी में, और केवल 2 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 8 छात्र उच्च श्रेणी में, 12 छात्र औसत श्रेणी में, और 10 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, B.Com में 15 छात्र उच्च श्रेणी में, 18 छात्र औसत श्रेणी में, और 7 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, मानवतावादी क्षेत्र में B.Com स्ट्रीम के छात्रों का प्रदर्शन सबसे बेहतर है, क्योंकि 15 छात्र उच्च श्रेणी में हैं। इसके अलावा, B.A के छात्रों की भी उच्च श्रेणी में संख्या अच्छी है, जबकि निम्न श्रेणी में छात्रों की संख्या बहुत कम है। यह दर्शाता है कि मानवतावादी क्षेत्र में अधिकांश छात्र अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं, विशेषकर ठ.ब्वड और ठ.। स्ट्रीम में।

12. एजुकेशन

Area	Stream	High	Average	Low
Education	B.A	15	15	2
	B.SC	10	10	9
	B.COM	9	11	9

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि शिक्षा (म्कनबंजपवद) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में 15 छात्र उच्च श्रेणी में, 15 छात्र औसत श्रेणी में, और केवल 2 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 10 छात्र उच्च श्रेणी में, 10 छात्र औसत श्रेणी में, और 9 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, ठ.ब्वड में 9 छात्र उच्च श्रेणी में, 11 छात्र औसत श्रेणी में, और 9 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, शिक्षा क्षेत्र में B.A स्ट्रीम के छात्रों का प्रदर्शन सबसे अच्छा है, क्योंकि उनके पास उच्च और औसत श्रेणी में समान संख्या है। जबकि B.Sc और B.Com के छात्रों की उच्च श्रेणी में संख्या कम है, लेकिन वे औसत श्रेणी में भी बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि शिक्षा क्षेत्र में B.A छात्रों की स्थिति सबसे मजबूत है, जबकि अन्य स्ट्रीम्स के छात्रों के प्रदर्शन में कुछ विविधता देखी जा रही है।

13. नेचर

Area	Stream	High	Average	low
Nature	B.A	2	8	21
	B.SC	6	5	18
	B.COM	2	14	14

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि प्रकृति (Nature) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A स्ट्रीम में 2 छात्र उच्च श्रेणी में, 8 छात्र औसत श्रेणी में, और 21 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 6 छात्र उच्च श्रेणी में, 5 छात्र औसत श्रेणी में, और 18 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, B.Com में 2 छात्र उच्च श्रेणी में, 14 छात्र औसत श्रेणी में, और 14 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, प्रकृति क्षेत्र में सभी स्ट्रीम्स के छात्रों का प्रदर्शन औसत से लेकर निम्न स्तर पर है। उच्च श्रेणी में छात्रों की संख्या बहुत कम है, विशेषकर B.A और B.Com में, जहाँ केवल 2 छात्र उच्च श्रेणी में हैं। यह दर्शाता है कि प्रकृति के क्षेत्र में छात्रों का प्रदर्शन सामान्यतः कमजोर है, और अधिकांश छात्र निम्न श्रेणी में पाए जाते हैं।

14. क्लेरिकल

Area	Stream	High	Average	Low
Clerical	B.A	4	18	8
	B.SC	8	12	10
	B.COM	13	7	11

इस डेटा की व्याख्या करते हुए, हम देखते हैं कि लिपिकीय (Clerical) क्षेत्र में तीन प्रमुख स्ट्रीम्स (B.A, B.Sc, B.Com) के छात्रों को उच्च, औसत, और निम्न श्रेणियों में विभाजित किया गया है। B.A में 4 छात्र उच्च श्रेणी में, 18 छात्र औसत श्रेणी में, और 8 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। B.Sc में 8 छात्र उच्च श्रेणी में, 12 छात्र औसत श्रेणी में, और 10 छात्र निम्न श्रेणी में आते हैं। वहीं, ट.ब्वउ में 13 छात्र उच्च श्रेणी में, 7 छात्र औसत श्रेणी में, और 11 छात्र निम्न श्रेणी में हैं। कुल मिलाकर, लिपिकीय क्षेत्र में B.Com स्ट्रीम के छात्रों का प्रदर्शन सबसे बेहतर है, क्योंकि उनके पास उच्च श्रेणी में 13 छात्र हैं। B.Sc और B.A के छात्रों की उच्च श्रेणी में संख्या कम है, लेकिन B.A में औसत श्रेणी के छात्रों की संख्या सबसे अधिक है। यह दर्शाता है कि लिपिकीय क्षेत्र में अधिकांश छात्रों का प्रदर्शन औसत स्तर पर है, जबकि उच्च श्रेणी में छात्रों की संख्या सीमित है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में, प्रस्तुत आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि विभिन्न क्षेत्रों और संकायों में विद्यार्थियों का प्रदर्शन तीन श्रेणियों- उच्च, औसत, और निम्न में विभाजित है। प्रशासनिक, रक्षा, और मानवीय क्षेत्रों में B.A., B.Sc, और B.Com के छात्रों ने उच्च और औसत श्रेणियों में अच्छा प्रदर्शन किया है। हालांकि, उद्यमिता, प्रदर्शन, और चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में अधिकांश छात्र निम्न प्रदर्शन श्रेणी में आते हैं, विशेष रूप से B.Com और B.A. के छात्र। तकनीकी क्षेत्रों में B.Sc के छात्रों ने B.A. और B.Com की तुलना में बेहतर प्रदर्शन किया है,

जबकि गणनात्मक और प्रकृति से जुड़े क्षेत्रों में निम्न प्रदर्शन करने वाले छात्रों का दबदबा है। शिक्षा और मानवीय क्षेत्रों में विशेष रूप से B.A. और B.Com के छात्रों ने उच्च प्रदर्शन किया है। कुल मिलाकर, आंकड़े यह दर्शाते हैं कि छात्रों का प्रदर्शन क्षेत्रों के अनुसार भिन्न होता है, जहाँ B.Sc के छात्र तकनीकी या रक्षा संबंधी क्षेत्रों में उत्कृष्ट हैं, जबकि B.A. और B.Com के छात्रों ने शिक्षा और मानवीय कार्यों में अपनी ताकत दिखाई है।

सुझाव

छात्रों के विभिन्न क्षेत्रों और धाराओं में प्रदर्शन के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:

1. कम प्रदर्शन वाले क्षेत्रों में लक्षित समर्थन: उद्यमशीलता (Enterprising), प्रदर्शन कला (Performing), और चिकित्सा (Medical) जैसे क्षेत्रों में बी.ए. और बी.कॉम धाराओं के छात्रों का प्रदर्शन कमजोर है। इन क्षेत्रों में छात्रों के प्रदर्शन को सुधारने के लिए अतिरिक्त संसाधन, मार्गदर्शन और कौशल विकास कार्यक्रम उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
2. तकनीकी शिक्षा पर अधिक ध्यान: चूंकि बी.एससी के छात्र तकनीकी (Technical) और रक्षा (Defence) से संबंधित क्षेत्रों में बेहतर प्रदर्शन करते हैं, विश्वविद्यालयों को बी.ए. और बी.कॉम जैसे अन्य धाराओं के छात्रों के लिए भी तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण को मजबूत करने में निवेश करना चाहिए ताकि सभी धाराओं में संतुलित प्रदर्शन सुनिश्चित हो सके।
3. वैयक्तिकृत शिक्षण दृष्टिकोण : बी.ए. और बी.कॉम धाराओं के छात्रों का प्रदर्शन विभिन्न क्षेत्रों में मिश्रित है। प्रत्येक क्षेत्र के छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष शैक्षिक रणनीतियों और शिक्षण विधियों को लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, उद्यमशीलता (Enterprising) और रचनात्मकता (Creative) क्षेत्रों में व्यावहारिक, हाथ से किए जाने वाले अनुभवों को शामिल करके छात्रों की रुचि और परिणामों को बेहतर बनाया जा सकता है।
4. उच्च प्रदर्शन वाले क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करें: शिक्षा (Education) और मानवतावादी (Humanitarian) क्षेत्रों में बी.ए. और बी.कॉम धाराओं के छात्रों का प्रदर्शन मजबूत है। इन क्षेत्रों को और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, और छात्रों की क्षमताओं को अधिकतम करने के लिए उन्हें वास्तविक दुनिया में अनुप्रयोगों, जैसे कि इंटरशिप और सामुदायिक परियोजनाओं के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।
5. अंतर-विषयक शिक्षा को मजबूत करना: विभिन्न धाराओं (बी.ए., बी.एससी., बी.कॉम) के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि अंतर-विषयक परियोजनाओं और गतिविधियों के माध्यम से छात्र एक-दूसरे की ताकतों से सीख सकें, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां एक धारा अन्य से बेहतर प्रदर्शन करती है।
6. मूल्यांकन विधियों में सुधार : डेटा से पता चलता है कि धाराओं और क्षेत्रों में छात्रों का प्रदर्शन भिन्न है। विश्वविद्यालयों को अपने मूल्यांकन और प्रतिक्रिया तंत्र पर पुनर्विचार करना चाहिए ताकि वे विशेष क्षेत्रों में छात्रों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों की पहचान कर सकें और अधिक व्यक्तिगत और कार्रवाई योग्य प्रतिक्रिया प्रदान कर सकें।
7. कौशल विकास कार्यशालाएं: उद्यमशीलता (Enterprising), तकनीकी (Technical) और चिकित्सा (Medical) जैसे प्रमुख क्षेत्रों में बी.ए. और बी.कॉम छात्रों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन करके

कौशल अंतराल को पाटने और इन क्षेत्रों में प्रदर्शन में सुधार करने में मदद की जा सकती है।

8. परामर्श और करियर मार्गदर्शन: निम्न प्रदर्शन वाले क्षेत्रों पर केंद्रित नियमित परामर्श और करियर मार्गदर्शन सत्र लागू करना चाहिए, जिससे छात्र अपनी शैक्षणिक यात्रा को अपनी ताकत और रुचियों के अनुसार सरेखित कर सकें, जिससे बेहतर परिणाम प्राप्त हों

सन्दर्भ :

- अमानी, जे. (2013). तंजानिया में स्नातक छात्रों में करियर चयन इरादों के पूर्वानुमान के रूप में सामाजिक प्रभाव और व्यावसायिक ज्ञान। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ लर्निंग एंड डेवलपमेंट, 3(3), 185-193.
- कुमार, आर. (2022). नियंत्रण के स्थान और कुछ जनसांख्यिकीय चर के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की व्यावसायिक रुचि (साहित्यिक क्षेत्र)। क्वेस्ट जर्नल्स: जर्नल ऑफ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, 10(8), 354-363. <https://www.questjournals.org/jrhss/papers/vol10-issue8/1008354363.pdf>
- लो, के. एस. डी., यून, एम., रॉबर्ट्स, बी. डब्ल्यू., - राउंड्स, जे. (2005). प्रारंभिक किशोरावस्था से मध्य वयस्कता तक व्यावसायिक रुचियों की स्थिरता: अनुदैर्घ्य अध्ययनों की मात्रात्मक समीक्षा। साइकोलॉजिकल बुलेटिन, 131(5), 713-737. <https://doi.org/10.1037/0033-2909.131.5.713>
- मोंडल, जी. सी. (2018). माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का उनके माता-पिता से संबंधित कारकों के संदर्भ में अध्ययन। जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च (JETIR), 5(8), 466-474. <https://www.jetir.org/papers/JETIR1808547.pdf>
- मोंडल, जी. सी., - मजुमदार, पी. (2018). माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का उनके लिंग के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यूज, 5(3), 196-199.
- नदीम, एम., - अहमद, एस. (2016). उच्चतर माध्यमिक छात्रों की करियर प्राथमिकताओं का तुलनात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च एंड एजुकेशन, 4(2), 4973-4982.
- त्रिपाठी, सी., - श्रीवास्तव, एन. (2017). माध्यमिक स्तर पर सी.बी.एस.ई. और यूपी बोर्ड के छात्रों की व्यावसायिक रुचियों का तुलनात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स (IJCRT), 5(4), 3353-3360. <https://ijcrt.org/papers/IJCRT1704444.pdf>
- ट्रॉन, सी. एल., - खर्बिरीमबाई, बी. बी. (2021). मेघालय के ईस्ट खासी हिल्स जिले के माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों के संदर्भ में व्यावसायिक रुचि का अध्ययन। ऑनलाइन इंटरनेशनल इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल, 11(5), 121-127. <https://www.oijrj.org/oijrj/sept-oct2021/17.pdf>
- वर्मा, के., - बक्शी, एस. (2017). करियर प्राथमिकताएँ और शैक्षणिक प्रदर्शन: लिंग आधारित अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशन एंड रिसर्च, 2(3), 200-203.
- यादव, पी. (2021). माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की सृजनात्मकता का उनके व्यावसायिक रुचियों, समायोजन और पारिवारिक वातावरण से संबंध के संदर्भ में अध्ययन (अप्रकाशित मास्टर की थीसिस)। महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा।



राजस्थान के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र सीकर जिले में सूखे की स्थिति एवं उसका प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

○ बीरबल लूनीवाल¹

संक्षिप्ति :

राजस्थान के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र सीकर जिले में सूखा एक आम प्राकृतिक आपदा है, जो जलवायु परिस्थितियों, अपर्याप्त वर्षा और जल संसाधनों के सीमित प्रबंधन के कारण बार-बार प्रकट होता है। यह अध्ययन सूखे की स्थिति, उसके कारणों और इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। सीकर जिले में सूखे का सबसे बड़ा प्रभाव कृषि और आजीविका पर पड़ता है, क्योंकि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। पानी की कमी से फसलों की पैदावार में भारी गिरावट होती है, जिससे किसान कर्ज में डूब जाते हैं और उनका जीवन प्रभावित होता है। इसके अलावा, पशुपालन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि चारे और पानी की कमी से पशुधन की संख्या में गिरावट आती है। सूखे की स्थिति से निपटने के लिए सरकार और स्थानीय समुदायों द्वारा विभिन्न प्रयास किए गए हैं। जल संरक्षण की पारंपरिक पद्धतियों जैसे जोहड़ और तालाब निर्माण, साथ ही आधुनिक जल प्रबंधन तकनीकों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसके अलावा, सूखा राहत कार्यों और वैकल्पिक आजीविका के साधनों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने से इस समस्या को कम किया जा सकता है। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सीकर जिले में सूखे की स्थिति एवं उत्पन्न समस्या से निपटने के लिए जल संसाधनों का प्रभावी प्रबंधन, सतत कृषि पद्धतियाँ और सामुदायिक भागीदारी अत्यंत आवश्यक है। इन उपायों से इस क्षेत्र में सूखे के प्रभाव को कम करने और लोगों की आजीविका को सुदृढ़ बनाने में मदद मिल सकती है।

बीज शब्द : अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र, सूखा, सामाजिक-आर्थिक प्रभाव, पारंपरिक पद्धतियाँ

1. स्नातकोत्तर शिक्षक, भूगोल, जवाहर नवोदय विद्यालय, अलवर, राजस्थान (पूर्व शोध-छात्र, भूगोल विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर; birballuniwal@gmail.com)

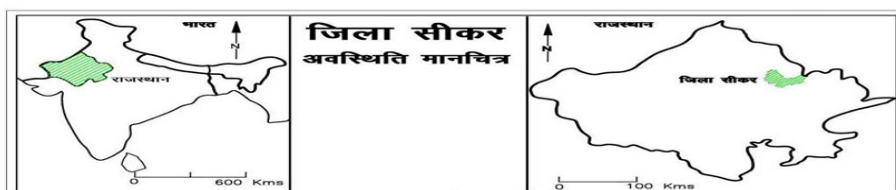
परिचय :

राजस्थान के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र में स्थित सीकर जिला सूखे की समस्या से गहराई से प्रभावित है। यहां का भौगोलिक और जलवायु परिवेश इसे सूखा-प्रवण क्षेत्र बनाता है, जिससे कृषि, पशुपालन और जल संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सूखा केवल एक प्राकृतिक आपदा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों पर व्यापक प्रभाव डालता है। सीकर जिले की जलवायु अर्द्ध-शुष्क है, जहां वार्षिक वर्षा का औसत कम है और इसका वितरण असमान है। इस जिले की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि और पशुपालन पर आधारित है, जो सीधे तौर पर वर्षा और जल संसाधनों पर निर्भर करती है। सूखे की स्थिति में फसलों की पैदावार में कमी, पशुधन के लिए चारे और पानी की कमी, और आजीविका संकट जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। सूखा अत्यधिक घातक प्राकृतिक प्रकोप होते हैं क्योंकि इसका किसी भी प्रकार के जीवन रूप के अस्तित्व के लिये आवश्यक तीन वस्तुओं (जल, वायु तथा भोजन) में से एक से सीधा तथा दूसरे (भोजन) से अप्रत्यक्ष रूप से गहरा सम्बन्ध है। सूखे का आविर्भाव जल के अभाव के संचयी प्रभावों से होता है तथा इस प्राकृतिक प्रकोप के कारण कृषि तथा प्राकृतिक वनस्पति को भारी क्षति होती है तथा अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सूखे का वर्णन केवल वर्षा के विचलन के आधार पर नहीं समझाया जा सकता बल्कि इसमें जल चक्र की अनिश्चिता एवं अपने कृषि के विकासरत प्रोजेक्ट की असफलता साथ ही जल के पुनर्भरण नहीं होने से है। उल्लेखनीय है कि दीर्घकाल तक शुष्कता में वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली शुष्कता की स्थिति का जलवर्षा की मात्रा, सामान्य औसत वार्षिक वर्षा से उसके विचलन तथा विभिन्न उद्देश्यों के लिये जल की स्थानीय मांग से गहरा सम्बन्ध होता है।

इस अध्ययन में सूखे की स्थिति एवं इसके प्रमुख कारणों, इसके प्रभावों और सीकर जिले में इसके प्रबंधन के लिए अपनाए गए उपायों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन न केवल सूखे के प्रभावों को समझने में मदद करेगा, बल्कि इसके समाधान और टिकाऊ विकास की दिशा में कार्य करने के लिए उपयोगी दिशा-निर्देश भी प्रदान करेगा।

अध्ययन क्षेत्र:

अध्ययन का क्षेत्र राजस्थान का सीकर जिला लिया गया है। जो राजस्थान के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित है। शेखावाटी क्षेत्र का यह जिला जयपुर से मात्र 112 किमी दूर स्थित है। भारतीय सर्वेक्षण विभाग की डिग्री शीट 44 पी एल 45 आई, एम और 54 ए में स्थित। जिला उत्तर में झुंझुनू, उत्तर-पश्चिम में चूरू जिला, दक्षिण में जयपुर, दक्षिण-पश्चिम में नागौर जिला और उत्तर-पूर्व में हरियाणा राज्य का महेंद्रगढ़ जिला स्थित है। अरावली पर्वतमाला इन क्षेत्रों को दो भागों में विभाजित करती है, यह अक्षांश 27°7' और 28° उत्तरी अक्षांश तथा 74°4' से 76°5' पूर्वी देशांतर पर स्थित है। कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7732 वर्ग किमी है। अध्ययन क्षेत्र 06 तहसीलों-सीकर, नीमकाथाना, श्रीमाधोपुर, दातारामगढ़, लक्ष्मणगढ़ में फैला हुआ है, अरावली पर्वतमाला इस क्षेत्रों को दो भागों में विभाजित करती है, कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7732 वर्ग किमी है। जिले में कुल 264 पटवार सर्किल स्थित हैं। साथ ही, जिले में कुल 1019 गांव हैं।



पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना।

3. कृषि पर प्रभाव का मूल्यांकन: सूखे के कारण कृषि उत्पादन, फसलों की विविधता, और किसानों की आजीविका पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
4. आर्थिक प्रभाव का आकलन: सूखे के कारण सीकर जिले की अर्थव्यवस्था, जैसे पशुपालन, ग्रामीण रोजगार, और स्थानीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करना। सुझाव और समाधान प्रदान करना।

सूखे के प्रभावों को कम करने और जल प्रबंधन, कृषि सुधार और अन्य उपायों के माध्यम से स्थायी विकास सुनिश्चित करने के लिए सिफारिशें तैयार करना।

आंकड़ों के स्रोत

आंकड़े मुख्यतया प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से एकत्रित किये जायेंगे।

1. प्राथमिक स्रोत: - भूमि के उपयोग सम्बन्धित आंकड़े हेतु व्यक्तिगत क्षेत्र अनुसंधान एवं भूमि के उपयोग सम्बन्धित जानकारीयों क्षेत्र के कृषकों से ली जायेगी एवं इनके उपयोग की जानकारी व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा कुछ प्रश्नावली भरकर प्राप्त की गयी हैं।
2. द्वितीयक स्रोत: - भूमि के सर्वेक्षण हेतु भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा टोपोशीट्स प्राप्त की जायेगी तथा क्षेत्र की भूगर्भिक, जलवायु (वर्षा एवं तापमान) सम्बन्धी आंकड़े सम्बन्धित विभागों से प्राप्त किये गए हैं।

विश्लेषण एवं विधि तंत्र : सूखा मुख्यतया वर्षा एवं तापमान पर निर्भर करता है अध्ययन क्षेत्र अर्ध शुष्क क्षेत्र में स्थित है यहाँ की वर्षा एवं तापमान के विश्लेषण के लिए मौसम विभाग से 25 वर्षों (1975-99) के आंकड़े एकत्रित किये गए हैं। वर्षा के मासिक उच्चतम एवं न्यूनतम आंकड़ों का परास, माध्य, मानक विचलन, एवं विचलन गुणांक निकाला गया है। साथ ही तापमान के 25 वर्षों के औसत वार्षिक अधिकतम तापमान, औसत वार्षिक न्यूनतम तापमान की गणना कर क्षेत्र की वाष्पोत्सर्जन एवं सूखे की स्थिति का आकलन किया गया है।

सूखा का विश्लेषण-अध्ययन क्षेत्र में सूखे का विश्लेषण निम्न सूत्र की सहायता से करते हैं-

प्रतिशत विचलन =

$$\text{जहाँ} \quad = 25 \text{ वर्षों } \frac{x}{\bar{x}} - 1 \text{ सत वर्षा है।}$$

$x = \bar{x}$ सी वर्ष विशेष में औसत वार्षिक वर्षा

सूखे की विभीषिका के आधार पर इसे तीन श्रेणियों में विभक्त करते हैं ख्र सामान्य, मध्यम एवं अत्यंत सूखा। अध्ययन क्षेत्र में सूखा के आने की आवृत्ति की भी गणना की गयी है

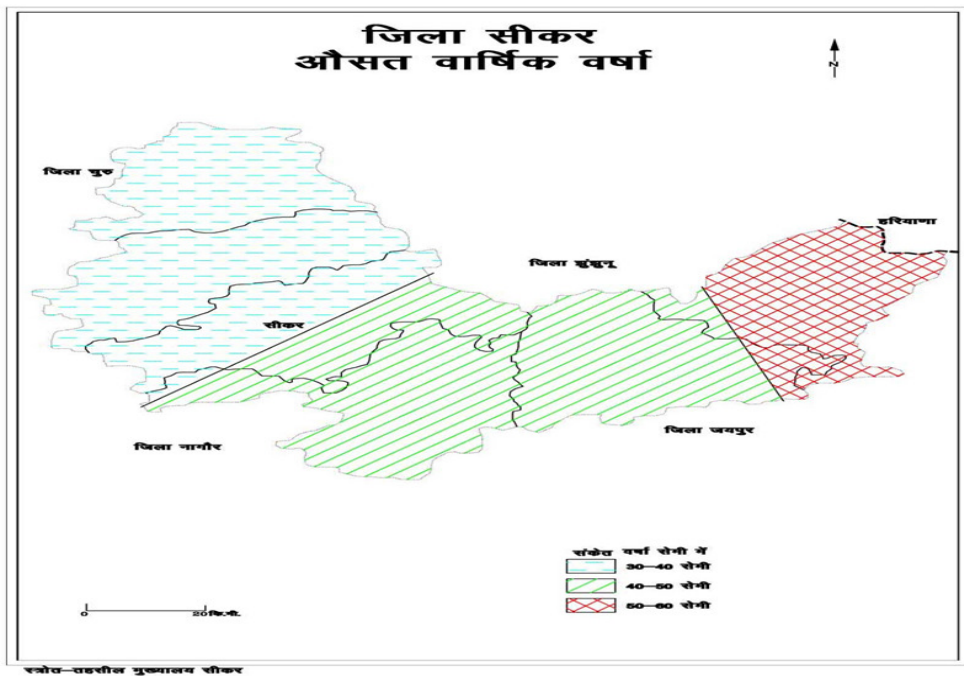
सारणी- सूखा / वार्षिक वर्षा से ऋणात्मक विचलन

प्रतिशत विचलन	सूखे का प्रकार
0.01 से कम	सूखा नहीं
-0.01 से -0.30	सामान्य सूखा
-0.31 से -0.50	मध्यम सूखा
-0.51 से अधिक	अत्यंत सूखा

जलवायु एवं वर्षा का विश्लेषण :

अध्ययन क्षेत्र मुख्यतया अर्द्ध-शुष्क प्रदेश में आता है। अतः यहां पर मुख्यतया अर्द्ध-शुष्क जलवायवीय दशाएं पायी जाती हैं। जलवायवीय कारकों में वर्षा एवं तापमान मुख्य है। क्षेत्र में जून अधिकतम गर्म एवं जनवरी सबसे ठण्डा महिना होता है। जहाँ अधिकतम तापमान 48° एवं न्यूनतम -1° तक चला जाता है। वार्षिक वर्षा का औसत 450 मि.मी. है। जिले में वर्षा का वितरण समान नहीं है। यह विभिन्न तहसीलों में अलग-अलग होती है जहां नीमकाथाना तहसील में वर्षा 50-60 सेमी. है श्रीमाधोपुर, दांतारामगढ़ एवं सीकर का आधा भाग में वार्षिक वर्षा 40-50 सेमी. होती है वहीं उत्तर पश्चिम में स्थित लक्ष्मणगढ़ एवं फतेहपुर में वार्षिक वर्षा का औसत 30-40 सेमी. ही पाया जाता है।

वर्षा का वितरण अत्यधिक परिवर्तनीय लक्षण है। एवं यह विभिन्न प्राकृतिक कारकों पर निर्भर है। अध्ययन क्षेत्र में वर्षा का वितरण दर्शाने के लिये सीकर स्टेशन निर्धारित किया है एवं 1975-1999 तक के वर्षा के आंकड़े विश्लेषित किये हैं।



सारणी-1 : वर्षा का विश्लेषण स्टेशन - सीकर (मि.मी.)

वर्ष	उच्चतम	न्यूनतम	परास	माध्य	मानक विचलन	विचलन गुणांक
1	2	3	4	5	6	7
1975	372.4 अगस्त	01 जनवरी	372	65.5	118.18	180.7
1976	126 जून	1.3 नवम्बर	124.5	33.8	46.67	138

1978	529.2 जुलाई	0.2 नवम्बर	529	75.0	154.8	206.4
1979	121.4 जुलाई	5.1 अप्रैल	116.3	31.8	36.35	114.3
1980	57.2 अगस्त	11.3 मार्च	45.9	14.21	20.83	146.7
1981	298.1 जुलाई	17.9 जून	280.2	43.4	83.12	191.53
1982	130.3 अगस्त	0.4 सितम्बर	129.3	33.6	45	134.21
1983	180.1 जुलाई	0.2 दिसम्बर	179.9	39.1	59.67	152.61
1984	52.1 अगस्त	0.3 अप्रैल	51.8	17	21.26	127.17
1985	222.2 जुलाई	4.9 दिसम्बर	217.3	30.5	60.71	199
1986	82.1 जुलाई	23.3 मई	58.8	28.2	31.63	112.18
1987	133 अगस्त	0.8 फरवरी	132.2	18.9	37.78	199.92
1988	166.5 जुलाई	4.2 मार्च	162.3	44.5	65.34	146.83
1989	70.0 अगस्त	2.0 सितम्बर	NA	NA	NA	NA
1990	NA	NA	NA	NA	NA	NA
1991	130 अगस्त	0.4 दिसम्बर	129.6	24.3	42.2	173.67
1992	238 जुलाई	1.0 नवम्बर	238	48.8	78.52	160.90
1993	91 जुलाई	2.0 अक्टूबर	89	19.6	28.64	146.14
1994	171 जुलाई	6.0 मार्च	65	53.6	64.3	119.9
1995	NA	NA	NA	NA	NA	NA
1996	280.5 जून	2.0 फरवरी	278.5	44.0	80.0	181.9
1997	114.5 अक्टूबर	2.0 जनवरी	112.5	31.1	40.8	131.8
1998	136.0 जुलाई	2.0 अक्टूबर	134	51.4	37.2	174
1999	NA	NA	NA	NA	NA	NA

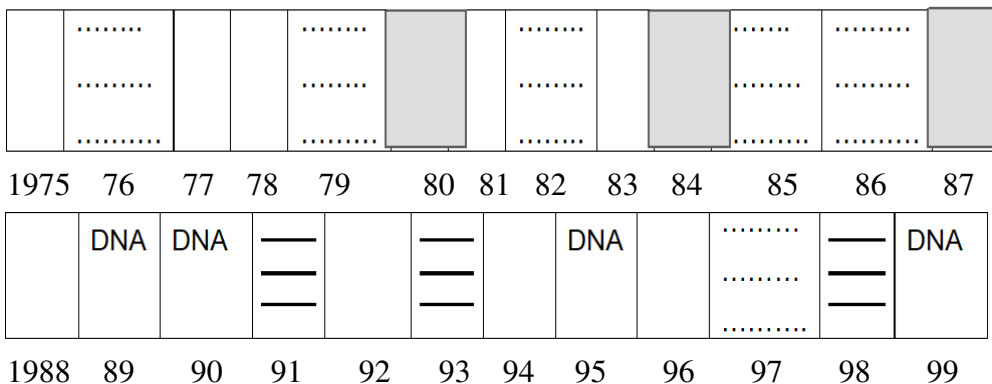
स्रोत : मौसम विज्ञान केन्द्र, सांगानेर, जयपुर

वर्षा के उपरोक्त आंकड़े सीकर स्टेशन के लिए है वर्षा के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि वर्षा का वितरण अत्यन्त विभिन्नता लिये हुये है जहां न्यूनतम वर्षा 0.1 मि.मी. है वही अधिकतम 529.2 मि. मी. (1978) वर्षा दर्ज की गई है। सूखा अत्यधिक घातक प्राकृतिक प्रकोप होते है क्योंकि इसका किसी भी प्रकार के जीवन रूप के अस्तित्व के लिये आवश्यक तीन वस्तुओ (जल, वायु तथा भोजन) में से एक से सीधा तथा दूसरे (भोजन) से अप्रत्यक्ष रूप से गहरा सम्बन्ध है। सूखे का आविर्भाव जल के अभाव के संचयी प्रभावों से होता है तथा इस प्राकृतिक प्रकोप के कारण कृषि तथा प्राकृतिक वनस्पति को भारी क्षति होती है तथा अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उल्लेखनीय है कि दीर्घकाल तक शुष्कता में वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली शुष्कता की स्थिति का जलवर्षा की मात्रा, सामान्य औसत वार्षिक वर्षा से उसके विचलन तथा विभिन्न उद्देश्यों के लिये जल की स्थानीय मांग से गहरा सम्बन्ध होता है। वास्तव में शुष्क दशा एवं आर्द्र दशा

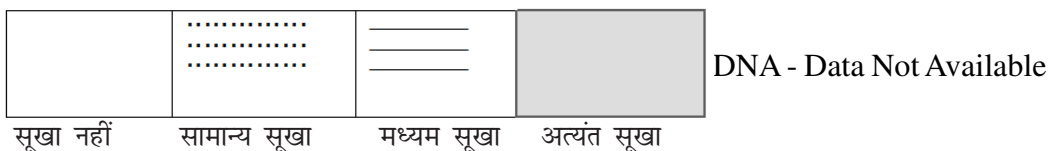
के लिए जल वर्षा के लिये जल वर्षा की सकल मात्रा अधिक महत्वपूर्ण नहीं होती हैं। उदाहरण के लिये 200 मि.मी. की नियमित एवं विश्वसनीय वार्षिक जल वर्षा शुष्क क्षेत्रों में किसानों के लिये चिन्ता का विषय नहीं है क्योंकि कृषि-कार्य इस कम वर्षा के साथ समायोजित एवं अनुकूलित हो जाता है परन्तु 500-800 मि.मी. की सामान्य वार्षिक वर्षा वाले भागों में यदि कुछ वर्षों तक 200 मि.मी. की ही जल वर्षा होतो सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। सूखे के सम्बन्ध में सी. जी. बायट्स; 1935) के अनुसार सूखे की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जबकि वार्षिक वर्षा सामान्य वर्षा की 75 प्रतिशत या उससे कम मासिक वर्षा सामान्य वर्षा की 60 प्रतिशत या उससे कम होती है। जे. सी. हायट (1936) के अनुसार सूखे की दशा उस समय उत्पन्न होती है जबकि वार्षिक एवं मासिक वर्षा के 85 प्रतिशत से कम होती है।

भारत में बिना जल के अध्ययन के भौतिक योजनाएं सामाजिक दृष्टि से बेकार हैं प्रायः चार प्रकार के सूखों का सामना करते हैं- मौसमी (वर्षा सूखा), स्थलीय जल सूखा, मृदा जल सूखा, एवं भूजल सूखा। परिस्थितिकीय दृष्टि से देश के प्रत्येक क्षेत्र में जल की अत्यन्त आवश्यकता है सूखा प्रायः असामान्य नहीं अपितु यह क्षेत्रीय दशाओं एवं स्थानीय जल के उपयोग से है एक सामान्य परिभाषा के अनुसार “सूखा जल की वह असामान्य कमी है जिसमें जल संसाधनों की उपलब्धता के अभाव में उस क्षेत्र के लोग एक सामान्य जीवन में विकलांगता महसूस करते हैं यहां पर असामान्य कमी से अर्थ मौसमी सूखापन की अवधि से है।” सूखा मुख्यतया वर्षा की परिस्थितियों पर निर्भर करता है और राजस्थान में तो यह मानसून पर आधारित है। वर्षा का वितरण सूखा की परिस्थितियों के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सीकर जिले में पिछले 25 वर्षों में वर्षा की कई बार पूरी मात्रा नहीं हो पायी सूखे की स्थिति उत्पन्न हुई है। सूखा मानव प्रजाति के लिए अच्छा नहीं है। एवं इस स्थिति में मानव का आर्थिक विकास उस क्षेत्र विशेष में नहीं हो पाता है एवं यह स्थिति सामान्य से विकट हो सकती है राजस्थान में सूखा की स्थिति लगभग रहती है एवं सीकर भी इससे अछूता नहीं है

स्टेशन - सीकर सूखा (1975-99)



निर्देशिका



सारणी-2: स्टेशन सीकर में सूखे के आने की आवृत्ति

सूखा का प्रकार	वर्ष	सूखा आने की आवृत्ति
सूखा नहीं	1975,1977,1978,1981,1983,1988,1992,1994,1996	42.85 %
सामान्य सूखा	1976,1979,1982,1985,1986,1997	28.57%
मध्यम सूखा	1991,1993,1998	14.28%
अत्यंत सूखा	1980,1984,1987	14.28%

जिले के सीकर स्टेशन के वर्षा के पिछले 25 वर्षों के आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वर्षा 1980, 84, 87, में अत्यन्त सूखे की स्थिति रही है एवं इसके आने की आवृत्ति 14.28 प्रतिशत है इसी प्रकार मध्यम सूखे की स्थिति वर्ष 1991, 93, 98 में रही है एवं इसके भी आने की आवृत्ति 14.28 प्रतिशत है सामान्य सूखे की स्थिति वर्ष 1976, 79, 82, 85, 86,97 में रही है एवं इसके आने की आवृत्ति 28.57 प्रतिशत है जबकी सूखा नहीं होने एवं वर्षा का वार्षिक औसत 25 वर्षों के औसत से अधिक होने का वर्ष 1975, 77, 78, 81, 83, 88, 92, 94 एवं 96 रहा है एवं इसके आने की आवृत्ति 42.85 प्रतिशत रही है जो कि सर्वाधिक है। जिले में पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा के वितरण के कम होने से सूखे की स्थिति में भी कुछ विभिन्नताएँ देखने को मिलती है।

तापमान : तापमान किसी भी क्षेत्र के भूमि उपयोग में एक पारिस्थितिकीय कारक होता है। तापमान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्षा, जनसंख्या, वनस्पति, जीव जन्तुओं आदि को प्रभावित करता है। वर्षा के वाष्पोत्सर्जन आदि में तापमान एक महत्वपूर्ण कारक होता है - अध्ययन क्षेत्र के पिछले 25 वर्षों के (1975-1999) वार्षिक औसत न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान सारणी में दिये गये हैं :

सारणी-3 : औसत वार्षिक तापमान (डिग्री सेंटीग्रेड) स्टेशन - सीकर

वर्ष	औसत वार्षिक अधिकतम तापमान	औसत वार्षिक न्यूनतम तापमान
1975	29.7	15.2
1976	30.4	15.6
1977	31.2	18
1978	31.3	14.7
1979	32.5	17.1
1980	34.1	18
1981	33.2	DNA
1982	31.4	12.5
1983	31.2	15.5
1984	32.8	15.9
1985	33	17.4
1986	32.7	17.3
1987	33.7	16.1

1988	34	17.3
1989	32.6	16.1
1990	DNA	DNA
1991	32.6	15.3
1992	31.8	15
1993	32.8	16.4
1994	31	18.36
1995	DNA	DNA
1996	32	17.8
1997	30.13	17.3
1998	29	15.8
1999	DNA	DNA

DNA- आंकड़े उपलब्ध नहीं

स्रोत : मौसम विज्ञान केन्द्र, सांगानेर, जयपुर

यहाँ पर तापमान एवं वाष्पीकरण के मध्य धनात्मक सम्बन्ध है। यहां वाष्पीकरण एवं वर्षा असंतुलित है जहां बलूई मिट्टी के कारण वाष्पीकरण अधिक होता है वही वर्षा कम होती है। वर्षा ही जल पुनर्भरण का एक मात्र स्रोत है क्षेत्र में मध्य जून से अक्टुबर तक जल की मात्रा अधिक एवं नमी बनी रहती है जबकि दिसम्बर से मध्य जून तक कमी रहती है।

सूखे का कारण :

राजस्थान के सीकर जिले में सूखे की समस्या के पीछे कई पारिस्थितिकीय कारण हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

1. अल्प वर्षा- सीकर जिला शुष्क और अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र में स्थित है, जहाँ वार्षिक औसत वर्षा काफी कम (लगभग 450-500 मिमी) होती है। अनियमित मानसून और बारिश की मात्रा में वर्ष-दर-वर्ष भिन्नता सूखे का एक मुख्य कारण है।
2. भूजल का अत्यधिक दोहन- कृषि और पेयजल की बढ़ती मांग के कारण भूजल स्तर में तेज गिरावट हुई है। जल संचयन की परंपरागत विधियों का हास भी इस स्थिति को और अधिक गंभीर बनाता है।
3. वनस्पति और वृक्षों की कमी- प्राकृतिक वनस्पति और पेड़ों की कटाई के कारण भूमि की जल-धारण क्षमता में कमी आई है। वृक्षारोपण की कमी और जैव विविधता का क्षय पारिस्थितिकी असंतुलन को बढ़ावा देते हैं।
4. भूमि का अपरदन- क्षेत्र में तेज हवाओं और अनियंत्रित चराई के कारण मिट्टी का कटाव होता है। यह भूमि की उर्वरता को कम कर देता है, जिससे जल संचित करने की क्षमता घटती है।
5. पारंपरिक जल संरचनाओं की उपेक्षा - जोहड़, बावड़ी, और तालाब जैसे पारंपरिक जल संग्रहण प्रणालियों की उपेक्षा और क्षति। नई तकनीकों की ओर बढ़ते ध्यान के कारण पुरानी जल संरक्षण प्रणालियों का क्षरण हुआ है।
6. जलवायु परिवर्तन- ग्लोबल वॉर्मिंग और जलवायु परिवर्तन ने क्षेत्र की पारिस्थितिकीय स्थितियों को

और अधिक जटिल बना दिया है। लंबे समय तक सूखा और अत्यधिक गर्मी के दिन आम हो गए हैं।

सूखे का क्षेत्र पर प्रभाव :

राजस्थान के सीकर जिले में सूखे का व्यापक प्रभाव पड़ता है, जो समाज, अर्थव्यवस्था, और पर्यावरण को प्रभावित करता है। इसके मुख्य प्रभाव निम्नलिखित हैं:

1. कृषि पर प्रभाव- फसल उत्पादन में गिरावट: वर्षा की कमी और जल संकट के कारण फसलें खराब हो जाती हैं, जिससे किसानों की आय प्रभावित होती है। पशुपालन पर असर: सूखे के कारण चारा और पानी की कमी होती है, जिससे पशुओं का पोषण और उत्पादकता घटती है।
2. जल संकट-पेयजल की कमी- जल स्रोतों के सूखने से पीने के पानी की भारी कमी हो जाती है। भूजल स्तर में गिरावट: अत्यधिक भूजल दोहन के चलते स्थिति और गंभीर हो जाती है।
3. आर्थिक प्रभाव- ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव: कृषि और पशुपालन मुख्य आजीविका होने के कारण सूखे से लोगों की आय में भारी गिरावट आती है।

मजदूरी और पलायन:

काम की कमी के कारण लोग अन्य राज्यों या शहरों की ओर पलायन करने को मजबूर होते हैं।

4. पर्यावरणीय प्रभाव- मिट्टी की गुणवत्ता का हास: पानी की कमी से मिट्टी की उर्वरता घट जाती है। वनस्पति और जैव विविधता पर प्रभाव: पेड़ों और पौधों की कमी के कारण पर्यावरणीय असंतुलन पैदा होता है।
5. सामाजिक प्रभाव- रोजगार और संसाधनों की कमी के कारण बड़ी संख्या में लोग अपने गांवों को छोड़कर पलायन करते हैं। स्वच्छ पानी और पोषण की कमी के कारण बीमारियां बढ़ जाती हैं।

सीकर जिले में सूखे का प्रभाव बहुआयामी है। यह कृषि, जल, अर्थव्यवस्था, और समाज सभी को प्रभावित करता है। इस समस्या का समाधान जल संरक्षण और स्थायी विकास पर ध्यान केंद्रित करके ही संभव है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

जिले के सीकर स्टेशन के वर्षा के पिछले 25 वर्षों के आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वर्षा 1980, 84, 87, में अत्यन्त सूखे की स्थिति रहीं है एवं इसके आने की आवृत्ति 14.28 प्रतिशत है इसी प्रकार मध्यम सूखे की स्थिति वर्ष 1991, 93, 98 में रही है एवं इसके भी आने की आवृत्ति 14.28 प्रतिशत है सामान्य सूखे की स्थिति वर्ष 1976, 79, 82, 85, 86, 97 में रही है एवं इसके आने की आवृत्ति 28.57 प्रतिशत है जबकी सूखा नहीं होने एवं वर्षा का वार्षिक औसत 25 वर्षों के औसत से अधिक होने का वर्ष 1975, 77, 78, 81, 83, 88, 92, 94 एवं 96 रहा है एवं इसके आने की आवृत्ति 42.85 प्रतिशत रही है जो कि सर्वाधिक है। जिले में पूर्व से पश्चिम की ओर वर्षा के वितरण के कम होने से सूखे की स्थिति में भी कुछ विभिन्नताएं देखने को मिलती है। तापमान के 25 वर्षों के औसत वार्षिक अधिकतम तापमान, औसत वार्षिक न्यूनतम तापमान की गणना कर क्षेत्र की वाष्पोत्सर्जन एवं सूखे की स्थिति का आंकलन किया गया है। है। तापमान एवं सुखा में भी एक धनात्मक सम्बन्ध देखने को मिलता है। क्षेत्र में बलुई भूमि की अधिकता के कारण वाष्पोत्सर्जन की दर भी उच्च देखने को मिलती है।

सीकर जिले में वर्षा अत्यधिक अनियमित और अपर्याप्त होती है, जिससे कृषि और जल संसाधनों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, जो मानसून पर आधारित है। सूखे की स्थिति में फसल उत्पादन में भारी गिरावट आती है। पशुधन के लिए चारा और पानी की कमी सूखे के दौरान एक बड़ी समस्या है, जिससे पशु पालन व्यवसाय प्रभावित होता है। भूमिगत जल स्तर में लगातार गिरावट देखी गई

है, जिससे पेयजल और सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता घट रही है। सूखे के कारण लोगों का पलायन, बेरोजगारी और गरीबी बढ़ती है। इससे सामाजिक समस्याओं में वृद्धि होती है।

सुझाव

- वर्षा जल संचयन को बढ़ावा दिया जाए।
- परंपरागत जल संरचनाओं जैसे जोहड़, तालाब और कुंडों का पुनर्निर्माण और संरक्षण किया जाए।
- सूखा सहनशील फसलें जैसे बाजरा, ज्वार और ग्वार को प्रोत्साहित किया जाए।
- सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों (ड्रिप और स्प्रिंकलर) का उपयोग बढ़ाया जाए।
- चारा बैंक और पानी के स्रोतों की व्यवस्था की जाए। पशुओं के लिए विशेष राहत केंद्र स्थापित किए जाएं।
- वनीकरण और वृक्षारोपण को बढ़ावा दिया जाए। स्थानीय प्रजातियों के पौधों का उपयोग किया जाए, जो कम पानी में जीवित रह सकें।
- सूखा राहत योजनाओं को प्रभावी तरीके से लागू किया जाए। किसानों को सूखा प्रबंधन और जल संरक्षण के प्रति जागरूक किया जाए। कृषि के अलावा हस्तशिल्प, डेयरी और अन्य ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए। पलायन रोकने के लिए स्वरोजगार के अवसर बढ़ाए जाएं।
- यह अध्ययन सूखे की समस्या को समझने और उसके निवारण हेतु ठोस कदम उठाने की दिशा में उपयोगी हो सकता है।

संदर्भ :

1. लूनीवाल, बीरबल (2011), सीकर जिले में भूमि तंत्र, भूमि उपयोग और भूमि सक्षमता, पीएच.डी. थीसिस, भूगोल विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
2. Doi, R.D. (1991), Land system, Land use, and land capability a case study of Morel River Basin, University of Rajasthan
3. Mandal R.B. (1990), Land utilization theory and practices concept publication, New Delhi.
4. ग्रामीण विकास मंत्रालय (2016), भारत सरकार। राजस्थान की मरुस्थलीकरण और भूमि क्षरण स्थिति रिपोर्ट।
5. National Remote Sensing Centre (NRSC). (2019). Land Use and Soil Maps of Rajasthan. <https://www.nrsc.gov.in>
6. Rajasthan Agriculture Department. (2020). Land Capability Classification and Agricultural Planning in Sikar District. <http://www.agriculture.rajabasthan.gov.in>
7. Choudhary, R. D. (2017). Assessment of Soil Health and Land Capability in Semi-Arid Regions of Rajasthan: A GIS-Based Study (Master's thesis, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur).
8. Ministry of Rural Development (2016). Desertification and Land Degradation Status Report of Rajasthan. New Delhi: Government of India.
9. Yadav, B., & Meena, R. (2017). "Impact of Land Degradation on Agricultural Productivity in Semi-Arid Areas of Rajasthan: A Study on Sikar District." Journal of Soil and Water Conservation, 15(4), 281-289
10. सक्सेना, हरिमोहन: राजस्थान का भूगोल, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी
11. चौहान, तेजसिंह (2018), राजस्थान का भूगोल, 'बपमदजपपिब चनइसपौमत, श्रवकीचनत
12. Kumar, S., Tanwar, S.P.S., Singh. A., (2017), Drought Mitigation and Management, Scientific publisher, Jodhpur



ग्रामीण क्षेत्र की महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना के प्रति जागरूकता का अध्ययन

○ मंजू सिंह¹

○ डॉ. अनुपम कुमार वर्मा²

संक्षिप्ति :

जननी सुरक्षा योजना माताओं और नवजात शिशुओं की मृत्युदर को कम करने के लिए भारत सरकार के राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM) द्वारा चलाई जा रही एक सुरक्षित मातृत्व हस्ताक्षेप है। यह गर्भावस्था सम्बन्धी जटिलताओं को रोकने के लिए तीन भागों में सेवा प्रदान करती है। इस योजना में गर्भावस्था सम्बन्धी लाभ पाने के लिए प्रसवपूर्व देखभाल, संस्थागत प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल, प्रदान कराती है, साथ ही माँ एवं नवजात शिशुओं की स्वास्थ्य सेवाओं को सुनिश्चित करती है। जननी सुरक्षा योजना का लाभ गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली सभी गर्भवती महिलाओं को प्रथम दो बच्चों पर प्राप्त होता है। जननी सुरक्षा योजना की जागरूकता को बढ़ाने का कार्य सरकार द्वारा स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को दिया गया है, जिसमें आशा, आंगनवाड़ी, ए.एन.एम. एवं चिकित्सा अधिकारी इत्यादि स्वास्थ्य कार्यकर्ता शामिल हैं। स्वास्थ्य कार्यकर्ता ही जननी सुरक्षा योजना को जमीनी या ग्रामीण स्तर तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। यह अपने क्षेत्र की सभी गर्भवती महिलाओं को इस योजना के लाभों के बारे में जागरूक करते हुए संस्थागत प्रसव के लिए प्रेरित करती है। जिससे कि माँ एवं नवजात शिशु को सुरक्षित रखा जा सके। इस योजना को सफल बनाने के लिए महिलाओं एवं उनके परिवार वालों को जागरूक होने की आवश्यकता है।

पद्धति :

इस शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के अमरोहा जनपद की ग्रामीण क्षेत्र की महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया गया है, जिसमें 35 गर्भवती महिलाओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन

1. शोधार्थी, समाज कार्य विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

ईमेल: manju.mphil.123@gmail.com; मो.: 9170706889

2. सहायक आचार्य, समाज कार्य विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

ईमेल: akv.msw@gmail.com; मो.: 9450202480

विधि का उपयोग करके किया गया है।

बीज शब्द : जननी सुरक्षा योजना, जागरूकता, ग्रामीण महिलायें, स्वास्थ्य, स्वास्थ्य कार्यकर्ता इत्यादि।

महिलाओं का स्वास्थ्य हमारे देश में एक गम्भीर विषय है। सरकार की भूमिका स्वतन्त्रता पूर्व काल से ही उनके दायित्वों के अनुरूप नहीं रही है। स्वास्थ्य सेवाओं की दिशा में स्वतन्त्रता के उपरान्त पर्याप्त प्रगति हुई है। राष्ट्र अर्थव्यवस्था के उत्पादन कार्यों में महिलाओं का 80 प्रतिशत योगदान रहता है। महिलाओं की सबसे बड़ी अयोग्यता उनकी अस्वस्थता ही है। उनके कंधों पर न केवल वर्तमान की अर्थव्यवस्था के विकास का दायित्व है अपितु भावी अर्थव्यवस्था स्वस्थ कंधों पर टिकी होगी। यह सभी महिलाओं के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है इसीलिए महिलाओं के स्वास्थ्य पर अत्यधिक ध्यान देने की जरूरत है, परन्तु भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार से सम्बन्धित गम्भीर प्रयास भी पक्षपात पूर्ण सामाजिक रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक परम्पराओं के संदर्भ में पूर्ण किये जाते रहे हैं।

यूनिसेफ की रिपोर्ट 1990 में यह अनुमान किया गया था कि भारत में नवजात लड़कियों की मृत्यु नवजात लड़कों की तुलना में प्रति वर्ष 3,00,000 से भी अधिक है और प्रत्येक छठे शिशु की मृत्यु के प्रमुख कारण लैंगिक भेदभाव है। 15 मिलियन बच्चियों में से करीब 25 प्रतिशत बच्चियाँ भारत में प्रतिवर्ष जन्म लेने वाली अपना 15वाँ जन्मदिन नहीं देख पाती हैं।

पूरे विश्व में माताओं की मृत्यु दर सबसे अधिक भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इस मृत्यु दर का बहुत बड़ा कारण यह है कि गर्भधारण के समय ग्रामीण महिलाएँ स्वास्थ्य सेवा प्राप्त करने के लिए अधिक इच्छुक नहीं रहती हैं। पूरे देश के अनुमानों से यह पता चलता है कि 40-50 प्रतिशत महिलाएँ ही बच्चों के जन्म के पूर्व स्वास्थ्य सेवा प्राप्त कर पाती हैं। महाराष्ट्र, बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, गुजरात और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों के प्रमाण यह साबित करते हैं कि माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य सुरक्षा के संबंध में किए जाने वाले पंजीकरण ग्रामीण क्षेत्रों में 5-22 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 21-51 प्रतिशत पाये जाते हैं।

स्वास्थ्य के स्तर देखे तो भारत की महिलाओं की स्वास्थ्य दशा चिंताजनक हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी सहस्राब्दि विकास लक्ष्य 2012 की एक रिपोर्ट में महिला स्वास्थ्य को लेकर भारत में एक गंभीर चिंता प्रकट की गई थी। इसके रिपोर्ट के अनुसार देश में माँ बनने वाली महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय है। 2010 में 57 हजार महिलाओं की मौत माँ बनने के दौरान हो गई थी। यह सम्पूर्ण विश्व में इस तरह से होने वाली मृत्यु का लगभग 20 प्रतिशत है। भारत में मातृत्व मृत्यु दर प्रति एक लाख जीवित जन्मे बच्चों पर करीब 212 है। जबकि सहस्राब्दि विकास लक्ष्य के तहत इसे 2015 तक 75 प्रतिशत तक कम करना है। जाहिर है कि जिस गति से कार्य हो रहा है उस गति से इस दर को पाना असम्भव है। हालाँकि, 1999-2009 के बीच मातृत्व मृत्यु दर में करीब 38 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई है; जहाँ पर 1999 में यह दर 437 थी, वहाँ पर 2015 में यह दर घटकर 212 पर आ गई थी और 2010 के संयुक्त राष्ट्र आकड़े यह बताते हैं कि पूरे भारत में प्रसव पीड़ा से करीब 2 लाख 87 हजार महिलाओं की मृत्यु हुई है जिसका करीब 85 प्रतिशत योगदान दक्षिण एशिया के देशों और अफ्रीका में तो यह कुल मृत्यु का करीब 47 प्रतिशत हिस्सा है।

सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम बुलेटिन 2016 के अनुसार, भारत में 2013 में अनुपात मातृ मृत्यु के दरों में 26.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई है। यह पर 2011-2013 में 167 से घटकर 2014-16 में 130 और 2015-17 में 122 दर्ज किया गया है। 2014-2016 के अंतिम सर्वेक्षण के आंकड़ों के बाद 6.15 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई थी।

वर्ष 2025 तक पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु दर को कम करके 23 करना है तथा एमएमआर को वर्तमान स्तर को वर्ष 2020 तक घटाकर 100 करना था। नवजात शिशु मृत्यु दर को घटाकर 16 करना तथा मृत जन्म लेने वाले बच्चों की दर को वर्ष 2025 तक घटाकर एक अंक में लाना है। लोकसभा और राज्यसभा में स्वास्थ्य नीति पर सरकार का नजरिया पेश करते हुए स्वास्थ्य मंत्री जेपी नड्डा ने कहा है कि इससे उन लोगों तक स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँचाई जाएगी जिन तक यह अभी ठीक से नहीं पहुँची है। स्वास्थ्य नीति में 2025 तक 5 वर्ष से कम उम्र की शिशु मृत्यु दर 23 तक सीमित करने का इरादा है, वही 2020 तक प्रसव के दौरान मातृ मृत्युदर शून्य तक पहुँचाने की योजना है, परन्तु यह अभी पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पायी है।

जननी सुरक्षा योजना

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत शुरू हुई जननी सुरक्षा योजना का मुख्य उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को घर के बजाय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और अस्पतालों तक लाना है। ये योजना खासकर उन महिलाओं के लिए फायदेमंद है जिन्हें शिक्षा और चिकित्सा के अभाव के कारण प्रसव के दौरान कई तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिसके चलते न केवल गर्भवती महिलाओं की आकाल मृत्यु हो जाती थी, बल्कि नवजात शिशु भी जीवित नहीं रह पाते थे। लेकिन इस योजना के पर्याप्त प्रचार प्रसार के बाद अब गर्भवती महिलाएँ और उनके परिजन संस्थागत प्रसव को बेहतर मान रहे हैं। इस योजना के अन्तर्गत गर्भधारण के बाद से ही महिलाओं की सम्पूर्ण जाँच करने के बाद ही टीकाकरण भी कराया जाता है। दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं ने इस योजना का लाभ लेकर खुद के साथ अपने बच्चे को भी स्वस्थ रखा है।

जननी सुरक्षा योजना 12 अप्रैल 2005 में प्रारम्भ की गई थी तथा शत प्रतिशत केन्द्र प्रयोजित योजना है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना का एक प्रमुख उद्देश्य मातृ मृत्यु दर में कमी लाना है। जननी सुरक्षा योजना द्वारा गर्भवती माताओं, प्रसूता स्त्रियों तथा स्तनपान करा रही माताओं को सीधा लाभ दिया जाता है, यह योजना राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना का संशोधित रूप है। जननी सुरक्षा योजना में माताओं को गर्भावस्था के दौरान, प्रसव के दौरान तथा प्रसवोत्तर काल में देख-भाल हेतु नगद सहायता प्रदान की जाती है तथा क्षेत्र स्तर पर स्वास्थ्य कर्मी (आशा, आंगनवाड़ी, दाई) द्वारा देख भाल करने पर उनको सहायता प्रदान की जाती है। जननी सुरक्षा योजना के अन्तर्गत सरकारी चिकित्सा केन्द्रों में प्रसव कराने के लिए महिलाओं को नगद प्रोत्साहन राशि प्रदान की जाती है। अस्पताल में प्रसव प्रशिक्षित ए.एन.एम. व डॉक्टर द्वारा किया जाता है। योजना के अन्तर्गत पंजीकृत प्रत्येक महिला के पास मातृत्व कार्ड का होना आवश्यक होता है। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गर्भवती महिला को प्रसव के दौरान मुफ्त दवाएँ, खाद्य पदार्थ, मुफ्त इलाज और जरूरत पड़ने पर मुफ्त रक्त दिया जाना भी शामिल है। प्रसूता को प्रजनन के वक्त सामान्य डिलिवरी पर तीन दिन व सी. सैक्सन में सात दिन तक प्रसूता व उसके नवजात शिशु को डॉक्टर व नर्सों की निगरानी में रखा जाता है। इस योजना के द्वारा प्रसूता को घर से अस्पताल, अस्पताल से घर निशुल्क वाहन भी उपलब्ध कराया जाता है।

जननी सुरक्षा योजना का उद्देश्य

- समग्र मातृ मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर में कमी लाना है।
- बी.पी.एल. परिवारों में संस्थागत प्रसवों की संख्या में वृद्धि करना है।
- गर्भवती महिलाओं तथा रुग्ण नवजात शिशुओं को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान की जाएगी।
- इस योजना के अन्तर्गत बिना व्यय की सेवा प्रदान करने पर जोर दिया गया है। इससे गर्भवती महिलाओं को प्रजनन व्यय की चिंता से वे मुक्त होंगी।

- गर्भवती महिलाओं को मुफ्त दवाएँ एवं खाद्य पदार्थ, मुफ्त इलाज, जरूरत पड़ने पर मुफ्त खून दिया जायेगा।

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. उत्तरदाताओं का पार्श्वचित्र।
2. ग्रामीण क्षेत्र की महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना के प्रति जागरूकता का अध्ययन।
3. महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना के द्वारा मिलने वाली सुविधाओं की जानकारी प्राप्त करना।

शोध प्रविधि

इस शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा अपने शोध विषय से सम्बन्धित प्रस्तुत शोध विषय के लिए अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक एवं अन्वेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। इस शोध में उद्देश्य पूर्ण निदर्शन के द्वारा 35 आशा कार्यकत्रियों को चयनित करके प्राथमिक आकड़ों का संकलन व्यक्तिगत साक्षात्कार के द्वारा अध्ययन किया गया है। द्वितीयक आकड़ों का संकलन के लिए शोध पत्र से सम्बन्धित विभिन्न सरकारी पत्र, पत्रिकाओं एवं शोध पत्रों के माध्यम से करके आकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

सारिणी संख्या 01

महिला लाभार्थियों की आयु सम्बन्धी सारिणी

महिला लाभार्थियों की आयु	योग	प्रतिशत
19 से 25 वर्ष	98	32.66
26 से 30 वर्ष	107	35.66
31 से 35 वर्ष	75	25.00
36 से 45 वर्ष	20	6.66
कुल	300	100

सारिणी संख्या-01 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 35.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की आयु 26-30 वर्ष की है, जबकि 32.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की आयु 19-25 वर्ष की है, एवं 25.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की आयु 31-35 वर्ष की है तथा सबसे कम 6.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की आयु 36-45 वर्ष की है।

सारिणी संख्या 02

महिला लाभार्थियों की धर्म सम्बन्धी सारिणी

महिला लाभार्थियों की धर्म	योग	प्रतिशत
हिन्दू	213	71.00
मुस्लिम	69	23.00
सिख	11	3.66
इसाई	07	2.33
अन्य	00	00.00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-02 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 71.00 प्रतिशत महिला लाभार्थी हिन्दू धर्म के पाए गये हैं, इसके बाद 23.00 प्रतिशत महिला लाभार्थी मुस्लिम धर्म से हैं, जबकि 3.66 प्रतिशत महिला लाभार्थी सिख धर्म के हैं तथा सबसे कम 2.33 प्रतिशत महिला लाभार्थी इसाई धर्म के पाए गये हैं।

अतः इस सारिणी के निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि धर्म समाज में एक तरह से विश्वास की प्रणाली है। धर्म प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रतीकात्मक आचारों तथा तत्वों की एक व्यवस्था है जो ज्ञान की तुलना में विश्वास और आस्था द्वारा प्रकाशित होती है जब से समाज का आरम्भ हुआ है धर्म ने मानव व्यवहार को नियन्त्रित एवं नियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है

सारिणी संख्या 03

महिला लाभार्थियों की जाति सम्बन्धी सारिणी

महिला लाभार्थियों की जाति	योग	प्रतिशत
सामान्य जाति	68	22.66
पिछड़ी जाति	83	27.66
अनुसूचित जाति	149	49.66
अनुसूचित जन-जाति	00	00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-03 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 49.66 प्रतिशत महिला लाभार्थी अनुसूचित जाति में पाई गई है एवं 27.66 प्रतिशत महिला लाभार्थी पिछड़ी जाति में पाई गई है, जबकि 22.88 प्रतिशत सामान्य जाति में महिला लाभार्थी पाई गयी है इसी क्रम में अनुसूचित जनजाति में कोई भी महिला लाभार्थी नहीं मिली है अतः यह कहा जा सकता है कि जननी सुरक्षा का लाभ सभी वर्गों की महिला लाभार्थियों को प्राप्त हो रहा है वह चाहे उच्च वर्ग से हो या निम्न वर्ग से सभी को सरकार द्वारा चलाई जा रही जननी सुरक्षा योजना का लाभ प्राप्त हो रहा है।

सारिणी संख्या 04

महिला लाभार्थियों की शैक्षिक योग्यता सम्बन्धी सारिणी

महिला लाभार्थियों की शैक्षिक योग्यता	योग	प्रतिशत
निरक्षर	44	14.66
साक्षर	22	7.33
प्राइमरी	49	16.33
हाईस्कूल	55	18.33
इण्टरमीडिएट	60	20.00
स्नातक	20	6.66
परास्नातक	19	6.33
कुल	300	100

सारिणी संख्या- 4.4 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 20.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की शैक्षिक योग्यता इण्टरमीडिएट की पाई गई है एवं इसी क्रम में सबसे कम 6.33 प्रतिशत महिला लाभार्थियों का शैक्षिक योग्यता का स्तर परास्नातक पाया गया है।

सारिणी संख्या 05

महिला लाभार्थियों का व्यवसाय सम्बन्धी सारिणी

महिला लाभार्थियों का व्यवसाय	योग	प्रतिशत
मजदूरी	88	29.33
नौकरी	03	1.00
स्वारोजगार	16	5.33
कृषि	14	4.66
ग्रहणी	179	59.66
कुल	300	100

सारिणी संख्या-05 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 59.66 प्रतिशत महिला लाभार्थी गृहिणी पाई गई हैं और 29.33 प्रतिशत महिला लाभार्थी मजदूरी करने वाली पाई गई हैं, जबकि 5.33 प्रतिशत महिला लाभार्थी स्वारोजगार करने वाली पाई गई हैं एवं इसी क्रम में 4.66 प्रतिशत महिला लाभार्थी कृषि करने वाली पाई गई हैं सबसे कम महिला लाभार्थी 1.00 प्रतिशत महिला लाभार्थी नौकरी करने वाली पाई गई हैं।

सारिणी संख्या 06

महिला लाभार्थियों की मासिक आय

महिला लाभार्थियों की मासिक आय	योग	प्रतिशत
1000-5000	186	62.00
6000-10000	75	25.00
11000-20000	39	13.00
21000-30000	00	00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-06 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सबसे अधिक 62.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की मासिक आय 1000-5000 रुपये के बीच पाई गई है जबकि 25.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की मासिक आय 6000-10000 रुपये के बीच पाई गई है एवं इसी क्रम में 13.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की मासिक आय 11000-20000 रुपये के बीच पाई गई है

सारिणी संख्या 07

महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना सम्बन्धी जानकारी

जननी सुरक्षा योजना सम्बन्धी जानकारी	योग	प्रतिशत
पूर्ण जानकारी	225	75.00
थोड़ी बहुत जानकारी	42	14.00
कोई जानकारी नहीं	33	11.00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-07 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 75.00 प्रतिशत महिला

लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना की जानकारी है जबकि 14.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना की थोड़ी बहुत या नहीं के बराबर जानकारी पाई गई है एवं 11 प्रतिशत महिलाओं में जननी सुरक्षा योजना के नाम से नहीं जानती है बल्कि आर्थिक लाभ एवं संस्थागत प्रसव के लिए जानती हैं। इसीलिए अभी और स्वास्थ्य कार्यकर्त्रियों को ग्रामीण क्षेत्र की सभी महिलाओं को योजना के नाम से बताने की आवश्यकता है और यह महिलाओं की जागरूकता को बढ़ाने में मदद की जा सकती है।

सारिणी संख्या 07.01

यदि हाँ, तो जननी सुरक्षा योजना की जानकारी कहाँ से प्राप्त होती है

जननी सुरक्षा योजना सम्बन्धी जानकारी	योग	प्रतिशत
आशा कार्यकर्त्री द्वारा	188	62.66
आंगनवाड़ी कार्यकर्त्री द्वारा	46	15.33
पड़ोसियों द्वारा	05	1.66
ए.एन.एम. द्वारा	61	20.33
कुल	300	100

सारिणी संख्या- 07.01 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि चयनित लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना से सम्बन्धित जानकारी आशा कार्यकर्त्रियों के द्वारा प्राप्त हुई है जबकि 20-33 प्रतिशत ए.एन.एम. द्वारा जननी सुरक्षा योजना की जानकारी प्राप्त हुई है एवं 15.33 प्रतिशत आंगनवाड़ी कार्यकर्त्रियों के द्वारा महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना की जानकारी प्राप्त हुई है। इसी क्रम में सबसे कम 1.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों को पड़ोसियों द्वारा जननी सुरक्षा योजना की जानकारी प्राप्त हुई है। अतः कहा जा सकता है किसी भी योजना को जब तक सफल नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसका प्रचार एवं प्रसार नहीं किया जाये और जब तक वह योजना आम जनता तक नहीं पहुँचाया जा सके। किसी भी योजना की जानकारी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है जितना की उस योजना की जानकारी प्राप्त करने वाले स्रोत होते हैं इसीलिए शोधार्थी द्वारा महिला लाभार्थियों से योजना की जानकारी प्राप्त करने वाले स्रोतों की जानकारी की सारणी को स्पष्ट किया गया है। अतः अधिकांश महिला लाभार्थियों को स्वास्थ्य कार्यकर्त्रियों के द्वारा जननी सुरक्षा योजना की जानकारी प्राप्त हुई है।

सारिणी संख्या 08

महिला लाभार्थियों में गर्भावस्था के दौरान नियमित जाँच की जानकारी

गर्भावस्था के दौरान नियमित जाँच की स्थिति	योग	प्रतिशत
हाँ	253	84.33
नहीं	47	15.66
कुल	300	100

सारिणी संख्या- 08 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 84.33 प्रतिशत महिला लाभार्थियों ने अपनी गर्भावस्था के समय नियमित रूप से जाँच कराई है जबकि 15.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों ने अपनी गर्भावस्था के समय नियमित जाँच नहीं करवायी है।

सारिणी संख्या 08.02

यदि नहीं, तो क्या कारण

कारण	योग	प्रतिशत
पारिवारिक समस्या	21	44.00
संसाधनों की कमी	5	10.63
परिवारिक सदस्यों की रूचि में कमी	17	36.17
अव्यवस्था	4	8.51
कुल	47	100

सारिणी संख्या- 08.01 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश 44.00 प्रतिशत ऐसी महिला लाभार्थी हैं जिनकी पारिवारिक समस्या के कारण गर्भावस्था के दौरान नियमित जाँच नहीं हो पाई है जबकि 36.17 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की परिवार के सदस्यों की रूचि में कमी के कारण गर्भावस्था के दौरान नियमित जाँच नहीं हुई है एवं 10.63 प्रतिशत महिला लाभार्थियों की गर्भावस्था के दौरान नियमित जाँच छूटने का कारण संसाधनों की कमी रही है। इसी क्रम में सबसे कम महिला लाभार्थियों की नियमित जाँच न होने का कारण अव्यवस्था है।

अतः निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि निम्न कारणों की वजह से महिला लाभार्थियों की गर्भावस्था के दौरान नियमित जाँच नहीं हो पाई है। महिला लाभार्थियों के पास संसाधनों की कमी, पारिवारिक समस्या, परिवार के सदस्यों में रूचि की कमी एवं अव्यवस्था का होना पाया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि महिला लाभार्थियों के परिवार के लोगों के द्वारा भी जाँच नहीं कराई जाती है कुछ महिलाओं का तो ऐसा कहना है कि उनके परिवार वाले बोलते हैं कि कुछ नहीं होगा, जाँच कराने से, पिछली पीढ़ी के लोग ये सब कहा करते थे और कुछ महिलाओं को घर से बाहर जाने के लिए मना किया जाता है। अधिकांश यह सब कारण उन्हीं परिवारों में देखने को मिले हैं जहाँ के व्यक्तियों में आज भी पुराने जमाने की कुरीतियों जैसे ख्यालात देखने को मिलते हैं अतः में यह कहा जा सकता है कि जननी सुरक्षा योजना में अभी भी पूर्ण रूप से समाज में जागरूकता नहीं देखने को मिली है। इसीलिए इस योजना में अभी और कार्य करने की आवश्यकता है।

सारिणी संख्या 09

उत्तरदाताओं को जननी सुरक्षा योजना का लाभ कितने बच्चों पर प्राप्त होने सम्बन्धित जानकारी

कितने बच्चों पर लाभ प्राप्त होने की स्थिति	योग	प्रतिशत
एक बच्चे पर	163	54.33
दो बच्चों पर	137	45.66
कुल	300	100

सारिणी संख्या- 09 का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 54.33 प्रतिशत महिला लाभार्थियों को एक बच्चे पर जननी सुरक्षा योजना का लाभ प्राप्त हुआ है एवं 45.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों को दो बच्चों पर जननी सुरक्षा योजना का लाभ प्राप्त हुआ है। अतः इस सारिणी का विश्लेषण के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि अधिकांश महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना का लाभ एक बच्चे पर प्राप्त हुआ है।

सारिणी संख्या 10

उत्तरदाताओं को जननी सुरक्षा योजना के द्वारा कितनी धनराशि प्राप्त करने सम्बन्धित जानकारी

जननी सुरक्षा योजना के द्वारा कितनी धनराशि प्राप्त करने की स्थिति	योग	प्रतिशत
1000 रुपये	00.00	00.00
1400 रुपये	279	93.00
कुछ नहीं	21	7.00
कुल	300	100

सारिणी संख्या- 10 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश 93.00 प्रतिशत महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना के द्वारा 1400 रुपये की धनराशि प्राप्त हुई है एवं 7.00 प्रतिशत ऐसी महिला लाभार्थी है जिनका जननी सुरक्षा योजना के द्वारा धनराशि प्राप्त नहीं हुई है अतः अधिकांश महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना के द्वारा लाभ प्राप्त हुआ है। जिनका अधिकांश योग 279 दर्शाया गया है।

सारिणी संख्या 11

जननी सुरक्षा योजना द्वारा संस्थागत प्रसव में प्रोत्साहन सम्बन्धित जानकारी

योजना द्वारा संस्थागत प्रसव में प्रोत्साहन की स्थिति	योग	प्रतिशत
हाँ	240	80.00
नहीं	00.00	00.00
पता नहीं	60	20.00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-11 का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 80 प्रतिशत महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना के द्वारा संस्थागत प्रसव को प्रोत्साहन मिलने में हाँ की जानकारी दी गई है जबकि 20 प्रतिशत ऐसी महिला लाभार्थी है जिनको इसकी कोई जानकारी नहीं है।

सारिणी संख्या 12

जननी सुरक्षा योजना से मातृ-मृत्यु दर में कमी सम्बन्धित जानकारी

योजना से मातृ-मृत्यु दर में कमी की स्थिति	योग	प्रतिशत
हाँ	291	97.00
नहीं	00.00	00.00
पता नहीं	09	3.00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-12 का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 97 प्रतिशत ऐसी महिला लाभार्थी है जिन्होंने जननी सुरक्षा योजना से मातृ-मृत्यु दर में कमी का हाँ में उत्तर दिया है एवं 3 प्रतिशत ऐसी महिला लाभार्थी हैं जिनको कोई यह पता नहीं है कि जननी सुरक्षा योजना से मातृ-मृत्यु दर में कमी आयी है या नहीं। अतः अधिकांश महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना से मातृ-मृत्यु दर में आने वाली कमी की जानकारी

है परन्तु कुछ महिला लाभार्थियों को जननी सुरक्षा योजना से मातृ-मृत्यु दर से आने वाली कमी की कोई जानकारी नहीं है।

सारिणी संख्या 13

जननी सुरक्षा योजना को आगे क्रियान्वित किये जाने सम्बन्धित जानकारी

योजना को आगे क्रियान्वित किये जाने की स्थिति	योग	प्रतिशत
हाँ	300	100
नहीं	00.00	00.00
पता नहीं	00.00	00.00
कुल	300	100

सारिणी संख्या-13 का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि 100 प्रतिशत महिला लाभार्थियों का मानना है कि जननी सुरक्षा योजना को आगे क्रियान्वित किया जाना चाहिए, जिससे की गरीब परिवारों की सभी गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं एवं सुरक्षित प्रसव के द्वारा उनको आर्थिक सहायता के रूप में लाभ प्राप्त हो सके। जिससे महिला एवं उसके नवजात शिशु का पालन-पोषण भलि-भाँति व सुचारू रूप से हो सके।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि जननी सुरक्षा योजना में महिला लाभार्थियों की आयु, शैक्षिक स्थिति, धर्म, जागरूकता पंजीकरण क्रियान्वयन आदि का अध्ययन किया गया है। इसमें अधिकांश उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता अधिक है। जननी सुरक्षा योजना का लाभ प्राप्त करने वाली अधिक महिला लाभार्थी हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म से हैं। इस योजना को सफल बनाने के लिए सरकार द्वारा आशा कार्यकर्त्रियों को समय-समय पर प्रशिक्षित किया जाता है। महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना के बारे में सर्वाधिक 75.00 प्रतिशत पूर्ण जानकारी है, जबकि 14 प्रतिशत महिला लाभार्थियों में जननी सुरक्षा योजना की आंशिक जानकारी है। गर्भावस्था के समय 84.33 प्रतिशत महिला लाभार्थियों ने अपनी गर्भावस्था के समय नियमित रूप से जाँच कराई गई है। एवं 15.66 प्रतिशत महिला लाभार्थियों ने अपनी गर्भावस्था के समय नियमित जाँच नहीं करवायी है, जिनका कारण संसाधनों की कमी, परिवारिक समस्या, परिवार के सदस्यों में रूचि की कमी एवं अव्यवस्था का होना पाया गया है। अतः आशा कार्यकर्त्रियों के द्वारा गर्भवती महिलाओं को जननी सुरक्षा योजना का लाभ पहुँचाने एवं संस्थागत प्रसव के लिए भी प्रेरित किया जाता है, जिससे कि मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को रोका जा सके। आशा कार्यकर्त्रियों के द्वारा गर्भवती एवं सभी धात्री महिलाओं को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी दी जाती है जिसके द्वारा प्रत्येक महिला स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकारों से जागरूक हो सके व लाभ उठा सके। महिला लाभार्थियों को अनेक प्रकार की पारिवारिक एवं आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे खान-पान, प्रसव, पोषण, माँ एवं शिशु स्वास्थ्य आदि अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अध्ययन के दौरान अधिकांश महिला लाभार्थियों ने जननी सुरक्षा योजना को आगे क्रियान्वित करने को कहा है। अध्ययन में मुख्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि जननी सुरक्षा को सफल बनाने के लिए महिला लाभार्थियों को पूर्ण रूप से जागरूक करने की आवश्यकता है। महिला लाभार्थी जननी सुरक्षा योजना को नाम से नहीं जानती है। वह उससे प्राप्त होने वाले लाभ से अधिक जानती है। इसीलिए आशा एवं सभी स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को आगे अभी ओर कार्य करने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के द्वारा ही जननी सुरक्षा योजना को जमीनी स्तर एवं

स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ पहुँचाया जाता है।

Works Cited:

1. Kumari, R., & Shipra, K. (2020). Role of ASHA to aware about antenatal care and post natal care services are utilized by women beneficiaries registered in JSY (Janani Suraksha yojana) in Samastipur district in Bihar. *Journal of Pharmacognosy and Phytochemistry*, 9(3S), 36-38. https://scholar.google.com/scholar?cites=16070599279325826728&as_sdt=2005&sciodt=0,5&hl=en
2. Verma, S. A., Pandey, E., Ramanathan, A., & Saluja, N. (2015). Impact of Janani Suraksha Yojana (JSY): A study across two Delhi hospitals
3. Borman, A. J. The Role of ASHA Workers in Women's Health Protection: A Case Study of Mandakata Gaon Panchayat in Assam.
4. Sharma, P., Semwal, J., & Kishore, S. (2011). A comparative study of utilization of Janani Suraksha Yojana (maternity benefit scheme) in rural areas and urban slums. *Indian journal of community Health*, 23(1), 11-14. https://scholar.google.com/scholar?cites=6804187809720064182&as_sdt=2005&sciodt=0,5&hl=en
5. Sharma, P., Semwal, J., & Kishore, S. (2011). A comparative study of utilization of Janani Suraksha Yojana (maternity benefit scheme) in rural areas and urban slums. *Indian journal of community Health*, 23(1), 11-14
6. Gupta, S. K., Pal, D. K., Tiwari, R., Garg, R., Shrivastava, A. K., Sarawagi, R., ... & Lahariya, C. (2012). Impact of Janani Suraksha Yojana on institutional delivery rate and maternal morbidity and mortality: an observational study in India. *Journal of health, population, and nutrition*, 30(4), 464.
7. Mane Abhay, B., & Khandekar Sanjay, V. (2014). Strengthening primary health care through Asha Workers: a novel approach in India. *Primary Health Care*, 4(149), 2167-1079.
8. Vikas Kumar, V. K., Misra, S. K., Kaushal, S. K., Gupta, S. C., & Khan, A. M. (2015). A study on the effect of Janani Suraksha Yojana on antenatal registration and institutional deliveries in the Agra district of Uttar Pradesh.
9. Mukherjee, S., & Singh, A. (2018). Has the Janani Suraksha Yojana (a conditional maternity benefit transfer scheme) succeeded in reducing the economic burden of maternity in rural India? Evidence from the Varanasi district of Uttar Pradesh. *Journal of public health research*, 7(1), jphr-2018.
10. Abrar, D. (2019). Janani Suraksha Yojana: An Evaluation of Its Effectiveness in the Selected Districts of Uttar Pradesh. *Think India Journal*, 22(4), 2546-2555.
11. आहूजा राम, (2008) सामाजिक अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन, आई0एस0बी0एन0 978-81-7033-750-8 नई दिल्ली।
12. सिंह ए. एन., (2007) सामाजिक अनुसंधान, रैपिड बुक सर्विस, लखनऊ।
13. पुष्पांजलि, (2018) भारतीय महिलाओं की स्वास्थ्य स्थिति, Indian J. Soc. & Pol. 05(I):2018:115-116 Specical Issues, Ugc List No.47956.
14. आर्यन सुमन (2017), ग्रामीण महिलाओं के विकास में जननी सुरक्षा योजना की भूमिका, समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी-221002.



उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन एवं उसका प्रभाव

- अजीत कुमार सरोज¹
- डॉ. चंद्रैया गोपानी²

संक्षिप्ति :

भारत में दलित लंबे अरसे से हसीए पर रहे हैं, और उससे मुक्ति के लिए निरंतर संघर्ष करते रहे हैं। दलित आंदोलन का प्रारंभिक चरण समाज में छुआछूत, मांस मंदिरा, साफ-सफाई, शिक्षा आदि अधिकार दिलाने में अपना ध्यान केन्द्रित किया था। दूसरे चरण में देखा जाए तो भेदभाव के साथ-साथ राजनीतिक अधिकार को प्राप्त करने पर भी ध्यान आकृष्ट किया जिसमें आंबेडकर जी का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। लेकिन आज भी दलितों के समाज सुधारकों द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में संघर्ष जारी है। आज भी शोषण में बहुत सुधार नहीं हुआ है, बल्कि शोषण के तरीकों में बदलाव हुआ है। उत्तर प्रदेश के दलित आन्दोलन में डॉ. आंबेडकर, स्वामी अछूतानन्द, भदंत बोधानन्द का गहरा प्रभाव पड़ा है। उसके बाद मान्यवर कांशीराम जी ने उत्तर प्रदेश की दिशा एवं दसा बदल दी। 1970 से 1980 के दशक में बहुजन समाज पार्टी (BSP) के उदय से बहुजनों को संगठित होने का अवसर मिला। बसपा के शासनकाल में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों के साथ-साथ राजनीतिक सशक्तिकरण में भी परिवर्तन आया।

बीज शब्द : शोषण, दलित, अछूत, आन्दोलन, उत्तरप्रदेश।

उत्तर प्रदेश भारत देश का सर्वाधिक जनसंख्या और सर्वाधिक जिलों वाला प्रदेश है। यह कई मामलों में अहम् स्थान रखता है। उत्तर प्रदेश की स्थापना 24 जनवरी 1950 को हुआ था, इसके पहले 1 अप्रैल 1937 को ब्रिटिश शासन के दौरान इसे संयुक्त प्रांत आगरा और अवध के रूप में स्थापित किया गया था। ब्रिटिश शासनकाल में इसे यूनाइटेड प्रॉविंस कहा जाता था, जो कि 24 जनवरी 1950 में बदलकर उत्तर प्रदेश किया

-
1. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान प्रयागराज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)।
 2. शोध निर्देशक, राजनीति विज्ञान विभाग गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान प्रयागराज (इलाहाबाद विश्वविद्यालय)। प्रयागराज उत्तर प्रदेश

गया। उत्तर प्रदेश भारतीय संघ के उन राज्यों में से एक है जहां अनुसूचित जाति की आबादी 20 प्रतिशत से अधिक है। राजनीतिक दृष्टि से भी उत्तर प्रदेश महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आन्दोलन की दृष्टि से देखा जाये तो भी प्रमुख स्थान रखता है। 1857 की क्रांति जिसे भारत में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम अथवा सिपाही विद्रोह के रूप में भी जाना जाता है और यह उत्तर प्रदेश के मेरठ छावनी से ही प्रारम्भ हुआ था। जैसा की पॉल आर ब्रास का तर्क है कि “20वीं सदी की भारतीय राजनीति में कई विकासों की जड़ें उन्नीसवीं सदी के कलकत्ता या बंबई में नहीं, बल्कि उन्नीसवीं सदी के बनारस, इलाहाबाद और अलीगढ़ में हैं। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का जड़ इतना मजबूती से हावी है कि सदियों से आज भी अपना जड़ जमाये बैठी है। आज भी दलित को मुख्यधारा में आने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ रहा है। वर्तमान परिदृश्य में देखा जाये तो शोषण कम नहीं हुआ परन्तु शोषण की प्रकृति एवं आन्दोलन की प्रकृति दोनों में ही परिवर्तन हुआ है।”¹

दलित आंदोलन

उत्तर भारत में दलित मुक्ति आंदोलन का प्रारंभ 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में स्वामी अछूतानन्द (1879-1933) के आविर्भाव के साथ माना जा सकता है, पंजाब में बसंत पाई, ठक्कर चन्द्र, स्वामी शूद्रानंद एवं मंगूराम आदि थे।²

स्वामी अछूतानन्द

स्वामी अछूतानन्द जी का जन्म 1879 ई. में ग्राम उमरी, पोस्ट सिरसागंज, जिला मैनपुरी में हुआ था। लेकिन पिता मोतीराम और माता रामप्यारी ने सवर्णों के शोषण और अत्याचार के भय से उमरी ग्राम को छोड़कर जिला फरुखाबाद चले गए। प्रारंभ से ही अछूतानंद जी साधु, महात्माओं के सत्संग में रुचि रखते थे, इसीलिए अछूतानंद जी को ‘108 स्वामी सच्चिदानंद ने हीरालाल को आर्य समाज में दीक्षित कर लिया, और हीरालाल के स्थान पर उनका नाम हरिहरानंद रख दिया। स्वामी जी अब सन्यासी रूप में हो गए थे। उसी समय आर्य समाजियों ने एक स्कूल खोल रखा था, जिसमें सभी जातियों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। एक दिन तब स्तब्ध रह गए जब देखा की स्कूल में सवर्ण बच्चों को टाटपट्टी पर बैठाया जाता था जबकि अछूत बच्चों को जमीन पर ही बैठाया जाता था, स्वामी जी को बड़ी निराशा हुई। उसके बाद अछूतानंद जी ने आदि हिन्दू आन्दोलन, चलाया आदि हिन्दू का अर्थ मूल निवासी है। स्वामी जी अछूत बच्चों के लिए एक अलग विद्यालय की स्थापना की।³ उन्होंने शिक्षा को मुद्दा बनाकर अछूतों को जगाने और सम्मानित जीवन जीने का मार्ग दिखाने का निश्चय किया। अजमेर, ग्वालियर, अमरावती, मुंबई, नागपुर, लाहौर, उज्जैन, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद आदि शहरों में भ्रमण किया। विभिन्न सभा-सम्मेलन आयोजित किया, आदि हिन्दू आंदोलन के माध्यम से देश के बड़े बड़े नगरों में आदि हिन्दू विद्यालय और आदि हिन्दू पुस्तकालय की स्थापना किये, उनमें कुछ तो आज भी उसी नाम से चल रहे हैं। 1917 ई. में दिल्ली में स्वामी अछूतानन्द ने अखिल भारतीय अछूत सम्मेलन विशाल सम्मेलन आयोजित किया और पुराना नाम हरिहरानन्द से बदलकर अछूतानंद रखने का प्रस्ताव पारित किया।

आर्य समाज के दिग्गज विद्वान माने जाने वाले स्वामी अखिलानंद को धार्मिक बहस में पराजित किया, जिसके कारण विजेता रूप में स्वामी अछूतानंद को श्री 108 की उपाधि से सम्मानित किया गया।

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना दयानंद सरस्वती ने 1875 में भारत में आर्य गौरव को पुनर्जीवित करने के लिए की थी। संयुक्त प्रांत में, आर्य समाज ने शिक्षा, सुधार, आध्यात्मिक स्थान और हिंदू पहचान प्रदान करके दलितों को संगठित करने का प्रयास किया था।

दलित समाज सुधारकों ने पारम्परिक रूप से दलित जातियों को उनके व्यवसाय, जाति, धर्म आदि से शोषण खत्म करने के लिए अनुसूचित जाति महासंघ, दलित महासभाएँ या संघ, चमार महासभा, जाटव महासभा, अखिल भारतीय रजाक धोबी महासभा एसोसिएशन, वाल्मीकि अछूत मंडल (सभा) एसोसिएशन, कोली (कोरी) महासभा, पासी महासभा आदि महासभा संगठन बनाकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोगो को शिक्षित करने, संगठित करने और जागरूक करने का प्रयास किया।

अछूतों के सम्मान के मेमोरेण्डम

1919 में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड एक्ट बना था। उस समय स्वामी अछूतानंद ने लंदन में एक्ट बनने के पहले ही अछूतों के संबंध में एक मेमोरेण्डम प्रस्तुत किया था, जिसमें अछूतों के लिए पृथक शिक्षा, पृथक निर्वाचन और नौकरियों में आरक्षण की मांग की थी।⁴ प्रिंस ऑफ वेल्स और साउथबरो कमेटी के सामने अछूतों के सत्रह सूत्रीय मांग पत्र प्रस्तुत किया।

उस समय अछूतानंद और डॉ. आम्बेडकर जी शामिल थे। आम्बेडकर के व्याख्यान से प्रभावित होकर अछूतानंद ने आम्बेडकर को अछूतों में सम्मान जगाने वाला और उन्हें अधिकार संपन्न कराने वाला मसीहा के रूप में देखा। उसके बाद दोनों महापुरुषों में निरंतर घनिष्ठता बढ़ती गई और दोनों के सहयोग से दलित समाज में सम्मान और शिक्षा की चाहत बढ़ने लगी।

अछूतानंद जी 1924-25 में दलित आंदोलन का कार्यालय कानपुर में स्थापित कर आन्दोलन का केन्द्र बनाया, इससे पहले स्वामी अछूतानंद जी घूम-घूम कर ही प्रचार प्रसार करते थे। कानपुर में दलितों की संख्या अधिक थी और दलितों ने स्वामी जी के विचारों से बहुत प्रभावित हुए और उनके मार्गदर्शन से अपने बच्चों को पढ़ाना लिखाना शुरू किया।

स्वामी अछूतानंद के आदि हिन्दू आंदोलन के मुख्य सिद्धांत इस प्रकार थे -

- आदि हिंदू आंदोलन अछूतों तथा पिछड़े वर्गों का है।
- इसमें दलित और पिछड़ों की भागीदारी है।
- सहभोज का प्रचार।
- निर्गुण संत परम्परा में आस्था।
- राष्ट्रीय एकता और समान अवसर।
- अछूत व पिछड़े भारत के मूल निवासी हैं।
- प्रगति के लिए सतत संघर्ष आवश्यक।
- अपनी मौलिक संस्कृति का पालन और स्वीकृति।
- विषमता के विरुद्ध क्रांति।
- सत्त्व ही देवत्व का साधन।
- स्वयं के प्रयास से ही प्रकाश मिलेगा।

अछूतानंद जी ने ऐतिहासिक घोषणा करते हुए कहा कि 'हम न तो मुसलमान हैं न तो ईसाई ही हम तो हिंदुस्तान के आदि निवासी हैं अतः हम सब आदि हिंदू हैं।'

हिंदी दलित पत्रकारिता उस समय अछूतों की समस्याओं को उठाने के लिए "अछूत" नाम से बाद में 'आदि हिंदू' पत्र चलाया। इस प्रकार वे उत्तर भारत में दलित पत्रकारिता के सूत्रधार बने क्योंकि अपने विचार को लोगों तक पहुंचाने का एक अच्छा माध्यम बनाया।

धार्मिक सुधार के लिए 1929 में प्रयागराज में कुंभ मेला का आयोजन किया गया था। उस मेले में गुरु रविदास मन्दिर की स्थापना की गई। स्वामी जी का कहना था कि प्रयाग का मेला बौद्ध शासक हर्ष ने शुरू किया था। गंगा में स्नान से पवित्रता और पाप की कोई गारंटी नहीं है। चंदन, तिलक आदि लगाना धर्म नहीं बल्कि शरीर की सजावट है और मनुष्य समाज में भेद पैदा करने वाला है।⁵

सम्मान आन्दोलन को इलाहाबाद में इस आन्दोलन को धार देने वालों में महाशय भिखूलाल कुरील, नन्दलाल, महावीर प्रसाद, श्री श्यामलाल बरेठा आदि थे। महाशय भिखूलाल कुरील आर्य समाजी होने के कारण महाशय कहे जाते थे उन्होंने समाज में व्याप्त अंधविश्वासों एवं आडम्बरों के विरुद्ध घर से ही आंदोलन प्रारंभ किया।

साइमन कमीशन

1927 में अछूतों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन गठित किया। साइमन कमीशन 29-30 सितंबर 1928 को लखनऊ में आया। स्वामी अछूतानंद, राय साहब रामसहाय पासी आदि के तीन सप्ताह के कठिन परिश्रम से साइमन कमीशन का चारबाग में भव्य स्वागत हुआ। कांग्रेसी लोगों ने 'साइमन कमीशन का पुरजोर विरोध किया। साइमन कमीशन से स्वामी अछूतानंद के सहयोगियों द्वारा बताया गया कि इसी तरह के अत्याचार सवर्ण लोग अछूतों पर करते रहते हैं।

भदन्त बोधानन्द

बोधानन्द जी जन्म से ब्राह्मण थे लेकिन हिंदू धर्म में व्याप्त ब्राह्मणवादी अंधविश्वासों कुरीतियों और पोंगापंथी ढकोसलों से बहुत दुखी थे इसी लिए हिंदू धर्म को तिलांजलि देकर बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। बौद्ध भिक्षु बनकर विहार तथा पुस्तकालय की स्थापना की। दलितों-पिछड़ों को संगठित कर सामाजिक परिवर्तन करने के लिए नव जातियों के लोगो का 'नवरत्न कमेटी' नामक सामाजिक संस्था बनाई जो इस प्रकार हैं।

भदन्त बोधानन्द, 108 स्वामी अछूतानन्द, राय साहब राम सहाय पासी, राय साहब रामचरन मल्लाह, एडवोकेट शिवदयाल सिंह चौरसिया, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, महादेव प्रसाद धानुक, वैद्यरत्न बदलू राम रसिक, एडवोकेट गौरी शंकर पाल जैसे लोग सम्मिलित थे।

इनके अलावा सर्वश्री राम चरन भुर्जी, कुदरू तुल्लाह धुनिया, छंगालाल बहेलिया, राय साहब श्याम लाल बरेठा, गया प्रसाद कुरील इस सामाजिक परिवर्तन आन्दोलन में भदन्त बोधानन्द के सहयोगी थे, जो विभिन्न जातियों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे। उस युग में यह कार्य निःसन्देह एक कठिन कार्य था।

त्रिजली आन्दोलन

त्रिजली आंदोलन में लोगों को भक्त (शिष्य) बनाया जाता था। लोगों को प्राण-हिंसा न करना, चोरी ना करना, व्यभिचार न करना, मादक पदार्थों के सेवन से दूर रहना आदि की शिक्षा दी जाती थी।⁶

इलाहाबाद में दलित आन्दोलन

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में सामिल उत्तर भारत के प्रमुख व्यक्तित्व में महाशय मसुरियादीन पासी का नाम अग्रणी रहा है। महाशय मसुरियादीन का जन्म 2 अक्टूबर 1911 जौधवल मुहल्ले में हुआ था। छोटी उम्र में ही पढाई पूरा किये बिना ही गांधी जी के आन्दोलन से प्रभावित होकर आन्दोलन में कूद गए और खुद को देश के नाम समर्पित कर दिया।

इलाहाबाद में दलित छात्रों के साथ इस कदर भेदभाव हो रहा था, कि उनको कमरा भी किराये पर नहीं

मिल रहा था। महाशय जी द्वारा चौदह शिक्षण संस्थानों की स्थापना एवं प्रयागराज (इलाहाबाद) में दलित छात्रों के लिए डी.सी. लॉज बनवाना गया। गाँवों के गरीब तथा पिछड़े बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए गाँव में विद्यालय की स्थापना की उस गाँव के प्रत्येक घर में मिट्टी के एक-एक घड़े वितरित कर दिए, गाँव की महिलाएँ प्रतिदिन उस घड़े में एक मुट्ठी आटा डाल देती थीं, महीने भर में एकत्र आटे की बिक्री कर दी जाती थी, और जो धन प्राप्त होता था उससे शिक्षकों को वेतन दिया जाता था एवं निर्धन बच्चों को कॉपी, पेंसिल आदि निःशुल्क दी जाती थी।

अपराधिक जनजाति अधिनियम जरायम पेसा कानून उत्तर भारत में 1871 में लागू किया गया था। महाशय मसुरियादीन पासी इसी समुदाय से संबंध रखते थे और बचपन से ही उन्होंने इस समाज को इस दंस से प्रताड़ित होते हुए देखा था। उसके खिलाफ इलाहाबाद सहित उत्तर प्रदेश के कई जिलों में आंदोलन किया और उसे खत्म करने के लिया निरंतर संघर्ष करते रहे। अगस्त 1952 को यह एक्ट समाप्त किया गया।⁷

मिश्रिख में दलित आंदोलन

मिश्रिख के मेले में प्रतिवर्ष देश-विदेश के भिन्न-भिन्न भागों से और विभिन्न संप्रदाय के लोग आते हैं, और पंडाल लगाकर अपने-अपने धर्म का प्रचार करते हैं। फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन विशेष स्नान होता है और साधु-संत, सन्यासी पालकी पर सवार होकर जुलूस बनाकर दधीच कुंड तक जाते हैं, और वहां स्नान करते हैं। अछूत जाति के साधु संतों को यह अधिकार सम्मान प्राप्त नहीं था। 1957 को लखनऊ में पालकी सम्मान संघर्ष जो की दया निधान पार्क में संपन्न हुआ। इस बौद्ध सम्मलेन में विभिन्न जिलों से लोग और कबीरपंथी साधु संत भी अधिक उपस्थित हुए। इस सम्मेलन में निर्णय लिया गया की अब से दलितों की भी पालकी निकाली जायेगी। पान्चादास जी को प्रमुख बनाया गया। क्योंकि गरीबों के लिए पहले से बहुत कुछ कार्य कर रहे थे जैसे महर्षि रविदास आश्रम, मंदिर तथा स्कूल बनवाया था।

मिश्रिख का दूसरा सम्मान संघर्ष

पालकी सम्मान संघर्ष आंदोलन के दो-तीन साल के बाद ही मिश्रिख के मेले में अछूतों को दूसरा संघर्ष झेलना पड़ा। हुआ यह कि रविदास पालकी जुलूस में कुछ लोग हाथी पर बैठ कर आने लगे। हिंदू साधु संन्यासियों ने यह कहकर इसका विरोध किया कि हाथी हमारे गणेश देवता हैं इस पर अछूत नहीं बैठ सकते हैं, यही नहीं अखाड़े के लोगों ने त्रिशूल और भाला से हमला बोल दिया। लेकिन पुलिस और प्रशासन के हस्तक्षेप से मामला शांत हुआ। प्रशासन ने यह निर्णय लिया कि हाथी को भड़काने का डर है इसमें जन-धन की बहुत हानि हो सकती है। उसके बाद मेले में हाथी लाने पर प्रतिबन्ध लग गया।

खीरी लखीमपुर में सामाजिक एवं शैक्षिक सुधारक माखनलाल आदिम और आर.पी. आदिम ये लोग प्रायः खीरी जिले के गोला नामक कस्बा में रविदास जयंती मनाने के साथ ही एक रविदास मंदिर तथा धर्मशाला का भी निर्माण किया था। जिसे बाद में अछूत विद्यार्थियों के रहने के लिए छात्रावास बना दिया। यहाँ पर सामाजिक कार्यक्रम होते रहते थे। इसी रविदास मंदिर धर्मशाला में कबीरपंथी साधु वेश में भते सुमंगल रहते थे और घूम-घूम कर दलित समाज में शिक्षा और सफाई के प्रति लोगों को जगरूक करते थे।

गोरखपुर में बौद्ध भिक्षुओं ने दलित समाज के लोगों को जाति-पात, छुआछूत और अन्धविश्वास से छुटकारा पाने का अभियान चलाया। आगे इस सम्मान आंदोलन को ऊँचाइयों तक भदन्त चंद्रमणि व महास्तवीर ने बढ़ाया। उनका जन्म वर्मा आधुनिक म्यांमार में एक बौद्ध परिवार में हुआ था इसलिए जाति-पात और अंधविश्वास से भी जनमत दूर थे। लेकिन आने के बाद महावीर स्वामी द्वारा प्रारंभ की गई एक बौद्ध धर्मशाला का निर्माण कार्य

पूरा करवाया। कुशीनगर (कसिया)के आस-पास लगभग (1902-03)के लोगों को पानी पीने की बहुत कठिनाई थी तब उन्होंने एक पक्का कुआं भी बनवाया। इसके बाद कुशीनगर के आस-पास के लोगों की शिक्षा दीक्षा के लिए चन्दा जुटाकर निःशुल्क पाठशाला 'महावीर जूनियर हाई स्कूल' और बुद्ध डिग्री कॉलेज' की स्थापना की। लोगों को बौद्ध धर्म की ओर प्रेरित किया। अंततः डॉ. अंबेडकर को नागपुर में दीक्षा प्रदान कर दलित समाज में जागृत की हलचल मचा दी।

वाराणसी में हिंदुत्व का बोलबाला रहता है। रामास्वामी पेरियार भी बनारस में आने के बाद ही हिन्दू के शोषण का सिकार हुए थे। पेरियार जी के पास पैसा ना होने के कारण एक हिन्दू भंडारा में सामिल हुए लेकिन जनेऊ ना पहनने के कारण भंडारा से बाहर भेक दिया गया था। अंततः उन्हें जमीन पर फेका हुआ खाना खाना पड़ा था।⁸

1980 ई. में बनारस में एक बार फिर अछूतपन का याद कराया, जब संपूर्णानंद जी की मूर्ति का अनावरण जगजीवन राम जी से करवाया गया। जगजीवन राम चमार जाति के होने के कारण पंडित पुजारी और तथाकथित पंडितों ने इसका घोर विरोध किया और मूर्ति को शुद्ध करने के लिए गंगाजल, पंचगव्य गाय का गोबर, गाय का पेशाब, गाय का दूध, दही और घी से उस पत्थर की मूर्ति को धोकर पवित्र किया गया।

फैजाबाद के दलित आन्दोलन

फैजाबाद हनुमान कुंड के मोहल्ले में स्थित है। इसी मोहल्ले में रहने वाले आयुष्मान राम सफल नामक व्यक्ति चतुर्भुजी मंदिर के फाटक के अंदर बैठे संत समाज में एक अछूत व्यक्ति को अपमानित होते देखा कि, संत समाज में एक अछूत व्यक्ति भी पहुंच गया और सत्संग सुनने लगा, उसे देखकर एक साधु (ब्राह्मण) ने उसकी जाति पूछी उसने साफ-साफ बता दिया कि मैं चमार हूं इतने में वह साधु ब्राह्मण फटकारते हुए बाहर निकाल दिया। तभी से आयुष्मान राम ने मन में निश्चय किया कि मैं अपने लोगों के लिए एक मंदिर का निर्माण कराऊंगा। 1918 में मंदिर का शिलान्यास कराया। उसके बाद वहां पर विभिन्न जातियों के जाति के नाम पर मंदिर बनया गया। जैसे रविदास मंदिर 1960, पासी मोहल्ला केनगंज पासी मंदिर, कोरी मंदिरकोरी, धीवान मंदिर, धोबी वंश पंचायती मंदिर आदि मंदिर बनवाया गया।

आगरा में करण सिंह केन का जन्म 1898 में हुआ था। 1935 के इंडिया एक्ट के तहत 1937 के जनरल इलेक्शन हुए जिसमें आगरा से कांग्रेस पार्टी के श्री करण सिंह केन एम.एल.ए निर्वाचित हुए। करण सिंह को शिक्षा मंत्री का पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी बनाया गया। करण सिंह केन उत्तर प्रदेश, उस समय (यूनाइटेड प्राविंसेज आगरा एंड अवध) था शिक्षा समिति के अध्यक्ष बने उन्होंने यूपी में 150 स्कूल स्थापित किए जिनमें से तीन आगरा में थे उनके नाम इस तरह से है-

1. राम सिंह कन्या विद्यालय नगला बलवंत सिंह।
2. दूसरा श्री राम प्रसाद कन्या विद्यालय पथवारी छत्ता वार्ड।
3. बैध रतन लाल कन्या विद्यालय, पृथ्वीनाथ रोड।

वर्तमान में विधालय समाज कल्याण विभाग की देखभाल में चल रहे हैं। वे शिक्षा को आंदोलन का केंद्र बनाया जिसके चलते उन्होंने विभिन्न प्रकार के शिक्षण संस्थाओं का निर्माण कराया।

सेठ सांवल दास और सायल दास

कानपूर में जन्मे सेठ सांवलदास सेठिया का काम करते थे, उनके विषय में यह कहा जाता है कि शाम को जब भी अपनी गद्दी से उठते थे तब रुपया पैसा गिना नहीं जाता था बल्कि बोरों में भरा जाता था। उस

समय धातू के सिक्के चलते थे। कानपुर में गंगा नदी के किनारे तीरथ व्रत पर स्त्री-पुरुष स्नान करने आया करते थे। स्त्रियों के स्नान और कपड़े बदलने के लिए जगह-जगह घाटों और शेडों के निर्माण करवाए थे, लेकिन दलित समाज की महिलाओं के लिए यहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। दलित महिलाओं के लिए घाट या बरामदे वर्जित थे जिसके कारण उन्हें खुले में स्नान करना और कपड़े बदलना पड़ता था। सांबल दास जी को यह बात पता चली तो उन्होंने दलित समाज की स्त्रियों को नहाने के लिए कानपुर में गंगा नदी पर कई घाट और सेंडो के निर्माण कार्य कराया। और दलित लड़कियों की शादी विवाह में भी मदद करते थे।

कांशीराम और दलित आन्दोलन

मान्यवर कांशी राम जी ने. डॉ. अम्बेडकर के सपनों को धरातल पर एक जीवंत रूप प्रदान करने में संपूर्ण जीवन खपा दिया। कांशीराम जी का जन्म 15 मार्च 1934 को पंजाब में हुआ था, कांशीराम जी ने पूना में रक्षा उत्पादन विभाग में सहायक वैज्ञानिक के पद पर नियुक्त हुए थे। एक ऐसी घटना हुई जिसने कांशी राम को पूरी तरह से समाज को ही अपना सब कुछ समझ लिया। वाल्मीकि जाति में जन्मे दिना भाना जी जिन्होंने अंबेडकरवादी चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे जो अंबेडकर जयंती पर कर्मचारियों को छुट्टी नहीं मिली तो जबरन छुट्टी की मांग करने पर नौकरी से निकाल दिया गया इससे वह बहुत प्रभावित हुए। उसके बाद किताब “एनीहिलेशन आफ कास्ट (जाति का विनाश) ने बहुत प्रभावित किया। परिणाम स्वरूप उन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर सामाजिक संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया उसके बाद व्यक्तिगत सम्बन्ध एवं व्यक्तिगत जीवन से हटकर काम किया।

कांशीराम जी के त्याग की कुछ महत्वपूर्ण बिंदु

- आज के बाद मैं कभी घर नहीं आऊंगा मेरा अपना कोई घर नहीं है, देशभर के 85% गरीब, दलित, पिछड़े, अल्पसंख्यकों का घर ही मेरा घर है।
- आज से मैं सभी रिश्ते-नातों से मुक्त होता हूँ, मैं अपने किसी भी रिश्तेदार से कोई भी रिश्तेदारी नहीं निभाऊंगा, क्योंकि अब तमाम दलित वर्ग मेरा रिश्तेदार हो गया है।
- आजीवन अविवाहित रहूंगा मैं अपने जीवन को अपने परिवार तक ही नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए आज से समर्पित कर रहा हूँ, क्योंकि शादी के जंजाल में फँसने के बाद मैं अपने समाज के लिए कुछ नहीं कर पाऊंगा।
- मैं आज के बाद किसी भी सामाजिक समारोहों, जन्मोत्सव, विवाह उत्सव, तथा मृत्यु वगैरह में शामिल नहीं होऊंगा।
- आज के बाद कोई भी पारिवारिक दायित्व नहीं निभाऊंगा. क्योंकि मेरे ऊपर अब पूरे समाज का दायित्व आन पड़ा है।
- अपनी नौकरी छोड़ दी है तथा आज के बाद मैं कोई अन्य नौकरी नहीं करूंगा।
- जब तक बाबा साहब डॉ. अंबेडकर का देखा हुआ सपना साकार नहीं हो जाता तब तक मैं कभी चैन से नहीं बैठूंगा।

कांशीराम जी ने सर्वप्रथम समाज सुधार से अपनी जीवन वृत्तांत प्रारंभ किया जिसने 6 दिसंबर, 1978 को नई दिल्ली में बामसेफ (बैकवर्ड, एस.सी, एस.टी, ओ.बी.सी एंड माइनॉरिटी) की स्थापना की। यह संगठन दलित कर्मचारियों के संगठन को मजबूती प्रदान की. कांशी राम जी ने “बैक टू द सोसाइटी” का नारा दिया जिसके माध्यम से भारत में गैर बराबरी को दूर कर बराबरी स्थापित करना चाही। संगठन को और धार देने के

लिए 6 दिसंबर को डॉ. अम्बेडकर के परिनिर्वाण दिवस पर दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (Ds4) की स्थापना की¹⁰। कांशीराम ने नारा दिया “ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया छोड़, बाकी सब हैं डी.एस.4”। यहीं से राजनीति में आगमन किया। बहुजनो के वोट को संगठित करने के लिए कांशीराम ने नारा गढ़ा “वोट हमारा राज तुम्हारा नहीं चलेगा नहीं चलेगा” दलितों बहुजनों को संगठित कर उनके वोट की कीमत बताते हुए हुक्मरान बनने की सलाह दी। कांशीराम जी ने वोटों की शक्ति का एहसास कराते हुए लिखा है कि “वोट से लेंगे पी.एम, सी.एम, आरक्षण से लेंगे एस.पी, डी.एम।”¹¹ कांशी राम जी ने अपने सहयोगियों के साथ 1983 में साइकिल मार्च निकाली जिसमें 40 दिन में 4200 किलोमीटर की यात्रा तय कर बहुजनों को संगठित करने का प्रयास किया। कांशीराम जी ने भारत के 85 प्रतिशत जनसंख्या को कलम की संज्ञा दी और 15 प्रतिशत लोगों को कैप बताया। सवर्ण की संख्या कम होने के बावजूद वह कलम के ऊपर बैठकर नेतृत्व करता है जबकि बहुजनों की संख्या अधिक होने के बाद भी नीचे रहते हैं। कांशीराम ने नारा दिया है कि “जिसकी जितनी संख्या भारी उतनी उसकी हिस्सेदारी” इसी को देखते हुए कांशीराम जी ने 14 अप्रैल 1984 को अम्बेडकर के 94 वे अवतरण दिवस पर ‘बहुजन समाज पार्टी’ बनाकर राजनीति में पूर्ण रूप से भाग लेने का निश्चय किया। इसके माध्यम से सभी जाति आधारित लोगों के नेतृत्व का लक्ष्य रखा। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण रामवीर उपाध्याय के रूप में एक ब्राह्मण समाज से ताल्लुक रखने के बावजूद उन्हें बसपा में ट्रांसपोर्ट मिनिस्टर बनाया गया।

बहुजन समाज पार्टी

पार्टी बनाने के प्रथम दशक में विशेष प्रभाव नहीं दिखा। 1991 के आम चुनाव में इटावा में हिंसा के बाद पूरे जिले के चुनाव को दोबारा कराया गया था। तब बसपा सुप्रीमो कांशीराम मैदान में उतरे और सफल हुए। वही मुलायम सिंह यादव ने यहां कांशीराम की मदद की। इसके एवज में कांशीराम ने बसपा से कोई प्रत्याशी मुलायम जी के खिलाफ जसवंतनगर विधानसभा से नहीं उतारने का निर्णय लिया। मायावती सर्वप्रथम बिजनौर से विधानसभा में पहुंची। 1994 में राज्यसभा सांसद बनी। 1995 में सपा के गठबंधन से सबसे कम उम्र की सीएम बनी, हालांकि बहुत दिनों तक नहीं रह सकी। दूसरी बार 1997 से 1997 और तीसरी बार 2002 से 2003 तक भारतीय जनता पार्टी के बाहरी समर्थन से सरकार बनाई। 2007 से 2012 में “सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय” के नारे से पूर्ण बहुमत प्राप्त कर मुख्यमंत्री पद की शपथ ली इस कार्यकाल में दलितों के जीवन में एक नई रोशनी प्रदान की।¹² उत्तर प्रदेश में शुरू की गई कई योजनाओं ने गरीब परिवारों की काफी हद तक मदद की है। इनमें से कुछ उल्लेखनीय योजनाएं हैं। जैसे- उत्तर प्रदेश मुख्यमंत्री महामाया गरीब अर्थिक मदद योजना, सावित्रीबाई फुले शिक्षा मदद योजना, महामाया गरीब बालिका आशीर्वाद योजना, डॉ. अम्बेडकर ग्रामसभा समग्र विकास योजना, मान्यवर कांशीराम जी शहरी गरीब आवास योजना आदि। इन योजनाओं ने गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे परिवारों को बसपा से मुफ्त शिक्षा, घर और अन्य संसाधनों को मुहैया कराया है। बहुजन समाज में जन्मे महापुरुषों एवं वीरांगनाओं के इतिहास को उजागर करने में बहुत बड़ी भूमिका रही है। क्योंकि जिस स्थानों पर महापुरुषों का जन्म हुआ है अधिकतर लोगों का प्रतिमा बना कर उनके त्याग और बलिदान को प्रेरणा स्रोत दर्शाया गया।

निष्कर्ष

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन का प्रभाव बहुआयामी है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आयाम शामिल हैं। दलितों की स्थिति में सुधार के लिए व्यापक स्तर पर संघर्ष किया गया, और किया जा रहा है, और आगे भी करने की जरूरत है। अछुतानंद, डॉ. आंबेडकर, भदंत बोधानंद, महासय

मसूरियादीन पासी, कांशीराम आदि समाज सुधारकों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा और सम्मान के लिए संघर्ष किया लेकिन आज भी मुख्यधारा में पूरी तरह से नहीं जुड़ सके। कांशीराम जी ने सत्ता को बहुत महत्व दिए उसका प्रभाव तब दिखाई दिया जब मायावती सत्ता में आकर के स्कूल, विश्वविद्यालय, छात्रावास, दलित महिलाओं को पढ़ने के लिए सावित्रीबाई फुले के नाम से साइकिल वितरण, पैसा का वितरण आदि दलित समाज को शिक्षित करने पर ध्यान दिया। दुसरे अंबेडकर ग्राम सभा के माध्यम से बिजली, पानी, नाला आदि के माध्यम से दलित बस्तियों में सुधार किया। जनसंख्या के अंतिम पावदान तक के लोगो लाभान्वित करने का प्रयास किया। आन्दोलन का प्रभाव यह है कि आज कुछ हद तक दलित समाज को सम्मान की दृष्टि से देखा जा रहा है।

Reference:

1. शाह, घनश्याम (संपादक) (2001), दलित पहचान और राजनीति, सेज प्रकाशन
2. कुमार, विवेक, (2021), बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन, सम्यक प्रकाशन,
3. प्रसाद, माता, (2015), भारत में सामाजिक क्रांति के प्रेरणास्रोत, सम्यक प्रकाशन, 32/3, नई दिल्ली-110063
4. विद्रोही, एम. आर.(2011), दलित दस्तावेज, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
5. लाल, अंगनेय – राज राहुल (2011), उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन गौतम बुकसेन्टर दिल्ली
6. प्रसाद, माता, (2015), भारत में सामाजिक क्रांति के प्रेरणास्रोत, सम्यक प्रकाशन, 32/3, नई दिल्ली-110063
7. लाल, अंगनेय – राज, राहुल (2011), उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन गौतम बुकसेन्टर दिल्ली
8. शाह, घनश्याम (संपादक), (2001), दलित पहचान और राजनीति, सेज प्रकाशन
9. आटे, मनोहर, (2022), कांशीराम जी की सोहबत में, साझा दर्पण प्रकाशन गृह
10. सिंह, सतनाम, (2018), बहुजन नायक कांशीराम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
11. कुमार, विवेक, (2021), बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
12. नारायण, बद्री, (2019), कांशीराम बहुजनों के नायक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

Works Cited:

1. कुमार, विवेक, (2021), बहुजन समाज पार्टी एवं संरचनात्मक परिवर्तन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. लाल, अंगनेय – राइ राहुल (2011), उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन गौतम बुकसेन्टर दिल्ली।
3. भारती, कंवल, (2004), मायावती और दलित आंदोलन, रमणिका फाउंडेशन, 1-221, डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली-110032
4. प्रसाद, माता, (2015), भारत में सामाजिक क्रांति के प्रेरणास्रोत, सम्यक प्रकाशन, 32/3, नई दिल्ली-110063
5. आटे, मनोहर, (2022), कांशीराम जी की सोहबत में, साझा दर्पण प्रकाशन गृह
6. कांशीराम, (1982), चमचा युग, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली
7. गुरु, गोपाल, (1993), मुख्यधारा के समाजशास्त्र में दलित आंदोलन. इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड 28, अंक 570-573
8. नारायण, बद्री, (2019), कांशीरामबहुजनों के नायक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. राम, नरेश राम, (2015), दलित राजनीति का समकालीन विमर्श, अनन्या प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 92
10. सिंह, सतनाम, (2018), बहुजन नायक कांशीराम, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
11. गजभिष, संजय, (2018), संवैधानिक भारत निर्माता बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर और महाप्राण जोगेंद्रनाथ मंडल, पश्चिम पुरी सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
12. प्रसाद, माता, (2010), भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत. सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली

13. विद्रोही, एम.आर (2011), दलित दस्तावेज, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
14. शाह, घनश्याम (संपादक), (2001), दलित पहचान और राजनीति, सेज प्रकाशन
15. गुरु, गोपाल (2022 फरवरी), जाति अत्याचार और सोशल मीडिया, खंड 55, अंक 9, 29



प्रेमचंद की बाल कहानियों का मूल्यांकन

○ सुनील कुमार 'सुमन'¹

प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य के कालजयी रचनाकार हैं। सोद्देश्य, विपुल और वैविध्यपूर्ण लेखन के लिए प्रेमचंद का योगदान निःसन्देह अप्रतिम है। प्रेमचंद की कहानियाँ दलित, स्त्री, मजदूर, किसान तथा युवा आदि से जुड़ों मुद्दों को गंभीरता से उठाती हैं तो वहीं बच्चों और उनकी दुनिया को भी अपना विषय बनाती हैं। विश्व और भारत की तमाम भाषाओं में बच्चों को केंद्र में रखकर प्रचुर मात्रा में श्रेष्ठ कहानियाँ रची गई हैं। हिंदी में प्रेमचंद इस श्रेणी में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने बाल चरित्रों को लेकर विविध, रोचक और मर्मस्पर्शी कहानियाँ लिखी हैं। हालांकि, जब भी कहानीकार के रूप में प्रेमचंद का मूल्यांकन होता है तो उनकी बाल विषयक कहानियों की चर्चा ज्यादा नहीं होती। होती भी है तो आधे-अधूरे ढंग से। आम तौर पर प्रेमचंद की 'ईदगाह', 'गुल्ली डंडा', 'कजाकी', 'रामलीला', 'दूध का दाम', 'चोरी', 'बड़े भाई साहब', 'बूढ़ी काकी' आदि कहानियाँ ही इस चर्चा के केंद्र में रहती हैं। यह बात गौण हो जाती है कि प्रेमचंद ने विशुद्ध बाल साहित्य भी लिखा है। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'प्रेमचंद का बाल साहित्य' पुस्तक में भी ऊपर उल्लेखित श्रेणी की कहानियों को ही संकलित किया गया। इसमें प्रेमचंद द्वारा लिखित समस्त बाल साहित्य शामिल नहीं है।

वस्तुतः प्रेमचंद ने बाल पात्रों को आधार बनाकर दो तरह की कहानियाँ लिखी हैं। पहला, जिसमें बाल पात्र प्रमुख हैं या कहानी के केंद्र में हैं। जैसे- ईदगाह, दूध का दाम आदि। दूसरी, बालकों की अभिरुचि की कहानियाँ, जिन्हें बाल साहित्य की श्रेणी में रखा गया है। जैसे- शेर और लड़का, नादान दोस्त, मिट्टू, गुब्बारे पर चीता आदि। इन दोनों श्रेणियों की कहानियों में बच्चे मौजूद हैं लेकिन इनका पाठक वर्ग मुख्यतः दो तरह का है। बाल पात्रों को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानियाँ वास्तव में बड़ों के लिए लिखी गई कहानियाँ हैं। यद्यपि इनकी कसौटी बाल मनोविज्ञान है क्योंकि इन कहानियों के केंद्र में बच्चे हैं। दूसरी तरफ बच्चों के लिए लिखी गई कहानियों के पाठक मुख्यतः बच्चे हैं। प्रेमचंद की ऐसी कहानियाँ ही बाल साहित्य के रूप में गिनी जाती हैं। प्रेमचंद की बाल कहानियों की बात की जाए तो उनके 'जंगल की कहानियाँ' संकलन की बात सबसे

1. सहायक प्रोफेसर, हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र - 442001; ईमेल : drsunsilsuman@gmail.com

पहले करनी होगी। यह 'प्रेमचंद रचनावली भाग-18 (जीवनी एवं बाल साहित्य) में संकलित है। सबसे पहले 'जंगल की कहानियाँ' संकलन 1936 में सरस्वती प्रेस, बनारस से छपा। अभी इस पुस्तक की हंस प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित 12वें संस्करण (अप्रैल 1961) की प्रति उपलब्ध है।'

'जंगल की कहानियाँ' में 'शेर और लड़का', 'बनमानुष की दर्दनाक कहानी', 'दक्षिणी अफ्रीका में शेर का शिकार', 'गुब्बारे पर चीता', 'पागल हाथी', 'साँप का मणि', 'बनमानुष खानसामा', 'मिट्टू', 'पालतू भालू', 'बाघ की खाल', 'मगर का शिकार' और 'जुड़वाँ भाई' शीर्षक से कुल 12 बाल कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें ज्यादातर जानवरों से जुड़ी हुई कहानियाँ हैं। स्वाभाविक-सी बात है कि बच्चे इस तरह की कहानियाँ काफी पसंद करते हैं। पंचतंत्र की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण यह भी है। लेकिन इस संकलन में कुछ कहानियाँ बालोपयोगी नहीं हैं। उनमें हिंसा और क्रूरता को दिखाया गया है। 'बनमानुष की दर्दनाक कहानी', 'दक्षिणी अफ्रीका में शेर का शिकार', 'बनमानुष खानसामा', 'बाघ की खाल' और 'मगर का शिकार' इस श्रेणी की कहानियाँ हैं। ये बच्चों के लिए नहीं जँचती। शेष कहानियाँ बच्चों के लिए रुचिकर व सीख से भरी हुई हैं। इन कहानियों के पात्र अमीर परिवारों के लाड़-प्यार से पले बच्चे नहीं बल्कि गरीब और मेहनती परिवारों के बच्चे हैं। लेकिन उनमें सूझबूझ और हिम्मत की कमी नहीं। 'शेर और लड़का' कहानी का पात्र एक गड़रिया का लड़का है जो अपने मालिक के गाय-बैलों को जंगल में ले जाकर चराता है। एकबार एक गाय के गायब होने पर उसे खोजने के लिए वह अकेले ही चल देता है। प्रेमचंद लिखते हैं- "उस छोटे लड़के की यह हिम्मत देखो ! अंधेरा हो रहा है, चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, जंगल भाँय-भाँय कर रहा है, गीदड़ का हौवाना सुनाई दे रहा है, पर वह बेखौफ जंगल में बढ़ा चला जा रहा है।"² यहाँ बच्चे में उसकी बहादुरी और संवेदनशीलता को प्रेमचंद उजागर करते हैं। जंगल में रात के समय लड़का एक पेड़ पर चढ़ गया। उसके नीचे एक शेर पहुँच गया। लड़का तीन दिन तक भूखा-प्यासा उसी पेड़ पर रहा क्योंकि नीचे शेर खड़ा था। प्रेमचंद यहाँ केवल बच्चे के मनोविज्ञान को नहीं दिखा रहे, वे जानवर के मनोविज्ञान को भी दिखा रहे हैं। यह बड़ा दिलचस्प है कि शेर लड़के को ललचाई नजरों से देखता है कि यह कब नीचे उतरेगा ? शेर तरह-तरह के करतब करता है, चिंघाड़ता है, गरजता है कि यह डर कर नीचे गिर जाए और मैं इसको खा लूँ। यहाँ शेर के मन में जो चल रहा, प्रेमचंद वह भी दिखाते हैं और लड़के के मन में जो चल रहा है, वह भी दिखाते हैं- "ज्यों-ज्यों रात होती जाती थी, शेर की भूख भी तेज होती जाती थी। शायद उसे यह सोच-सोचकर गुस्सा आ रहा था कि खाने की चीज सामने रखी है और मैं दो दिन से भूखा हूँ क्या आज भी एकादशी रहेगी ?"³ तीन दिन तक शेर से बचने का उपाय न देखकर लड़का ऊबने लगा- "कभी-कभी तो उसके जी में आता कि शेर मुझे पकड़ ले और खा जाए।"⁴ बहरहाल बहुत सूझबूझ से वह लड़का पेड़ की फुनगी पर चढ़कर अपनी धोती खोलकर हवा में हिलाता है तो कुछ लोग यह देखते हैं, फिर आते हैं और उसको बचाते हैं। लड़का वापस आ जाता है तो मालिक उसे देखकर हैरत में आ जाता है कि यह तो शेर से बचकर आया है ! यह मजेदार शैली में लिखी हुई बाल पाठकों में प्रेरणा भरने वाली कहानी है।

'गुब्बारे पर चीता' भी रोचक कहानी है। इसमें सर्कस का वर्णन है। साथ ही प्रेमचंद भारतीय स्कूली व्यवस्था का भी सच बयान करते हैं। बच्चे सर्कस देखना चाहते हैं लेकिन हेड मास्टर साहब उन्हें जाने नहीं देते। पर "लड़कों का मन तो सर्कस में लगा हुआ था। सामने किताबें खोले जानवरों की चर्चा कर रहे थे।"⁵ इसी तरह कथानायक "बलदेव सबसे पीछे बैठा हुआ अपनी हिसाब की कॉपी पर शेर की तस्वीर खींच रहा था और सोच रहा था कि कल शनीचर नहीं, इतवार होता तो कैसा मजा आता।"⁶ बलदेव चुपके से अकेला ही सर्कस देखने चला जाता है। लेकिन वहाँ जानवरों की दयनीय हालत देखकर उसे क्षोभ होता है। लेकिन आगे का दृश्य कुछ

और ही होता है। सर्कस में एक भारी गुब्बारा वाला आता है। फिर चीता के आने से भगदड़ मच जाती है। बलदेव और चीता दोनों खुद को बचाते हुए गुब्बारे में कूद जाते हैं और वह आसमान में उड़ चलता है। बच्चे इस तरह की कहानी को पढ़कर लगातार उत्सुकता और रोमांच से भर उठते हैं- “ज्यों-ज्यों गुब्बारा ऊपर उठता जाता था, चीते की जान निकली जाती थी। उसकी समझ में न आता था कि कौन मुझे आसमान की ओर लिए जाता है। वह चाहता तो बड़ी आसानी से बलदेव को चट कर जाता, मगर उसे अपनी ही जान की फिक्र लगी हुई थी। सारा चीतापन भूल गया था।”⁷ आगे चलकर बलदेव सूझबूझ से अपनी जान बचाता है। प्रेमचंद ने ऐसे कई बाल पात्रों का सृजन किया है जो साहसी और सोच-समझ वाले हैं। संकट के समय वे खुद अपने प्रयासों से युक्ति लगाकर उससे बाहर निकलते हैं। ‘पागल हाथी’ कहानी में मुरली अपनी बहादुरी और कौशल से सनक चुके हाथी मोती को भी अकेला जंगल में जाकर बड़े प्यार से अपने काबू में कर लेता है। मुरली भी अभावों में ही पला-बढ़ा बालक है। लेकिन काम वह बड़ों वाला करता है। बाल मनोवैज्ञानिक बताते हैं कि “बालक दिन-प्रतिदिन नई समस्याओं से जूझता है एवं अप्रत्याशित समस्याओं का हाल भी अंतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त कर लेता है....इतना अवश्य है कुछ बालक उम्र से पहले ही इस अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।”⁸ प्रेमचंद की बाल कहानियों में ऐसे बाल पात्र बहुतायत में मिलते हैं। अकारण नहीं कि प्रेमचंद आम जन के लेखक हैं।

प्रेमचंद की बाल कहानियों में चित्रित जानवर भी वफादार, बहादुर और बुद्धिमान हैं। ‘मिट्टू’ कहानी में सर्कस के एक बंदर को पाने के लिए गोपाल हर प्रयास करता है। अंत में उसके प्रेम और मासूमियत को देखकर सर्कस का मालिक उसे मिट्टू को दे देता है। यहाँ गोपाल का भोलापन, धुन का पक्का होना और एक बंदर से लगाव सुंदर तरीके से चित्रित है। गोपाल को चीते से बचाने के लिए मिट्टू खुद अपनी जान जोखिम में डालता है और घायल हो जाता है। अंत में उसे पाकर “गोपाल को जैसे कोई राज मिल गया, उसने मिट्टू को गोद में उठा लिया, पर मिट्टू नीचे कूद पड़ा और उसके पीछे-पीछे चलने लगा। दोनों खेलते-कूदते घर पहुँच गए।”⁹ ‘पालतू भालू’ कहानी में भालू अपनी जान पर खेलकर डाकुओं से भिड़ जाता है और अपने मालिक की जान बचाता है। बाल पाठकों को ऐसे ही जानवरों के चरित्र प्रेरित करते हैं। ‘साँप का मणि’ कहानी में प्रेमचंद ने मणि को लेकर प्रचलित मिथ्या धारणाओं और आशंकाओं को दूर किया है और सही जानकारी दी है-“साँप इसे दिनभर अपने मुँह में रखता है, ताकि यह गर्म रहे। रात को वह इसे लेकर किसी जंगल में निकलता है और इसकी रोशनी में कीड़े-मकौड़े पकड़कर खाता है।”¹⁰ ‘जंगल की कहानियाँ’ के अतिरिक्त प्रेमचंद ने अन्य कई रुचिकर, बोधगम्य और उद्देश्यपूर्ण बाल कहानियाँ लिखी हैं। ऐसी ही एक बाल कहानी ‘नादान दोस्त’ बाल मनोविज्ञान का उत्तम उदाहरण है। इस कहानी में बच्चों के कुतूहल, सृजनात्मकता, भोलापन, मासूमियत और मानवीयता उभरकर आती है। घर में छज्जे पर चिड़िया ने अंडे दिए हैं। उन्हें सुरक्षित रखने के लिए नन्हें केशव और श्यामा लग जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि “सृजनशील बालक दृढ़ निश्चयी होते हैं एवं जिन कार्यों को वे प्रारंभ करते हैं उसे वे हर स्थिति में पूरा करते हैं। कार्य के दौरान आने वाली कठिनाइयों या विपरीत परिस्थितियों से वे आनुपातिक रूप से कम विचलित होते हैं।”¹¹ इस कहानी में बालमन को पता नहीं है कि यदि अंडे किसी ने छू दिए तो चिड़िया उन्हें छोड़ देगी। उनकी तमाम दरियादिली और मेहनत के बावजूद आखिर वही होता है और बाद में बच्चे रोने लगते हैं। वे क्या चाहते थे और क्या हो गया ! बाल साहित्यकार और ‘नंदन’ के संपादक रहे जयप्रकाश भारती कहते हैं कि “बाल साहित्य कल्पना, उत्साह, आशा, उमंग, विश्वास और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम की भावनाओं में छलकता है। पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी बालक के मित्र होते हैं।”¹² प्रेमचंद इस कसौटी पर खरा उतरते हैं। उनका उद्देश्य यही है कि जानवरों के साथ बच्चों का एक तादात्म्य स्थापित हो और जानवरों के लिए बच्चों में एक मानवीय संवेदना जागृत हो। इस क्रम में प्रेमचंद की लंबी कहानी

‘कुत्ते की कहानी’ और ‘सैलानी बंदर’ का जिक्र आवश्यक है।

‘सैलानी बंदर’ में मन्नू नाम का बंदर मदारी जीवनदास और उसकी पत्नी बुधिया के जीने का सहारा है। वह इनके लिए संतान की तरह है। इस कहानी में कई घटनाएँ घटित होती हैं और मन्नू के जीवन में कई तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं। उसकी शरारतें और चंचलता पूरी कथा में चलती रहती हैं। इसकी वजह से मन्नू पकड़ा जाता है और गुलाम बना लिया जाता है। ‘सैलानी बंदर’ में जानवरों की दुनिया की कई बातों से प्रेमचंद अपने नन्हें पाठकों को परिचित कराते हैं। इस कहानी में बंदरों के बीच आपसी वैमनस्य को प्रेमचंद दिखाते हैं। बंदर आपस में लड़ रहे हैं। खाने के लिए झगड़ा कर रहे हैं। सर्कस की स्थिति देखकर मन्नू को बहुत दुख होता है— “बंदरों ने मन्नू का सहर्ष स्वागत नहीं किया। उसके आने से उनमें बड़ा कोलाहल मचा। अगर रखवाले ने उसे अलग न कर दिया होता तो वे सब उसे नोचकर खा जाते।”¹³ ‘कुत्ते की कहानी’ में भी नायक कुत्ते के मन की इसी पीड़ा को प्रेमचंद ने दिखाया है, जहाँ कुत्ते एक-दूसरे को देखते ही काट खाने को दौड़ पड़ते हैं। इसी तरह ‘पागल हाथी’ कहानी में मोती के पैरों में जंजीर को देखकर जंगल के दूसरे हाथी उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। एक तरह से उसे सामाजिक रूप से बहिष्कृत कर देते हैं। ‘सैलानी बंदर’ में मन्नू बंदर के साथ-साथ कई बच्चे भी उपस्थित हैं। प्रेमचंद ने इस कहानी में ग्रामीण बच्चों द्वारा गाए जाने वाले गीत भी दर्ज किया है। बच्चे मन्नू को चिढ़ाते हुए गाते हैं—

“ओ बंदरवा लोलयाय, बाल उखाड़ूँ टोयटाय।”¹⁴

“बंदर मामू और, कहाँ तुम्हारा ठौर।”¹⁵

इस कहानी में मन्नू के माध्यम से प्रेमचंद गुलामी की पीड़ा का एहसास अपने नन्हें पाठकों के अंदर कराना चाहते हैं। इस बहाने आजादी की असली समझ और उसका महत्व बच्चों को होगा, यहाँ प्रेमचंद का उद्देश्य यही है। उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद अपनी बाल कथाओं के माध्यम से देश के सजग नागरिक तैयार करने की दिशा में काम कर रहे हैं। ‘कुत्ते की कहानी’ प्रेमचंद की सबसे लंबी कथा रचना है। ‘मैं’ शैली में लिखी गई इस कहानी को किशोरोपयोगी ज्यादा कहा जा सकता है। यद्यपि बच्चे भी इसका लुत्फ उठाएंगे। यह एक कुत्ते के जन्म से लेकर उसके पूरे विस्तृत जीवन के उथल-पुथल की लंबी रोचक कथा है। इसमें भी एक कुत्ते की बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति एवं बहादुरी का सुंदर वर्णन किया गया है। इस कहानी में प्रेमचंद अमीरी-गरीबी, जातिगत ऊंच-नीच, गोरा-काला, धार्मिक कर्मकांड, अंधविश्वास जैसी भारतीय समाज की कई कड़वी सच्चाइयों को सामने लाते हैं, वहीं जानवरों के दुख, खासकर मनुष्यों का उनके प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार आदि का भी रेखांकन करते हैं। बाल मनोविज्ञान के प्रसिद्ध रूसी लेखक वसीली सुखोम्लीनस्की का मानना है कि “मेरे विचार में चरित्र-निर्माण का एक सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार है कि बच्चे बुराई को कोई अमूर्त वस्तु न समझें, बल्कि वे अनुभव करें कि यह एक ऐसी वास्तविक शक्ति है, जो संसार के सभी ईमानदार लोगों के शत्रु है।”¹⁶ आमतौर पर जानवरों को चेतनाहीन माना और दिखाया जाता है। पर प्रेमचंद का यह अनूठा प्रयोग इस समाज को जानवरों के रहने लायक बनाएगा। जानवरों के प्रति मानव मन में जो हिंसक भावना है, उसे खत्म करेगा। सबसे बड़ी बात कि नई पीढ़ी जानवरों के प्रति संवेदनशील बनेगी। प्रेमचंद की इन बाल कहानियों की सार्थकता यही है। प्रेमचंद ने एक बाल लघुकथा लिखी है— ‘बीमार बहन’। यह ‘कुमार’ नामक बाल पत्रिका के पहले अंक में जुलाई 1932 में छपी। फिलहाल यह रचना ‘प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य खंड-1’ में संगृहीत है। यह भोंदू और सेवती नामक भाई-बहन के मासूम और निर्दोष प्रेम की कहानी है। भोंदू छोटा है लेकिन सेवती के बीमार पड़ने पर वह बड़े की तरह उसका ख्याल रखता है— “जब सेवती पानी मांगती है तो भोंदू दौड़कर कटोरे में पानी लाता है। जब सेवती गर्मी से बेचैन हो जाती है, तो वह उसे पंखा झलने लगता है।”¹⁷ ‘बीमार बहन’ जैसी कहानी

जेंडर समानता को शानदार तरीके से दिखाती है। इसमें बहन बीमार है और वह सारा काम भाई करता है जो आमतौर पर हमारे समाज में बहनों द्वारा कराया जाता है। प्रेमचंद एक भाई से यह सब काम कराते हैं जो महत्वपूर्ण बात है। यही प्रेमचंद को बड़ा लेखक बनाता है। प्रेमचंद इस तरह का घर-परिवार चाहते थे जहाँ बचपन से ही बच्चे यह जान-समझ लें कि जेंडर के हिसाब से कोई काम नहीं होता, चाहे वह घर के अंदर का काम हो या बाहर का। प्रेमचंद एक स्वस्थ समाज बनाना चाहते थे, तभी वे देश के नौनिहालों की जेंडर कंडीशनिंग करना चाहते हैं। बहरहाल 'बीमार बहन' में भाई-बहन का निश्छल प्रेम अद्भुत है। यह कहानी बच्चों के मन में मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण को और मजबूत बनाती है।

प्रेमचंद अपनी बाल कहानियों में भारतीय समाज की तमाम विसंगतियों-कुरीतियों को भी दिखाते हैं, उन्हें छुपाते नहीं, ताकि बाल पाठक यथार्थ से रूबरू हो सकें और भविष्य के लिए खुद को तैयार कर सकें। अगर बचपन में ही व्यक्ति को अच्छाई-बुराई का फर्क समझ में आ जाए तो यह व्यक्तित्व निर्माण में काफी सहायक होगा। प्रसिद्ध रूसी शिक्षाशास्त्री वसीली सुखोम्लीनस्की अपना अनुभव बताते हैं कि “मेरी चेष्टा यह थी कि छोटी उम्र से ही मेरा हर शिष्य ये समझने लगे कि इंसान द्वारा इंसान का शोषण सामाजिक बुराई है और वह कभी भी इस बुराई को सहन करने के लिए तैयार न हो।”¹⁸ यहाँ वसीली का आशय एकदम स्पष्ट है कि बच्चों को कमोबेश सभी चीजें जाननी चाहिए, ताकि वह अच्छे-बुरे में भेद करना सीखे और यह भी समझे कि उसे किन मूल्यों को अपनाना है और किन प्रवृत्तियों से खुद को और अपने घर-परिवार व समाज को दूर रखना है। वसीली सुखोम्लीनस्की लिखते हैं कि “बच्चा जो कुछ भी जानता-समझता है, उस सबको अपने दिल से लगाता है। भलाई से उसके हृदय में हर्ष, भय, उत्तेजना और प्रशंसा का भाव उठता है, वे नैतिक सौंदर्य का अनुसरण करना चाहता है; बुराई देखकर उसका हृदय आक्रोश से भर उठता है, वह उसे सह नहीं सकता, उसमें सच्चाई और न्याय के हेतु संघर्ष करने के लिए आत्मिक शक्ति का संचार होता है। बाल-आत्मा को सत्यों का भण्डार मात्र नहीं होना चाहिए।”¹⁹ गौरतलब है कि प्रेमचंद अपनी बाल कहानियों में धार्मिक पोंगापंथी व जातिगत और सांप्रदायिक जड़ता नहीं लाते। हिंदी की मुख्यधारा का बाल साहित्य भूत-प्रेत, वेद-पुराण, राजा-रानी, गरीब ब्राह्मण, देवी-देवता आदि से मुक्त नहीं बल्कि इससे प्रभावित बाल साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाता रहा है। जबकि जरूरी यह है कि बदलते समय के अनुसार बच्चों में वैज्ञानिकता, मानवीय मूल्य, नैतिकता और लोकतंत्र की भावना मजबूत की जाए, ताकि आगे चलकर वे एक स्वस्थ देश के निर्माण में अपना योगदान दे सकें। इसलिए प्रेमचंद बच्चों में सूझबूझ, बुद्धिमत्ता और साहस भर के उन्हें एक स्वस्थ और सजग नागरिक बनाना चाहते हैं। वे अपने नन्हें पाठकों को कोरी कल्पना की दुनिया में नहीं ले जाते हैं बल्कि रोचकता के साथ कौतूहल जगाते हुए उन्हें परिवार-समाज के ताने-बाने से भी परिचित कराते हैं। यद्यपि उनकी कहानियाँ कल्पनाओं से मुक्त नहीं लेकिन वे बालोपयोगी हैं और पाठकों के मन में निरंतर उत्सुकता जगाए रखने वाली हैं। प्रसिद्ध बाल साहित्यकार विष्णुकांत पाण्डेय लिखते हैं कि “बाल साहित्य ऐसा हो जो बच्चों की जिज्ञासाएं शांत करे, रुचियों में परिष्कार लाए, और बच्चों में अच्छे संस्कार भरे। बाल साहित्य में विविधता अनिवार्य है, क्योंकि बाल रुचियाँ भी विभिन्नताओं से परिपूर्ण हैं।”²⁰

वस्तुतः प्रेमचंद के बाल पात्र अन्याय सहने वाले बच्चे नहीं हैं बल्कि सारे अन्याय के खिलाफ हैं। वैसे ही उनके जानवर पात्र भी गलत का विरोध करते हैं। प्रेमचंद की खास बात यह है कि उनकी कहानियाँ बच्चों के अंदर रोमांच, कौतूहल व साहस भी पैदा करती हैं और बच्चों की कल्पनाशीलता को भी बढ़ाती हैं। प्रेमचंद के बाल पात्र बहुत ही सामान्य परिवेश से आते हैं। वे प्रायः हाशिये के समाज के बच्चे होते हैं। प्रेमचंद अपने बाल और जानवर पात्रों के नाम भी उसी अनुसार रखते हैं। भोंदू, सेवती, गोपाल, बलदेव, मुरली, मिट्टू, टामी,

कल्लू, श्यामा, केशव, जकिया, डफाली, मोती, मन्नू, रेवती, मन्नू और मोती जैसे नाम तुरंत सम्मोहित करते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद की बाल कहानियाँ सोद्धेश्यपूर्ण और विविधता से भरी हुई हैं। बच्चों के लिए रुचिकर भी हैं और उन्हें प्रेरित करने वाली भी हैं। उनकी बाल कहानियों में हमें बाल जीवन का इंद्रधनुषी संसार दिखलाई पड़ता है। प्रेमचंद निःसन्देह बाल मनोविज्ञान के पारखी रचनाकार हैं।

संदर्भ :

1. गोयनका, कमल किशोर (सं.), (1981), प्रेमचंद विश्वकोश भाग-2, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 154-155
2. आनन्द, राम (सं.), (1996), प्रेमचंद रचनावली भाग-18, दिल्ली : जनवाणी प्रकाशन प्रा.लि., पृ. 195
3. वही, पृ. 196
4. वही, पृ. 196
5. वही, पृ. 202
6. वही, पृ. 202
7. वही, पृ. 203
8. चित्तौड़ा, शशि एवं नरसावत, हरिश्चंद्र, (1996), शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, उदयपुर: शिवा पब्लिशर्स. पृ. 166
9. आनन्द, राम (सं.), (1996), प्रेमचंद रचनावली भाग-18, दिल्ली : जनवाणी प्रकाशन प्रा.लि., पृ. 209
10. वही, पृ. 207
11. चित्तौड़ा, शशि एवं नरसावत, हरिश्चंद्र, (1996), शिशु एवं बाल मनोविज्ञान, उदयपुर: शिवा पब्लिशर्स, पृ. 209
12. राष्ट्रीय सहारा ('उमंग'), (17 जनवरी 1999), नई दिल्ली
13. आनन्द, राम (सं.). (1996), प्रेमचंद रचनावली भाग-13, दिल्ली : जनवाणी प्रकाशन प्रा.लि., पृ. 15
14. वही, पृ. 12
15. वही, पृ. 12
16. सुखोम्लीनस्की, वसीली, (1986), बाल हृदय की गहराइयाँ, मास्को: प्रगति प्रकाशन, पृ. 53
17. आनन्द, राम (सं.), (1996), प्रेमचंद रचनावली भाग-15, दिल्ली : जनवाणी प्रकाशन प्रा.लि., पृ. 49
18. सुखोम्लीनस्की, वसीली, (1986), बाल हृदय की गहराइयाँ, मास्को: प्रगति प्रकाशन, पृ. 53
19. वही, पृ. 280
20. विक्रम, डॉ सुरेन्द्र, (1992), हिंदी बाल पत्रकारिता : उद्भव और विकास, इलाहाबाद: साहित्य वाणी. पृ. 16



हिंदी रंगमंच में अनूदित नाटक

○ नीतू शर्मा¹

अनुवाद एक ऐसी भाषिक क्रिया है जिसके माध्यम से विश्व-भर के श्रेष्ठ साहित्य तक पहुँचा जा सकता है। इसी प्रक्रिया के अंतर्गत विश्व की सभी भाषाओं में साहित्य की विभिन्न विधाओं की उत्तम कृतियों के अनुवाद होते रहे हैं। नाटक एक दृश्यात्मक विधा है। दृश्यात्मक प्रकृति के कारण नाटक का अनुवाद दूसरी साहित्यिक विधाओं से किंचित भिन्न और विशिष्ट हुआ करता है। मंचीय प्रदर्शन की सार्थकता के बाद ही कोई नाटक सफल कहा जाता है— यह बात अनूदित नाटक पर भी लागू होती है। उसकी सफलता भी रंगमंचीयता ही है। नाटक के अनुवाद की परम्परा विश्व की सभी भाषाओं में रही है। आधुनिक हिन्दी रंगमंच के विकास में भी एक बड़ा योगदान अनूदित नाटकों का है जिनसे हिन्दी भाषी जनता, दूसरी भाषा-संस्कृति के जीवन-मूल्यों के साथ उनके नाट्य-शिल्प से भी परिचित हुई है।

हिन्दी रंगमंच में अनूदित नाटकों पर प्रकाश डालने से पहले नाटक के अनुवाद की प्रक्रिया पर विचार करना अधिक समीचीन होगा। वैसे तो प्रत्येक भाषा और विधा में सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद गहन परिश्रम से युक्त और चुनौतीपूर्ण होता है किन्तु नाट्य-विधा में यह अपेक्षाकृत अधिक कठिन हो जाता है। अन्य विधाएँ जहाँ मूलतः पढ़ने के लिए होती हैं, वहाँ नाटक की मूल प्रकृति दृश्यात्मक और अभिनयात्मक होती है। इसीलिए नाटक का अनुवाद साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न एवं विशिष्ट है। दृश्यात्मकता की विशेषता नाटक के अनुवाद में भी अपरिहार्य है, अन्यथा मूल भाषा के मंचीय दृष्टि से सफल नाटक के अनूदित होने पर उसके साहित्यिक पाठ-भर बन जाने की आशंका बनी रहती है। अविकल अनुवाद या भाषान्तर कर देने मात्र से नाट्य-विधा की प्रकृति के अनुरूप जीवन्तता नहीं आ पाती स इसीलिए नाटक के अनुवादक से अतिरिक्त सजगता के साथ रंगमंच के सामान्य विधान की अपेक्षा अनिवार्य रूप से रहती है। साथ ही अनुवादक का मूल भाषा की संरचना और प्रकृति से भी थोड़ा बहुत परिचित होना आवश्यक है। वस्तुतः “... दो अलग-अलग संस्कृतियों और भाषाओं के नाटक अनूदित होकर सम्बोधनों, औपचारिकताओं और अनेक व्यवहारों की जातिगत

1. एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भिन्नता के कारण अपने उच्चारण और आचरण की दृष्टि से बड़े अजीब और अटपटे से प्रतीत होते हैं।” अनूदित शब्दों का उच्चारण और संवादों का वाचन, उनकी अभिनेयता, नाटक के कार्य-व्यापार से उनका साहचर्य अनुवादक के ध्यान में निरंतर रहने चाहिए। साथ ही, मूल नाटक में उपलब्ध रंग-संकेत, दृश्य-विधान और उनके औचित्य की समझ भी अनुवादक को होनी चाहिए। अनुवादक का मूल नाटक के देशकाल और समाज-संस्कृति से सामान्य परिचय भी नाटक के अनुवाद को जीवंत और विश्वसनीय बनाता है।

आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच में प्रारम्भ से ही विदेशी व संस्कृत सहित प्रादेशिक भारतीय भाषाओं के नाटकों के अनुवाद और उनके मंचीय प्रदर्शन का चलन रहा है। हिन्दीतर भाषाओं के नाटकों के अनुवाद की शुरुआत भारतेन्दु युग से ही हो गयी थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्य-यात्रा की शुरुआत ही बांग्ला के ‘विद्यासुन्दर’ (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। इसके बाद “भारतेन्दु ने अंग्रेजी, बांग्ला तथा संस्कृत के नाटकों के हिन्दी अनुवाद भी किए, जिनमें रत्नावली नाटिका, पाखण्ड विखंडन, प्रबोध-चंद्रोदय, धनंजय-विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस तथा दुर्लभ बन्धु आदि हैं। अंग्रेजी से किए गए अनुवादों में भारतेन्दु की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने उसमें भारतीय वातावरण एवं पात्रों का समावेश किया है। सभी नाटकों में मानव-हृदय के भावों की अभिव्यक्ति के लिए गीतों की योजना की है। इन नाटकों का अनुवाद केवल हिन्दी का भण्डार भरने की दृष्टि से नहीं किया गया बल्कि हिन्दी नाटकों के तत्त्वों में अपेक्षित परिवर्तन के लिए दिशा-निर्देश करने के उद्देश्य से किया गया।”² भारतेन्दु का मानना था कि अपनी नाट्य परम्परा के साथ देशी और विदेशी नाट्य साहित्य का परिचय पाकर हिन्दी नाटक और रंगमंच को समृद्ध किया जा सकता है। इसी समय सर विलियम जोन्स ने फोर्ट विलियम कॉलेज में संस्कृत के ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ के हिन्दी अनुवाद के अभिनय की भी प्रेरणा दी, जिसके कारण हिन्दी में ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ के कई अनुवाद हुए, जिनमें राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा किया गया अनुवाद आज भी महत्वपूर्ण माना जाता है। भारतेन्दु युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयासों से अनूदित नाटकों के मंचन भी खूब होते थे। भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात भारतेन्दु-मण्डली के प्रयासों से कुछेक वर्षों तक ही यह परम्परा जारी रही, फिर धीरे-धीरे क्षीण हो गयी। इसका प्रमुख कारण अंग्रेजी सरकार के कड़े नियम थे। इसी कारण नाटककारों ने नाटक लिखने कम कर दिये और मौलिक नाटकों का अभाव-सा दिखने लगा। हालाँकि, द्विवेदी युग में नाटकों के अनुवाद का सिलसिला जारी रहा। मौलिक नाटकों की कमी को काफी हद तक अनूदित नाटकों ने पूरा किया। द्विवेदी युग के प्रमुख अनुवादकों में लल्लीप्रसाद पांडेय, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव (अंग्रेजी), लाला सीताराम, सत्यनारायण कविरत्न (संस्कृत) गोपालराम गहमरी रामचन्द्र वर्मा, रूप नारायण पांडेय (बांग्ला) आदि का नाम प्रमुखता से रहा। संस्कृत के ‘मृच्छकटिक’, ‘महावीरचरित’, ‘उत्तररामचरित’, ‘मालती मा’, बांग्ला से गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मनमोहन गोस्वामी, ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की नाट्य-रचनाओं और अंग्रेजी से शेक्सपीयर के ‘हेमलेट’, ‘रिचर्ड’ द्वितीय’, ‘मैकबेथ’ आदि नाटकों, फ्रांसीसी नाटककार ओलिवर के नाटकों के हिन्दी अनुवाद बड़ी संख्या में हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतंत्रता-पूर्व युग में हिन्दी में नाटकों के अनुवाद की परम्परा जोरों पर थी किन्तु यह भी कटु सत्य है कि हिन्दी रंगमंच के इतिहास में इन अनूदित नाटकों के मंचन के उल्लेख बहुत कम मिलते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच में शौकिया मण्डलियों और रंगकर्मियों की ओर से रंगमंचीय नाटकों की कमी की शिकायत लगातार रही है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संगीत नाटक अकादमी सहित अन्य कई नाट्य-प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित होने और उनके द्वारा नाट्य-लेखन को प्रोत्साहन देने के बावजूद हिन्दी में नये और मंचानुकूल नाटकों की कमी दूर नहीं हुई है। ऐसा नहीं है कि हिन्दी में मौलिक नाटक नहीं लिखे

जा रहे। वस्तुतः रंगकर्मियों का प्रश्न यह है कि उनमें से कितने नाटक मंच-प्रस्तुति के योग्य हैं ? रंगकर्मियों को अक्सर यह शिकायत रहती है कि हिन्दी के नाटककार साहित्य की अन्य विधाओं के समान ही नाटक लिख देते हैं, नाट्य-रचना के दौरान वे दृश्य-विधान को ध्यान में नहीं रखते। इधर नाटककारों को रंगकर्मियों से यह शिकायत रहती है कि वे प्रदर्शन के नाम पर उनकी मूल नाट्य-कृति में मनमाने ढंग से परिवर्तन कर देते हैं। स बहरहाल, इस समस्या के कारण रंगकर्मी विदेशी और प्रादेशिक भारतीय भाषाओं के चर्चित नाटकों के अनुवादों की ओर रुख करते हैं और वे निराश भी नहीं होते। अनुवाद के माध्यम से रंगकर्मियों को दूसरी भाषाओं में मनोनुकूल मंचीय पाठ सहज उपलब्ध हो जाते हैं, साथ ही दूसरी भाषाओं के नाटकों के शिल्प और शैली से भी उनका सहज परिचय हो जाता है। स इस प्रकार हिन्दी रंगमंच को समृद्ध करने में अनुवाद की महती भूमिका लगातार बनी हुई है।

आज हिन्दी रंगमंच का एक बड़ा हिस्सा संस्कृत भाषा के अनूदित नाटकों के मंचीय प्रदर्शनों से ओत-प्रोत है। संस्कृत हिन्दी की स्रोत भाषा है। भारत का प्राचीन साहित्य मूलतः इसी भाषा में उपलब्ध है। संस्कृत में विपुल और उच्च कोटि का नाट्य-साहित्य मौजूद है, जो हिन्दी के रंगकर्मियों को गाढ़े-बगाड़े अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है। ऊपर हमने उल्लेख किया कि हिन्दी में संस्कृत नाटकों के अनुवाद की परम्परा भारतेन्दु युग से ही शुरू हो गयी थी। उसके बाद से लेकर आज तक संस्कृत नाटकों के हिन्दी अनुवाद बहुतायत में हुए हैं किन्तु जो अनूदित नाटक मंच पर प्रदर्शित होकर विशेष चर्चित और प्रशंसित हुए, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' (निर्देशक ब. व. कारंत), मोहन राकेश द्वारा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' (निर्देशक इब्राहिम अल्काजी), भारतभूषण अग्रवाल द्वारा भास के 'उरुभंगम' नाटकों के अलावा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में 'भगवदज्जुकम्' (बोधायन), 'स्वप्नवासवदत्ता', 'मध्यम व्यायोग' (निर्देशक शांता गाँधी) आदि नाटकों के हिन्दी अनुवादों की प्रस्तुतियाँ काफी सराही गयी हैं।

संस्कृत भाषा में रचित नाटक प्राचीन भारत की संस्कृति को अपने भीतर समाये हुए हैं। वर्तमान समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं रह गयी है। ऐसे में संस्कृत के नाटकों के अनुवाद में विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध नाट्य-चिन्तक नेमिचन्द्र जैन का मत युक्तिसंगत प्रतीत होता है - "संस्कृत नाटकों के उपयोगी अनुवाद रंग-कार्य से जुड़े हुए लोगों के द्वारा अथवा उनके सक्रिय सहयोग से ही किये जा सकते हैं। साथ ही, अनुवादक को न केवल संस्कृत भाषा और नाट्य-रूढ़ियों की जानकारी, बल्कि स्वयं अपनी भाषा में काव्य-भाषा की व्यंजना शक्ति और उसके नाटकीय संयोजन की समझ होना आवश्यक है, जिससे वह संवादों के बहुस्तरीय संयोजन को अनुवाद में भी सुरक्षित रख सके स संस्कृत नाटकों के मूल संवाद एक साथ ही साधारण बोलचाल, काव्यात्मक पाठ, सस्वर पाठ और गेय पद का उपयोग करते हैं, गद्य, पद्य और गीत का उपयोग करते हैं। यथासम्भव अनुवाद में भी यह वैचित्र्य आवश्यक है।"³ स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों में मोहन राकेश एक सुप्रसिद्ध नाम है। स्वयं मोहन राकेश ने संस्कृत के कई नाटकों के अनुवाद किए। संस्कृत नाटकों के अनुवाद के विषय में मोहन राकेश के विचार भी नेमिचन्द्र जैन के उपरोक्त मत की पुष्टि करते हैं। "संस्कृत का समास-प्रधान रूप उस भाषा की अभिव्यंजना को बढ़ाने में जितना सहायक है, शायद उतना ही उसके सहज सम्प्रेषण में बाधक भी है। उस भाषा की आन्तरिक प्रकृति आज की भाषा से इतनी अलग है कि आज की किसी भी भाषा में उसका अनुवाद - विशेष रूप से एक नाटक का नाटकीय भाषा में अनुवाद - कई-कई स्तरों पर एक चुनौती बन जाता है। ऐसे में अनुवादक या तो मूल से काफी स्वतंत्रता लेने लगता है, या फिर मूल की संश्लिष्ट अभिव्यक्तियों को बिलकुल ही बचा जाता है स पर इन दोनों तरह के प्रयत्नों को एक सीमित अर्थ में ही अनुवाद कहा जा सकता है।"⁴ निश्चित रूप से यह चुनौतीपूर्ण कार्य है किन्तु उत्साही

रंगकर्मियों की सूझ-बूझ के चलते यह संभव हुआ है और हिन्दी रंगमंच में संस्कृत के 'क्लासिक' नाटकों की अनेक सफल प्रस्तुतियाँ होती रही हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में नये रंगान्दोलन के अन्तर्गत हिन्दी में प्रादेशिक भाषाओं से अनूदित नाटक प्रचुर मात्रा में मंचित और चर्चित हुए स कुछ नाटक तो ऐसे भी रहे जो मूल भाषा से पहले हिन्दी में अनूदित होकर मंचित हुए। प्रादेशिक भारतीय भाषाओं में विशेषतः बांग्ला, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम आदि भाषाओं के नाटकों के अनुवाद और उनकी प्रस्तुतियाँ हिन्दी नाटकों से भी अधिक सराही गयीं हैं। मराठी से विजय तेंदुलकर के नाटकों - 'खामोश अदालत जारी है', 'घासी राम कोतवाल' 'पंछी ऐसे आते हैं', 'सखाराम बाइंडर', 'कमला' आदि, जयंत दलवी कृत 'संध्या छाया' गोविन्द देशपाण्डे का 'उध्वस्त धर्मशाला', पु. ल. देशपांडे का 'कस्तूरी मृग', खानोलकर का 'एक शून्य बाजीराव' के साथ अन्य कई मराठी नाटककारों के बहुत-से नाटक हिन्दी में अनूदित होकर मंचित और प्रशंसित हुए स बांग्ला से रवीन्द्रनाथ टगौर के नाटकों के अलावा बादल सरकार 'बाकी इतिहास', 'एवम इन्द्रजित', 'पगला घोड़ा', 'जुलूस', 'आधी रात' कन्नड़ से गिरिश कर्नाड के 'तुगलक', 'हयवदन', 'आद्य रंगाचार्य का 'सुनो जनमेजय' आदि नाटक हिन्दी रंगमंच में खूब लोकप्रिय हुए हैं। "निश्चय ही इन नाटकों की प्रस्तुति से निर्देशकों ने नई जमीन हासिल की और भारतीय रंग जगत को अपने खोये हुए गौरव को पाने का किंचित संतोष भी हुआ स यह वे नाटक थे जो वर्षों बाद मनुष्य के सामने बड़े प्रश्नों को रख पाये, वर्तमान जीवन के संकटों को समझने की कोशिश कर पाये, मनुष्य जीवन की त्रासदी के कारणों और उसकी विडंबनाओं को देख पाने की चेष्टा करने के साथ ही स्त्री-पुरुष सम्बंधों और उसमें प्रेम-अप्रेम की निहित संभावनाओं की खोज के साथ-साथ विघटित हो रहे मूल्यों की खोज में सफलतापूर्वक उतरे थे।"⁵ निश्चित रूप से प्रादेशिक भाषाओं के हिन्दी में अनूदित नाटकों के मंचन से 'अखिल भारतीय रंगमंच' की संकल्पना को काफी बल मिला।

आधुनिक हिन्दी रंगमंच में विश्व की कई भाषाओं के नाटक अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत होते रहे हैं। हिन्दी में पहले-पहल विदेशी नाटकों के अनुवाद की शुरुआत 1879 में हुई। जोसेफ एडिसन के नाटक 'केटो' को तोताराम ने 'केटोवृत्तांत' नाम से अनूदित किया। इसी वर्ष मुंशी इमदाद अली ने शेक्सपियर के 'कॉमेडी ऑफ एरर्स' नाटक को 'भ्रमजालक' नाम से हिन्दुस्तानी भाषा में अनूदित किया स अगले ही वर्ष भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट ऑफ द वेनिस' का 'दुर्लभ बन्धु' नाम से अनुवाद किया। हिन्दी में विदेशी भाषाओं से अनूदित नाटकों में सबसे अधिक अंग्रेजी और अंग्रेजी में भी शेक्सपियर के नाटक हैं। एक समय था कि जब पारसी कम्पनियाँ भी बहुतायत के साथ शेक्सपियर के नाटकों को उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी में अनुदित-रूपांतरित करके खूब कमाई किया करती थीं। विदेशी भाषाओं के नाटकों के अनुवाद और उनका प्रस्तुतीकरण भी अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस विषय में नाट्य-चिन्तक नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं - "विदेशी नाटकों के अनुवादों के प्रदर्शन में एक कठिनाई भी है। उसमें प्रस्तुत पात्रों के व्यक्तित्व से, उनके सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानसिक जगत से, साधारणतः भारतीय निर्देशक और अभिनेता का केवल दूर से ही, किताबों के द्वारा, परिचय होता है। मूल में वे एक निश्चित सांस्कृतिक-मानसिक परिवेश से उपजे होते हैं, और किसी विशेष नाट्य-परम्परा की अपनी रूढ़ियों से निर्धारित हुए होते हैं। उस सबसे संवेदनशील परिचय के बिना भारतीय रंगमंच पर उनका प्रस्तुतीकरण बड़ा सामान्यीकृत अथवा सतही, बाह्य और बनावटी ही हो सकता है। भारतीय रंगकर्मी के - अभिनेता या निर्देशक के - पास अकसर इतने साधन नहीं होते कि वह सूक्ष्म और गहरे अध्ययन द्वारा यह परिचय प्राप्त कर सके। बहुत से रंगकर्मी इतने परिश्रमी, अध्यवसायी और आन्तरिक सत्य की उपलब्धि के लिए इतने बेचैन भी नहीं होते कि उसको प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रयास करें स फलतः उनका ध्यान ऊपरी

टीम-टाम और एक प्रकार की रंगीय तड़क-भड़क और सत्य के गौण पक्षों पर केन्द्रित होने लगता है, पश्चिमी नाटकों में अन्तर्निहित गहरे नाट्यानुभव को प्राप्त और सम्प्रेषित करने पर नहीं।”⁶ निश्चित रूप से किसी विदेशी भाषा को हिन्दी में अनूदित करते समय मूल भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के मध्य विवेक-सम्मत संतुलन रखना होगा, तभी अनूदित नाटक के मंच पर सफल होने की प्रबल संभावनाएँ बनेंगी। इन चुनौतियों के बावजूद हिन्दी रंगमंच में प्रमुख विदेशी भाषाओं के नाटकों के अनूदित रूपों का मंचन बदस्तूर जारी है। विदेशी भाषाओं के नाटकों के हिन्दी में अनुवाद की बात करें तो यूनानी, ग्रीक, जर्मनी, अमेरिकी, रूस, फ्रांसीसी, इतालवी आदि भाषाओं की प्रचुरता रही है। हालाँकि, उनमें से सराहे कुछ ही जाते हैं – सटीक अनुवादक के साथ रंगकर्मियों की कल्पनाशीलता के तालमेल से हर अनूदित नाटक की सफलता निर्भर करती है। ऐसे नाटकों की सूची में रघुवीर सहाय द्वारा शेक्सपियर के ‘मैकबेथ’ का ‘बरनम वन’ (निर्देशक ब. व. कारंत), मुद्राराक्षस द्वारा गोगोल के ‘इंस्पेक्टर जनरल’ का ‘आला अफसर’ (निर्देशक बंसी कौल) प्रमुखता से आता है। विदेशी भाषा के नाटकों में सोफोक्लीज, युरिपिडिज की त्रासदियाँ, शेक्सपियर, मोलियर, इब्सन, चेखव, गोर्की, टोलस्टाय, सार्त्र, ब्रेख्त, बर्नाड शा, कामू जैसे विश्व-प्रसिद्ध नाटककारों के लगभग सभी नाटक हिन्दी रंगमंच में अनूदित होकर प्रदर्शित हो चुके हैं। हिन्दी रंगमंच में एक ही आलेख को अलग-अलग दृष्टि से प्रदर्शित करने के भी अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिन्दी रंगमंच में दूसरी भाषाओं से अनूदित होकर प्रस्तुत होने वाले नाटकों की एक लम्बी फेहरिस्त है। अनूदित नाटकों के माध्यम से हिन्दी रंगमंच की प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। रंगकर्मियों ने संस्कृत के साथ-साथ देशी और विदेशी भाषाओं के नाटकों के हिन्दी रूप को लोक-नाट्य शैलियों में प्रस्तुत करके नाट्य-विधा की ‘प्रयोगात्मकता’ के दर्शन करवाये हैं स नये विषयों, नयी नाट्य-शैलियों के साथ विभिन्न भाषाओं का आपसी संवाद रंगमंच पर अनूदित नाटकों के माध्यम से संभव हो सका है।

संदर्भ :

1. तनेजा, जयदेव, आधुनिक भारतीय रंगालोक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2006, पृ. 66
2. <https://hi.wikibooks.org/wiki>
3. जैन नेमिचन्द्र, रंगदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1983, पृ. 96.
4. तनेजा जयदेव(सं), मोहन राकेश नाट्य-विमर्श, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2003
5. <https://samalochan.com/indian-theatre/>
6. जैन नेमिचन्द्र, रंगदर्शन, पृष्ठ संख्या-124, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1983



इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में प्रतिरोध का जातीय स्वर

○ मणि रंजन राय¹

जड़ से ज्वलंत की यात्रा संघर्षमयी है। दलित प्रश्न किसी एक आंदोलन का प्रत्यारोपित चिंतन नहीं है। भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था उत्तर वैदिक काल तक जन्म प्रधान होने लगी। वर्ण ने अपना वरण भाव खो दिया। समान सामाजिक अधिकारों से वंचित कर धर्म नियंताओं ने शूद्रों को अछूत की श्रेणी में डाल दिया। दस्यु से दास बनाने के क्रम में सामाजिक उत्पीड़न और शोषण अनवरत हो चला। समाज संचालन के लिए वर्चस्ववादियों द्वारा धर्म के नाम पर विकृत नियमावली का एकात्मक पाठ शुरू होने लगा। नियम और प्रतिबंध का टूटना सतत प्रक्रिया है। कालांतर में जातिगत उप विभाजन से तन की अस्पृश्यता का आघात मन की अस्पृश्यता में बदल गया। उत्पीड़न की कोख से पनपी आज की दलित चेतना जो साहित्य के क्षेत्र में दलित साहित्य, संस्कृति और समाजशास्त्र में दलित विमर्श व राजनीति में सामाजिक न्याय और सत्ता विमर्श के रूप में व्यक्त होती दिखाई दे रही है, इसका उत्स गौतम बुद्ध के चिंतन में है। बुद्ध ने विस्मृत होती कर्मणा संस्कृति की ओर ध्यान केंद्रित किया “न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो। कम्मना वसलो होति, कम्मना होति ब्राह्मणो।”¹ सामाजिक विकृति के विरेचन, नैतिक व मानव मूल्यबोध के लिए बौद्ध और जैन धर्मों का उत्थान बौद्धिक क्रांति सिद्ध हुआ। बौद्ध साहित्य से अनुसृत दलित चेतना सिद्धों और नाथों की वाणियों से होती हुई निर्गुण संत कवियों की अभिव्यक्ति में मुखर हुई। चौरासी सिद्धों में तीस से अधिक शूद्र थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, “सिद्धों और नाथों में अधिकतर मछुए, चमार, धोबी, डोम, लकड़हारे, दर्जी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। अतः जाति पाति के खंडन तो वे आप ही थे।”²

अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन का प्रथम चरण दक्षिण भारत के आलवार संतों से शुरू होता है। वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना के नाम पर ब्राह्मण वर्चस्व के विरुद्ध तमिलों का भक्ति आंदोलन खड़ा हुआ। आलवारों में अधिकांश दलित संत ही थे। आलवार, नयनार, अडियार और 13वीं शताब्दी के उत्तर भारत के संतों का ब्राह्मण विरोध उस बीज मंत्र को लेकर उठा, जिसमें सभी जीव ब्रह्म हैं परंतु शूद्र की गणना उनमें नहीं है। हिंदी क्षेत्र में निर्गुण संतों में कबीर, रैदास, दादू, पलटू आदि ने वर्ण व्यवस्था, जातीय विसंगतियों और आडंबरों पर खुलकर

1. शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

चोट की है।

“रविदास ब्राह्मण मत पूजिए, जउ होवै गुन हीन।
पूजिए चरण चण्डाल के, जउ होवै गुन प्रवीन।”³

कबीर की वाणी में धर्म और जाति व्यवस्था भेदक प्रपात अग्रणी है। कबीर का काव्य जाति, धर्म, कर्म काण्ड, धर्मशास्त्रों और समाज विभेदक आडंबरों पर जितने सवाल पूछता है, उतने सवाल और वैसा तेवर शायद ही किसी कवि में दिखाई पड़ता हो। प्रश्न पूछने की यह चेतना हीरा डोम की कविता ‘अछूत की शिकायत’ से स्वानुभूतिजनित वेदना में परिणत हो गई। यह कविता सितंबर, 1914 की सरस्वती में प्रकाशित हुई, जो सरस्वती में स्थान पाने वाली संभवतः भोजपुरी की एकमात्र कविता थी -

“हमनी के रात दिन दुखवा भोगत बानी / हमनी के सहेबे से गिनती सुना इबि।
हमनी के दुख भगवनओ ने देखता जे / हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।
हमनी के इनरा के निगिचे न जाइले जा/ पांके में से भरि - भरि पियतानी पानी।
पनही से पिटि-पिटि हाथ गोंड़ तुरि दैलें / हमनी के एतनी काही के हलकानी।”⁴

इस अछूत वेदना का प्रतिकार डॉ. अंबेडकर के ‘महाड़ तालाब’ से पानी पीने के आंदोलन के प्रथम चरण में था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों को स्वाभिमान, स्वावलंबन एवम् स्वोद्धार के लिए ‘शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो’ की प्रेरणा दी। इनके द्वारा मराठी के ‘मूकनायक (1920)’ साप्ताहिक पत्र का संपादन, दलित हक की आवाज के लिए 1923 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना, 1927 से काला राम मंदिर प्रवेश, लगातार अन्य पूजा स्थलों में प्रवेश, महार वतन जैसे आंदोलनों का नेतृत्व दलित मुक्ति आंदोलन में विरोध की क्रमबद्ध अनुगूँज है। भारत की जाति व्यवस्था को लेकर इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं और कोलंबिया विश्वविद्यालय में अपने शैक्षिक सत्र के दौरान संगोष्ठियों में ‘द कास्ट इन इंडिया’ जैसे शोधपत्र प्रस्तुत कर इस समस्या को वैश्विक स्तर पर पहुंचाया। इनकी गोलमेज सम्मेलन में दलितों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र तथा आरक्षण की पुरजोर मांग ने ही महात्मा गांधी का ध्यान दलित जीवन की समस्याओं की ओर केंद्रित किया। 1932 में ही अछूत समझी जाने वाली जातियों के शोषण के खिलाफ गांधी जी ने देशव्यापी आंदोलन चलाया और हरिजन सेवक संघ की स्थापना की।

शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण की बहुमुखी वेदना और तज्जनित नकार की घोषणा 1960 ई. से मराठी दलित साहित्य आन्दोलन के रूप में स्पष्ट देखी जाती है। इस दशक में जन आंदोलन जोर पकड़ रहा था। आंध्रप्रदेश का लोकगायक समूह ‘दिगम्बर कवालू’ के गायक दलितों से जुड़कर उनकी पीड़ा, जातिगत विभेद, शोषण और उत्पीड़न को लोकगीतों में उजागर कर रहे थे। “इसी प्रकार का एक समूह ‘भूखी पीढ़ी’ के नाम से बंगाल में भी काम कर रहा था। यह कवि-साहित्यकारों का एक समूह था, जो अपनी वाणी में उत्पीड़ित जनता के कष्टों, असंतोष और शिकायतों तथा उनकी कातर भावनाओं को व्यक्त कर रहा था। महाराष्ट्र में ‘लघु पत्रिका’ आंदोलन उभरा, जिसने साहित्य के क्षेत्र में हिंदू लेखकों को चुनौती दी।”⁵ इसी दशक में वैश्विक धरातल पर नस्लीय असमानता का विरोध अमेरिका में अश्वेत आंदोलन के रूप में हो रहा था। अमेरिकी ब्लैक पैंथर पार्टी को आत्मरक्षा का प्रतीक मानकर उससे प्रभावित चिंतकों में से नामदेव ढसाल और जे. वी. पवार ने 1972 में ब्लैक पैंथर की तर्ज पर ‘दलित पैंथर’ का गठन करके दलित आंदोलन की कार्यकारी घोषणा कर दी। इस कारण दलित मुक्ति आंदोलन की नींव पर खड़ा मराठी दलित साहित्य विभिन्न विधाओं में समृद्ध है। इसका औपन्यासिक वितान हिंदी की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। जिसमें शरण कुमार

लिंबाले के 'नर वानर' और 'हिंदू', अण्णाभाऊ साठे का 'फकीरा', नामदेव कांवले के 'राघवेल' जैसे उपन्यास बहुचर्चित हैं।

सदियों से सामाजिक प्रतिरोध की प्रतिक्रिया में वंचितों- उत्पीड़ितों का चिंतन स्वानुभूति की अनिवार्यता को आज दलित साहित्य के रूप में स्थापित कर रहा है। दलित लेखक और आलोचक, गैर दलित रचनाकारों के दलित चिंतन को श्वाके पांव न फटे बिवाई, वह क्या जाने पीर पराईश का हवाला देकर सिरे से खघरिज कर रहे हैं।

कथ्य के धरातल पर प्रेमचंद के 'गोदान', रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ', अमृतलाल नागर के 'नाच्यौ बहुत गोपाल', नागार्जुन के 'बलचनमा', गिरिराज किशोर के 'परिशिष्ट', अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', मदन दीक्षित के 'मोरी की ईट', जगदीश चंद्र के 'धरती धन न अपना', 'नरककुंड में वास' और 'अपनी अपनी जमीन' आदि उपन्यास दलित चिंतन की सबल अभिव्यक्ति हैं। जातिगत उच्चता बोध से विरत प्रेमचंद की दलित चेतना "तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं"⁶ विद्रोह और आत्मबल को सशक्त करती है, किंतु दलित होने की मान्य शर्त इन रचनाओं के साहित्यिक अवदानों पर सहानुभूति के साहित्य का लेबल लगा रही है।

2003 में दलित चेतना संपन्न मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास 'वीरांगना झलकारी बाई' हमारे इतिहास बोध को कटघरे में खड़ा करता है। इतिहास के पन्नों में ओझल 1857 के क्रांतिकारियों में झलकारी बाई सरीखे दलित चरित्र की कथा के पुनर्पाठ द्वारा लेखक ने जातिगत कुंठाओं को तोड़ने का प्रयास किया है। प्रसंगवश, सिपाही विद्रोह से 1947 तक के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में दलित- पिछड़े लोगों का योगदान कम नहीं है। इतिहास में भूले- बिसरे ऐसे अनेक लोगों के स्मरण में डी. सी. डींकर, माता प्रसाद, मदान, चारु गुप्ता आदि ने लम्बी सूची तैयार की है। दलित स्त्रियों की वर्तमान अनुशंसा हेतु उनका अतीतबोध समृद्ध करते हुए चारु गुप्ता लिखती हैं - "दलित वीरांगनाओं के आख्यान भारतीय अतीत में उनकी सघन उपस्थिति से भरे हुए हैं। दरअसल 1857 के सशस्त्र संघर्ष में दलित महिला प्रतीकों की संख्या पुरुषों से कहीं ज्यादा है।"⁷

राजस्थानी परिवेश के सामंती शासन का विद्रूप रूप यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' ने 'ढोलन कुंजकली' में प्रस्तुत किया है। स्त्री के शोषण, उत्पीड़न, अपमान की करुण कहानी बयां करता यह उपन्यास उस दलित स्त्री के चरित्र को उभारता है; जिसकी देशभक्ति, शौर्य और आमोत्सर्ग की भावना विस्मयजनक है। गांवों में दलित शक्ति के अभ्युदय, ध्वस्त होती सामंती व्यवस्था और बदलाव की प्रक्रिया में गतिशील ग्रामीण जीवन के शुभ अशुभ सभी पक्षों का उद्घाटन रामधारी सिंह दिवाकर के शकाल संघ्याश उपन्यास में हुआ है। जातीयता की दीवार ढहाने के लिए अंतर्जातीय विवाह सम्बन्ध को रचता रवींद्र वर्मा का शकाली मंजिलश उपन्यास हरि और कृष्णा के रूप में स्वस्थ सामाजिक सोच की स्वीकृति प्रस्तुत करता है।

शिवमूर्ति का उपन्यास 'तर्पण' दलित प्रतिरोध की तहरीर है। उपन्यास की कथाभूमि उत्तर प्रदेश के अवध प्रांत की है, जिसकी मुख्य कथा दो परिवारों धरमू पंडित और पियारे चमार के माध्यम से सवर्ण बनाम दलित संघर्ष को व्यक्त करती है। पियारे सहित गांव के बहुसंख्यक दलित सवर्णों के खेतों में काम करते हैं और अल्प मजदूरी के विरोध में आंदोलन कर चुके हैं। वस्तुतः उपन्यास की पृष्ठभूमि में वर्ग-संघर्ष कार्यरत है। शिवमूर्ति वर्ग की अपेक्षा वर्ण संघर्ष को वरीयता देते हुए उपन्यास की मूल मंशा स्पष्ट करते हैं - "वह वर्ग संघर्ष था। रोटी के लिए। यह वर्ण संघर्ष है इज्जत के लिए। इज्जत की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा जरूरी है।"⁸

धरमू पंडित के बेटे चंदर द्वारा मटर के खेत में पियारे दलित की बेटी रजपतिया के बलात्कार की कोशिश,

रजपतिया व दो अन्य स्त्रियों के संयुक्त विरोध से असफल हो जाने के बाद चोरी का आरोप लगाकर निरीह करने जैसी दुश्चारियों का ठीकरा दलितों व स्त्रियों “नान्हों की छोकरीयाँ” के सिर पर फोड़ने की घटना ग्रामीण समाज में मामूली और असहायता में लगभग स्वीकार्य समझी जाती रही हैं। दलितों को अछूत मानने वाले, उनके स्पर्श से अशुद्ध हो जाने वाले और उनसे परस्पर संबंध रखने पर भ्रष्ट हो जाने वाले तथाकथित ऊँची जातियों के पुरुष दलित स्त्रियों के संसर्ग से अशुद्ध नहीं होते। उपन्यास में रजपतिया की मां इस प्रसंग को पंडिताइन के समक्ष बेबाकी से जाहिर करती है। एक दलित महिला का तैश “नीच होगी तुम। तुम्हारे पूत-भतार। जो गली-गली कूकुर जैसे पूँछ हिलाते सूँघते घूमते हैं।”⁹ ऊँच नीच के जन्मना मानक को चुनौती देता है। ऐसी घटनाओं का संज्ञान उस वक्त लिया जाना शुरू हुआ जब राजनीति में दलित महिला मायावती ने मुख्यमंत्री के रूप में प्रवेश किया। यह उपन्यास बदलते समीकरण में हाशिएकृत समाज के संगठन और सशक्ति के तेवर लेकर उपस्थित हुआ है। पियारे द्वारा पंडिताइन के जातिगत दंभ का प्रतिवाद “किसी गुमान में मत भूलिए पंडिताइन। अब हम ऊँ चमार नहीं हैं कि कान पूँछ दबाकर सब कुछ सह, सुन लेंगे। चिउंटे को गुड़ का मजा लेना महंगा कर देंगे।”¹⁰ दलितों के प्रति सदियों से होते आ रहे पशुवत व्यवहार की अस्मिताबोधक ललकार है। प्रायः जब्त कर जाने वाली ऐसी घटनाओं का प्रतिकार दलित सामाजिक कार्यकर्ता भाई जी के सहयोग और ग्रामीण दलितों के संगठन की प्रेरणा से पियारे द्वारा रिपोर्ट दर्ज कराकर हुई है। यहाँ ग्रामीण राजनीति की नई करवट देखी जा सकती है, जब भाई जी छेड़छाड़ और बलात्कार के प्रयास को बलात्कार की धारा लगवाकर कानूनी दांव पेंच समझाते हैं। पियारे की असहमति के बावजूद हरिजन एक्ट का प्रयोग, रजपतिया (स्त्री) की अस्मिता के प्रश्न का राजनीतिक हार-जीत की मंशा में तब्दील हो जाना, चंदर के कुछ दिन जेल वास के उपलक्ष्य में दलित बस्ती में सूअर, शराब व नाच का आयोजन, लवंगलता हलवाई जैसी लालची चरित्र के नियोजन में लेखक ने दलितों के प्रति सहानुभूति रखते हुए उनकी कमजोरियों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखी है। इस उपन्यास पर नीलम आर सिंह के निर्देशन में शर्पणश फिल्म का निर्माण दलित पीड़ा को तर्पित करता है। यह कृति आंचलिक जीवन की रमणीयता विक्षत किए बगैर सतत जातिगत शोषण, आडम्बर और संघर्ष की अभिव्यक्ति है।

दलित स्त्री अपनी सामाजिक स्थिति- लैंगिक और जातिगत उत्पीड़न में दोहरी अभिशप्त रही है। आमतौर पर दलित स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार निरंतर होते आए हैं, उनमें से 19वीं शती के आरंभिक वर्षों में केरल के शासक द्वारा दलित महिलाओं के स्तन ढंकने की एवज में कर वसूली नितांत अमानवीय, क्रूरतम और हृदयविदारक व्यवस्था रही है। एड़वा जाति की महिला नंगेली का व्यवस्था के विपरीत ‘स्तन ढंकना और अपने स्तनों को काटकर करपूर्ति की घटना’ शोषण की अति में आरंभ की घोषणा करती है। हाशिए के बाहर खड़ी इस उपस्थिति की चीत्कार- “केरल में जबरदस्त आक्रोश पैदा हुआ, जिसे मलयाली भाषा में ‘सन्नार लहाला’ उभोवस्त्र अधिकार विद्रोह कहा जाता है।”¹¹ - क्रांति का बिगुल बजाती है।

वैश्वीकरण के दौर में ज्ञान विज्ञान, तकनीकी और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति में संतोषजनक सुधार हुए हैं। परंतु जातीय प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण दलित महिलाओं में यह चेतना काफी देर में दिखाई देती है। 1994 में गठित ‘अखिल भारतीय दलित वीमेंस फोरम’ के बाद दलित स्त्रियों की आवाज सुनी जाने लगी। कर्नाटक की डॉ. रूथ मनोरमा का नाम दलित महिला उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष और उनके कल्याण के प्रयास विशेष हैं। अपने उल्लेखनीय योगदान के लिए 2006 का अंतर्राष्ट्रीय राइट लाइवलीवुड अवार्ड प्राप्त किया। इन्होंने नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित वूमेन और नेशनल अलायन्स ऑफ वीमेन की अध्यक्षता बखूबी संभाली। लेकिन इस प्रकार के संगठनों की गतिविधियाँ दक्षिण

भारत में ही अधिक दिखाई पड़ रही हैं, उत्तर में इसका प्रचार कम है। इसका सीधा कारण यह है कि दक्षिण की अपेक्षा उत्तर में दलित महिलाओं में शिक्षा की घोर कमी है। आज हिंदी लेखन के क्षेत्र में कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे, अनिता भारती, कंचन लता, रजनी तिलक, रमणिका गुप्ता, किरन देवी भारती, कावेरी जैसी महिलाएं इस चेतना की सबल अभिव्यक्ति हैं।

आत्मकथा और कहानी से आगे बढ़ते हुए 2007 में प्रकाशित रमिस रमियाश उपन्यास किसी दलित महिला द्वारा प्रस्तुत पहला उपन्यास है। लेखिका कावेरी ने एक दलित लड़की रमिया के संघर्षशील जीवन, अस्मिता बोध और शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता की अगुवाई की है। दलित स्त्री-शिक्षा को आधार बनाकर कावेरी ने दलित चिंतन की औपन्यासिक यात्रा को 'मिस रमिया' के रूप में नया समीकरण दिया है। उपन्यास का ताना-बाना दो मित्रों - दलित लड़की रमिया और गैर दलित श्यामली के इर्द-गिर्द बुना गया है। शारीरिक और मानसिक रूप से गुलाम बनाए गए दलितों विशेषकर दलित स्त्रियों की शिक्षा भाटशाही व्यवस्था में एक चुनौती रही है। शूद्र स्त्रियों को स्वयं के लिए सजग और इस जाति व्यवस्था के विरोध का नेतृत्व करने के लिए शिक्षा का माध्यम देने में ज्योतिबा फुले की पहल अविस्मरणीय है। स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उन्होंने पहला दलित लड़कियों का स्कूल 1848 ई. के औपनिवेशिक भारत ने खोला और पत्नी सावित्रीबाई इस चुनौती को स्वीकार करते हुए पहली शिक्षिका बनीं। इस उपन्यास की नायिका रमिया उसी चुनौती का सामना करने के लिए प्रतिबद्ध है। आजादी के बाद भी जाति और वर्ग के आधार पर होने वाले शोषण थमे नहीं। आज भी ग्रामीण समाज में ये जातिगत विभेद अनायास ही देखने को मिल जाते हैं। भारतीय संविधान का अनु. 15 स्पष्ट रूप से लिंग, धर्म, जाति और क्षेत्रीयता के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करता है। विद्यालय समानता और बंधुत्व के इन अधिकारों के संचालन का सुगम माध्यम है परंतु गांव की स्कूली शिक्षा के दौरान रमिया के साथ मास्टर साहब का रवैया विद्या मंदिर की वह छवि धूमिल करता है - "अरे तू कौन है? बाल्टी छू दी। बगुल वाला डंडा गर्दन में फंसाकर टीकाधारी मास्टर ने उसे अपनी ओर खींचा और तड़ातड़ दो झापड़ जड़ दिए।"¹²

जातिगत दुराभाव की भुक्तभोगी रमिया मैट्रिक के बाद गांव के गरीब दलित बच्चों को मुफ्त शिक्षा देती है और यहाँ भी माधो चाचा जैसे लोगों की कुटिलता देखते बनती है, जब उसके स्कूल को मान्यता दिलाकर मधु के रूप में सवर्ण प्रधानाध्यापिका को नियुक्त किया जाता है। दलित स्त्री को समाज व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर खड़ी देखने का अभ्यस्त मधु का तथाकथित उच्च संस्कार ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक मानसिकता को पोषित करता है, "रमी, तुम हमको आंख दिखाएगी। आखिर मैं कितना भी हूँ तुमसे जाति की ऊंची हूँ। इस नीच गधे को मारूँ नहीं तो और क्या? सब कुत्ते गंगा नहायेंगे तो बर्तन कौन दुनदुनायेगा। ये लोग पढ़-लिखकर क्या करेंगे।"¹³ उपन्यास में मिस रमिया और श्यामली की घनिष्टता, श्यामली का दलित बैजू के प्रति निर्दोष प्रेम विकसन, पात्रों द्वारा बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों व लक्ष्य को निरंतर संवाद स्वरूप व्यक्त करना दलित मिशन की सोपानबद्ध कसावट एवम् लेखिका का काम्य समाज है।

दलित लेखन एक रचनाधर्मिता नहीं, साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा है। "यह वक्त व्यक्ति का नहीं, समूह का है।"¹⁴ अस्तित्व की इस लड़ाई के प्रति चौकस अजय नावरिया उपन्यास 'उधर के लोग' सन् 2007 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का कथासूत्र सुविधाभोगी, शिक्षित, उच्च पदों पर आसीन धनाढ्य दलित पात्रों के हाथों में है जो सवर्ण बनाम दलित फॉर्मेट को तोड़ता हुआ दलित बनाम दलित चिंतन को व्यक्त करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्णों में एकता के बरअक्स शूद्र वर्ण में अनेक उपजातियां हैं। परिणामतः कई बार जातियों में बंटा यह दलित समाज दासता के विरुद्ध अपनी एकता को आपसी संघर्ष से भंग कर देता है। "यहां अछूतों में भी जात-पात और भेदभाव है।"¹⁵ उपन्यास इसी चिंता को लेकर उभरा है। इसमें 'इधर के लोगों' की गुलामी, शोषण व

उत्पीडित की वेदना और विद्रोह नहीं बल्कि 'उधर के लोगों' की शराब और कबाब के बीच दलित समाज के अंतर्विरोध दर्ज हुए हैं।

गौरतलब है कि दलित चिंतन की औपन्यासिक यात्रा में कुछेक उपन्यास प्रतिशोध और जातिगत कुंठाओं से लैस नजर आते हैं। ऐसे उपन्यासों की उपयोगिता दलित साहित्य में संख्यात्मक वृद्धि तक सीमित हो जाती है। रूपनारायण सोनकर के उपन्यास 'डंक' और 'सूअरदान' इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। ये दोनों उपन्यास जातिगत संघर्ष, दुराभाव, दलित चिंतन की स्वघोषणा में दंभ जनित आलोचनात्मक बातों और आपत्तिजनक प्रसंगों का ढेर खड़ा करते हैं। प्रगतिशीलता और प्रयोगात्मकता की अति में जातिगत समस्या गौड़ पड़ गई है।

'डंक' उपन्यास में लेखक जाति व रूढ़िगत समस्याओं का अंकन और यथोचित प्रतिरोध दर्ज करके दलित चिंतन में गुणात्मक सहयोग देने का प्रयास करते हैं परंतु सेक्स पावर बढ़ाने के लिए वियाग्रा जैसी दवा का प्रयोग, विराट का अपनी प्रेमिका के छः वर्ष के शारीरिक संबंधों के दौरान गर्भ न ठहरने के उपाय बताना और बूढ़े व्यक्ति के ओरल सेक्स जैसे विवरणों में लेखक का अतिरिक्त रुझान पाठकों को ऊब व उपेक्षा से भर देता है। जाहिर है सूअरदान का शीर्षक गोदान की तर्ज पर रखा गया है। उपन्यास का केंद्र है रूढ़िवादी ब्राह्मण बनाम प्रगतिशील और उच्च शिक्षा प्राप्त दलित। दलितों की सामाजिक स्थिति और वर्ग व्यवस्था सुदृढ़ करने के लिए पिगरी फॉर्म जैसी व्यवस्था प्रशंसनीय है, वहीं सत्यनारायण त्रिपाठी के रूप में सूपर विलेन या पुजारी दयाशंकर जैसे पात्र का संयोजन सदियों से चले आ रहे दलित शोषण की प्रतिशोधात्मक संतुष्टि-सी प्रतीत होती है। उपन्यास में वियाग्रा और कीड़ा जड़ी, सूअर का मांस खाने से काम शक्ति में बढ़ोतरी जैसे अनावश्यक संवाद "जिन्ना काम शक्ति बढ़ाने के लिए सूअर का मीट खाते थे। काम की तृप्ति किसी भी धर्म से बड़ी होती है। .. सेक्शुअल पावर कमजोर होने पर मानव धर्म कमजोर हो जाता है। सेक्स पावर मजबूत होने पर मानव धर्म मजबूत हो जाता है। देश मजबूत हो जाता है।"¹⁶ संकीर्ण विचारों को बढ़ावा देते हैं। ऐसे ही बहुतेरे प्रसंग विदेशी-देशी, मेल-फीमेल पक्षियों की काम क्रीड़ा के तरीकों के विवरण और तुलना का सांकेतिक अर्थ उपन्यास का सतहीपन है। विदेशी महिला मिस हैरी सिल्वा से चार पुरुषों के विवाह की चर्चा द्वारा महाभारत काल के पांचाली प्रकरण से प्रतिद्वंद्विता की मंशा उजागर हुई है। मानव व जानवर के संगमन से मानवर तथा सूअर व गाय के संगमन से सुगाय की कल्पना ने प्राकृतिक नियमों का उपहास किया है और विज्ञान की रीढ़ तोड़ कर रख दी है। लेखक के ये उपक्रम न तो समाज को कोई शिक्षा या संदेश देते हैं, न ही स्वस्थ और सार्थक चिंतन का आग्रह करने में सफल होते हैं।

जाति एक सामाजिक रूढ़ि है और रूढ़ियों का ध्वस्त होना स्वस्थ सामाजिक चक्र है। आवश्यकता है दलित-गैर दलित के द्वंद्व से मुक्त होकर दलित चेतना संपन्न सभी कृतियों के समान संवेदनात्मक मूल्यांकन की। जातिगत विसंगतियों को रूपायित करते ये उपन्यास परिवर्तनीय समाज की दिशा में महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ :

1. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2022, पृ. 184
2. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2005, पृ. 10
3. कंवल भारती, संत रैदास एक विश्लेषण, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, द्वितीय संस्करण 2000, पृ. 168
4. डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2014, पृ. 90-91
5. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2022, पृ. 66
6. मुंशी प्रेमचंद, गोदान, पृ. 208

7. चारु गुप्ता, मर्दों के आगे थीं मर्दानी महिलाएं, हिंदुस्तान, 9 जनवरी 2007
8. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृ. 26
9. वही, पृ. 99
10. वही, पृ. 26
11. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2022, पृ. 619
12. कावेरी, मिस रमिया, आकाश प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007, पृ. 7
13. वही, पृ. 8
14. अजय नावरिया, उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 118
15. वही, पृ. 113
16. रूपनारायण सोनकर, सूअरदान, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 11



सुधि मेरे आगम की : यमदीप

○ अंकिता त्रिपाठी¹

यौनिकता की नींव पर खड़ी सभ्य समाज की इमारत हमारे नैतिकताबोध को प्रश्नांकित करती है। लैंगिक द्वित्व से इतर सोच सकना सामाजिक समीकरण से बाहर की बात रही है। अस्तित्व से व्यक्तित्व तक के प्रत्येक चरण में एक संकल्पना कार्यरत है- लैंगिकता की। पृथ्वी की सत्ता में नर व मादा के अतिरिक्त भी एक जंगम जीव है, जो अपनी मौजूदगी की जद्दोजहद में उलझा हुआ है। जैविक संरचना में लिंग और लिंगभाव अहम तत्व हैं। लिंग बाह्य विकास है एवं लिंगबोध पूर्णतः मानसिक प्रक्रिया। एक किन्नर पारिवारिक-सामाजिक स्तर पर जिस उपेक्षा, उपहास और उदासीनता का दंश झेलता है वह तो दृष्टिगत है परन्तु अपने अंतस् में जिस हलचल और अस्थायित्व की अदीठी यातना से गुजरता है, उसकी चर्चा नदारद है। यह लैंगिक विकलांगता कई मायने में अन्य दैहिक विकलांगता से भिन्न है, इसमें उस भाव को ध्यान में रखना आवश्यक है जो शारीरिक विकास के विपरीत व्यवहार, भाव भंगिमा और क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए प्रेरित करते हैं। समाज उनकी इन गतिविधियों को व्यवहार प्रणाली के मुनासिब नहीं समझता। प्रत्येक क्रिया की समान एवम् विपरीत प्रतिक्रिया होती है। यह प्रतिक्रिया उसके एकांत को बंजर बनाती है। समाज में उनके प्रति व्याप्त तमाम भ्रांतियां अल्पज्ञान और अज्ञानताजन्य ही हैं; जो भ्रमित न्यायिक मुद्रा में इन्हें असामाजिक घोषित करने लगती हैं। मानसिक प्रतिरोध सामाजिक न्याय की तलाश में विमर्श की मांग करता है। अतः दरकार है उन कारणों के दरियाफ्त की, जो तन से शुरू होकर मन के अभिव्यंजन के लिए हाशिए के बाहर आभासी कतार में हैं।

प्रजनन की स्वाभाविक प्रक्रिया में गुणसूत्रों का परस्पर संयोग xx(लड़की) और xy (लड़का) होता है। इस गुणसूत्रीय संयोजन में विकार होने पर कभी-कभी शिशु का लिंग निर्धारण नहीं हो पाता। ऐसा इन दशाओं में संभव है- गर्भाशय में xx या xy की जगह xo हो जाता है और शिशु सामान्य गुणसूत्र (46 के स्थान पर 45) की बजाय एक जोड़ी में केवल x गुणसूत्र के साथ जन्म लेता है। ऐसे में बाहर की जननेंद्रियों का विकास स्त्रीलिंग तो होता है परंतु अंडकोश व गर्भाशय अविकसित रह जाता है। फलस्वरूप संतानोत्पत्ति की क्षमता नहीं

1. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

होती, इसे मोनोसोमी एक्स या टर्नर सिंड्रोम कहते हैं। इसी प्रकार यदि शिशु एक अतिरिक्त गुणसूत्र के साथ जन्म लेता है तो उस स्थिति को ट्राइसॉमी या डाउन सिंड्रोम कहते हैं।

कभी-कभी किसी लड़की की आवाज पुरुषों जैसी होती है और स्तनों का विकास हो जाता है, जबकि स्त्री की जननेंद्रिय होते हुए भी मासिक धर्म नहीं होता क्योंकि उसका गर्भाशय विकसित नहीं हो पाता। यह 'एंड्रोजन इंसेंसिटिव सिंड्रोम' के कारण होता है। "इसमें टेस्टोस्टेरोन हार्मोन को गर्भ स्वीकार नहीं करता। गर्भ अगर पुरुषलिंगी है अर्थात् xy दोनों क्रोमोसोम मिलते हैं तो भी गर्भाशय द्वारा टेस्टोस्टेरोन हार्मोन को अस्वीकार कर देने के कारण पुरुष जननेंद्रियों का विकास नहीं हो पाता।"

आजकल एक शब्द प्रचलित है टॉमबॉयश। भ्रमवश युवाओं के बीच यह शब्द धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा है। टॉमबॉय की स्थिति तब होती है जब पुरुष हार्मोन का एंड्रोजन स्तर सामान्य से काफी अधिक हो जाता है। एक अन्य स्थिति में, गर्भ में पुरुष हार्मोन सामान्य से बहुत कम होने पर यौनांग विकसन हार्मोन अपनी भूमिका पूरी नहीं करते और पुरुषांग अर्धविकसित रह जाता है। इनमें स्त्रीत्व भावना अपनी प्रबल अवस्था में होती है। इसलिए इनका व्यक्तिगत-सामाजिक व्यवहार दृष्ट शारीरिक संरचना के पूर्णतः विपरीत होता है।

सदियों से पहचान की कार्यवाहियों में स्थगित किन्नरों के स्थान, उत्थान और वर्तमान स्थिति के संज्ञान हेतु यह उत्पत्तिपरक समझ अपेक्षित है क्योंकि जिस अपूर्णता का दोषारोपण उन्हें कमोबेश हर जगह मिलता रहा है वस्तुतः वह कमी उनके जन्म के पूर्व की प्रक्रिया में है। इन असमानताओं के अलावा कुछ परिस्थितिवश परिवर्तित किन्नर होते हैं। किन्नर समुदाय में इनकी अलग श्रेणियां निर्धारित हैं। महेंद्र भीष्म का उपन्यास 'किन्नर कथा' में इनकी विस्तृत जानकारी मिलती है "लिंगोंच्छेदन कर बनाए गए हिजड़ों को 'छिबरा' और नकली बने मर्दों को 'अबुआ' कहते हैं, वैसे हुजूर हिजड़ों की चार शाखाएं होती हैं- बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। .. बुचरा जन्मजात हिजड़ा होते हैं, नीलिमा स्वयं बने, मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़े हैं।"²

किन्नर समुदाय में अधिकांश किन्नर का लिंगबोध स्त्रीत्व का होता है। इनमें आधे से अधिक चिकित्सीय उपक्रम से अपनी वास्तविक पहचान को प्राप्त कर सकते हैं जबकि परिवार और समाज इसे पुरुषत्व और नपुंसकता से जोड़ कर सामाजिक प्रतिष्ठा पोषण में बाधक व अपमान का विषय मानकर इनकी दुर्गति का कारण बन जाता है।

इनकी स्वीकार्यता का प्रयास आजकल का प्रश्न है। पौराणिक, ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रन्थों में इनके जीवन से संबंधित विभिन्न जानकारियां और कई प्रसिद्ध प्रसंग देखने को मिलते हैं। महाभारत में वृहन्नला, शिखंडी, अरावन का प्रसंग, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वात्स्यायन के कामसूत्र और रामचरितमानस का रामवनगमन प्रसंग लोक में चर्चित है। विदित है रामवनगमन की कथा का विशेष महत्व इसलिए है कि यहीं से किन्नरों के मंगलमुखी होने और शुभ अवसरों पर उपस्थित होकर आशीर्वाद देने की प्रथा शुरू हुई। भारतीय समाज धर्मभीरु है। यह समाज आज तक किन्नरों की बधाइयां, आशीष के लोभ और श्राप के भय की बाध्यता से इनकी क्षणिक महत्ता को सहर्ष स्वीकार कर लेता है अन्यथा औपनिवेशिक कानून, उत्तर औपनिवेशिक भ्रमित सामाजिक धारणा व उपयोगितावादी समाज इनकी उपस्थिति पर पूर्ण प्रतिबंध ही लगा देता। कालांतर में मूलभूत सुविधाओं से वंचित किन्नर समुदाय ने इसे ही अपनी सुनिश्चित आजीविका साधन के रूप में स्वीकार कर लिया। मुस्लिम शासन काल और राजपूताना शासन के दौरान इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति सम्मानजनक थी। इन्हें प्रशासनिक कार्यों, हरम की निगरानी, मध्यस्थ, गुप्तचर, प्रबंधन और सैन्य पदों पर बकायदा नियुक्त किया जाता था। इनकी ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा से इतिहास के कई पन्ने भरे हैं। विभिन्न कलाओं में पारंगत

तत्कालीन किन्नर इतिहास लेखन और साहित्य सृजन में भी सक्रिय रहे। किन्नर आनंदराम कृत 'गीतामाहात्म्य', मायाराम कृत 'देवी जी रा छंद', हरकरण कृत 'कृष्ण पद', बख्तावर खां नाजिर की इतिहास पुस्तक 'विरात उल आलम', 'तारीख-ए-अलफी', एवम् 'मिराज-ए-जहां नुमा' आदि इनकी उत्तम समाजार्थिक दशा के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। कई साहित्यकारों ने इस अतीत के गौरवमयी स्मरण द्वारा किन्नरों के भविष्य संरक्षण का प्रयास किया है। प्रसंगवश 'यमदीप' की लेखिका नीरजा माधव का मतव्य उल्लेखनीय है - 'उपेक्षित अन्य कालों में भी हुए होंगे ये। पर हरमों में या राजदरबार में जिस तरह इनका उपयोग किया जाता रहा, उसी तरह आज भी किसी अन्य कार्य में इन्हें लगाया जा सकता है- पुलिस में, सेना में या समाजसेवा में। हमें लगता है, ये जितनी निष्ठा और ईमानदारी से काम करेंगे, उतनी निष्ठा से हमारा काम करना मुश्किल है।'³

गुलाम मस्तिष्क आजादी के ढोल पीट रहे हैं। असल में समाज में अब तक दयनीय स्थिति उस पूर्वाग्रही गुलामी के निशान हैं जिसका ठप्पा औपनिवेशिक शासन में लगाया गया। 1871 में इन पर कई प्रतिबंध लगाए गए और आपराधिक जाति/ जनजाति की श्रेणी में वर्गीकृत कर दिया गया। 'जरायम पेशा जनजाति अधिनियम' के तहत इन्हें अपराधी घोषित किया जाने लगा। समाज में इनके प्रति भय, अविश्वास, उपेक्षा एवम् अनेक भ्रामक सूचनाएं फैल गईं। अंग्रेजों द्वारा इस समुदाय को आपराधिक मानसिकता और सेक्स वर्कर के तौर पर दी गई पहचान को स्वतंत्र भारत के 1951 ई. के कानून द्वारा बदलने का प्रयास किया गया परंतु समाज में इनकी स्थिति बद से बदतर हो चली थी। समाज में पनप चुके शक के कांटे इनकी मानवीय गतिविधियों को अवरुद्ध करते हैं। यमदीप उपन्यास में अनाथ बच्ची के प्रति नाजबीबी की उदारता महताब गुरु की चिंता का विषय यूंही नहीं बन गया है, "सोच-विचार लेना था। तुम तो दया करके लाई हो, लेकिन इन इंसानों की जात तो तुम अच्छी तरह जानती हो, नाज! हमारे ऊपर हमेशा शक ही करते हैं। कहीं इस बच्ची को लेकर कोई..."⁴ ये अधूरा वाक्य उस औपनिवेशिक अतीत का पीड़ाजनित भय है।

इस संबंध में जैसिका हैंकी की शोधपरक पुस्तक 'Governing Gender and Sexuality in Colonial India: The Hijra, c. 1850 - 1900' पठनीय है। इसके अन्तर्गत औपनिवेशिक भारत के किन्नर प्रतिबंध संबंधी कानून, भूरा जैसे अन्य किन्नरों की निर्मम हत्या और तत्कालीन किन्नरों की दुर्दशा के साथ किन्नर समस्याओं के समाधान की सविस्तार चर्चा हुई है।

लिंग विवाद विषय है। विश्वव्यापी नारीवादी आंदोलन और किन्नर समुदाय का संघर्ष इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। लैंगिक समानता और स्वतंत्रता वैश्विक मुद्दा बन चुका है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ट्रांसजेंडर के अधिकारों का संरक्षण किया जा रहा है। "किन्नर वर्ग की परिस्थिति व अधिकारों के लिए 2006 में इंडोनेशिया में विश्व सम्मेलन के अन्तर्गत लिंगीय पहचान को मान्यता देते हुए सिद्धांतों को स्वीकार किया गया। इसके बाद अनेक देशों में कानून बनाए गए, जिनमें ब्रिटेन का समानता अधिनियम 2010, ऑस्ट्रेलिया का लिंग विभेद अधिनियम 1984 व संशोधन अधिनियम 2013, यूरोपियन यूनियन कानून 2006, 27 देशों में लागू, हेट क्राइम प्रिवेंशन एक्ट 2009 अमेरिका आदि मुख्य हैं।"⁵ यह विडंबना ही है कि भारत से पहले पड़ोसी देश नेपाल तक का उच्च न्यायालय 2007 में सुनील बाबू पंत प्रकरण में किन्नरों को तृतीय लिंग की मान्यता प्रदान कर चुका था।

भारत में तृतीय लिंगी समुदाय के मानव अधिकारों का सक्रिय संघर्ष 1993 ई. से देखा जाता है। पुलिस उत्पीड़न और एड्स भेदभाव के विरोध में सफलतम आंदोलन किए गए। 1994 में इन्हें मतदाता सूची में शामिल किया गया और 1998 में किन्नर शबनम मौसी मध्य प्रदेश विधानसभा से पहली विधायक चुनी गईं। भारतीय राजनीति में जुड़े इस नए को प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास तीसरी ताली में रेखांकित किया है- "जिन हिजड़ों को भारतीय समाज दया, उपेक्षा और इन सब से बढ़कर घृणा का विषय मानता हो, उन्हीं में से एक को जब

लाखों लोग अपना प्रतिनिधि चुन लें, तो इसे किसी भी हालत में आम घटना नहीं माना जा सकता। मध्य प्रदेश के सुहागपुर विधानसभा क्षेत्र से शादी-ब्याह में नाच-गाकर बधाई देकर रोजी-रोटी का जुगाड़ करने वाली शबनम मौसी ने जब विधायक बनने के लिए अपना पर्चा भरा था तो किसी को विश्वास ही नहीं हुआ था कि वह अपनी जमानत भी बचा पाएंगी। लेकिन वे चुनाव जीत गयीं, वह भी पूरे अठारह हजार वोटों से।”⁶

2001 में नाज फाउंडेशन द्वारा धारा 377 के विरुद्ध याचिका दायर हुई। 2009 में भारत सरकार ने महिला - पुरुष की द्विविधा को खत्म करते हुए इन्हें पहचान पत्रों में ‘अन्य’ के तौर पर स्थान दिया। लंबे संघर्ष के बाद अप्रैल 2014 में इस समाज को तृतीय लिंग/ ट्रांसजेंडर के रूप में पहली बार मान्यता प्राप्त हुई।

इनकी भूमिका को समाज में पुनर्स्थापित करने, शिक्षा और स्वतंत्रता बोध के लिए केंद्रीय मंत्रिमंडल ने जुलाई 2017 को ट्रांसजेंडर अधिकार संरक्षण बिल पारित किया। इसी दिशा में ट्रांसजेंडर को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए ‘किन्नर कल्याण बोर्ड’ की स्थापना करने वाला देश का पहला राज्य केरल बना। सवैधानिक बदलाव, कानूनी हस्तक्षेप और निजी संस्थाएं प्रयासरत हैं परन्तु कुछ नामचीन और सजग किन्नरों को छोड़कर अन्य समूह आज भी उन सुविधाओं से वंचित हैं। कारण- समाज द्वारा वो फासला आज तक कायम रखा गया है। ये वही समाज है जो परिवारों से बना और वही परिवार है जो समाज से भयभीत है। जनगणना की फाइलों में गिनती, उदारता की नीतियां या तीसरे लिंग का दर्जा इन्हें समाज पर चढ़ी मनो धूल को एकाएक झाड़कर टिकने नहीं देगा। साहित्य सहित का पुष्टिकरण है। तब आश्चर्य की बात है कि समाज का एक हिस्सा लंबे समय तक लैंगिकता भेद का शिकार और उपेक्षित रहा परन्तु साहित्य में इस पर कोई विशेष ज़िह्न नहीं हुई थी। दक्षिण भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी साहित्य में विवेच्य विषय पर व्यापक चर्चाएं बीसवीं सदी के अंत से शुरू हुईं। सु. समुथीराम की ‘वादामल्ली’, नान सारावानन की ‘अल्ला’, वी. गीता द्वारा तमिल से अनूदित ‘हिजड़ा लाइफ स्टोरी’ नामक पहली आत्मकथा, ए. रेवती की ‘उनारवुम उरूवामन’ (समूचे देह का अनुभव) सरीखी कृतियां दक्षिण भारतीय भाषाओं में अब तक की विशेष उल्लेखनीय हैं।

ध्यातव्य है, अंग्रेजी साहित्य की विभिन्न विधाओं में संख्यात्मक और गुणात्मक दृष्टि से सराहनीय कार्य मौजूद हैं। 1972 में सेवेरो सरड्यू का उपन्यास ‘कोबरा’ विषमलिंगी पुरुष से समलैंगिक महिला बनने का सफर है। डेविड एबरशॉफ का उपन्यास ‘द डेनिश गर्ल’ पहली ट्रांसजेंडर लिली एल्बे - जिसने सेक्स रीअसाइनमेंट कराया- की कथा है। यह चिकित्सीय दृष्टि से भी महत्वपूर्ण पुस्तक है। ट्रांस जूलियट जैक्स की आत्मकथा ‘एन ऑनस्टे ऑफ जेंडर ट्रांजिशन’ स्वानुभूति की साहित्यिक परिणति है। कमलादास ने कथा संग्रह ‘हिजड़ा’ द्वारा किन्नर जीवन से अवगत कराया। गिलबर्ट हर्ड्ट द्वारा संपादित पुस्तक ‘थर्ड सेक्स, थर्ड जेंडर : बियॉंड सेक्सुअल डिलिमाॉर्फिज्म इन कल्चर एंड हिस्ट्री’ में प्रकाशित कई विद्वानों के शोध आलेख थर्डजेंडर की स्थिति को समझने में सहायता करते हैं। दयनिता सिंह की आत्मकथा ‘माई सेल्फ मोना अहमद’ और लिविंग विद्या की आत्मकथा ‘आई एम विद्या: ए ट्रांसजेंडर जर्नी’ स्वतंत्र अस्तित्व के पहचान की घोषणा है। भारत की प्रथम महिला ट्रांसजेंडर प्रिंसिपल मानोबी बंद्योपाध्याय की अधूरी देह के हर पहलू को झिमली मुखर्जी ने प्रेरक जीवनी ‘ए गिफ्ट ऑफ गॉडसे लक्ष्मी’ में व्यक्त किया है। जैमिसन ग्रीन ने ‘बी कमिंग अ विजिबल मैन’ नामक अपनी पुस्तक में ट्रांसजेंडर के समक्ष की चुनौतियों, अपनी मौजूदगी और आत्मस्वीकार्यता को अनुभवजनित ढंग से प्रस्तुत किया है। यू साकुराज्वा ने ट्रांसजेंडर पर कई काम किए हैं। उनकी प्रसिद्ध कृतियों में ‘जेंडरलेस एक्साइल’ और ‘बॉर्न इन द थर्डजेंडर’ में पारिवारिक यातना, दैहिक विसंगतियां और मानसिक यातनायें उजागर हुई हैं। साइकोलॉजिस्ट डायने एहरनसाफ्ट की पुस्तक ‘जेंडर बॉर्न जेंडर मेड: रेजिंग हेल्थी जेंडर- नॉन्कनफर्मिंग चिल्ड्रेन’ लिंग दोषी बच्चों के प्रति सकारात्मक सोच का प्रतिनिधित्व करती है।

हिंदी साहित्य में बलभद्र प्रसाद दीक्षित की 'चमेली जान (1938)' शिव प्रसाद सिंह की 'बिंदा महाराज', राही मासूम रजा की 'खलिक अहमद बुआ' जैसी कुछ छिटपुट कहानियों को छोड़कर बीसवीं सदी के अंत तक इस विषय पर केंद्रित सार्थक चिंतन और लेखन का अकाल ही रहा। इक्कीसवीं सदी विकल्प और विमर्श की सदी है। बौद्धिक वर्ग हाशिए की ओर उन्मुख हुआ है। काव्य, कथा, कथेतर विधाएं वंचित समुदाय के सवाल और अधिकारों का साझा मंच तैयार कर रही हैं। किन्नर आधारित हिंदी साहित्य अधिकांशतः सहानुभूति प्रेरित रहा है, ऐसे में किन्नर अखाड़ा की संस्थापक, नृत्यांगना, मॉडल और किन्नर कार्यकर्ता लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा शमैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी ने स्वानुभूतिपरक चिंतन का द्वार प्रशस्त किया है।

आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता का संक्रमण काल अस्तित्व की पहचान का दौर है। कोई भी विमर्श एकाएक खड़ा नहीं होता। साहित्य में यह किन्नर प्रश्न भी उसी संक्रमणकालीन पहचान के अन्वीक्षण का हिस्सा है। हिंदी में नई सदी की मान्यताओं के व्यतिक्रम से किन्नर केंद्रित औपन्यासिक मंत्रणा की शुरुआत नीरजा माधव कृत श्यमदीप (2002) से हुई। बाजारवादी संस्कृति में उत्पादक और उपभोक्ता का प्रश्न ही अग्रगण्य है। लेखिका ने संभोग और जनन की भूमिका से वंचित इस वर्ग के लिए उपभोक्तावादी संस्कृति के समक्ष यक्ष प्रश्न खड़ा किया है "घर के एक दीये को केवल यम से संवाद करने के लिए उठाकर घूर (कूड़ा - करकट) पर रख देना और फिर उधर मुड़कर भी न देखना कि वह कब जलते-जलते बुझा, सत्य से विमुख होना है।" यमदीप किन्नरों के बाह्य उत्पीड़न और अंतस् पीड़न का संज्ञान देता है। लेखिका सत्ता से सशक्ति की दिशा तय करती नजर आती हैं इसलिए नरक चतुर्दशी से मुक्ति हेतु इन यमदीपों की शिक्षा और राजनीति का मार्ग विकल्प के रूप में प्रशस्त करती हैं। इनकी सामाजिक भूमिका और क्षमता का आकलन समुचित अवसर की मांग करता है। नाजबीबी का यह अंतिम कथन उसी अवसर की तलाश है, "जरूरत पड़ी तो भ्रष्ट लोगों के खिलाफ हथियार भी उठाऊंगी। हर गंदगी को जड़ से साफ कर दूंगी। दुनिया में शांति रहे, और क्या चाहिए किसी को? बस, मेम साहब, मुझे आप अपनी तरह थोड़ी बुद्धि और कलम की ताकत भी थमा दीजिए। सहारा दिए रहिए, फिर देखिए..."⁸

यह उपन्यास किन्नरों के प्रति भारतीय समाज की दोहरी मानसिकता (लिंग उपयोगिता व लिंग उपासना) और तत्संबंधी दोहरे विस्थापन की व्यापक प्रतिक्रिया है। परिवार और समाज द्वारा परित्यक्त इन किन्नरों ने सभ्य समाज से दूर अपने समुदायों और डेरों की स्थापना कर ली है। लैंगिकता, रीति-रिवाज, रहन-सहन, तौर-तरीके और आर्थिक उपार्जन के साधन में एकरूपता लिए यह समुदाय अपने आहार-आवास की जद्दोजहद में उलझा रहा। शिक्षा का अभाव, समाज का इन पर अविश्वास और आपराधिक कार्यों में लिप्त होने की आशंका ने इनके बेहतर रोजगार पाने के दरवाजे बंद कर दिए। इस दिशा में सुधार की जरूरत अपरिहार्य है। लेकिन ये प्रश्न आजकल अस्तित्व की बजाय अस्त्र का हो गया है। शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास की पृथक व्यवस्था राजनीतिकों द्वारा बंटवारे के एक और औपनिवेशिक षड्यंत्र का परिचय देता है। उपन्यास में इस कृत्स्न राजनीति की संभावनाएं दिखाई देती हैं। जैसे- ट्रांसजेंडर स्कूल 'सहज इंटरनेशनल', अन्य कई स्कूल और यू.पी. के कुशीनगर जिले के फाजिलनगर विधानसभा में पहले ट्रांसजेंडर विश्वविद्यालय की घोषणा, इन्हें मुख्यधारा समाज से कभी नहीं जुड़ने देगी। किन्नर अखाड़ा की संस्थापक और किन्नर कार्यकर्ता लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी किन्नरों के प्रतिनिधि के रूप में इस तरह के अलगाव को अस्वीकार करते हुए मुख्यधारा समाज से जुड़ने की बात करती हैं।

हिजड़ा शब्द सुनते ही हमारे मन-मस्तिष्क में एक छवि कल्पनातीत होने लगती है- साड़ियां पहने नाचते-गाते, तालियां बजाते ट्रैफिक सिग्नल और रेलवे स्टेशन पर अश्लील हरकतें करते लोगों की और

वस्तुस्थिति से विमुख हम हिकारत से भर जाते हैं। इस अलगाव की जड़ों का उत्कीर्णन उपन्यास की सार्थकता है। मानवी का महताब गुरु से यह सवाल- ‘ऐसा माना जाता कि आप लोग युवकों को बहला-फुसलाकर उनका ऑपरेशन करके हिजड़ा बनाते हो’ मुख्यधारा समाज की भ्रांतियों और प्रश्नों का सामान्य मनोविज्ञान है। सोना की शिक्षा के लिए छैलू, नाजबीबी और महताब गुरु के अथक प्रयत्न किन्नरों के प्रति परिवेष्टित वर्तमान रूढ़ धारणाओं के आक्षेपों को प्रक्षालित करते हैं। महताब गुरु द्वारा धार्मिक और कार्मिक आयोजनों के बरक्स शिक्षा का इसरार किन्नरों के प्रगतिबोध को प्रतिवेदित करता है- “दो दिन का खेल है क्या पढ़ाई, जो आज नहीं, दो दिन बाद खेलेंगे? सोना पढ़ेगी और इसी साल पढ़ेगी। बेसरा माता के लिए जो हिस्सा रखा है, उसमें से कल मैं तुम्हें दूंगी।”⁹

समग्र उपन्यास में किन्नरों की मानवतावादी भावना दृष्टव्य है। मानवता को लैंगिकता की दरकार नहीं। सड़क पर प्रसव पीड़ा में तड़पते हुए दम तोड़ने वाली पगली या उसकी नवजात बच्ची का संरक्षण तथाकथित सभ्य समाज के वश की बात नहीं थी। उपन्यास की केंद्रीय पात्र नाजबीबी उर्फ नंदरानी का कथन “अब कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जायेंगे? अरे हम हिंजड़े हैं, हिंजड़े...इंसान हैं क्या जो मुंह फेर लें”¹⁰ इंसान और इंसानियत के बीच की फांक को दर्ज करता है। सदी की दहलीज पर यमदीप में नीरजा माधव नाजबीबी द्वारा पगली के सामान्य बच्चे की स्वीकार्यता की संवेदना को रच रही थीं, तो 2020 में ‘ए जिंदगी तुझे सलाम’ में हरभजन सिंह मेहरोत्रा ने उसी पगली के किन्नर बच्चे के लिए रूपा का सामाजिक प्रतिरोध, अदम्य साहस और उसकी सामाजिक स्वीकार्यता को रचकर बदलते समय में मानवीय मूल्यबोध का परिचय दिया है। लेकिन इस प्रगतिशील प्रयास में ‘यमदीप’ से ‘ए जिन्दगी तुझे सलाम’ तक बलकृत पगली की यथास्थिति का दृश्य बिम्ब समाज में व्याप्त उस निर्वीर्य मानसिकता को अनावृत करता है जो दूषित वर्चस्व का बोध कराती है। नीरजा माधव ने यमदीप की रचना से साहित्यिक चुप्पी को तोड़ा है। उपन्यास की अंतिम परिणति की ऊर्जस्विता किन्नर शबनम मौसी, किन्नर हिसार, शोभा नेहरू जैसे तत्कालीन राजनीतिक हस्तक्षेप से प्रेरित है।

आज किन्नर शिक्षा, सिनेमा, खेल, प्रशासनिक सेवाओं, राजनीति, पत्रकारिता एवम् अन्य क्षेत्रों में सहभागिता की गुणात्मक वृद्धि हो रही है। ये ऐसे किन्नर हैं जो कुछ सुविधा, प्रोत्साहन और अवसर प्राप्त करके अपनी क्षमता का परिचय दे सके हैं परंतु अभी भी सुविधाओं से वंचित और आर्थिक संकट से त्रस्त किन्नर परंपरावादी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। परिवर्तन हो रहे हैं, मानसिकताएं बदल रही हैं, समुचित शिक्षा और रोजगार ही इन्हें मुख्यधारा समाज से जोड़ने का एकमात्र जरिया है। इस दिशा में किन्नर जीवन का यह औपन्यासिक पाठ निःसंदेह वैचारिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।

संदर्भ :

1. शीला डागा, किन्नर गाथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 16
2. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ. 90
3. नीरजा माधव, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 212
4. वही, पृ. 21
5. डॉ. अशफाक इब्राहिम सिकलगर, पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा: कथ्यगत विश्लेषण, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ. 63
6. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 138
7. नीरजा माधव, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 7

8. वही, पृ. 288
9. वही, पृ. 47
10. वही, पृ. 12



प्राचीन भारत में कृषिप्रबंधन

- राजीव रंजन¹
- अवधेश प्रताप सिंह²

संक्षिप्ति :

आज मानव जीवन की सबसे उपयोगी वस्तु है 'अन्न' या 'भोजन।' भोजन की प्राप्ति हमें 'अन्न' से होती है। अतः इस लोक में अन्न के साधनभूत कृषि की महत्ता सर्वाधिक है। कृषि का मूल मानव जाति के लिए आहार की आवश्यकता को कहा गया है। पृथिवी पर अन्न के बिना किसी भी प्रकार से किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव है। अगर आज के युग के अनुसार आलोचन करें तो हम यह देख पायेंगे कि विश्व में सबसे महत्वपूर्ण कर्म कृषि ही है एवं विश्व में भारत की एक अत्यन्त श्रेष्ठ छवि का कारण भी कहीं न कहीं भारत में कृषि का बाहुल्य ही है। भारत में कृषि का महत्त्व प्राचीनकाल से ही अपने चरम स्तर पर विराजमान है। वैदिक वाङ्मय में कृषि-कर्म को देवताओं द्वारा भी किये जाने के प्रमाण बहुशः प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है कि- 'इन्द्र आसीत् सीसतिः, शतक्रतुः कोनाशा अभवन् मरुतः सुदानवः।' अर्थात् सर्वप्रथम जब खेती का आरम्भ हुआ तो उसमें साक्षात् देवताओं ने बीज वपन, लवन आदि का कार्य किया। अतः कृषि की महत्ता का अनुमान इस प्रकार से किया जा सकता है कि देवताओं ने भी इस कार्य को अत्यन्त ही निष्ठापूर्ण चित्त से किया एवं उन्हीं से शिक्षण लेकर प्राणियों ने कृषिकर्म का आचरण किया जिससे इस सम्पूर्ण पृथिवी पर कृषि का विस्तार हुआ।

बीज शब्द : कृषि, अन्न, बीज, पृथिवी, प्रबन्धन, ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण।

-
1. सहायक आचार्य, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय. संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007, दिल्ली-110007
दूरभाष- 9971593395, ईमेल- dr.ranjan5@gmail.com
 2. सहायक आचार्य, सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय. संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007, दिल्ली-110007
Email: asingh445@gmail.com

सम्पूर्ण विश्व को प्राणधारण हेतु जिस वस्तु की अत्यन्त आवश्यकता होती है, वह 'अन्न' है। अन्न के बिना पृथ्वी पर किसी भी प्रकार से जीवन की सम्भावना ही नहीं होती है। अतएव हमारे वेद के ही भागभूत उपनिषदों में अन्न की निन्दा न करने का कथन भी प्राप्त होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है कि 'अन्नं न निन्द्यात्'¹ अर्थात् अन्न की निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए। इसका आशय यह है कि जितना हो सके अन्नोत्पादन में कभी भी अपेक्षा बुद्धि नहीं रखनी चाहिये और सदा सर्वदा इसके विस्तार हेतु प्रयत्न करना चाहिये- 'अन्नं बहु कुर्वीत'²। अतः प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जीवनयापन हेतु अन्न एक महत्वपूर्ण अंग है। इस अन्न की उत्पत्ति का अधिकरण है भूमि, एवम् इसकी उत्पत्ति का साधन है 'कृषि'। अतः निश्चित रूप से कृषि के बिना जीवन असम्भव ही है।

भारत की आबादी के लगभग 60% लोगों की आजीविका का स्रोत 'कृषि-कर्म' ही है। अतः भारत देश को कृषि प्रधान देश की संज्ञा दी जाती है। भारतीय खाद्य उद्योग बहुत बड़ी वृद्धि के लिये तैयार है और दरअसल विश्व खाद्य व्यापार में मूल्यवर्धन की अपार संभावनाओं के कारण अपना योगदान बढ़ाता जा रहा है, विशेष रूप से खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में। भारतीय खाद्य एवं किराने का बाजार विश्व भर में छठा सबसे बड़ा हिस्सा है, जिसमें खुदरा बिक्री का 70% योगदान है। कृषि और उससे सम्बन्धित गतिविधियों ने हमेशा हमारी राष्ट्रीय आय में एक महत्वपूर्ण हिस्सा रखा और हाल के वर्षों में, देश में अन्य औद्योगिक क्षेत्रों की वृद्धि के कारण कृषि के योगदान में धीरे-धीरे गिरावट आई है। 1950-51 में कृषि से सम्बन्धित गतिविधियों ने कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 59% योगदान दिया। दुनिया के कई विकसित देशों की तुलना में भारत में कृषि की हिस्सेदारी अभी भी बहुत अधिक है। भारतीय कृषि उत्पादों को सरकार उचित मूल्यों में खरीदकर उन्हें सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित करती है, जिससे उसकी आय में बहुत वृद्धि होती है तो इस तरह से कृषि मुख्य रूप से भारतीय सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

भारत में दो तिहाई से अधिक श्रमिक आबादी सीधे कृषि क्षेत्र में लगी हुई है। एक अनुमान के अनुसार लगभग 57% कामकाजी आबादी कृषि में है। कृषि उत्पाद हमारे देश की विशाल आबादी के लिये खाद्य आपूर्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यदि कृषि का कार्य एक दिन के लिये भी रुक जाये तो विश्व में भुखमरी की स्थिति के पैदा होने की अतिशय सम्भावनाएँ हैं क्योंकि मानव जीवन में आहार की आवश्यकता अत्यधिक मात्रा में है और आहार की पूर्ति में कृषि की सर्वोत्तम भूमिका है। निश्चित रूप से कृषि, खाद्य की आपूर्ति का महत्वपूर्ण स्रोत है, और हमेशा ही रहेगा। भारत में कई महत्वपूर्ण उद्योग हैं, जैसे कपास, जूट, वस्त्र, चीनी, खाद्य तेल; वृक्षारोपण उद्योग जैसे चाय, काफी इत्यादि और कई कृषि आधारित कुटीर उद्योग हैं, जो कि अपने कच्चे माल की आपूर्ति के लिए कृषि पर निर्भर हैं। कृषि आधारित ये उद्योग विनिर्माण क्षेत्र में लगभग पचास प्रतिशत आय को उत्पन्न करते हैं, तो इस प्रकार कृषि देश के औद्योगिक विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भागीदारी अदा करती है, यह कहना तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। कृषि उत्पाद इस देश के कुल निर्यात का बड़ा हिस्सा है। हमारी निर्यात सूची में कुछ मुख्य वस्तुओं में चाय, काफी, चीनी, तम्बाकू, मसाले, काजू आदि शामिल हैं जो भारत के कुल निर्यात में पचास प्रतिशत योगदान करते हैं। कृषि उत्पादों के अलावा, कृषि आधारित उद्योगों जैसे जूट और सूती वस्त्रों के उत्पाद भी देश के कुल निर्यात में 20% का योगदान देते हैं। इसी लिये कृषि क्षेत्र देश की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार व वाणिज्यिक गतिविधियों के लिये महत्वपूर्ण है। देश की केन्द्र और राज्य दोनों सरकारें कृषिक्षेत्र से महत्वपूर्ण राजस्व अर्जित करती हैं।

'कृषि' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'कृष विलेखने' इस धातु से 'सर्वधातुभ्य इन्' इस उणादि सूत्र से इन् प्रत्यय करके बना हुआ है, अर्थात् कृषि शब्द का आपाततः तात्पर्य 'कर्षण' (भूमि को खोदना) से है परन्तु यह शब्द न केवल इतने को ही, अपितु व्यापक रूप से अन्नोत्पादक सभी साधनों एवं क्रियाओं के समुदित

स्वरूप को परिभाषित करता है। कृषि का प्रारम्भ तभी से है, जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। इस विषय में भी तैत्तिरीयोपनिषद् की सृष्टि प्रक्रिया में कहा गया है कि पृथ्वी से ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं, ओषधियों से अन्न निष्पन्न होता है तथा अन्न से ही पुरुषों का भी प्रादुर्भाव होता है।³ सर्वविदित है कि अन्न का भक्षण करने से ही हमारे शरीर की धातुओं का पोषण एवम् उत्पादन होता है, जिसके फलस्वरूप ही किसी पुरुष की उत्पत्ति होती है। इससे यह बात तो सिद्ध है कि जबसे प्राणियों का अस्तित्व है तब से ही कृषि जीवन्त है। 'ऋग्वेद' में कृषि की चर्चा अत्यन्त ही विस्तृत रूप में है। उसमें कृषि की महत्ता, उसकी आवश्यकता एवं कृषि करने की विधियों का उल्लेख अत्यन्त विस्तार पूर्वक प्राप्त होता है। प्राचीन काल में कृषि का कार्य अत्यन्त गौरव का कार्य माना जाता था। तभी इन्द्र-पूषादि देवताओं को भी कृषि के सम्बन्ध से जोड़ा जाता था। जैसे कि अथर्ववेद में कहा है 'इन्द्रः सीतां निगृह्णातु'⁴ अर्थात् भगवान् इन्द्र 'हल' को ग्रहण करें। प्राचीन काल में कवि, विद्वान् एवं श्रेष्ठ जन भी कृषि का कार्य अत्यन्त ही उत्साहपूर्वक करते थे, जिनको देखकर श्रीमद्भगवद्गीता के आचरण्य व्यवहारानुसार⁵ अन्य जन भी अत्यन्त गौरवान्वित महसूस करते हुये कृषि का कार्य अत्यन्त ही निष्ठा के साथ करते थे। आज के युग में जीवन के निर्वाह हेतु सर्वाधिक उपयोगी एवं आवश्यक क्रिया के प्रति भी लोगों की हेय दृष्टि अवश्य ही अनुचित है।

अथर्ववेद में यह वर्णन आता है कि, ब्रह्म जब मनुष्यों के पास पहुँचा तो उसने इरावती (कृषि समृद्धि) शब्द का प्रयोग किया। उसी का दोहन कर सबने कृषि एवं सस्य की प्राप्ति की। कृषि एवं अन्न से ही मनुष्य का जीवन चलता है। अथर्ववेद में कहा है कि उस कृषि एवं सस्य के कारण ही मनुष्यगण प्राणधारण में समर्थ हो जाते हैं।⁶ प्राचीन काल में कृषि की प्रतिष्ठा का अनुमान कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है कि इसमें निपुण लोगों को 'कृष्टराधि' तथा 'उपजीवनीय' (सफल आजीविका वाला) की उपाधि से सम्मानित किया जाता था।⁷ कृषि के विशेषज्ञों को 'अन्नवित्' कहकर भी पुकारा जाता था क्योंकि उन्होंने प्रथम कृषि के नियम बनाये थे। कृषि को ही मानवीय कल्याण का आदिम एवं महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। कहा गया है कि एक प्रतिभावान् कुशल राजा को कृषि की उन्नति करना चाहिये जिससे कि जनकल्याण एवं धन-धान्य की अभिवृद्धि हो। शतपथ ब्राह्मण में चार शब्दों में कृषि कार्य के व्यापक अर्थ को बताया गया है - 'कृषन्तः वपन्तः लुबन्तः मृवन्तः'⁸ इस मन्त्र के अनुसार कृषि के चार अंग हैं- कर्षण, वपन, लवन एवं मर्दन

कर्षण : कर्षण का तात्पर्य हलों के द्वारा भूमि को खोदना है।

वपन : वपन का तात्पर्य उस खोदे हुये भूमि में बीज का छिड़कना आदि से है।

लवन : लवन का तात्पर्य फसलों के तैयार हो जाने पर उन को काटना, उखाड़ना आदि है।

मर्दन : पूर्वोक्त क्रियाओं के बाद अन्न का निष्कासन करना इस का तात्पर्य है।

ऋग्वेद में पृथिवी पर कृषिविद्या के प्रकाश के विषय में कहा गया है-

देवास आयन् परशूरविभ्रन्, वना वृश्चन्तो अपि विड्भिरायन्।

नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु, यत्र कृपीट मनु तद्वहन्ति॥⁹

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि राजा वेन का पुत्र राजा पृथी (पृथु) कृषि विधा के प्रथम आविष्कारक हैं।¹⁰ उसने ही सर्वप्रथम कृषि-विद्या के द्वारा विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात किया। अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से पृथी वैश्य को कृषि विद्या का आविष्कारक माना गया है।¹¹ अथर्ववेद का कथन है-

इमं देवा मधुना संयुतं यवं, सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।

इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः, को नाशा आसन् मरुतः सुदानवः ।¹²

अर्थात् सरस्वती नदी के किनारे की उपजाऊ भूमि पर आज माधुर्ययुक्त जौ की खेती हुई। इसमें इन्द्र सीरपति (हल चलाने वाले) अर्थात् कृषि कर्म के अधिष्ठाता थे तथा मरुत देवों ने किसान का काम किया अर्थात् अन्य सभी आवश्यक कर्मों के अधिष्ठाता बने। इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि कृषि के लिए सर्वप्रथम सरस्वती नदी के किनारे की भूमि का चयन किया गया, क्योंकि वहाँ की भूमि ही अन्य सभी क्षेत्रों से अधिक उपजाऊ थी। एवं सर्वप्रथम जौ की खेती हुई, इस बात का भी उल्लेख यहाँ पर स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। कृषि कार्य का नियन्ता 'राजा' हुआ करता था, जैसे कि यहाँ पर इन्द्र का उदाहरण प्रस्तुत किया गया। एवं अन्य प्रजाजन कृषि का कार्य करते थे जैसे यहाँ पर मरुत का उदाहरण दिया गया है।

सम्पूर्ण विश्व को कृषि उत्पाद की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु यह उत्पाद कैसा एवं कितना होना चाहिए? इत्यादि चीजों का प्रबन्धन भी अत्यन्त आवश्यक है। इसी क्रिया को कृषि प्रबन्धन के नाम से जाना जाता है। कृषि प्रबन्धन में कृषि कार्यों को सुव्यवस्थित ढंग से इस प्रकार सम्पादित किया जाता है कि किसान को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इसमें कृषि क्षेत्र का संगठन, क्रय-विक्रय आदि वित्तीय व्यवस्थाओं का प्रयोग किया जाता है। कृषि प्रबन्धन में कृषि क्षेत्र सम्बन्धी सम्पूर्ण आँकड़ों को एकत्रित कर योजना बनाई जाती है और कृषि लागतों को इस प्रकार आवंटित किया जाता है कि कृषि कार्य सुचारु रूप से चल सके। किसान किस अनुपात में कब, कौन-सा फसल कैसे बोये, क्या प्रक्रिया उसके तथा उस भूमि को उर्वरा रखने हेतु भी लाभदायक होगी, इन सभी को कृषि प्रबन्धन के अन्तर्गत माना जाता है। यह कृषि प्रबन्धन आज के युग में तो अत्यन्त सुदृढ़ है किन्तु यह प्रक्रिया प्राचीन वैदिक काल में भी अति सुसंस्कृत ढंग से की जाती रही है। प्राचीन लोग भी कृषि को करने में कुछ आज के युग से कम समर्थ नहीं थे, वरन् उन लोगों के द्वारा की जाने वाली खेती से सम्पूर्ण जगत् को केवल लाभ ही होता था।

वर्तमान युग तकनीक युग है। प्राचीन भारत में भी विज्ञान के विविध क्षेत्रों में विकास देखा गया है। मानव की तकनीकी प्रगति में विभिन्न चरणों में धातु के चलन को अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना माना जाता है। यों तो भारत में लौह युग का उदय 1200 ईसा के बाद में हुआ, किन्तु उससे पूर्व भी लगभग पर्याप्त मात्र में कृषि उपकरणों के निर्माणोपयोगी लौह की प्राप्ति हो चुकी थी, वस इसका व्यापक रूप में विस्तार बाद में हुआ था। उन लोहों से अस्त्र शस्त्रों के निर्माण के साथ-साथ में ही कृषि के उपकरणों जैसे हँसिया, कुल्हाड़ी, हल आदियों का भी निर्माण किया जाता था। लोग जो आजकल अधिकतर लगान धन के रूप में प्रदान करते हैं, पहले वही अनाज के रूप में प्रदान किया जाता था, यह अनुमान मोहनजोदड़ो आदि की खुदाई में मिले बहुत बड़े बड़े भण्डारगृहों के अन्दर से गेहूँ और जौ आदि के नमूने के मिलने के कारण किया जाता है। उस समय में इनको बोया जाता था, इसके प्रमाण भी हमें उन उत्खननों से प्राप्त होते हैं। वहाँ से मिले गेहूँ की जाति या तो 'ट्रिटिकम कपैक्टम' है या फिर 'ट्रिटिकम स्फेयरोकम' थी। इन जातियों के गेहूँ की खेती आज भी भारत के पंजाब के शहरों में की जाती है, और सिन्धु भी उसी प्रान्त के आस पास हुआ करती है, जो आजकल पाकिस्तान में स्थित है, परन्तु वह पूरा का पूरा पहले पंजाब ही हुआ करता था। आर्य कृषि कार्य से पूर्णतया परिचित थे, यह वैदिक साहित्य से स्पष्टतया परिलक्षित होता है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में कृषि सम्बन्धित अनेक ऋचायें हैं जिनमें कृषिकर्म तथा इसमें प्रयोग होने वाले उपकरणों आदि का विस्तारपूर्वक कथन किया गया है।

भारतीय कृषि का इतिहास नौ हजार साल पुराना है। कच्छ के कई क्षेत्र में सात हजार वर्ष पूर्व गेहूँ और जौ की खेती होती थी बुवाई से पहले कुदाल और फावड़े से जमीन की गुड़ाई की जाती थी। सम्भवतया रबी एवं खरीफ दोनों फसलें बोई जाती थीं। सिन्धु घाटी सभ्यता में खेत को जोतने के लिये बैल का भी प्रयोग किया

जाता था। कई प्रकार के उपकरण जैसे खेत को जातने के लिए हल अथवा पत्थर के फलक तथा अनकतरा की मूठ वाले हसिया का भी प्रयोग किया जाने लगा था। उस युग में भी कई प्रकार के उपकरण जैसे खेत को जोतने के लिये छत एवं पत्थर बहुत ही तराशे हुये ढंग से विकल्पित थे। सिंचाई के लिये नहर का प्रयोग किया जाता था। उस समय अधिकांश सिंचाई की निर्भरता वृष्टि पर ही हुआ करती थी, परन्तु ऐसे क्षेत्रों में जहाँ वर्षा पर्याप्त नहीं हो पाती थी, या फिर उचित समय पर वर्षा न होकर असमय ही होती थी, उनके लिए खेतों की सिंचाई हेतु नहर एक महत्वपूर्ण साधन हुआ करते थे।

खेत को हल से जोतकर बीज बोये जाते थे, फल को सिंचाई और पकने के बाद दराती से काटकर खलिधून में जाया जाता था तथा उसके पश्चात् उनकी मैदाई कर के भूसा और अनाज को अलग-अलग कर लिया जाता था। यजुर्वेद में भी कृषि को इस प्रकार की विधि का सविस्तर वर्णन है।¹³ मौर्य युग में भूमि की उर्वरता की पहचान कर उस के अनुसार कृषि का वर्गीकरण किया जाता था। उस समय छोटे हल को हल एवं बड़े हल को हल्ली या जित्था शब्द से बुलाया जाता था। कृषकों ने नदी एवं तालावों से नहर निकालकर भूमि को उपजाऊ बना दिया था। किसान तब भी वर्षा पर निर्भर थे, परन्तु नहर, कुआँ इत्यादि तथा नवीन उपकरणों के आविष्कार से कृषि प्रबन्धन को एकदम सुदृढ़ बना दिया था। इस प्रकार कृषि का विकास बढ़े ही उच्च स्तर पर प्रकृति को हानि पहुँचाये बिना हो गया था। हल के अतिरिक्त कोनों को जोतने के लिए कुदाल एवं फावड़े का उपयोग किया जाता था। सिंचाई के लिये रहट-चक्र आदि उपयुक्त होते थे।

जैन ग्रन्थ एवं बौद्ध धर्म ग्रन्थों में भी कृषि कार्यों का वर्णन है, जैसे भूमि को जोतना, बीज बोना, सिंचाई, पक जाने पर फसल को काटकर उसका गट्टर बना कर, उसे बाँध कर बैलगाड़ी से खलिदान तक ले जाना। बैलगाड़ी आज के ट्रैक्टर ट्राली की तरह ही होती थी, जिस ट्राली को बैलों के द्वारा खींचा जाता था। फिर खलिदान में भूसा एवम् अन्न को अलग-अलग किया जाता था। बौद्ध ग्रन्थों में सिंचाई के तीन साधनों का वर्णन प्राप्त होता है। वे साधन हैं ढेकुला, रहट् या चक्र तथा चरसा। मौर्य काल में बाकी, जलाशय, कुआँ इत्यादि कृत्रिम जल स्रोतों का भी वर्णन है। इस काल में कोल्हू यन्त्रशाला की भी चर्चा की गई है। मनुस्मृति में तालाब, पोखर एवं नहरों का उल्लेख है, जिसे सिंचाई में उपयोग में लिया जाता था।¹⁴ महाभारत में भी वर्षा के जल को सुरक्षित रखने और उसे धान की खेती तक पहुँचाने के लिये नहरों का वर्णन उपलब्ध होता है।¹⁵ ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ के प्रणेता आचार्यों ने भी अपनी रचनाओं द्वारा प्राच्य कृषि विद्या के विकास और उन्नति में महती भूमिका का निर्वहण किया है। इस सन्दर्भ में आचार्य वराहमिहिर की कृति 'बृहत् संहिता' अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने संहिता स्कन्ध के वर्ण्य विषय के परिगणना क्रम में वृष्टि, मेघगर्भ धारण, अन्न की उत्पत्ति आदि विषयों को भी सम्मिलित किया है।¹⁶ मेघगर्भ लक्षणाध्याय में आचार्य वराहमिहिर ने कहा है: अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्ममायतम अर्थात् संसार का प्राण अन्न है तथा वह अन्न वर्षाऋतु के अधीन है। ज्योतिर्विद्या के अन्य ग्रन्थों में भी कृषिकर्म से सम्बन्धित पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है और 'बृहस्पति संहिता' ग्रन्थ इस दृष्टिकोण से सर्वथा उल्लेखनीय है। देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र के मध्य संवाद के रूप में इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है। इस ग्रन्थ में कृषिशास्त्र, बीजवपन, मेघगर्भ धारण आदि विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त भूमि प्रवेश, भूमि शुद्धिकरण, भूमि कर्षण/हल प्रवहण, बीजवपन, धान्य संग्रह, लवन कर्म (फसल की कटाई), अन्नग्रहण, बीजरक्षण, अन्न रक्षण, पर्णशाला निर्माण, स्थाणु निर्माण आदि विषयों से सम्बन्धित मुहूर्तों पर भी विशद चर्चा उपलब्ध होती है। इस ग्रन्थरत्न का एक अन्य दृष्टिकोण से भी महत्व है कि इस कृति में कृषि विषयक अनिष्ट परिहार के साधनों पर भी विस्तृत चर्चा की गई है। भूमि या कृषि से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के विवाद शमन हेतु कहा गया है कि निर्गुण्डिका का सूर्य के योग में, पूर्वा

फाल्गुनी नक्षत्र तथा सिंह लग्न में दुग्ध वाले वृक्ष के नीचे मिट्टी के भक्षण करने से विवाद का नाश होता है। इसी प्रकार के विवादों के शमनार्थ एक अन्य विधि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि कृषि भूमि से मिट्टी ग्रहण कर गेहूँ, उड़द, तिल, चावल, जौ, ईख आदि अन्न समूह को लाल कमल के पत्ते में रखकर पंचगत्य के साथ रविवार को भूमि में बोने से सर्वविध विवाद नष्ट हो जाते हैं। विभिन्न जीव-जन्तुओं से फसल की रक्षा हेतु मार्गदर्शन हेतु कहा गया है कि जब चन्द्रमा में परिवेश हो तब अपनी भूमि की सीमा में लोहे की कील स्थापित करने से कृषक वर्ग को वराह, चूहा व नीलगाय आदि प्राणियों से रक्षा होती है। ठीक इसी प्रकार पुनर्वसु नक्षत्र के चतुर्थ अंश अर्थात् चरण में चन्द्रमा, गुरु और शुक्र आदि के होने पर धान्य रक्षण से संबंधित कार्य करने चाहिए। ‘बृहस्पति संहिता’ ग्रन्थ में कृषिशस्त्र से सम्बंधित एक सर्वथा नवीन विषय का अनावरण हुआ है- ‘भूमि का ऋतुकाल’। आचार्य बृहस्पति कहते हैं कि जब भूमि का ऋतुकाल हो उसी समय बीज का वपन करना चाहिए, क्योंकि बीजों का भूमि के ऋतुकाल के साथ विशेष सम्बन्ध होता है- “बीजानां तु विशेषेण धर्तव्य विशेषतः।”¹⁷ इस ग्रन्थ के अनुसार ज्येष्ठ मास और आषाढ मास के मूल नक्षत्र को पृथिवी का ऋतुकाल माना गया है। अतः इसी समय विशेष रूप से सभी प्रकार के बीजों का वपन करना श्रेष्ठ होता है।

इन तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में भी कृषि प्रबन्धन की एक मजबूत स्थिति थी। सम्पूर्ण विश्व विशेषतः भारत जैसे कृषि प्रधान देश में कृषि की उपादेयता सर्वोत्तम है। यह कृषि ही इस सम्पूर्ण सृष्टि का आधारभूत रूप में उपस्थित है। इस कृषि कार्य का हमें गौरवान्वित होकर तथा गर्व से आचरण करना चाहिये तभी हमारा देश सम्पूर्ण विश्व के रक्षण-पालन हेतु अपनी भागीदारी को और अधिक मजबूत कर पायेगा ।

सन्दर्भ :

1. तैत्तिरीय उपनिषद्, 3.6
2. वही, 3.9
3. ‘पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम् अन्नात् पुरुषः’, तैत्तिरीय उपनिषद्, 2.1
4. अथर्ववेद, 3.14.4
5. ‘यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतद्देवो जनः’ भगवद्गीता, 3.21
6. ‘ते कृषिं सस्यं च मानुष्याः उपजीवन्ति’ अथर्ववेद, 8.10.24
7. ‘कृष्टराधिरुपमीवनिश्यो भवति’ अथर्ववेद, 8.10.29
8. शतपथ ब्राह्मण, 1.6.12
9. ऋग्वेद, 10.28.8
10. ‘पृथी यद् वां वैन्यः’ ऋग्वेद, 8.9.10
11. ‘तस्या मनुर्वैवत्सतो वत्स आसीत्, पृथिवी पात्रम् तां पृथिवीं वैन्योऽधोक्, तां कृषिं सस्यं चा धोक्। अथर्ववेद, 8.10.15
12. अथर्व, 6.30.1
13. यजुर्वेद, 15.28
14. मनुस्मृति, 8.248
15. महाभारत, 2.5.79
16. बृहत्संहिता, 2.23
17. बृहस्पति संहिता, 28.21



पतञ्जलिकालीन भारत और वर्तमान : एक अध्ययन

○ रंजन कुमार त्रिपाठी¹

संक्षिप्ति :

वर्षों से चली आ रही भारतीय ज्ञान परम्परा में पाणिनि के पश्चात् संस्कृत भाषा के व्याकरण को समृद्ध बनाने में भाष्यकार पतञ्जलि का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाभाष्य में पतञ्जलि ने तत्कालीन भारतवर्ष के सर्वांगीण विकास के समस्त पहलुओं को व्यवस्थित क्रम से विवेचित किया है। तत्कालीन युग के सांस्कृतिक इतिहास की पृष्ठभूमि, कला एवं साहित्य को समझने में महाभाष्य अमूल्य ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन भारतीय ग्रामीण-जीवन का विशद् चित्रण प्राप्त होता है; जैसे, तत्कालीन भारतवर्ष की भौगोलिक अवस्थिति का विवेचन करते हुए हिमालय, विन्ध्याचल के साथ-साथ शोण, सरयू, गंगा और सिन्धु-समूह की महत्त्वपूर्ण नदियों का उल्लेख महाभाष्य में किया है। इसके महत्त्वपूर्ण जनपदों में गांधार, काश्मीर, पुरु, शिवि, साल्व, कुरु, पंचाल, कोसल, काशी, विदेह, मगध, कलिंग, किष्किन्धा, विदर्भ, चोल, पाण्ड्य और वत्स का उल्लेख हुआ है। इनके अलावा नगरों में तक्षशिला, हस्तिनापुर, मथुरा, कौशाम्बी, साकेत, पाटलिपुत्र और नासिक इत्यादि के बारे में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। सामाजिक संरचना का विवेचन करते हुए पतञ्जलि ने तत्कालीन समाज में प्रचलित कुल, गोत्र एवं संयुक्त परिवार तथा जाति-व्यवस्था में चातुर्वर्ण्य के बारे में उल्लेख किया है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति नारी के सह-अस्तित्व के सिद्धान्त का सदैव प्रवर्तन एवं पोषण करती रही है। पतञ्जलि के समय में भी नारियों को सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त थी। जिस प्रकार यज्ञ में सहधर्मिणी के रूप में पति के साथ प्रतिभाग करना आदि का महाभाष्य में उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त महाभाष्य में विविध प्रकार के भोज्य पदार्थों, वस्त्रों, बोलियों के अतिरिक्त परिवहन एवं मनोरंजन के ग्राम्य साधनों का भी विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। अर्थव्यवस्था की दृष्टि से मुख्य व्यवसाय के रूप में कृषि, पशुपालन ही था इसके साथ-साथ व्यापार-वाणिज्य, मुद्रा, माप-तोल, लेन-देन और शारीरिक परिश्रम का भी महाभाष्य में उल्लेख हुआ है। अन्न का सर्वाधिक विनिमय, व्यापार के लिए लेन-देन में ब्याज की दर तथा शारीरिक परिश्रम में वेतन की दर एवं श्रमिकों के सम्बन्ध अनेक नवीन तथ्यों का विवरण प्राप्त होता है। तत्कालीन समय में व्यापार-वाणिज्य के लिए पण्य वस्तुओं की विस्तृत सूची, व्यापार के प्रमुख मार्गों एवं मालवाहक साधनों की भी जानकारी प्राप्त होती है।

1. प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

परम्परागत व्यवसाय में कटकार, लौहकार, मूर्तिकार एवं सुवर्णकारों की कार्यशैली का उल्लेख हुआ है। महाभाष्य में राजतन्त्र एवं गणतन्त्र शासन का भी वर्णन एवं उसके जनपदों, उसके अवयवों और सीमाओं का विवेचन हुआ है। तत्कालीन समय में गुरुकुल शिक्षा जो उपनयन से आरम्भ होती थी इसमें शिष्य, छात्र, माणव, अन्तेवासी, ब्रह्मचारी, स्नातक आदि शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक वाङ्मय की विविध शाखाओं तथा उनसे सम्बद्ध ग्रन्थों एवं उनके कर्त्ताओं के बारे में भी वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त महाभाष्य में संगीत, नृत्य कलाओं और ज्योतिष के साथ-साथ आयुर्वेदशास्त्र में वर्णित शरीर के विविध अंगों और उनमें होने वाले रोगों तथा उनमें प्रयुक्त होने वाली औषधियों की भी जानकारी प्राप्त होती है। धार्मिक स्थिति के विवेचन में भाष्यकार ने पुण्य-अपुण्य की चर्चाओं, 'क' प्रजापति आदि देवताओं, शिव-स्कन्द, रामकेशव आदि उपास्य देवों का उल्लेख करते हुए शिव-भागवत और वासुदेव आदि सम्प्रदायों की चर्चा के साथ-साथ उनके दार्शनिक ग्रन्थों एवं सिद्धान्तों का वर्णन किया है। महाभाष्य में अग्निष्टोम, राजसूय और दर्शपौर्णमास आदि यज्ञों का भी सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मंगल, अभिवादन, आतिथ्य, शिष्टाचार, व्रत-उपवास, परलोक, श्राद्धकर्म, शौचाशौच और भक्ष्याभक्ष्य के सम्बन्ध में भी भाष्यकार ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। इनका विस्तार से विवेचन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष की विविध सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक अवधारणाओं एवं इनकी वर्तमान में समसामयिकता पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन गौरवशाली विरासत का संरक्षण एवं संवर्धन के बारे में मानव समाज को जागरूक करना है।

बीज शब्द : महाभाष्य, समाज, आश्रम व्यवस्था, व्यवसाय, शासन एवं शिक्षा व्यवस्था, साहित्य एवं कला और धार्मिक स्थिति।

संस्कृत वाङ्मय विश्व का सबसे समृद्ध और प्राचीन माना गया है। इनमें सर्वप्रथम सूत्र ग्रन्थ इसके बाद उन पर वृत्ति, वार्तिक, भाष्य और टीका एवं प्रकरण ग्रन्थ लिखे गये हैं। षड् वेदाङ्गों में परिगणित व्याकरण शास्त्र पर महर्षि पाणिनि का सर्वमान्य ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' प्राप्त होता है। इसी पर पतञ्जलि (200-150 ई.पू.) ने महाभाष्य की रचना की है।¹ महाभाष्य का उपजीव्य ग्रन्थ पाणिनि का अष्टाध्यायी है। वस्तुतः व्याकरणशास्त्र में सूत्रकार पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन और भाष्यकार पतञ्जलि को संयुक्त रूप से 'मुनित्रय' कहा गया है। इनमें महाभाष्य सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्रीय ग्रन्थों में सुमेरु के रूप में प्रसिद्ध है। व्याकरणशास्त्र की मुनित्रयी में "यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्....." के रूप में भाष्यकार पतञ्जलि का मत सबसे प्रमाणिक माना जाता है। आचार्यों ने भाष्य का लक्षण इस प्रकार किया है-

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र, वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।

स्वपदानि च वर्ण्यन्ते, भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥²

अर्थात् जिस सूत्रग्रन्थ में आये हुए पदों से सूत्रार्थ का विवेचन किया जाता है, तथा भाष्यकार अपने द्वारा पद प्रस्तुत करके उनका वर्णन करता है, उस ग्रन्थ विशेष को 'भाष्य' कहा जाता है। बाद में भाष्य पर टीका एवं प्रकरण ग्रन्थ भी लिखे गये। वस्तुतः वैदिककाल में संहिताओं का अर्थ स्पष्ट था, लेकिन कालान्तर में संस्कृत में कुछ भाषिक परिवर्तन आने लगे। अतः वैदिक संहिताओं का अर्थावबोध करने के लिए आचार्यों को पदपाठ आरम्भ करना पड़ा। भाषा-विज्ञान का सामान्य सिद्धान्त है जब कोई एक भाषा के लोग दूसरी भाषा के सम्पर्क में आते हैं तो सर्वप्रथम उसके व्याकरण को नवीन सृजन प्राप्त होता है। व्याकरणशास्त्र के नित्य अध्ययन से अपशब्दों का निराकरण होता है और अपने भाषिक कौशल में भी अभिवृद्धि होती है। रामायण में भी इसका

उल्लेख हुआ है -

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहुव्याहरतोऽनेन न किञ्चिदपभाषितम् ॥³

इस तरह रामायणकालीन हनुमान के विषय में यह कथन उनके वैदुष्य का परिचायक है। व्याकरण का अर्थ वस्तुतः उसके उद्देश्य से भी जुड़ा है; यथा, “व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।” अर्थात् जिस शास्त्र में शब्दों का व्याकृत (प्रकट), विश्लेषण और व्युत्पत्ति की जाती है उसे व्याकरण कहा गया है। महाभारत के उद्योगपर्व में इसका उल्लेख प्राप्त होता है -

सर्वार्थानां व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते ।
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत् तथा ॥⁴

अतः सदैव भाषा के शुद्ध प्रयोग के लिए व्याकरणशास्त्र का अध्ययन आवश्यक माना गया है। जो इस शास्त्र का मुख्य प्रयोजन भी है। पतञ्जलि ने महाभाष्य के आरम्भ में ही व्याकरण अध्ययन के पाँच मुख्य प्रयोजनों पर प्रकाश डालते हुए अनेक वैदिक उद्धरणों के आधार पर इस शब्दानुशासन शास्त्र की उपयोगिता को सर्वोच्च सिद्ध किया है; यथा, रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्।⁵ इसप्रकार व्याकरण अध्ययन के मुख्य प्रयोजनों में प्रथम है - वेदों के मूल पाठ को समझना, यज्ञ में प्रकृति रूप में पठित पदों का विकृति रूप में पाठ करना, वैदिक उद्धरणों से व्याकरणशास्त्र का महत्त्व समझना, भाषाशिक्षा के लिए लघुतम साधन के रूप में उपलब्ध होना और किसी शास्त्र में भाषागत सन्देह का निराकरण करना इसके मुख्य प्रयोजन माने गये हैं। इस प्रकार इस शास्त्र का उद्देश्य शास्त्र-विहित एवं परम्परागत साधु शब्दों का समर्थन करते हुए अपभ्रंश शब्दों के मिश्रण से भी भाषा को पूर्णतः बचाना था। ऐतिहासिक दृष्टि से व्याकरणशास्त्र पर उपलब्ध एवं पूर्ण ग्रन्थ पाणिनि की ‘अष्टाध्यायी’ है। इसके प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद एवं कुल मिलाकर 3981 सूत्र हैं। इनमें 14 प्रत्याहार सूत्र भी शामिल कर लिया जाए तो इनकी कुल सूत्रों की संख्या 3995 हो जाती हैं।⁶ पतञ्जलि ने इन्हीं सूत्रों एवं इन पर कात्यायन द्वारा लिखे गए वार्तिकों के आधार पर सर्वमान्य ग्रन्थ ‘महाभाष्य’ की रचना की है। यह शास्त्र कुल 85 आह्निकों (अध्याय) में विभाजित किया गया है। महाभाष्य की व्याख्यान-पद्धति सर्वथा मौलिक एवं तर्क पर आधारित है तथा इसके आह्निकों का विभाजन भी बहुत नैसर्गिक है। इसीलिए व्याकरणशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘अष्टाध्यायी’ आज पूर्ण एवं वैज्ञानिक बना और इसकी गणना विशिष्ट दर्शन के रूप में होने लगी।

पतञ्जलिकालीन संस्कृत :

ऐतिहासिक दृष्टि से शुङ्गकाल वैदिक संस्कृति के जयघोष का स्वर्णिम युग माना गया है। इस काल तक मानव धर्म, आचार और नैतिकता को निर्देशित करने वाले महत्त्वपूर्ण सूत्र-ग्रन्थों का प्रणयन हो चुका था। पतञ्जलि का युग वस्तुतः वैदिक साहित्य एवं संस्कृति के मौलिक सिद्धान्तों के संरक्षण के साथ-साथ उनके संवर्धन का युग माना गया है। तत्कालीन समय में अनेक प्राकृत भाषाओं के विकसित होने से सामान्य जन के व्यवहार में भी इन भाषाओं का प्रभाव होने लगा और इनके प्रयोग में भी वृद्धि हुई। कुछ शब्दों का व्यावहारिक प्रचलन नहीं होने से उनके स्थान पर तत्सदृश कुछ दूसरे शब्द का भी प्रयोग होने लगा; यथा, ऊषेत्यस्य शब्दस्यार्थे क्व यूयमुषिताः।⁷ अर्थात् ऊष के अर्थ में उषित, इसी प्रकार तेर के अर्थ में तीर्ण, पेच के अर्थ में पक्ववत् शब्द प्रयुक्त होने लगे थे। इसके अतिरिक्त एक ही संस्कृत शब्द के जनपद भेद से अनेक अपभ्रंश रूप प्रचलन में आने आरम्भ हो गये थे; यथा, गौरित्यस्य⁸ अर्थात् एक ही ‘गो’ शब्द कहीं पर गावी, कहीं पर गोणी, कहीं पर गोता और कहीं पर गोपोतलिका अपभ्रंश के रूप में प्रयुक्त होने लगे थे। भाष्यकार पतञ्जलि इस तथ्य से पूर्णतः

सहमत थे कि किसी भी भाषा का विकास सदैव नैसर्गिक रूप में ही होता है। इसीलिए प्रत्येक शब्द का व्याकरण द्वारा निष्पन्न होना और उसका लोक में प्रचलित होना दोनों में भेद है। पतञ्जलिकालीन युग वस्तुतः संस्कृत भाषा के पुनरुत्थान एवं संवर्धन का युग है क्योंकि उस समय शुङ्गनरेश पुष्यमित्र का शासन पाटलिपुत्र से विदर्भ, अवन्ती और शूरसेन प्रदेश तक विस्तृत था। भाष्यकार पतञ्जलि शुङ्गनरेश पुष्यमित्र के राजपुरोहित थे। ये अपने महाभाष्य में पुष्यमित्र का उल्लेख वर्तमान काल में करते हैं; यथा, पुष्यमित्रो यजते। इह पुष्यमित्रं याजयामः।⁹

इससे पुष्यमित्र और पतञ्जलि का समकालीन होना भी सिद्ध होता है। अपने शासनकाल में स्वयं पुष्यमित्र ने भी दो अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया था। इस प्रकार उस समय यज्ञ और कर्मकाण्ड के महत्त्व में वृद्धि हो रही थी। इनमें शुद्ध संस्कृत भाषा का ज्ञान व्याकरण को जाने बिना संभव नहीं था। इन्होंने साधु शब्दों का समर्थन करते हुए अभ्युदयकारी बताकर इनके नित्य प्रयोग करने पर जोर दिया और अपभ्रंश शब्दों के बढ़ते प्रभाव को रोकने का महनीय प्रयास किया। भाष्यकार ने लोक में प्रचलित भाषा को साहित्यिक भाषा से अधिक महत्त्व दिया है, क्योंकि तत्कालीन लोक प्रचलित भाषा में स्थानीय अर्थभेद के साथ-साथ प्रयोगभेद भी प्राप्त होते हैं। इन्होंने तत्कालीन आर्यवृत्त में रहने वाले लोगों के लिए अष्टाध्यायी का अध्ययन और द्विजों को षड्वेदांगों सहित वेदों का अध्ययन निष्काम भावना से करने पर जोर दिया है। इसीलिए संस्कृत भाषा पुनः समृद्ध होकर अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने लगी।

वस्तुतः संस्कृत का जो आदर्श स्वरूप पतञ्जलि ने तत्कालीन समाज में स्थापित किया था, वह आज भी वैसा ही बना हुआ है। व्याकरणशास्त्र के नीरस सिद्धान्तों को लोकाश्रय या लोक व्यवहार के आधार पर सर्वजनों के लिए बुद्धिगम्य महाभाष्य की मौलिक देन है।¹⁰ इस भाष्य के आरम्भ में ही शब्द की परिभाषा करते हुए कहा है कि लोक में उस ध्वनि विशेष को ही शब्द कहते हैं, जिसके व्यवहार से पदार्थ का ज्ञान होता है; यथा, प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द उच्यते।¹¹ यह शब्द नित्य है तथा इसकी ही 'स्फोट' संज्ञा है। हमारे भाषिक व्यवहार के समय ध्वनि द्वारा ही उस 'स्फोट शब्द' का प्रकाशन होता है जो श्रोता के अन्तर्मन में अपना अर्थबोध करता है। ऐसी विद्वत्ता और प्रतिभा के कारण ही शब्दानुशासन शास्त्र की प्राचीन आचार्य-परम्परा में भाष्यकार का मत सर्वाधिक प्रामाणिक माना गया। भाष्यकार पतञ्जलि के जन्मकाल के विषय में तो कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। लेकिन रामभद्र दीक्षित द्वारा विरचित 'पतञ्जलिचरितम्' काव्य के अनुसार इनकी माता का नाम गोणिका बताया है और ये संभवतः गोनर्द देश के निवासी थे। इसका सन्दर्भ हमें महाभाष्य में उद्धृत गोनर्दीय मत से प्राप्त होता है। लेकिन ये सभी उद्धरण भाष्यकार पतञ्जलि के जन्मकाल निर्धारण में अपर्याप्त हैं। इसलिए केवल इतना कह सकते हैं कि तत्कालीन विद्वत् समाज में पतञ्जलि की बहुत प्रतिष्ठा थी। क्योंकि भर्तृहरि ने स्वयं अपने ग्रन्थ में पतञ्जलि को योगसूत्र, व्याकरण-महाभाष्य और चरक के वार्तिकों का प्रणेता माना है; यथा,

कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः समवस्थिताः ।

चिकित्सालक्षणाध्यात्मशास्त्रैस्तेषां विशुद्ध्यः ॥¹²

वर्तमान में भी व्याकरणशास्त्र अध्ययन-अध्यापन की परम्परा में सर्वप्रथम अधोलिखित श्लोक के द्वारा प्रार्थना की प्राचीन परम्परा विद्यमान है; यथा,

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।

योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥¹³

इनके समय के विषय में धारेश्वर नरेश भोजराज (11वीं शताब्दी) द्वारा रचित ग्रन्थ के आरम्भ में उद्धृत

उक्तियों के अनुसार योगसूत्र के प्रणेता पतञ्जलि, संस्कृत भाषा में व्याकरण के भाष्यकार पतञ्जलि तथा आयुर्वेदशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरकसंहिता' के रचयिता पतञ्जलि ये तीनों व्यक्ति संभवतः एक ही हैं।

इन्होंने महर्षि पाणिनि के ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' का सम्यक् प्रकार से अवबोध करके उन पर कात्यायन द्वारा लिखित वार्तिकों की समीक्षा करते हुए उसकी सूक्ष्मता को अपने महाभाष्य में सरल एवं स्पष्ट रूप में दर्शाया है। इसके साथ ही महाभाष्य में तत्कालीन इतिहास, भूगोल, समाज, धर्म, राजनीति और लोकप्रथाओं इत्यादि विषयों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है।

पतञ्जलिकालीन भूगोल एवं सामाजिक परिवेश :

भाष्यकार पतञ्जलि आर्यावर्त भारत के भौगोलिक भू-भाग से भलीभांति परिचित थे।¹⁴ इसकी भौगोलिक अवस्थिति का विष्णुपुराण में वर्णन करते हुए कहा है कि जो समुद्र के उत्तर में और हिमालय पर्वत के दक्षिण में स्थित है, उस राष्ट्र का नाम 'भारत' है और उसमें निवास करने वाले लोग भारतीय हैं; यथा,

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चौव दक्षिणम् ।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥¹⁵

इस प्रकार तत्कालीन भारतवर्ष की भौगोलिक अवस्थिति में हिमालय, विंध्याचल के साथ-साथ शोण, सरयू, गंगा और सिन्धु-समूह की महत्त्वपूर्ण नदियों का उल्लेख भी भाष्यकार ने कई स्थानों पर किया है। इसके महत्त्वपूर्ण जनपदों में गांधार, काश्मीर, पुरु, शिवि, साल्व, कुरु, पंचाल, कोसल, काशी, विदेह, मगध, कलिंग, किष्किन्धा, विदर्भ, चोल, पाण्ड्य और वत्स जनपद का भी वर्णन किया है। इनके अलावा पतञ्जलि के महाभाष्य में तत्कालीन प्रमुख नगरों में प्रसिद्ध तक्षशिला, हस्तिनापुर, मथुरा, कौशाम्बी, साकेत, पाटलिपुत्र और नासिक इत्यादि के बारे में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इसके पश्चात् पतञ्जलि ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति का विवेचन करते हैं; इसमें 'कुल' को मानव समाज की सबसे छोटी इकाई माना गया।¹⁶ प्रायः कुल का नामकरण पुरुषों के नाम पर ही रखा जाता था। कुछ कुल अपने पूर्वजों के नाम से भी प्रसिद्ध थे। पतञ्जलि के समय कुल को गोत्र का भी अवयव माना जाता था। किसी भी कुल की पारिवारिक प्रतिष्ठा पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी संतान के साथ अग्रेसर रहती थी। माता-पिता कुल के मूल में होते थे, जिन्हें 'पितरौ' कहा गया। कुल के बाद वंश की परम्परा भी विद्यमान थी। पतञ्जलि के समय सामाजिक संगठन में गोत्र का बहुत महत्त्व था। जैसे- गार्ग्य की संतान गार्गायण, वत्स की संतान वात्स्यायन, दक्ष की संतान दाक्षायण कहलाती थी। महाभाष्य में नामकरण, चूड़ाकर्म और उपनयन संस्कारों की भी चर्चा की है। भाष्यकार ने मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया है। इनमें ब्रह्मचर्य आश्रम को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है। यहाँ मानवक और ब्रह्मचारी की चर्चा की है। इसके पश्चात् अवस्था की दृष्टि से नारी के शिशु, कुमारीतरा, कुमारी, किशोरी, युवती, वधूटी आदि रूपों का उल्लेख किया है। कन्या की सम्मति से ही माता-पिता रूपवान् वर दूढ़ते थे। उच्चशिक्षा प्राप्त करने पर स्त्रियों को भी आचार्या और उपाध्यायों का पद प्राप्त होता था।¹⁷ भाष्य में तत्कालीन रहन-सहन की चर्चा करते हुए बताया की निवास एक सामान्य शब्द था, जो जनपद से लेकर शाला में रहने के लिए प्रयुक्त होता था। उस समय निवास के लिए ग्राम, घोष, नगर एवं संवाह आदि नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। ग्रामों में प्रायः सभी जातियों के व्यक्ति निवास करते थे। इनमें कम से कम पाँच कार (शिल्पी) अवश्य रहते थे, जो अपने परम्परागत व्यवसाय में कुशल थे। ग्राम का मुखिया 'ग्रामणी' कहलाता था।¹⁸ तत्कालीन समय में नगरों का निर्माण ऐसी जगह किया जाता था, जहाँ जल की प्रचुरता हो, उपजाऊ मृदा हो और वनस्पतियों का भी आधिक्य हो।

बाह्य आक्रमण से नगर की सुरक्षा हेतु परिखा¹⁹ (चतुर्दिक् खाई) बनाये जाते थे। भाष्य में पाटलिपुत्र, मथुरा

और साकेत आदि प्रसिद्ध नगरों का उल्लेख हुआ है। इनमें राजकीय निवास, राजसभा, भाण्डागार, शुल्कादि शालाएँ, आपण तथा प्रेक्षागृह होते थे। उस समय मिट्टी के पात्रों में खाद्यान्न रखा जाता था। जमीन पर बिछाने के लिए 'कट' मुख्य आस्तरण होता था। तत्कालीन वेशभूषा में चीर तथा चीवर का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय शरीर पर पहनने तथा ओढ़ने के लिए दो ही वस्त्र थे, जो अन्तरीय और उत्तरीय कहलाते थे। ये वस्त्र प्रायः कार्पास, कौशेय, ऊर्णा के तन्तुओं से निर्मित होते थे। भाष्य में अनेक प्रकार के खाद्यान्न की चर्चा हुई है। इनमें ओदन, यवागू, सक्तु, गोधूम आदि बहुत स्वास्थ्यप्रद एवं महत्त्वपूर्ण हैं। पतञ्जलि ने तत्कालीन समय में प्रचलित यात्रा के विभिन्न साधनों में शकट और रथ का उल्लेख किया है। इनमें प्रायः शकट का उपयोग कृषि उपज को घर पर लाने और भार ढोने में तथा रथ का उपयोग यात्रा के साथ-साथ सेना में भी होता था। यथा - द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्।²⁰ तत्कालीन समाज में मनोरंजन के साधनों में संगीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य, चित्र एवं आख्यान मुख्य थे। इनके अतिरिक्त सामूहिक मनोरंजन क्रीड़ाओं में मल्लविद्या, पुष्पावचय का उल्लेख भाष्य में हुआ है। भाष्य में क्रीडार्थ एकत्र होने वाले जन-समुदाय को मनुष्य 'समाज' कहा है।²¹

महाभाष्य में वर्णित आर्थिक स्थिति :

पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष में कृषि और पशुपालन ही मुख्य व्यवसाय के रूप में विद्यमान था। जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करता था। उसमें अधिकांश व्यवसाय ग्रामीण जीवन से ही सम्बन्धित रहा है। तत्कालीन समय में हल और बैल कृषि व्यवसाय के मुख्य साधन थे। भाष्य में फसल वपन का प्रयोग अनेक बार हुआ है; इसके अतिरिक्त विभिन्न फसलों के नाम और उनके बोये और काटे जाने की ऋतुओं का भी उल्लेख हुआ है। तत्कालीन फसल सिंचाई के विभिन्न साधनों का भी उल्लेख प्राप्त हुआ है। उनमें नदियाँ, तालाब, कुल्या (नहरें) और कुएँ प्रमुख साधन थे।²² फसलों में व्रीही, शालि, यव, गोधूम, माष, मूंग, तिल, सर्षप, कार्पास, इक्षु, हरिद्रा, द्राक्षा और पिप्पली आदि का वर्णन हुआ है।²³ भाष्य में विभिन्न प्रकार के वृक्षों और वनस्पतियों का भी उल्लेख हुआ है। पशुओं में गाय, बैल, अश्व, गज, उष्ट्र, गर्दभ और अजा आदि का वर्णन किया है। पतञ्जलिकालीन समय में परम्परागत व्यवसाय के विभिन्न शिल्पियों में तक्षा, रथकार, कुम्भकार, लौहकार, सुवर्णकार, मूर्तिकार, तन्तुवाय एवं चर्मकार की विभिन्न कार्यशैलियों का उल्लेख प्राप्त होता है।²⁴ इसके साथ-साथ व्यापार-वाणिज्य, मुद्रा, माप-तोल, लेन-देन का भी महाभाष्य में उल्लेख हुआ है। तत्कालीन समय में पण्य वस्तुओं की विस्तृत सूची में गुड़, मूंग, जौ, दालें, घृत, दधि, मोदक और लवण के साथ-साथ अनेक प्रकार की शाक और पेय पदार्थों का वर्णन भाष्य में हुआ है। उस समय के 'पण्य' व्यवहार में वस्तुओं का मूल्य सिक्कों के रूप में मुद्रा देकर निर्धारित किया जाता था। भाष्यकार ने माष (ताम्रमुद्रा), कार्षापण (रजतमुद्रा) और निष्क एवं सुवर्ण मुद्रा देकर वस्तुएँ खरीदने के सन्दर्भ दिये हैं।²⁵ विनिमय में अन्न तथा दालें देकर भी वस्तुएँ खरीदने का उल्लेख भाष्यकार ने किया है; यथा, तेन क्रीतम्।²⁶ व्यापार के लिए दूर-दूर जाने वाले पथिकों, उसके प्रमुख मार्गों एवं मालवाहक साधनों की भी जानकारी भाष्य में प्राप्त होती है। इसके पश्चात् व्यापार के लिए उधार लिये गये धन पर ब्याज की दर का भी उल्लेख हुआ है। उधार धन देने वाले व्यक्ति को उत्तमर्ण²⁷ और लेने वाले को अधमर्ण कहा जाता था।

भाष्य में श्रमिकों के अनेक नाम प्राप्त होते हैं; उनके शारीरिक परिश्रम जन्य कार्यों का दैनिक वेतन की दर का उल्लेख हुआ है; जैसे, कर्मकर, भृत्य, प्रसाधक, दास और भाक्तिक (हल जोतना) आदि।

पतञ्जलिकालीन शासन एवं शिक्षा प्रणाली :

महाभाष्य में राजतन्त्र एवं गणतन्त्र शासन का भी वर्णन हुआ है एवं उनके अधीन जनपदों, उसके अवयवों

और सीमाओं का भी विवेचन हुआ है। राजा के लिए भाष्यकार ने 'नृपति' शब्द का प्रयोग किया है जो ऋग्वेद में भी उद्धृत है; यथा, त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः।²⁸ यह शब्द राजा के नैतिक कर्तव्य और उसके महत्त्व का परिचायक भी है। भाष्यकार ने इसका उल्लेख नृपालक या नार्पत्य के रूप में किया है।²⁹ राजा के साथ उसकी मंत्रिपरिषद्, सभा, दुर्ग, कोष और विभिन्न आगारों के राजकीय अधिकारियों का उल्लेख करते हुए उन्हें दो भागों में विभजित किया है- ग्रामीण अधिकारी और नागरिक अधिकारी। इनकी नियुक्ति राजा के निर्देश से ही होती थी। इन अधिकारियों में राष्ट्रीय पद का बड़ा महत्त्व था। भाष्यकार इस पद के महत्त्व से पूर्णतः परिचित थे।³⁰ तत्कालीन समय में राज्य की सुरक्षा के लिए सेना के हाथी, घोड़े, रथ और पैदल आदि चार अंग थे; यथा, द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्।³¹ भाष्यकार ने सेनापति के लिए 'सेनानी' पद का प्रयोग किया है।³² तत्कालीन समय में सेना के पत्ति, सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, चमू, अनीकिनी और अक्षौहिणी विशाल संगठन विद्यमान थे। पतञ्जलि के महाभाष्य में जनपदों की चर्चा बहुत बार हुई है। जन अथवा विशिष्ट लोगों के निवास के लिए उपयुक्त भूमि होने के कारण ही वह स्थान 'जनपद' कहलाते थे। भाष्यकार के समय देश विशेष को ही जनपद कहा गया था। उनमें पंचाल, विदेह, अंग, मगध, मालव, पुरु, गांधार, काश्मीर, कुरु, शिवि, कोसल, मगध, कलिंग, विदर्भ, कम्बोज, चोल, पाण्ड्य और वत्स का उल्लेख हुआ है। इन जनपदों के राजा को जनपदी कहा जाता था।³³

तत्कालीन समय में गुरुकुल शिक्षा जो उपनयन संस्कार से आरम्भ होती थी। व्याकरणशास्त्र अध्ययन का मुख्य प्रयोजन वेदों के मूल पाठ की रक्षा करना है। पतञ्जलि ने महाभाष्य के आरम्भ में ही व्याकरण अध्ययन के पाँच मुख्य प्रयोजनों पर प्रकाश डाला है। अतः वेदाध्ययन से पूर्व व्याकरण का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। गुरुकुल में उपनयन संस्कार के बाद बालक गुरु के पास ही रहकर अध्ययन करता था, इसलिए उसे अन्तेवासी कहा गया है। भाष्य में तत्कालीन विद्यार्थी के लिए माणव, दण्डमाणव, वर्णी, ब्रह्मचारी और छात्र शब्द प्रयुक्त किये जाते थे।³⁴ इसी प्रकार उस काल में शिक्षा प्रदान करने वाले को शिक्षक, उपाध्याय, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक, गुरु और आचार्य नाम महाभाष्य में प्राप्त होते हैं। उस समय के अध्ययन विषयों में वेद ही प्रमुख था। भाष्यकार ने कहा की विधिवत् पढ़े गये शास्त्र ही उत्तम फलदायी होते हैं; यथा, वेदशब्दाः नियमपूर्वकमधीताः फलवन्तो भवन्ति।³⁴ गुरु-शिष्य सम्बन्ध आजीवन रहता था। तत्कालीन समय में शिष्य गुरु के नाम से ही पुकारे जाते थे। महाभाष्य में अनेक गुरुओं और शिष्यों का उल्लेख हुआ है। पतञ्जलि के समय स्त्रियों में भी शिक्षा का अच्छा प्रचार-प्रसार था तथा उच्चशिक्षा प्राप्त करके स्त्रियों को आचार्या और उपाध्यायी कहलाती थी।³⁶ वैदिक वाङ्मय की विविध शाखाओं तथा उनसे सम्बद्ध ग्रन्थों एवं उनके कर्त्ताओं के बारे में भी वर्णन प्राप्त होता है। ऋषि वचन होने से वेदों को प्रायः ऋषि भी कहा गया है; यथा, आचारे पुनर्ऋषिर्नियमं वेदयते।³⁷ इसके अतिरिक्त महाभाष्य में आयुर्वेदशास्त्र में वर्णित मानव शरीर के विविध अंग, प्रत्यंगों और त्रिदोषों के असन्तुलन से उनमें होने वाले रोगों तथा उनके निदान में प्रयुक्त होने वाली विविध औषधियों की भी जानकारी प्राप्त होती है। महाभाष्य में शरीर के पर्याय के रूप में देह, काय और भोग शब्दों का उल्लेख हुआ है। पतञ्जलि ने ज्योतिषशास्त्र में सूर्य-गति के आधार पर काल गणना का उल्लेख किया है। भाष्य में कृत्तिका, रोहिणी आदि नक्षत्रों की चर्चा भी आयी है।

इसी प्रकार संगीत-कला के लिए पतञ्जलि ने साम का उल्लेख 'गीति' के रूप में किया है। तत्कालीन पाठशालाओं में तथा यज्ञ के अवसर पर माणवक सामगान करते थे। महाभाष्य में संगीत के चार अंगों का उल्लेख हुआ है- गेय, गीति, गायक और गायन। तत्कालीन समय में संगीत के साथ विभिन्न वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होने के साथ ही नृत्य का विकास हुआ। यह नृत्य ही नाट्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। इसके विषय में भरतमुनि

ने कहा कि संसार में रस के बिना कुछ भी प्रवृत्त नहीं होता है। यथा ख न हि रसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते।³⁸

महाभाष्य में वर्णित धार्मिक स्थिति :

पतञ्जलि ने धार्मिक स्थिति का विवेचन करते हुए बताया कि तत्कालीन समय में यज्ञ प्रधान होने के कारण उत्तर वैदिककाल के अनेक देवताओं का वर्णन प्राप्त होता है। महाभाष्य में देवताओं के राजा इन्द्र के अनेक प्रसिद्ध नामों का उल्लेख हुआ है; जैसे, शक्र, वृत्रहन्, मघवन् और पुरन्दर आदि। इन्द्र के पश्चात् अग्निदेव का भी कई स्थानों पर प्रयोग किया है। पतञ्जलि के अनुसार उस समय अग्नि का स्थान इन्द्र से श्रेष्ठ माना गया।³⁹ इनके बाद रुद्र, सूर्य, मरुत्, उषस्, वरुण, प्रजापति और आर्यमन् इत्यादि देवताओं के नाम भी महाभाष्य में प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त इनकी पत्नियों के नामों का भी उल्लेख किया है; जैसे, अग्न्यायी, इन्द्राणी, सूर्या आदि। इनके अलावा महाभाष्य में कुछ अन्य स्वतन्त्र स्त्री-देवताओं में गौरी, सरस्वती और लक्ष्मी के नाम भी प्राप्त होते हैं। पतञ्जलि स्वयं कर्मकाण्डी श्रोत्रिय होने से भाष्य में यज्ञ अनुष्ठान का अनेक बार उल्लेख किया है; यथा, शुङ्गनरेश पुष्यमित्र द्वारा दो बार यज्ञ अनुष्ठान कराने का वर्णन इन्होंने महाभाष्य में किया है।⁴⁰ पतञ्जलि के समय वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ के साथ-साथ कल्पसूत्र की रचनाएँ विद्यमान थी। इनका अध्ययन करने वाले याज्ञिक कहलाते थे। तत्कालीन समय यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली संस्कृत भाषा के व्यवस्थित नियम भी बन गये थे; यथा, स्वरितजितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले।⁴¹

उस समय याज्ञिकों के अनुसार यज्ञ का विधिवत् अनुष्ठान करना और श्रद्धापूर्वक उसके गूढ़ रहस्यों को हृदयंगम करना आवश्यक था; जैसे, अग्निष्टोम यज्ञ में नचिकेत अग्नि का चयन करना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उसके वैज्ञानिक महत्त्व को जानने के लिए याज्ञिक शास्त्र का सूक्ष्म अध्ययन बहुत जरूरी है।⁴² पतञ्जलि काल में यज्ञ दो वर्गों में विभाजित थे- श्रौत यज्ञ और स्मार्त यज्ञ। इनमें श्रौत यज्ञ का अनुष्ठान बड़े स्तर पर किया जाता था। इनके सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं का वर्णन संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है; जैसे, सोमयाग एक श्रौत यज्ञ का उदाहरण है। इसी प्रकार स्मार्त यज्ञों का विस्तृत विवेचन गृह्यसूत्रों और स्मृति ग्रन्थों में हुआ है; इनका अनुष्ठान छोटे स्तर पर किया जाता था। महाभाष्य में 'अग्निहोत्र' के सम्बन्ध में अनेक जगह विवरण मिलता है। इसमें यजमान द्वारा नियमपूर्वक प्रातः और सायं अग्निहोत्र का अनुष्ठान करने के पश्चात् दर्शपूर्णमास याग सम्पन्न करने का अधिकारी होता है। इनके अतिरिक्त अग्निष्टोम, राजसूय⁴³ और अश्वमेध यज्ञों का भी उल्लेख हुआ है। इनमें जो व्यक्ति अपने कल्याण के लिए यज्ञ का अनुष्ठान करता है, उसे यजमान कहा जाता है और जो शुल्क लेकर यजमान के कल्याण हेतु यज्ञ सम्पादित कराता है उसे याजक कहा गया है; यथा, याजकाः याजयन्ति। इसके पश्चात् भाष्यकार पतञ्जलि ने अनेक प्रकार की मूर्तियों का भी उल्लेख किया है। उन्हें प्रतिकृति और अर्चा के रूप में विभाजित किया है।

इनमें जो मूर्तियाँ मूल वस्तु, जैसे - अश्व, गज, उष्ट्र और गर्दभ की थीं उन्हें 'प्रतिकृति' कहा है। तत्कालीन समय में ये मूर्तियाँ खिलौनों अथवा कलाकृतियों के रूप में प्रचलित थीं। वहीं देव मूर्तियों को अर्चन के कारण 'अर्चा' कहा गया।⁴⁴ क्योंकि ये मूर्तियाँ किसी वस्तु या कृति का प्रतिरूप नहीं थीं, अपितु विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में कल्पित देव-स्वरूप के आधार पर ही इन्हें निर्मित किया जाता था। इन देव मूर्तियों को मन्दिरों में विधिवत् प्रतिष्ठित करके जिस देवता की जो अर्चा होती थी, उसे उसी के नाम से उच्चारित किया जाता था; जैसे, शिव की अर्चा को 'शिव' ही कहा जाता था। तत्कालीन युग में वस्तुतः शिव भक्ति का प्रचार-प्रसार सर्वाधिक हो रहा था। इसके साथ-साथ राम-केशव की पूजा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। पतञ्जलि के समय अनेक दार्शनिक मत प्रचलित थे। दर्शनों का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को दुःखों से पूर्णतः निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति

कराना है। भाष्य में आस्तिक, नास्तिक और लोकायत आदि सम्प्रदाय तथा इनके सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है। आश्रम चतुष्टय के कर्तव्यों की भी यत्र-तत्र चर्चा भी प्रस्तुत की है। महाभाष्य में मानव जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय के स्थान पर धर्म, अर्थ और काम का ही उल्लेख किया है। क्योंकि वैदिक कालीन यज्ञों का उद्देश्य स्वर्ग प्राप्ति था, मोक्ष प्राप्ति नहीं। भाष्य में धर्म सम्बन्धी चर्चा गम्भीरता से हुई है तथा धर्माधर्म का निर्णय शास्त्र के अधीन ही माना गया है; यथा, शास्त्रेण धर्मनियमः।⁴⁵ जहाँ शास्त्र मौन हो, वहाँ पर ऋषि सम्प्रदाय में प्रचलित आचार को ही प्रमाणिक माना जाता था; यथा, ऋषिसम्प्रदायों धर्मः।⁴⁶ श्राद्ध कर्म का विवेचन करते हुए कहा कि इसका उद्देश्य पितरों को श्रद्धापूर्वक प्रसन्न करना है। इसमें तर्पण और पिण्डदान भी सम्मिलित था। प्राचीनकाल से ही श्राद्ध वस्तुतः शरद् ऋतु में ही सम्पन्न किये जाते हैं; यथा, श्राद्धे शरदः।⁴⁷ दान के सन्दर्भ में भाष्यकार ने कहा कि यज्ञ, श्राद्ध तथा मांगलिक कार्यों के अवसर पर गोदान, वस्त्रदान आदि देने की प्रथा प्रचलन में थी। इसके पश्चात् शौच का विवेचन करते हुए भाष्यकार ने कहा कि मानव जीवन में बाह्य और आन्तरिक शुचिता का होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है।⁴⁸ भक्ष्याभक्ष्य अन्न और अन्य वस्तुओं का भी उल्लेख भाष्य में प्राप्त होता है। सदैव जीवन में अशुभ के निवारण और किसी कार्य के आरम्भ में मंगलार्थ देवता की स्तुति की जाती थी।⁴⁹ अपने से बड़ों का अभिवादन करने की प्रथा भी तत्कालीन समय में विद्यमान थी। महाभारत के उद्योगपर्व में भी इसका उल्लेख हुआ है; यथा,

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि संप्रवर्धन्ते कीर्तियुर्यशोबलम् ॥⁵⁰

इस प्रकार गृहस्थों के लिए अतिथि सत्कार भी पञ्च-महायज्ञों में से एक माना गया है। भाष्य में व्रत शब्द का प्रयोग 'नियम' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उपवास भी 'व्रत' का ही अंग था। इसमें वस्तुतः भोज्य पदार्थों के सेवन का निषेध होता था। इसके अतिरिक्त कुछ शिष्टाचार के नियमों का भी भाष्य में उल्लेख प्राप्त होता है।⁵¹

निष्कर्ष :

इस प्रकार भाष्यकार पतञ्जलि ने अपने व्याकरण का सर्वमान्य ग्रन्थ 'महाभाष्य' में तत्कालीन भारतीय संस्कृति की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक और धार्मिक अवधारणाओं का सर्वांगपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए 'भारतबोध' के मन्तव्य को साकार करने में सहायक होगा।

सन्दर्भ :

1. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, पृ. 3
2. पाराशर उपपुराण, 18/15
3. वाल्मीकि रामायण, 4/3/29
4. महाभारत, 5/43/61
5. महाभाष्य, आह्निक -1
6. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 26
7. महाभाष्य, आह्निक -1
8. वही, आह्निक -1
9. अष्टाध्यायी, 3/2/123
10. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 35

11. महाभाष्य, आह्निक -1
12. वाक्यपदीय, 1/147
13. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 43
14. वही, पृ. 59
15. विष्णुपुराण, 3/1
16. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 109
17. अष्टाध्यायी, 4/1/49
18. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 154
19. अष्टाध्यायी, 5/1/17
20. वही, 2/4/2
21. समुदोरजः पशुषु। काशिकावृत्ति, 3/3/69
22. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 211
23. वही, पृ. 215-222
24. अष्टाध्यायी, 6/2/76
25. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 273
26. अष्टाध्यायी, 5/1/37
27. वही, 1/4/35
28. ऋग्वेद, 2/1/1
29. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 309
30. अष्टाध्यायी, 4/2/93
31. वही, 2/4/2
32. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 326
33. वही, पृ. 332-337
34. वही, पृ. 344
35. पतञ्जलिमहाभाष्य, आह्निक -1
36. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 358
37. महाभाष्य, आह्निक -1
38. नाट्यशास्त्र, 6/31
39. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 415
40. वही, पृ. 421
41. अष्टाध्यायी, 1/3/72
42. महाभाष्य, आह्निक- 2
43. राज्ञा सोतव्यः, राजा वा इह सूयते राजसूयः क्रतुः। काशिकावृत्ति, 3/1/114
44. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री. पृ. 453
45. महाभाष्य, आह्निक -1
46. वही, आह्निक -1

47. अष्टाध्यायी, 4/3/12
48. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री, पृ. 478
49. महाभाष्य, आह्निक -1
50. महाभारत, 5/39/60
51. पतञ्जलिकालीन भारत, प्रभुदयालु अग्निहोत्री, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, पृ. 487



यमी : यम-यमी संवादसूक्त के दृष्टिकोण से

○ श्रुति राय¹

संक्षिप्त :

वैदिक ज्ञान परम्परा में स्त्री मन्त्रद्रष्टा को ऋषिका कहा जाता है। बृहदेवताकार शौनक ने इन ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी कहकर भी सम्बोधित किया है। ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं में से एक ऋषिका का नाम यमी है, जिन्होंने ऋग्वेद के दो सूक्तों का साक्षात्कार किया है। दोनों सूक्तों की संख्या क्रमशः 10.10 एवं 10.154 है। इनमें से प्रथम सूक्त संवाद सूक्त है। इस सूक्त में यम ऋषि तथा यमी ऋषिका का संवादसूक्त है, जिसके देवता का नाम भी यम एवं यमी ही है। इस सूक्त पर प्राचीन तथा अर्वाचीन भाष्यकारों ने भाष्यग्रन्थों की रचना की है। इनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध भाष्य सायण भाष्य है। सायण भाष्य के अनुसार संवाद में यमी यम की जुड़वा भगिनि है, तथापि भगिनि होते हुए भी यमी यम से प्रणय निवेदन करती है, जो पूर्णतया अनैतिक है। वास्तव में इस सूक्त के अभिप्राय की विज्ञप्ति हो नहीं पायी है। विद्वानों के द्वारा अभिधा से सायण भाष्य का अर्थ किया गया है, वही अर्थ प्रधान मान लिया गया है। किन्तु सत्य यह है कि इस संवाद के द्वारा ऋषिका का उद्देश्य समाजकल्याण है, न कि प्रणयनिवेदन। इस लेख में यमी ऋषिका तथा यमी देवता के इसीस्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द : यम, यमी, ऋषिका, मन्त्रद्रष्टा, संवादसूक्त।

वैश्विक ज्ञान परम्परा में वैदिक ऋषियों का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। विद्वानों के द्वारा वैदिक ऋषियों का भारतीय संस्कृति एवं ज्ञानपरम्परा के प्रति अमूल्य योगदान स्वीकार किया गया है, विश्व का प्रथम ग्रन्थ 'वेद' इन्हीं ऋषियों की देन है। इन्होंने वेद के मन्त्रों का ज्ञानचक्षु से साक्षात्कार किया। वेद के प्रामाणिक भाष्यकारों ने ऋषिदृष्ट वेदमन्त्रों की आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक व्याख्या की है। किन्तु इन ऋषियों में एक नाम ऐसा भी है, जिसकी प्रसिद्धि तो विद्वत्जगत् में है, किन्तु उनके योगदान का औचित्यपूर्ण मूल्यांकन होना अभी शेष है। वह व्यक्ति है-यमी जो एक ऋषिका हैं। ऋग्वेद में यमी ऋषिका द्वारा साक्षात्कृत दो सूक्त प्राप्त होते हैं। इनमें से प्रथम सूक्त यम-यमी संवाद है जो दसवें मण्डल का 10वां सूक्त है। द्वितीयसूक्त

1. सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
srai@sanaskrit.du.ac.in, मो.: 9868033684

भी दसवें मण्डल का ही 154वां सूक्त है। विषयवस्तु के दृष्टिकोण से दोनों सूक्त रुचिकर एवं महत्त्वपूर्ण हैं, तथापि ऋषिका यमी के प्रति विद्वानों की दृष्टि विवादित रही है। इसका प्रमुख कारण है- यम-यमी संवाद सूक्त। यद्यपि इस सूक्त की वैदिक भाष्यकारों ने अलग-अलग व्याख्या की है, किन्तु सायणकृत भाष्य सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार यम की भगिनि होते हुए भी यमी यम से प्रणयनिवेदन करती है, जो पूर्णतया अनैतिक है। वास्तव में इस सूक्त के अभिप्राय की विज्ञप्ति हो नहीं पायी है। विद्वानों के द्वारा अभिधा से सायणभाष्य का अर्थ किया गया है, वही अर्थ प्रधान मान लिया गया है, परिणामस्वरूप ऋषिका के कथन का वास्तविक अभिप्राय पीछे छूट गया है। सत्य यह है कि इस संवाद के द्वारा ऋषिका का उद्देश्य समाज कल्याण है, न कि प्रणय निवेदन। यह सूक्त ऋषिका की दूरदर्शिता का परिचय है। इन्होंने भाई-बहन के सम्बन्धों की मर्यादा को शास्त्रीय पद्धति से स्थापित किया है। किन्तु दुर्भाग्यवश ऋषिका के इस सारगर्भित अभिप्राय के प्रति विद्वानों की अनभिज्ञता है। इस सूक्त के विषय में प्राचीन वैदिक भाष्यकारों तथा अर्वाचीन विद्वानों के मध्य भी विसम्मति का ही अवान्तर परिणाम है कि इस सूक्त का वास्तविक अभिप्राय, इसकी महत्ता को स्थापित नहीं किया जा सका है तथा स्वयं ऋषिका का आदरपूर्ण स्थान अभी तक सुनिश्चित नहीं हो सका है एवं इसका अवान्तर दुष्परिणाम यह भी है कि इस सूक्त के कारण यमी द्वारा साक्षात्कृत द्वितीय सूक्त 10.154 पर भी विद्वानों का ध्यान कम जाता है, जिसमें ऋषिका के द्वारा पितरों की उपासना की गयी है। इस सूक्त में यमी ऋषिका पूर्वजों एवं पितरों की आध्यात्मिक शक्ति का महत्त्व समझाते हुए उनकी उपासना करती है। इस लेख में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया जायेगा, जिसका मुख्य केन्द्र होगी यमी ऋषिका तथा यमी देवता।

1. यमी शब्द का अर्थ -

यमी शब्द का निर्माण यम शब्द से हुआ है। यम शब्द यम् धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर बना है। यम् धातु के दो अर्थ हैं- यम उपरमे एवं यम च परिवेषणे। उपरम का अर्थ है- समाप्त करना या निवृत्ति एवं परिवेषण का अर्थ है- परिवेष्टन् करना या घेरना। प्रस्तुत लेख में यमी का उपरम, संयत करना, नियन्त्रित करना अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है। कोशग्रन्थों में भी यम के इस अर्थ पर प्रकाश डाला गया है। अमरकोश के अनुसार यम का अर्थ है- शरीरसाधनापेतं नित्यं यत्कर्म तद्यमः¹ अर्थात् शरीर मात्र से साध्य नित्य कर्म का नाम यम है। अमरकोश में षट् संयम के अन्तर्गत भी यम का वर्णन है- संयम के छह नाम हैं- वियाम, वियम, याम, यम, संयाम, संयम- वियामो वियमो यामो यमः संयामसंयमौ² वाचस्पत्यम्³ में भी इसकी गणना अहिंसा आदि के साथ की गयी है- अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकलकता। अस्तेयमिति पञ्चौते यमाख्यानि व्रतानि च' इत्युक्ते अहिंसादौ तच्च देगमात्रसाध्यम् आवश्यकनवशयकार्यं नित्यं कार्यमिति अमरः इन्द्रियादीनां संयमने व। मनुस्मृति, 4.204 में कहा गया है- यमान्सेवेत सततम्। वामन शिवराम आप्टे के अनुसार यम्⁴ धातु का अर्थ है- रोकना, दमन करना, नियन्त्रण करना, दबाना, वश में करना आदि। इस प्रकार यम शब्द के मूल अर्थ में संयम के सिद्धान्त का सन्निवेश हो जाता है। इसप्रकार यम शब्द के मूल में 'इन्द्रियों का यमन अर्थात् संयम करने वाला' अर्थ अनुस्यूत है। आचार्य यास्क ने 'यमी' का निर्वचन लिङ्गभेद मात्र से 'यम' से माना है। 'यमो यच्छतीत सतः' अर्थात् यम को यम इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यह प्राणियों को नियन्त्रित करता है। अतः यमी भी नियन्त्रणकर्तृ है। यजुर्वेद में तथा शतपथब्राह्मण में यम को अग्नि और यमी को पृथिवी बताया गया है। सारा जगत् इन दोनों से नियन्त्रित होता है⁵ -

यमेन त्वं यम्या संविदानेत्यग्निर्वै यम इयं यमी आभ्यां हीदं सर्वं यतम्।

यह पृथिवी ही निरर्हति है, जो निरर्हच्छति अर्थात् पाप करता है, उसको पृथिवी नष्ट कर देती है⁶ -

इस प्रकार यमी के स्वरूपावबोधन के लिए यम अविनाभावरूप रूप से अपरिहार्य है। यमी के संयमित स्वरूप को प्रमाणित करने का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है, यम के साथ उसके सम्बन्ध की नैतिक मर्यादा जो कि आत्मसंयम की भावना से प्रेरित है, जिसे समझने में सायण तथा दयानन्द सरस्वती दोनों की दृष्टि सहायक है। यह भी ध्यातव्य है कि यहां यमी आधिदैविक शक्ति के रूप में स्थापित हैं।

2. यमी ऋषिका

यमी का प्रथम परिचय ऋग्वेद में ऋषिका के रूप में प्राप्त होता है। ऋषिका शब्द ऋषि से बना है। उणादि सूत्र और पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'ऋषि' शब्द 'ऋ' धातु ("जाना" या "जानना") से उत्पन्न है और इसका शाब्दिक अर्थ है 'वह जो जानता है'। यास्क के निरुक्त में "ऋषि" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'दृश्' धातु (देखना या जानना) के साथ-साथ 'ऋ' धातु ("जाना") से बताई गई है। जो सूक्ष्म अर्थों को देखता (जानता) है वह ऋषि है। जो धर्म का प्रत्यक्ष करता है, वह ऋषि है-

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।⁷

ऋषि मंत्रद्रष्टा हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ऋषि शब्द की व्याख्या करते हुए ऋषियों को मन्त्रार्थप्रकाशक कहते हैं।⁸

“ऋषयो मन्त्रद्रष्टयः मन्त्रान्सम्प्रादुः - निरुक्त, 1.20

जिस जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिये अद्यावधि उस उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्ता बतलावे उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।

अतः यमी भी मन्त्रद्रष्टा हैं, तथा मन्त्रों के अर्थ की प्रकाशिका हैं। निरुक्त के अनुसार यह 'पूर्व ऋषि' की श्रेणी में आती हैं, क्योंकि यमी ने स्वयं अपने तपोबल से धर्म (सत्य) का साक्षात्कार किया है, किसी अन्य ऋषिगण से मन्त्र का श्रवण नहीं किया। शौनक ने यमी की गणना ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं के अन्तर्गत की है। शौनक के अनुसार यमी देवताओं से वार्तालाप करने वाली ऋषिका हैं। ध्यातव्य है कि शौनक ने सूक्तों के विषय-वस्तु के आधार पर ऋषिकाओं का त्रिविध वर्गीकरण भी किया है, जो इसप्रकार है- देवताओं की स्तुति करने वाली ऋषिकाएँ, देवताओं से वार्तालाप करने वाली ऋषिकाएँ तथा आत्मा की भाववृत्ति का गायन करने वाली ऋषिकाएँ।⁹ यमी द्वितीय श्रेणी की ऋषिका हैं, ये ऋग्वेद के दशम मण्डल के दो सूक्तों 10वां एवं 175वां की द्रष्टा हैं। इनमें से 10.10 सूक्त संवादात्मक शैली में है, जिसमें यमी यम से संवाद करती है, अतः इस सूक्त के यम तथा यमी क्रमशः द्रष्टा ऋषि एवं ऋषिका हैं। इस सूक्त के देवता यम तथा यमी हैं। अथर्ववेद के अष्टादश काण्ड के प्रथम अनुवाक में ऋग्वेद का यम-यमी का यही संवाद दो नये मन्त्रों के साथ प्राप्त होता है, अतः अथर्ववेद में यम-यमी संवाद में सोलह मन्त्र है, जबकि ऋग्वेद के संवादसूक्त में 14 मन्त्र हैं। किन्तु दोनों वेदों में सूक्त का पर्याय समान है।

3. यमी देवता

यमी ऋषिका तथा यम ऋषि के द्वारा साक्षात्कार किये हुए ऋग्वेद के 10.10 सूक्त के देवता यम-यमी हैं। वास्तव में इस सूक्त में प्रतिपाद्य देवता यमी के आधार पर ही इस सूक्त की ऋषिका का भी नाम यमी पड़ा। देवता के रूप में यमी का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है, तथा अनेक स्तरों पर इसकी व्याख्या होने से इसकी स्वरूपगत विशेषताएँ भी वैविध्यपूर्ण हैं। इसकी स्वरूपगत विशेषता का प्रमुख आधार क्रमशः वेद तथा ब्राह्मणग्रन्थ

हैं। ऋग्वेद के 10.10 वें सूक्त में वैदिक भाष्यकारों ने इनके स्वरूप का अलग अलग दृष्टिकोण से परीक्षण किया है। वेद के अतीव प्रसिद्ध भाष्यकार सायण जिनका समय चौदहवीं शताब्दी माना जाता है, उन्होंने यम तथा यमी को भाई-बहन माना है, सत्रहवीं शताब्दी के वेद के भाष्यकार दयानन्द सरस्वती ने यम-यमी को पति-पत्नी स्वीकार किया है, किन्तु पति सन्तान उत्पन्न करने में सक्षम नहीं है, अतः पत्नी यमी को वह नियोगविधि से सन्तानोत्पत्ति करने को कहते हैं। दयानन्द इन्हें आधिदैविक स्तर पर जलजगत् का प्रतिनिधि भी मानते हैं, जिनका संयोग सम्भव नहीं है। 19वीं शताब्दी के वेद के विद्वान् जर्मन फ्रेडरिक मैक्समूलर ने यम-यमी को क्रमशः दिन एवं रात्रि के रूप में स्वीकार करते हैं। इसप्रकार यम-यमी के सम्बन्ध एवं स्वरूप के विषय में सर्वसम्मति न हो पाने के कारण तदगत सूक्त के मन्त्रों के अर्थ में भी विभिन्नता है। इनमें से सायण मत तथा दयानन्द सरस्वती का प्रथम मत सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, जबकि दयानन्द सरस्वती का द्वितीय मत एवं मैक्समूलर आदि के विचार आधिदैविक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ये आधिदैविक सिद्धान्तों की प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

4. सायण के मत में यमी -

सायणभाष्य के अनुसार यम तथा यमी विवस्वान् तथा सरण्यू की यमज सन्ताने हैं। भाई-बहन का रक्तसम्बन्ध इस सूक्त का केन्द्र है। इस सूक्त में बहन यमी निर्जन प्रदेश में अपने सगे भाई यम से दैहिक प्रेम की अभिलाषा व्यक्त करती हैं। यमी कहती हैं कि गर्भ में ही हम दोनों ने दम्पती-भाव को (यमल होने के कारण) प्राप्त कर लिया था, अतः हम पती-पत्नी बनकर सन्तानोत्पत्ति करें¹⁰ -

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कदेर्वस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।

नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः।

उत्तर में यम यमी से किसी अन्य पुरुष का वरण करने को कहते हैं, जिससे धर्मार्थकाम का निर्वहन किया जा सके। क्योंकि यम-यमी में बन्धुभाव है। भ्राता का अपनी बहन के साथ संभोग पापयुक्त कर्म है¹¹

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्या पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।

अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत्।

इसप्रकार यम यमी के अनुरोध को अस्वीकार कर देते हैं। इस सूक्त को प्रथमदृष्टिया देखने पर यमी की भूमिका का तात्पर्यार्थ निश्चित कर पाना समस्यामूलक प्रतीत होता है, क्योंकि रक्तसम्बन्ध में दम्पतिवत् व्यवहार की अभिलाषा न केवल भारतीय संस्कृति में अपितु सम्पूर्ण विश्व की सभ्य सांस्कृतिक धारा में अतिनिन्दनीय रही है। ऐसे में यमी की अपने भाई के साथ संगमन की अभिलाषा विमर्श का विषय है। मूल प्रश्न यह है कि ऋषिका का इस सूक्त में वास्तविक तात्पर्यार्थ क्या है? यमी के पक्ष को समझने के लिये वेद की पद्धति को जानना आवश्यक है। वास्तव में वेदों में कहीं विधेयात्मक रूप में तो कहीं निषेधात्मक रूप में करणीय तथा अकरणीय कार्यों का प्रतिपादन किया गया है। द्रष्टा ऋषि को अपने इष्ट अर्थ को दर्शाने के लिये उसे किसी आख्यान के साथ जोड़कर व्यक्त करने में प्रसन्नता होती है। सुबोध सातवलेकर वैदिक पद्धति में मनोवैज्ञानिक पद्धति को भी जोड़ देते हैं। सातवलेकरकृत ऋग्वेद के सुबोध भाष्य की प्रस्तावना के कुछ अंश इसप्रकार है¹²-

“मानव को देव, नर को नारायण, जीव को शिव बनानेका ऋषियों का एकमात्र ध्येय था। इस ध्येय के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक पद्धति का सहारा लिया। यह मनोवैज्ञानिक पद्धति थी देवताओं के गुण वर्णन करने की। किसी को कुमार्ग से हटाकर के सुमार्ग में प्रवृत्त करने के दो ही तरीके हैं- पहला, उससे जोर जबर्दस्ती करके कुमार्ग से परावृत्त करके सुमार्ग में प्रवृत्त किया जाए। यह मार्ग वैदिकेतर सम्प्रदायों का है। दूसरा उपाय

यह है कि कुमार्ग पर चलने से होनेवाली हानियों और सुमार्ग पर चलने से होने वाले लाभों का विश्लेषण करके मनुष्य को सुमार्ग में चलने के लाभों को आकर्षक रीति से बताया जाए, तो वह स्वयं कुमार्गको छोड़कर सुमार्ग में प्रवृत्त हो जाएगा। किसी जुआरी पर 'तुम जुआ खेलना छोड़ दो' यह कथन इतना प्रभावशाली नहीं हो सकता, क्योंकि यह कथन उसके अन्तर्मन पर प्रभाव नहीं डालता पर यदि उसके सामने जुए से होनेवाली हानियों को बतलाया जाए, तो शीघ्र ही उसका उसके मन पर प्रभाव पड़ेगा। इसी तरह एक बालकसे 'तुम दूध पीओ' यह कहने की से अपेक्षा उसके सामने दूध पीने से होनेवाले लाभों का वर्णन किया जाए, तो वह शीघ्र ही उस बालमन पर प्रभाव डाल सकता है। वैदिक ऋषि इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से भलीभांति परिचित थे, इसीलिए उन्होंने वेदों में 'सत्य बोलो, धर्म करो, दान करो, देव बनो' आदि विध्यात्मक आशाएँ देने के बजाए देवों के गुणों का वर्णन आकर्षक शब्दों में किया कि मनुष्यों के मनपर उन गुणों की छाप अनायास ही पड़ जाए। यही कारण है कि वेदों में विधिनिषेध न होकर देवों के गुणवर्णन ही अधिक हैं। ऋषियों की यह मनोवैज्ञानिक पद्धति विलक्षण थी।"

अतः वेदों में करणीय तथा अकरणीय कार्यों के उपदेश के लिये मनोवैज्ञानिक पद्धति का भी आश्रय लिया जाता है। जहाँ तक इस सूक्त का प्रश्न है तो इस सूक्त में कथानक को निषेधात्मक पद्धति से प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उसका उद्देश्य निश्चित ही मानव जगत् का कल्याण है। ध्यातव्य है कि यद्यपि इस सूक्त की पद्धति निषेधात्मक है, किन्तु इसका प्रभाव मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यक्ति के मानसपटल पर अपना छाप अंकित कर देता है। इस सूक्त में पवित्र बान्धवभाव का प्रतिपादन किया गया है। यह सूक्त कथानक के रूप में विवादित विषय को रोचकता के साथ प्रस्तुत करता है। यमी ऋषिका द्वारा इस कथात्मक सूक्त के माध्यम से मानव-जाति को उच्छृंखल कामदोष को नियन्त्रित करने का उपदेश दिया गया है। अतः इस सूक्त को सर्वथा आचार मर्यादा की शिक्षा देने वाला कहा जा सकता है। जिसमें ऋषिका ने प्रतिकूल परिस्थिति की योजना कर यम के व्यवहार द्वारा आचार श्रेष्ठता को प्रकाशित किया है। उन्होंने अपने ऋषिका होने की सार्थकता सिद्ध की है। एक मन्त्रद्रष्टा में ही इतना साहस होता है कि वह जागतिक निन्दा से परे होकर संसार के कल्याण हेतु निःस्वार्थ भाव से कार्य कर सकती है।

निष्कर्ष-

अतः यम-यमीसंवादसूक्त समाज को नैतिक सन्देश देने में पूर्णतः सफल रहा है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि यद्यपि यहाँ यमी देवता ने पूर्वपक्ष की भूमिका निभायी, तथापि इनका स्थान यम की तुलना में लेशमात्र भी कमतर नहीं है। इसका प्रमाण है हिन्दू धर्म में प्रतिवर्ष कार्तिक माह में मनाये जाने वाला भैया दूजा या यम-द्वितीया नामक त्योहार। हिन्दू धर्म के प्रमुख त्योहारों में से यह प्रमुख त्योहार है एवं यम-यमी (यमराज-यमुना) के भाई-बहन के सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध का प्रतीक है। यम द्वितीया-कार्तिक शुक्ला दूज में बहने अपने भाईयों का सत्कार करती हैं, वह भाईदूज या भ्रातृद्वितीया कहलाती है।¹³ भारत के उत्तरप्रदेश के मथुरा नगर में भाई-बहन यम-यमी (यमराज-यमुना) का एक मंदिर भी है। वास्तव में अपने नाम के अर्थ को चरितार्थ करते हुए यमी शारीरिक सम्बन्धों में संयम एवं नियन्त्रण का ही उपदेश देती हैं। रक्तसम्बन्धों की मर्यादा को स्थापित किया गया है। यमी यम के साथ संवाद स्थापित करके भारतीय संस्कृति के इसी अवधारणा को सिद्ध करने का प्रयास करती हैं। इसप्रकार यम एवं यमी ने मिलकर ऋग्वैदिक मन्त्रों द्वारा इस व्यवस्था को अन्तिम स्वीकृति दी है कि भाई-बहन का शारीरिक सम्बन्ध या विवाह सर्वथा अनुचित है। वास्तव में भारतीय संस्कृति में ऋग्वैदिक काल में ही दूरदृष्टि के साथ रक्त सम्बन्ध की नैतिक सीमा रेखा का मूल्यांकन कर दिया गया है, जो सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संदर्भ :

1. अमरकोश, द्वितीय काण्ड, 49 श्लोक, पृ. 169
2. वही, तृतीय काण्ड, 18वां श्लोक, पृ. 251
3. वाचस्पत्यम्, पृ. 4774
4. संस्कृत हिन्दी कोश, 829
5. शतपथ ब्राह्मण, 7.2.1.10
6. वही, 7.2.1.11
7. निरुक्त, 1.6
8. सत्यार्थ प्रकाश, सप्तम उल्लास, 206
9. बृहदेवता, 2.85-86: नवकः प्रथमस्त्वासां वर्गस्तुष्टाव देवताः ।
ऋषिभिर्देवताभिश्च समूदे मध्यमो गणः ॥ 2.85 ॥
आत्मनो भाववृत्तानि जगौ वर्गस्तथोत्तमः ।
उत्तमस्य तु वर्गस्य य ऋषिः सैव देवता ॥ 2.86 ॥
10. ऋग्वेद, 10. 10.5
11. वही, 10.10.12
12. ऋग्वेद के सुबोध भाष्य, प्रस्तावना, पृ. 1
13. संस्कृत हिन्दी कोश, पेज न. 830

सन्दर्भ ग्रन्थ :

- अथर्ववेदसंहिता, भाग 6, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2021
- ऋग्वेदसंहिता, खण्ड 2, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2019
- ऋग्वेदसंहिता, खण्ड 3, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2019
- ऋग्वेदसंहिता, खण्ड 7 (अनुवादक) जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2012
- ऋग्वेदसंहिता, खण्ड 8 (अनुवादक) जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2013
- ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, भाग 2, मेहरा आफसेट प्रेस, नई दिल्ली, 1985
- ऋग्वेदसंहिता, श्रीमत्सायणाचार्यविरचितभाष्यसमेता, चतुर्थ भाग, वैदिक संशोधन मण्डल, तिलक महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी, शक् 1868
- ऋग्वेदभाष्यभूमिका, महर्षिदयानन्द सरस्वती, चौखम्भा क्लासिक, वाराणसी, 2024
- बृहन्नारदीयपुराणम् (पूर्वभागः), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2012
- मारकण्डेय पुराण, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, 1941
- तैत्तिरीय उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1993
- स्कन्दमाहेश्वर, निरुक्तभाष्यटीका टीका, परिमल पब्लिकेशन्स प्राईवेट लिमिटेड, 2012
- मत्स्यपुराणम् (पूर्वभागः), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989
- यास्क, निरुक्तम् (निघण्टु सहितम्), प. सीताराम शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012
- राजशेखर, काव्यमीमांसा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, वि. स. 2011

- श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2080
- शाङ्गदेव, संगीतरत्नाकर, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2023

सहायक पुस्तकें:

- A.S. The Position of Women in Hindu Civilization, Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi, 2014
- Maxmuller, Lectures on the Science of Language, second series, Longman, Green, Longman, Roberts & Green, 1864, London
- आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृति हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली 1989
- वेद कथाङ्क, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर सं. 2066
- वैदिक शब्दार्थ विमर्श, रघुवीर वेदालंकार, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2007
- त्रिपाठी, गयाचरण, वैदिक देवता, उद्भव और विकास, डी.के प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली, 2011
- वेदालंकार, रामनाथ, वेदों की वर्णनशैलियाँ, श्री घूढमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, चण्डीगढ़, 2016



संस्कृतभाषायाः संवर्धने राजस्थानस्य शासकानां योगदानम्

○ पिंगी कुमारी¹

○ उमाशंकर²

राजस्थानप्रदेशे बहुभिः राजभिः शासनं कृतम्। राजस्थानस्य अर्थः अस्ति-भूपानां स्थानम्। भूखण्डदृष्ट्या राजस्थानः भारतवर्षस्य अत्यन्तं विस्तृतं राज्यम् अस्ति। राजस्थानस्य विभिन्नं क्षेत्रं विभिन्नैः शासकैः शासिताः आसन्। अभिलेखेषु अनेके प्रमाणाः प्राप्ताः यत् षष्ठशताब्द्यां मण्डोरः क्षेत्रस्य परितः प्रतिहाराणां शासनम् आसीत्। तत् पश्चात् राठजनैः (राठौड़) मण्डोरक्षेत्रे आधिपत्यं कृतम्। षष्ठशताब्द्यां मेवाडप्रदेशे तस्य निकटवर्ती क्षेत्रे च गुहिलवंशः शासनम् अकरोत्। दशमशताब्द्याम् अर्थूर्णे आबूक्षेत्रे च परमारवंशस्य शासकाः शासनम् अकुर्वन्। द्वादशशताब्द्यां जालौरे, हाडौतीक्षेत्रे, रणथम्भौरक्षेत्रे चौहानशासकाः शासनम् अकुर्वन्।¹ सर्वे राजवंशाः न केवलं शौर्यस्य कृते प्रसिद्धाः आसन् अपितु संस्कृतसंवर्धनाय संरक्षणाय च अपि प्रसिद्धाः आसन्। सर्वे शासकाः संस्कृतप्रेमिणः अनुरागिणः च आसन्। राजानः अनेक-शिलालेखान् संस्कृतभाषायाम् उत्कीर्णं कारितवन्तः यथा-प्रशस्तिपत्राणि, दानपत्राणि, स्तम्भपत्राणि। राजस्थानस्य शासकाः संस्कृतस्य विदुषाम् आश्रयं प्रदानं कृतवन्तः। राज्ञाम् आश्रये बहवः कवयः अनेकानि संस्कृत-काव्यानि, महाकाव्यानि, नाटकानि, स्तोत्राणि च रचितवन्तः। संस्कृतभाषायाः संवर्धने, सम्पोषणे च स्वस्य योगदानम् अपि दत्तवन्तः। राजस्थानस्य राजानः स्वयमपि संस्कृतस्य अध्ययने लेखने च स्वस्य योगदानं दत्तवन्तः यथा-महाराणाकुम्भः, राजसिंहः इत्यादयः राजानः संस्कृतभाषायाम् अनेक-ग्रन्थान् लिखितवन्तः।

भाषैव अभिव्यक्तेः साधनं, यस्य माध्यमेन वयं चिन्तयामः स्वस्य च विचारान् प्रकटयामः।² राजस्थानस्य नृपाः स्वविचारान् अभिव्यक्तुम् अधिकतया संस्कृतभाषां चयनम् अकुर्वन्। राजस्थान-प्रदेशे प्राकृतभाषा, राजस्थानीभाषा च अपि प्रचलने आस्ताम् परञ्च प्रदेशस्य शासकाः संस्कृतभाषायाः वैज्ञानिकतां प्राचीनतां च दृष्ट्वा संस्कृतभाषायाः अत्यधिकं प्रयोगं कृत्वा भाषायाः प्रचारम् अकुर्वन्। यदा कवयः शिलालेखान् संस्कृतभाषायाम् उत्कीर्णम् अकुर्वन्,

1. सहायक-आचार्या, संस्कृतविभागः मिराण्डा-हाउसः महाविद्यालयः दिल्लीविश्वविद्यालयः

2. सह-आचार्यः, संस्कृतविभागः दिल्लीविश्वविद्यालयः

अणुसंकेतः- umashankarkaswan@gmail.com, सचलदूरभाषः - 9213504870

तदा ते प्रमाणं दत्तवन्तः यत् किमर्थं केवलं संस्कृतभाषायामेव एतान् शिलालेखान् उत्कीर्णं कृतवन्तः? किमर्थं संस्कृतभाषायाः उपयोगं समीचीनं?

राजप्रशस्ति शिलालेखे अस्य प्रश्नस्य उत्तरं कविना रणछोड़भट्टेन दत्तम्। कविः रणछोड़भट्टः शिलालेखे लिखति यत् अरे राणा! (राजसिंहः) संस्कृतभाषायाः इतर भाषायां रचितानां ग्रन्थानाम् आयुः मानवानाम् आयुः इव भवति। परञ्च संस्कृतभाषायां रचित ग्रन्थानाम् आयुः देवानाम् आयुः इव अस्ति। एतत् कारणात् इमम् शिलालेखम् अहं देववाण्यामेव रचयामि।

मर्त्यायुष्यैस्तुल्यमायुस्तु भाषा ग्रन्थानां स्याद्देववाग्भारतादेः ।

देवायुष्यैस्तुल्यमायुस्ततोहं ग्रन्थं कुर्वे राणा गीर्वाणवाण्या ॥ १६॥^३

अस्य श्लोकस्य अध्ययनानन्तरं ज्ञातुं शक्यते यत् राजस्थानस्य शासकाः कवयः च संस्कृतभाषायाः अत्यधिकम् आदरं कुर्वन्ति स्म। संस्कृतसाहित्ये अपि तेषाम् अतीव रुचिः आसीत्। अत्र एतादृशाः शासकाः कवयः च वर्णिताः सन्ति ये संस्कृतभाषायाः संरक्षणार्थं, प्रचारार्थं च अनेकानि कार्याणि कृतवन्तः। ते स्वयमेव संस्कृते अनेकानि पुस्तकानि लिखितवन्तः। तेषाम् आश्रितकवयः अपि स्वस्य योगदानं दत्तवन्तः।

प्रतिहारशासकानां संस्कृतस्य संवर्धने योगदानम् -

प्रतिहारशासकाः कलायाः साहित्यस्य च महान् संरक्षकाः आसन्। प्रतिहारशासकानाम् आश्रये बहवः संस्कृतज्ञलेखकाः आसन्। ये अनेकानि ग्रन्थानि निर्माय स्वकौशलस्य परिचयं दत्तवन्तः। अस्मिन् समये बहवः कवयः आसन् यथा- राजशेखरः, कविपम्पा, जैनाचार्यः जिनसेनः इत्यादयः। अस्मिन् काले संस्कृतग्रन्थानाम् अत्यधिकं निर्माणम् अभवत्। अस्य वंशस्य षष्ठशताब्द्याः राजाहरिश्चन्द्रः महान् शासकः आसीत्। सः अनेकेषु शास्त्रेषु अपि निपुणः आसीत्। सः विद्यानुरागी, विविधभाषाणां, शास्त्राणां वेत्ता च आसीत्। एतादृशेषु शासकेषु एकः वत्सराजः आसीत्। तस्मिन्नेव काले राजा महेन्द्रपालः महिपालः च अन्यतमः संस्कृतज्ञः आस्ताम्। महेन्द्रपालस्य, महिपालस्य च शासनकाले वाक्पतिराजः, भवभूतिः, राजशेखरः इत्यादयः विद्वांसः आश्रयं प्राप्नुवन्तः।^४ कविः राजशेखरः काव्यमीमांसा, कर्पूरमञ्जरी, विद्धशाल-भञ्जिका, बालरामायणम्, बालभारतम् इत्यादीनि अनेकानि ग्रन्थानि अलिखत्। विद्धशाल-भञ्जिकायाः एकस्मिन् श्लोके राजशेखरः वर्णनम् अकरोत् यत् सः महेन्द्रपालस्य गुरुः आसीत्।^५

परमारशासकानां संस्कृतस्य संवर्धने योगदानम् -

परमारशासकेषु धारावर्षनाम्नः भूपस्य कालः संस्कृतभाषायाः कृते स्वर्णकालः आसीत्। समकालीनकविः सोमेश्वरः स्वस्य 'कीर्ति-कौमुदी' इति ग्रन्थे धारावर्षस्य वर्णनं कृतवान्। तस्य अनुजः प्रह्लाददेवस्य शौर्यस्य, पाण्डित्यस्य च प्रशंसाम् अकरोत्।^६ कविः सोमेश्वरः लिखति यत् प्रह्लाददेवः न केवलं वीरशासकः अपितु नाटककारः अपि आसीत्। प्रह्लाददेवः संस्कृतभाषायां 'पार्थ-पराक्रम-व्यायोगः' नामकं शास्त्रीयं नाटकम् अपि लेखितवान्।^७ अनेन प्रकारेण शासकाः संस्कृतस्य साहित्यस्य च संवर्धनाय कार्यम् अकुर्वन्।

चौहानशासकानां संस्कृतस्य संवर्धने योगदानम् -

राजस्थानस्य इतिहासे चौहानशासकानां महत्वपूर्णा भूमिका वर्तन्ते। प्रदेशदृष्ट्या यदि वयं पश्यामः तदा ते मूलरूपेण सपालदक्षात्, जांगलाच्च प्रदेशाभ्याम् आसन्। चौहानशासकाः न केवलं वीरयोद्धाः आसन् अपितु काव्यप्रेमिणः, संस्कृतप्रेमिणः च अपि आसन्। चौहानशासकेषु मुख्यरूपेण राणा अजयराजः, अर्णोराजः, विग्रहराजः, पृथ्वीराजतृतीयः च इत्यादयः आसन्। विग्रहराजः चतुर्थः न केवलं संस्कृतभाषायाः संरक्षकः आसीत् अपितु सम्यक्तया संस्कृतभाषाम् अपि जानाति स्म। सः कविः बान्धवः इति नाम्ना अपि प्रसिद्धः आसीत्। विग्रहराजस्य

रचना “हर्केली” इति सम्पूर्णं नाटकं संस्कृतभाषायाम् अस्ति। अस्य नाटकस्य उपजीव्यं किरातार्जुनीयम् नामकं महाकाव्यम् अस्ति तथा अस्मिन् नाटके अर्जुनस्य शिवस्य च युद्धस्य वर्णनम् अस्ति। विग्रहराजस्य आश्रित-कविषु ललित-विग्रहराज-नाटकस्य रचयिता कविः सोमदेवः आसीत्। सोमदेवः अस्मिन् नाटके स्वस्वामिनं प्रति आदरं प्रकटितवान्। विग्रहराज-चतुर्थस्य पाण्डित्यस्य प्रशंसायां वैदेशिकः विद्वांसः कीलहोर्नः उक्तवान् यत् यदि कोऽपि कालिदासस्य, भवभूतेः च समक्षं स्थातुं समर्थः आसीत् तर्हि सः कविशिरोमणिः विग्रहराजः आसीत्।⁸ विग्रहराजेन सम्बन्धितः ‘ललितविग्रहराज नाटकम्’⁹ शिलाषु उत्कीर्णम् कारितवान्। एतेन स्पष्टम् भवति यत् स्तुतिगीतानां रचयिताः प्रायः राजसभया सह सम्बद्धाः आसन्।

महाराणाकुम्भस्य संस्कृतस्य संवर्धने योगदानम्-

महाराणा-कुम्भस्य कालः संस्कृतभाषायाः विकासस्य दृष्ट्या स्वर्णयुगः आसीत्। महाराणाकुम्भस्य सभायां बहवः प्रतिभाशालिनः विद्वांसः आश्रयं प्राप्नुवन्ति स्म। सः संस्कृतभाषायाः महान् विद्वान् आसीत्। सः न केवलं महान् शासकः अपितु संस्कृतशास्त्राणां अध्येता अपि आसीत्। सः अनेकानि पुस्तकानि अलिखत्। ‘सङ्गीतराजः’ इति तस्य सर्वोत्तमं संस्कृतस्य रचना अस्ति। अस्य ग्रन्थस्य अनेकानि पाण्डुपत्राणि अपि उपलभ्यन्ते।¹⁰ एकलिङ्गस्य दक्षिणद्वारशिलालेखेऽपि¹¹ अस्य रचनायाः विवरणं दृश्यते। अयं शिलालेखः संस्कृतभाषायाम् अस्ति। एतस्मात् इतर कृतिः ‘नृत्यकोशः’ अस्ति। अस्मिन् ग्रन्थे नाट्यशालायाः, नाट्यवेशस्य, नट-नाट्यस्य च वर्णनं दृश्यते। अन्यासु रचनासु ‘सूडप्रबन्धः’ इति गीतगोविन्दस्य सङ्गीत-प्रकरणम् अस्ति। कीर्ति-स्तम्भ-प्रशस्तौ, सूडप्रबन्धग्रन्थस्य वर्णनं दृश्यते।¹² अन्येषु ग्रन्थेषु ‘चण्डीशतकवृत्तिः’¹³ इति बाणभट्टेण विरचितं चण्डीशतकस्य टीका वर्तते। कीर्तिस्तम्भप्रशस्तिः शिलालेखेऽपि अस्य ग्रन्थस्य (चण्डीशतकवृत्तिः) वर्णनम् उपलभ्यते।

महाराणाकुम्भः एकः प्रतिभावान् शासकः आसीत्, अनेके विद्वांसः च तस्य राजसभाम् अलङ्कुर्वन्ति स्मः। कुम्भस्य आश्रितेषु कविषु मुख्यतया श्री-कान्हव्यासः, अत्रिभट्टः, महेशभट्टः, सूत्रधारमण्डनः इत्यादयः आसन्। ते संस्कृतस्य विद्वांसः आसन्। कविः अत्रिभट्टः महाराणा-कुम्भस्य कविषु अन्यतमः आसीत्। सः संस्कृतस्य प्रकाण्डः पण्डितः आसीत्। महाराणाकुम्भस्य समये अत्रिभट्टः कीर्तिस्तम्भप्रशस्त्याः रचनाम् अकरोत्¹⁴ परन्तु तस्य अकालमृत्युः अभवत्। अनेन कारणेन अस्य प्रशस्तेः पूर्णतायाः दायित्वं तस्य पुत्रेण (महेशभट्टः) निर्वहनम् अकरोत्। महेशभट्टः अपि अनेके संस्कृतस्य शिलाप्रशस्तौः अलिखत् यथा- एकलिङ्गदक्षिणद्वारस्य प्रशस्तिः¹⁵ १५४५ ई०, घोसुण्डी-नगरस्य प्रशस्तिः¹⁶ १५६१ ई० इत्यादयः। सूत्रधारमण्डनः राणाकुम्भस्य प्रसिद्धेषु कविषु अन्यतमः आसीत्। सूत्रधारमण्डनकृतः रचनासु देवमूर्तिप्रकरणम्, प्रसादमण्डनं, राजवल्लभः, रूपमण्डनं, वास्तुमण्डनं, वास्तुसारः इत्यादयः आसन्। तस्य पुत्रः गोविन्दः उद्धारधरणी, कलानिधिः, द्वारदीपिका इत्यादयः ग्रन्थाः अलिखन्। तस्य भ्राता ‘वास्तुमञ्जरी’ नामकं ग्रन्थम् अलिखत्।¹⁷ अनेकप्रकारेण वयं वक्तुं शक्नुमः यत् महाराणाकुम्भस्य काले संस्कृतभाषायाः प्रसाराय, संवर्धनाय, सम्पोषणाय बहुनि कार्याणि जातानि।

महाराणाजगत्सिंहस्य राजसिंहस्य च संस्कृतस्य संवर्धने योगदानम् -

अनयोः द्वयोः राणयोः कालः संस्कृतभाषायाः उन्नयनदृष्ट्या समृद्धः आसीत्। महाराणाजगत्सिंहः अपि संस्कृतकाव्यस्य, संगीतस्य, कलायाः च प्रेमी आसीत्। तेषां विद्वत्कविषु रघुनाथपालिवालः नामकः ब्राह्मणः आसीत्। सः ‘जगत्सिंहकाव्यम्’ नामकं ग्रन्थं लिखितवान्। एषः ग्रन्थः संस्कृतभाषायाम् अस्ति। काव्यम् पद्येषु विभक्तम् अस्ति तथा च अनुष्टुप् छन्दसि लिखितम् अस्ति।¹⁸ तस्मिन्नेव काले जगत्सिंहस्य आश्रितः वैद्यनारायणस्य पुत्रः विश्वनाथः एकः ‘जगत्प्रकाशः’ इति नामकं पुस्तकं लिखितवान्। गौरीशंकरः ओझा महोदयः अपि अस्य ग्रन्थस्य उल्लेखं कृतम्।¹⁹ महाराणाजगत्सिंहस्य काले रचनाः न केवलं पाण्डुपत्रेषु उपलभ्यन्ते अपितु प्रशस्तौ अपि

उपलभ्यन्ते। प्रशस्तिषु 'जगन्नाथरायः प्रशस्तिः'²⁰ संस्कृतभाषायाः अतीव सुन्दरं प्रशंसापत्रम् अस्ति। प्रशस्तौ राणायाः दानशीलतायाः शौर्यस्य च वर्णनं कृतवान्।

महाराणाजगत्सिंहस्य काले संस्कृतस्य अनेकानि ग्रन्थानि निर्मितानि। अस्मिन् काले संस्कृतभाषायाः क्षेत्रे उल्लेखनीया प्रगतिः अभवत्। राजसिंहस्य सभायां कविः रणछोडभट्टः अपूर्वप्रतिभाशालिनः आसीत्। रणछोडभट्टकृतः 'राजप्रशस्तिमहाकाव्यम्'²¹ विश्वस्य बृहत्तमं काव्यम् अस्ति। अस्मिन् काव्ये/ स्तुतिपत्रे २४ सर्गाः, ११०६ श्लोकाः सन्ति। सम्पूर्णं प्रशंसापत्रं पञ्च बृहत्शिलासु उत्कीर्णम् अस्ति। अस्यां प्रशस्तौ चतुर्विंशतितमे सर्गे एकोनविंशतिः तमे श्लोके वर्णितम् अस्ति यत् एषा स्तुतिः संस्कृतग्रन्थे रामायण-महाभारतसदृशी अस्ति। एतत् पठित्वा भारतस्य सर्वे जनाः भारतीयैः सदृशाः भवेयुः।²² राजसिंहस्य शासनकाले, रणछोडभट्टस्य इतरे अनेके संस्कृतविद्वांसः आसन्। ते आसन् – सदाशिवनागरः, लालभट्टः, मुकुन्दब्राह्मणः इत्यादयः।

निष्कर्षः

राजस्थानप्रदेशः सभ्यतायाः, संस्कृतेः, इतिहासस्य च दृष्ट्या एकः समृद्धः प्रदेशः अस्ति। अत्र शासकाः न केवलं शासनम् अकुर्वन् अपितु अत्र सभ्यतायाः संस्कृतेः च उन्नतेः कृते महत्वपूर्णं योगदानम् अकुर्वन्। एतेषां शासकानां संस्कृतभाषां प्रति जिज्ञासा आसीत्। संस्कृतस्य विकासाय ते अनेके संस्कृतविदुषाम् आश्रयं दत्तवन्तः। यदि वयं इतिहासस्य अध्ययनं कुर्मः तर्हि ज्ञायते यत् राणाकुम्भस्य, जगत्सिंहस्य, क्षेत्रसिंहस्य च संस्कृतभाषायाम् अतीव रुचिः आसीत्। ते शासकाः संस्कृतभाषायाम् अनेकानि ग्रन्थानि अरचयन्। उपरोक्ताध्ययनम् अनन्तरं वयं वक्तुं शक्नुमः यत् राजस्थानस्य बहवः शासकाः संस्कृतस्य प्रचारार्थम् अनेकविधैः योगदानं दत्तवन्तः।

संदर्भः

1. राजस्थानस्य इतिहासः, सं०, प० एवं वि०, हुकमजैनः नारायणमालीशच पृ० ३५
2. भाषाविज्ञानः, भोलानाथतिवारी, पृ० १
3. राजप्रशस्तिः, द्वितीयशिला, श्लोकः १६
4. राजशेखरकृत काव्यमीमांसा, अनुवादकः पं० केदारनाथशर्मणः पृ० ३
5. विद्धशालभञ्जिका, अंकः १
6. राजस्थानस्य सा० इति०, शर्मणः गोपी, पृ० ४२
7. राजपूतानां इति० पृ० १९२ – २३३
8. राजस्थानस्य इति०, शर्मणः गोपी, पृ० ४३
9. इन्डि० ऐन्टि० भागः २०, पृ० २०१
10. अनुपः संस्कृतसंग्रहालयः बीकानेरः, ग्रन्थांकः - ३५१०
11. वीरविनोदः, श्यामलदासः, भाग - १, पृ० ४२०
12. उदयपुरराज्यस्य इति० भाग - १, पृ० ३१३ – ३१४
13. महाराणाकुम्भस्य भारतीयसंगीतं देन, सीमाराठौडः, पृ० १३५-१३६
14. उदयपुरराज्यस्य इति०, ओझा०, पृ० ३१९
15. राजस्थानस्य इति० स्रोतः, शर्मणः, गोपी, पृ० १५४
16. तत्रैव, पृ० १५८
17. राजस्थानस्य सा० इति०, शर्मणः गोपिनाथः, पृ० १२८

18. अस्य ग्रन्थस्य अनेकानि पाण्डुपत्राणि सन्ति। उदयपुरग्रन्थाङ्कः - १५०९
19. उदयपुर राज्यस्य इति०, भागः-२, ओझा, पृ० ५३१
20. वीरविनोदः, श्यामलदासः, भागः - २, पृ० ३८८
21. एपि० इण्डि०, भागः- २९-३०
22. राजप्रशस्तिः, सर्गः, २४, श्लोकः १९

सन्दर्भ-ग्रन्थाः

1. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकरहीराचन्दः, वाराणसी, १९१८., पुनर्सम्पादनः श्रीकृष्णजुगनूः, राजस्थानी ग्रन्थागारः, २०१३.
2. राजस्थानस्य सांस्कृतिक इतिहासः, गोपीनाथशर्मणः, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सप्तविंशतिः संस्करणम्, २०१८.
3. राजस्थानस्य इतिहासः, संस्कृतिः, परम्परा विरासतः च, हुकमचन्दः नारायणलालश्च, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, एकोनत्रिंशत् संस्करणम्, २०२१.
4. भारतीय पुरालेखानाम् अध्ययनं, शिवस्वरूपसहायः, मोतीलालबनारसीदासः, २००८.
5. राजस्थानस्य अभिलेखाः, गोविन्दलालः श्रीमाली, प्रथम भाग, महाराजामानसिंह पुस्तकप्रकाशः, जोधपुरः, २०००.
6. राजस्थानस्य अभिलेखाः, गोविन्दलाल श्रीमाली, द्वितीयभागः, महाराजा मानसिंह पुस्तकप्रकाशः, जोधपुरः, २००२.
7. Ranjan, Rajeev, (2022). प्राच्य भारतीय राजनीति-विज्ञान (राजशास्त्र) में प्रतिपादित राजकीय कर-प्रणाली. ज्योतिर्वेदप्रस्थानम्, 11(4), 05-09.
8. राजस्थानस्य इतिहासस्य स्रोतांसि, गोपीनाथ शर्मणः, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुरः, राजस्थानः, प्रथमसंस्करणम् १९०३.
9. शिलोत्कीर्ण राजप्रशस्तिः महाकाव्यम्, जुगनूश्रीकृष्णः, आर्यावर्त संस्कृति संस्थानम्, २०१८.
10. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकरहीराचन्दः, वाराणसी, १९१८., पुनर्सम्पादनः श्रीकृष्णजुगनूः, राजस्थानी ग्रन्थागारः, २०१३.
11. भाषाविज्ञानः, भोलानाथ तिवारी, किताबमहलः, इलाहबादः, सप्तपञ्चाशत् संस्करणम्, २०१३.
12. उदयपुरराज्यस्य इतिहासः, गौरीशंकरहीराचन्दः, राजस्थानीग्रन्थागारः, राजस्थानः, प्रथमसंस्करणम् २०१५.
13. Epigraphia Indica, Edited by N. Lakshminarayan rao and D.C. Sircar, Vol- 29, Government of India press, Calcutta, India, 1957-58.

प्रवासी साहित्य : पारिभाषिक अवधारणा एवं पहचान

○ मुलायम सिंह¹

संक्षिप्ति :

प्रवासी की अवधारणा एवं पहचान को लेकर जो विमर्श सामाजिक विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में जारी है उसी का प्रतिरूप कमोबेश प्रवासी साहित्य की परिभाषा एवं अवधारणा को लेकर साहित्य जगत के अंतर्गत भी दिखाई देता है। सवाल यह उठता है कि प्रवासी साहित्य किसे कहें, प्रवासी साहित्य की ऐसी क्या विशेष पहचान है जो उसे किसी भाषा के साहित्य से अलग एक प्रवासी साहित्य की संज्ञा दी गई, किन लेखकों के साहित्य को प्रवासी साहित्य माना जाए और किन लेखकों के साहित्य को नहीं, प्रवासी लेखक या साहित्य कहलाने के क्या मानदंड हैं? क्या प्रवासी साहित्य; किसी भाषा के मुख्यधारा के साहित्य के अंतर्गत ही समाहित है या इसकी कोई एक अलग साहित्य धारा है, क्या देश बदल लेने पर उस लेखक को विदेशी लेखक माना जाएगा या उसी देश का? माना कि कोई लेखक भारत छोड़कर अमेरिका में बस गया हो तो क्या उसे भारतीय लेखक माना जाए या फिर अमेरिकी? प्रवासी साहित्य को परिभाषित एवं मूल्यांकित करते हुए उपरोक्त सवालों के बीच से गुजरना आवश्यक है।

बीज शब्द : प्रवासी साहित्य, सांस्कृतिक मूल्य, मूलवासी, निर्वासित साहित्य, साहित्यिक मानदंड।

प्रवासी साहित्य की पारिभाषिक अवधारणा एवं पहचान

बेद प्रसाद गिरि अपने एक लेख जिसका शीर्षक 'दि लिटरेचर ऑफ द इंडियन डायस्पोरा: बिटविन थ्योरी एंड अर्काइव' के माध्यम से प्रवासी साहित्य का विश्लेषण करते हुए यह प्रश्न खड़ा करते हैं कि प्रवासी साहित्य को एक सिद्धांत के रूप में समझा जाये या इसे महज लेख-संग्रह समझा जाये? आगे अपने इस लेख में वे वी. एस. नायपॉल, सलमान रश्दी, रोहितन मिस्त्री, भारती मुखर्जी, अमिताभ घोष, झुंपा लहरी, अनीता देसाई, एम. जी. वसंजी, श्याम सेल्वादोरई आर किर्न देसाई जैसे प्रवासी लेखकों की बढ़ती हुई प्रसिद्धि को बताते हुए प्रवासी साहित्य के विकास को उत्तर उपनिवेशी आलोचनाओं के प्रसिद्धि के साथ-साथ देखते हैं।¹

1. एम.फिल, पीएच.डी, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत।

Email : mulayamsingh.88@gmail-.com; Mob : 7838531263

अमित शंकर साहा ने अपने लेख 'एक्जाइल लिटरेचर एंड द डायस्पोरिक इंडियन राइटर्स' में प्रवासी साहित्य का विश्लेषण करते हुए उसके दो रूपों को रेखांकित करते हैं तथा उनके बीच के अंतर को भी स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं। प्रवासी साहित्य के पहले रूप को परिभाषित करते हुए वो उसे निर्वासित साहित्य (Exile Literature) बताते हैं। जिसमें वो रशियन लेखक मैक्सिम गोर्की व सोल्जहेनित्सिन (Solzhenitsyn) का जिक्र करते हैं जो किसी दमनकारी शासन के कारणभूत विवशता स्वरूप एक राजनीतिक निर्वासन का भुक्तभोगी हुए। ऐसे निर्वासन की अवस्था में उपजे साहित्य को निर्वासित साहित्य का नाम सुझाते हैं। हालांकि दोनों तरह के साहित्य में स्थानांतरण की पीड़ा एक मुख्य केंद्र बिंदु है और इसी से प्रेरित होकर रचित साहित्य को मुख्यतः प्रवासी साहित्य के दूसरे रूप में चित्रित करते हैं। इनके अनुसार प्रवासी साहित्य के लेखन में स्थानांतरण के कारण को केवल भौगोलिक अर्थों में न देखकर उसे अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से जोड़कर देखने पर बल दिया गया है। ये प्रवासी साहित्य, प्रवासन, शरणार्थी तथा प्रवासन के कारणों को केवल स्वयं के अनुभवों से जुड़ी समस्या न मानकर वरन उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं।¹

भारतीय उच्चायोग, लंदन में पूर्व सांस्कृतिक अताशे (Attache) डॉ. राकेश बी. दुबे अपने एक लेख 'हिंदी और प्रवासी भारतीय' प्रवासी को परिभाषित करने के क्रम कुछ मूलभूत सवालों को उठाते हैं। वे लिखते हैं कि, प्रवासी है कौन ? कितनी अवधि तक प्रवास करने पर किसी व्यक्ति को प्रवासी की श्रेणी में रखा जाएगा? पहले-पहल उन्नीसवीं सदी में अर्थात् 1834 में मॉरीशस में उतरे पहले प्रवासी भारतीय से लेकर बीसवीं शताब्दी में 1920-21 तक शर्तबन्दी प्रथा के अंतर्गत अर्थात् गिरमिटिया मजदूरों के रूप में मॉरीशस, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, गयाना, फिजी, सूरीनाम आदि में गए भारतीय भी प्रवासी कहे जाते हैं और वर्तमान में रोजगार, शिक्षा एवं प्रवर्जन पर जाने वाले भारतीय भी प्रवासी कहे जा रहे हैं। लगभग 177 वर्ष पहले से लेकर लगभग 90 वर्ष पूर्व तक भारत से गए लोगों की तीसरी नहीं तो चौथी पीढ़ी उन देशों में रह रही है, उनका जन्म, पालन पोषण, शिक्षा-दीक्षा वहीं हुई है; ऐसे में क्या उन्हें भी प्रवासी माना जाए? इसके विपरीत आधुनिक यूरोप, दक्षिण पूर्व एशिया और अमेरिका में पिछले 50 वर्ष के दौरान रोजगार, पढ़ाई, व्यापार आदि के लिए गए प्रवासियों को भी क्या उसी श्रेणी में रखा जाना उचित होगा? उपरोक्त सवालों के जवाब स्वरूप वो यह उपाय सुझाते हैं कि "इन सभी लोगों का भारत से जुड़ाव को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रवासी भारतीयों की हमारी संकल्पना उन भारतवर्षियों की है जो किन्ही कारणों से विदेश में कुछ काल के लिए या फिर सदैव के लिए बस तो गए हैं लेकिन उनका भारत से सम्पर्क समाप्त नहीं हुआ है।"²

अपने एक लेख में स्वर्णलता ठन्ना लिखती हैं कि "प्रवास शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो शौक या मजबूरी वश दूर देशों में बसा दिए गये थे या वे स्वयं रोजगार की तलाश में अन्य देशों की यात्रा पर निकल गए और वहीं बस गए। इन लोगों ने अपने परिश्रम से वहाँ की आबादी में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं को सक्षम बनाया। इस सक्षमता से पहले प्रवासियों को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। क्योंकि ये लोग गुलाम के रूप में वहाँ ले जाये गये थे, इसलिए इन्हें आर्थिक संकटों के साथ-साथ अपनी धरती, अपने घर-परिवार से दूरी, शारीरिक और मानसिक गुलामी और बेगानापन झेलना पड़ा। उन्हीं में से कुछ लोगों ने अपनी व्यथा-कथा को कलमबद्ध कर प्रवासी साहित्य की नींव रखने का कार्य किया।"³

'प्रवासी दुनिया.काम' में छपे एक लेख में विशेष रूप से हिंदी साहित्य के संदर्भ में प्रवासी साहित्य को परिभाषित करने के क्रम में लिखा गया है कि 'प्रवासी' विशेषण एक विशेष प्रकार की स्थानीयता की पहचान है, जो भौगोलिक है। प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर भारत से बाहर के रचनाकारों को पहली बार

इस सम्बोधन से सम्बोधित किया गया था जो उनकी विशेष पहचान का द्योतक था। ‘प्रवासी साहित्य’ जैसे शब्दों की उद्भावना वहीं हुई थी और उसे अलग से वर्गीकृत कर उसका अलग विश्लेषण करने के पीछे भी मानसिकता आरम्भ में यह रही होगी क्योंकि यह साहित्य एक भिन्न परिवेश से आ रहा है, इसकी शब्दावली, इसकी कथावस्तु, शिल्प, लेखन शैली भिन्न हो सकते हैं इसलिये इसके लिये सीधे-सीधे वे मानदंड नहीं चलेंगे जो भारत में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य पर लागू होते हैं। किन्तु यह हिन्दी साहित्य है और हिन्दी की मुख्यधारा का हिस्सा है, इस बारे में किसी ने शायद ही संशय व्यक्त किया हो।⁵

प्रवासी साहित्य के बारे में भारतीय मूल की प्रवासी लेखिका डॉ. सुषम बेदी लिखती हैं कि “प्रवासी साहित्य की यात्रा बहुत लंबी है और पड़ाव दूर हैं, परन्तु इतना सच है कि प्रवासी साहित्य अपनी पहचान यात्रा पर चल चुका है और पड़ाव भी कुछ दिखायी दे रहा है। डॉ. बेदी चाहती हैं कि प्रवासी लेखक गवोक्तियों से बचें और आत्मान्वेषण करें, लेकिन भारत के हिन्दी समाज को भी प्रवासी साहित्य के प्रति अपने उपेक्षा भाव को समाप्त करके उसकी आंतरिक शक्ति का अन्वेषण करना होगा, तभी प्रवासी हिन्दी साहित्य की यात्रा अपने लक्ष्य तक पहुंच सकेगी।”⁶

प्रवासी साहित्य की अवधारणात्मक अस्पष्टता से संबंधित एक अन्य लेख ‘अस्मिता की खोज: डायस्पोरा के हिंदी लेख’ में लेखिका डॉ. सुषम बेदी प्रवासी साहित्य एवं प्रवासी लेखक से जुड़े कई प्रश्नों को फलक पर रखती हैं। वे कहती हैं कि क्या भारत से बाहर रह कर भारतीय भाषा में लिखने वाले लेखक भारतीय कहलाएंगे या आवासीय देश के? लेखक की अस्मिता कौन तय करेगा? वह भाषिक समाज जिसमें वह लिखता है या उस देश का समाज जिसमें वह रहता है? क्या अपनाया हुआ देश उसे अपना लेखक मानेगा जबकि उसका पाठक तो छोड़े हुए वतन में हैं? क्या सृजनात्मक लेखन सिर्फ भाषा से जुड़ा हुआ है या फिर समाज, संस्कृति या भूगोल से भी? अक्सर अंग्रेजी में लिखने वाले प्रवासी लेखकों पर यह सवाल उठाया जाता है कि क्या वे अंग्रेजी में लिखते हुए भी भारतीय लेखक हैं? जैसे कि भारती मुखर्जी को अमेरिका के स्कूल-कॉलेजों में भारतीय लेखिका के रूप में पढ़ाया जाता है। अमेरिका से पहले भारती कनेडा की आवासी थी। प्रवासी अंग्रेजी लेखक अंतर्राष्ट्रीय स्थान पा लेने के बाद अपने रिहाइशी देश की पहचान लिए रहते हैं जैसे कि ब्रिटिश अंग्रेजी या अमेरिकी भारतीय आदि। हिंदी में लिखने वाले प्रवासी लेखक की पहचान खुद उसके रिहाइशी देश में नहीं बनती है, अगर वह अपनाए हुए देश में पढ़ा जाता है तो विदेशी लेखक के रूप में। लेखिका अंग्रेजी साहित्य के नए तेवर का जिक्र करते हुए कहती हैं कि भारतीय या हिंदी साहित्य भी नए तेवर के साथ लिखा जाएगा तो उसे मान्यता मिलेगी। आगे सुषम बेदी सवाल उठाती हैं कि क्या प्रवासी हिंदी लेखक को मान्यता भारत से मिलना चाहिए या अंग्रेजी जगत से? इन सबसे से परे वो सुझाव देती है कि यदि सच में मान्यता पाना है तो हिंदी को वैश्विक स्तर पर खड़ा होकर मुकाबला करना होगा।⁷

प्रवासी साहित्य को मुख्यधारा का साहित्य माना जाए या नहीं? इस सवाल पर प्रकाश डालते हुए लेखिका मधु अरोड़ा ने अपने एक लेख ‘प्रवासी साहित्य और चुनौतियां’ में मुख्यधारा के साहित्य जैसी अवधारणा पर सवाल खड़ा करते हुए कहती हैं कि क्या मुख्यधारा के लेखन के लिये कोई मानदंड है क्या? जिसकी कसौटी पर लेखन को कसा जाए? आगे वो साहित्य को विविध धाराओं या टुकड़ों में बांटने पर आपत्ति जताते हुए मुख्यधारा के साहित्य को अपने नजरिये से परिभाषित करते हुए कहती हैं कि जो कहानियां मानवीय सरोकार से जुड़ी हों, जिनके लिखने का कुछ मकसद हो, सिर्फ लिखने के लिये न लिखा जा रहा हो। जो कहानियाँ पाठक को सोचने के लिए विवश करे, उनके दिलों-दिमाग को उद्वेलित करे, जिन रचनाओं को पढ़कर सामाजिक बदलाव की सकारात्मक सोच उत्पन्न हो सके। ऐसी कहानियों को मैं मुख्यधारा के अंतर्गत मानने

के हक में हूँ। चाहे वो कहानियाँ प्रवासी लेखकों की ही क्यों न हों।⁸

प्रवासी साहित्य की परिभाषा और अवधारणाओं पर उपरोक्त विश्लेषण के तदुपरांत एक बात तो जाहिर है कि प्रवासी साहित्य शब्द उन लेखकों की रचनाओं का द्योतक है जो अपने वतन से दूर किसी दूसरे देश में रहकर सृजन कार्य में संलग्न हैं। इन प्रवासी लेखकों के प्रवास का कारण कभी विवशतावश रहा है तो ज्यादातर स्वतःजन्य। यूरोपीय देशों के प्रवासी लेखक बाद वाले श्रेणी में आते हैं। आलोचकों के आपसी मतभेद के बावजूद हम प्रवासी साहित्य को उस भाषा की मुख्यधारा के साहित्य का ही एक भाग के रूप में समझ सकते हैं। भारतीय भाषा के इन प्रवासी लेखकों का पाठक वर्ग ज्यादातर उनके स्वदेश भूमि से जुड़े होते हैं किंतु भारतीय अंग्रेजी साहित्य के पाठक वर्ग का दायरा काफी व्यापक है। सलमान रश्दी, भारती मुखर्जी, वी.एस. नायपॉल, रोहिंनतन मिस्त्री तथा अमिताभ घोष आदि लेखकों को स्वभूमि के साथ-साथ आवासीय भूमि के पाठक वर्ग से भी मान्यता प्राप्त है। इसके बरक्स अन्य भारतीय साहित्य का दायरा सीमित है। लेकिन प्रवासी साहित्य की अवधारणा एवं संकल्पनाओं के दायरे में जो विमर्श अकादमिक जगत में चल रहा है उसे उपर्युक्त संदर्भ में समझा जा सकता है।

संदर्भ :

1. Giri, Bed Prasad, (2007), *The Literature of the Indian Diaspora: Between Theory and Archive, Diaspora: A Journal of Transnational Studies, Volume 16, Number 1/2, P. 243*
2. Saha, Amit Shankar, (2009), *Exile Literature and the Diasporic Indian Writer, Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities, Volume I, Number 2, P. 186-88.*
3. दुबे, डॉ. राकेश, बी(2012), हिंदी और प्रवासी भारतीय, विश्वभरा , <http://vishvambharaa.blogspot.in/2012/09/Hindi-and-NRIs-html> Accessed on 15 May, 2016
4. ठन्ना, स्वर्णलता (दिसंबर,2016) हिंदी के प्रवासी साहित्य की परंपरा,जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका, वर्ष-22, अंक-2
5. प्रवासी दुनिया,(2 अगस्त, 2011) <http://www.pravasiduniya.com/दूर-देश-के-हिन्दी-लेखकों-> accessed on 06 June, 2017.
6. अग्रवाल, साधना (2011) प्रवासी हिंदी कलम की पीड़ा, दैनिक राष्ट्रीय सहारा, 20 अप्रैल, 2011.http://nukkadh.blogspot.in/2011/02/blog-post_8057.html accessed on 29 May, 2016.
7. बेदी, डॉ. सुषुम (2012) अस्मिता की खोज: डायस्पोरा के हिंदी लेखक <http://www.pravasiduniya.com/wp-content/uploads/2012/03/pravasi-sahitya-ki-asmita-ka-saval.pdf> access on 29 May, 2016.
8. अरोड़ा, मधु (2014, जनवरी-मार्च), प्रवासी साहित्य और चुनौतियाँ, प्रवासी संसार, वर्ष-10, अंक-2, पृ. 121



21वीं सदी की कहानीकार क्षमा शर्मा की कहानियों में नारी पात्रों का विवेचन

○ गीता¹

संक्षिप्ति :

सृष्टि के निर्माण में स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री कोमलता एवं सहृदयता की प्रतीक मानी जाती है परंतु सामाजिक मानसिकता दोनों के प्रति भिन्न है। जहाँ उसके मस्तिष्क में यह भाव जन्मजात भर दिया जाता है कि वह कोमलस्वरूपा है, वहीं पुरुष को बलशाली एवं तार्किक माना जाता है। यह भाव उसके मन मस्तिष्क में जन्मजात भरा जाता है कि वह मानसिक एवं शारीरिक रूप से दृष्टपुष्ट है। स्त्रियों को सदैव से ही हर क्षेत्र में कम आंका गया है। उन्हें जन्म से ही अधिकार तो दिए गए लेकिन साथ ही कुछ अंकुश लगा दिए गए। इन अंकुशों का पालन वह सदियों से करती आ रही है। इसका कारण अशिक्षा, लैंगिक असमानता का भाव, जागरूकता का अभाव, अज्ञानता आदि है। स्त्रियों के ऐसे अंकुशों की चर्चा साहित्य में भी बखूबी हुई है अधिकांश महिला कहानीकार ने अपनी कहानियों में स्त्रियों की सामाजिकता, मनोविश्लेषणात्मकता का बखूबी चित्रण किया है। इसी प्रकार लेखिका 'क्षमा शर्मा' ने भी अपनी कहानियों में नारी के सामाजिक सरोकार का, उसके प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण एवं कुंठित मनोःस्थिति का बारीकी से चित्रण किया है। किस प्रकार एक स्त्री के मन में विचारों का जो द्वंद्व चलता है, कहीं न कहीं स्त्री की जो स्थिति होती है उस पर उसकी मानसिकता का प्रभाव होता है क्योंकि मनुष्य जिस परिवेश में पला-बढ़ा होता है उसका प्रभाव उसके मानसिक स्तर पर अवश्य पड़ता ही है। 'क्षमा शर्मा' ने अपनी कहानियों में नारी के हर स्तर, हर परिस्थिति का चित्रण किया है।

बीज शब्द : न्यूड का बच्चा, मनोवैज्ञानिक रूढ़िवादी मानसिकता, संवेदनशीलता, अंतर्जातीय विवाह, मातृऋण।

'क्षमा शर्मा' की अधिकतर कहानियाँ स्त्री केंद्रित हैं। उन्होंने स्त्रियों की समस्याओं का खुलकर वर्णन किया

1. शोधार्थी, हिंदी विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

पता : हा.नं.-40, वर्कशॉप गली करनपुर, देहरादून, मो. :8447767559, पिन कोड-248001

ईमेल- gpant560@gmail.com

है तथा उन्होंने स्त्रियों की सामाजिक एवं मानसिक मनःस्थिति को बड़ी बारीकी से अपनी कहानियों में चित्रित किया है। उनकी 'खामोशी' कहानी में एक ऐसी स्त्री का चित्रण उद्धरित है जिसके इकलौते जवान पुत्र की मृत्यु हो गई है लेकिन लोगों को लगता है कि उसके जीवन पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। कोई यह नहीं जानता कि वह अंदर से कितनी टूट गई है परंतु वह लोगों को दिखाना नहीं चाहती कि वह अंदर ही अंदर कितनी घुट रही है किंतु लोग दूसरों पर अपने विचार थोपना नहीं छोड़ते हैं। समाज में लोगों की ऐसी कुठित धारणा है कि यदि घर में कोई दुर्घटना हो जाए, किसी औरत के पति या पुत्र की मृत्यु हो जाए तो उन्हें लगता है कि औरत दिन-रात रोती ही रहे। क्या उसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है? क्योंकि औरतें तो केवल आंसू बहाने के लिए ही होती हैं। कोई यह नहीं जानता जब कोई आशा की किरण न हो, जब चारों तरफ से निराशा ही निराशा हो तो व्यक्ति हिम्मत और धैर्य जुटा नहीं सकता; लेकिन 'नेहा वर्मा' जो इस कहानी की मुख्य पात्र हैं, वह बिल्कुल हिम्मत जुटाए हुए समाज के लोगों के सामने डटकर खड़ी हैं क्योंकि उसने कभी भी किसी से कोई शिकायत नहीं की; न लोगों से, न भगवान से। उसने किसी से भी कुछ नहीं कहा। जिस कारण समाज के लोगों में, आस-पड़ोस के लोगों में संदेह बना हुआ है कि वह बिल्कुल वैसे के वैसे ही है जैसे कि पहले रहती थी।

लेखिका 'क्षमा शर्मा' की 'न्यूड का बच्चा' एक ऐसी स्त्री के जीवन का ऐसा संघर्ष है, जो कॉलेज जाने वाली जिद्दी लड़की से एक 'न्यूड' फोटो खिंचवाने वाली मॉडल के रूप में संघर्ष भरा जीवन तय करती है। आधुनिक समाज में जहाँ प्रेम-विवाह का प्रचलन है, वहीं दूसरी ओर समाज में कुछ तबकों में आज भी यदि लड़का प्रेम करे तो परिवार के सदस्यगण हंसी-खुशी विवाह करा देते हैं लेकिन यदि कोई लड़की प्रेम करे तो उसकी माँ उसे लातों और घूसों से प्रताड़ित करती है इस कहानी में भी 'वीनू' की माँ को उसके प्रेम पत्र मिलते हैं तो वह उसके साथ भी यही व्यवहार करती है- "दुनिया की हर माँ अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने के चक्कर में अपनी लड़कियों को खूब दबाती है, उन्हें खूब सताती है। आखिर औरत ही औरत की दुश्मन होती है न! तो क्या एक औरत ही दूसरी औरत को अच्छे से सबक सिखा सकती है।" लेकिन 'वीनू' भी कहां हार मानने वाली थी उसने भी सोचा लिया था कि वह अपनी माँ को सबक सिखाएगी और बिना सोचे-समझे अपने हाथ की कलाई में कंपास चुभो दिया, उसे लगता था कि वह मर जाएगी तो उसकी माँ को अपनी गलती का एहसास होगा लेकिन होता उसके विपरीत है। न वह मरती है न ही उसकी माँ का व्यवहार बदलता है 'वीनू' को अब लगता है कि जो अपने प्रेम के लिए घर से भागा न हो वह प्रेम ही कैसा! इसलिए वह सब छोड़-छाड़ कर अपनी प्रेमी के पास पहुंच जाती है। जिस प्रेम के लिए वह पागल हो रही थी उसी प्रेमी को वह मुसीबत लगने लगी, वही प्रेमी उससे विवाह करने के लिए ही तैयार नहीं है। अब उसका जीवन एक भयानक मोड़ लेता है। उसका प्रेमी उसके माता-पिता और पुलिस के भय से उसे अपने मित्र 'सलीम' के यहां छुपा देता है और वह अभी विवाह करने के लिए भी तैयार नहीं था इसलिए 'वीनू' समाज एवं माता-पिता के भय से अपने प्रेमी के मित्र 'सलीम' जिसके घर में वह छुपी थी उसी के साथ वह विवाह कर लेती है। अब उसका जीवन सही चल रहा था लेकिन अचानक दुर्घटनावश उसके पति 'सलीम' की मृत्यु हो जाती है। यहाँ से उसका जीवन एक नई दिशा की ओर चलता है। अब वह अपने छोटे से बच्चे को लेकर उस शहर को छोड़कर नहीं जाना चाहती थी, जहां वह अपने सारे रिश्ते पीछे छोड़ कर आई थी। इसलिए उसने अपने और बच्चे के जीविकोपार्जन के लिए 'न्यूड' फोटो खिंचवाना उचित समझा उसे लगा कि जीवन तो जीना ही है क्यों न अपने इस शरीर का उपयोग करूं- "उसके सामने यह रहस्य खुल चुका था- यह शरीर ही अपना है। यही सच है। चाहो तो इसके जरिए कुछ भी पा सकती हो।" क्योंकि वह इस जीवन चक्र में अकेले जूझ रही थी तो उसने अपने

शरीर को ही अपने जीविकोपार्जन का साधन बना लिया। एक फोटोग्राफर ने उसे 'न्यूड' फोटो खिंचवाने के लिए अच्छी रकम देनी चाही। वह कुछ देर सोचती है कि नैतिक-अनैतिकता यह सब ढकोसला है पहले उसके शरीर पर कभी माता-पिता का, कभी पति का हक रहा लेकिन अब वह आजाद है अब वह अपने शरीर का हर तरीके से उपयोग कर सकती है। लेखिका इस कहानी में यह बताना चाहती हैं कि विवशता के कारण एक स्त्री को क्या-क्या करना पड़ता है और एक स्त्री विवश हो जाए तो वह अपना शरीर का उपयोग कर अपना जीवन चला सकती है।

लेखिका 'मातृऋण' कहानी के माध्यम से बताना चाहती हैं कि संयुक्त परिवार में जो तंज एक स्त्री पर विवाह से पूर्व माता-पिता के द्वारा कसे जाते थे वही विवाह के बाद पति तथा पुत्रों के द्वारा कसे जाते हैं। लेखिका इस कहानी में एक प्रश्न साथ छोड़ जाती हैं कि वृद्धावस्था में एक स्त्री को अपने पुत्रों के साथ ही क्यों रहना पड़ता है, अपनी बेटी के साथ क्यों नहीं रह सकती और वह अपनी संपत्ति को पुत्रों तक ही सीमित क्यों कर देती है बेटी को संपत्ति में हिस्सा क्यों नहीं देती? ऐसी रूढ़िवादी मानसिकता का वर्णन 'मातृऋण' कहानी में हुआ है। इस कहानी में दो स्त्रियों की मानसिकता का चित्रण किया गया है। एक वृद्ध माँ और दूसरी उसकी विवाहिता बेटी। इस कहानी में एक बेटी विवाह के पश्चात अपनी माँ के लिए कुछ करना चाहती है लेकिन समाज ने उसके चारों ओर एक ऐसा दायरा बना रखा है कि वह इसकी इजाजत नहीं देता और एक माँ भी अपनी विवाहित बेटी को अपनी संपत्ति का कुछ हिस्सा देना चाहती है लेकिन वह भी समाज के दायरे में रहकर नहीं कर सकती क्योंकि उसके हाथ भी सामाजिक बेड़ियों में बंधे हुए हैं। समाज में ऐसी विकृत मानसिकता है, बेटी अगर अपने माता-पिता की सेवा कर 'मातृऋण' उतारना चाहे भी तो वह नहीं उतार सकती इस कहानी में वृद्धावस्था में माँ अपनी पुश्तैनी घर में रहना चाहती है जिसकी दीवारों का ईंट-गारा उसने स्वयं अपने सिर पर उठाकर लाया था लेकिन उस घर को उसके पुत्र बेचना चाहते हैं। भाइयों को माँ का अकेला रहना एक राजनीति लगता है। उन्हें लगता है कि माँ उन्हें सबके सामने नीचा दिखाने के लिए अलग रह रही हैं - "मैं असहाय-सी दिखती हूँ एक मनुष्य की असहायता नहीं किसी की लड़की होने की असहायता.... माँ जिसकी हर चीज लड़कों तक चली गई.... संवेदना सिर्फ मेरे हिस्से तक बची क्यों?"³ सदैव एक बेटी ही माँ के लिए संवेदनशील क्यों बनी रहती है, माँ के प्रति सब की संवेदनाएँ खत्म हो गई हैं। यहाँ तक कि माँ की पोती भी उन्हें ताने मरती है लेकिन एक बेटी जो विवाह के पश्चात पराया धन हो जाती है या यूँ कहें जिसका दान कर दिया गया हो लेकिन वह माँ से अपनी संवेदनाएँ खत्म ही नहीं कर पाती भले ही उसे माँ से भौतिक एवं आर्थिक रूप से जुड़ने नहीं दिया जाता लेकिन एक बेटी की भावनाएँ कभी भी मरती नहीं हैं।

एक लड़की के जीवन में समझौता बचपन से ही चलता रहता है 'क्षमा शर्मा' की 'बेघर' कहानी ऐसी पढ़ी-लिखी युवा लड़की की कहानी है जो बचपन से खूब तेज-तर्रार थी लेकिन समय के साथ समझौता कर उसकी तर्रारता धीरे-धीरे खत्म सी हो गई या यूँ कहें कि कहीं छिप सी गई। विवाह के पश्चात् क्या एक स्त्री अपने पारिवारिक जीवन में इतनी व्यस्त हो जाती है कि उसे अपनी शारीरिक बीमारी का ही पता नहीं लगता इस कहानी की नायिका 'विनी' बचपन से ही बहुत ही शरारती थी तथा उसका अपनी बड़ी बहन 'सुमन' से बहुत जुड़ाव था। उसे लगता था कि वह ब्रेड अंडा खाकर ही अपना जीवन व्यतीत कर सकती है जैसा कि आज की पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी सोचती है। ठीक इसी तरह वह भी सोचती थी लेकिन विवाह के पश्चात उसका पूरा जीवन बदल गया या यूँ कह सकते हैं कि उसने अपने आप को पूरा बदल दिया था लेकिन तब भी उसके घरवालों को और 'विजय' के माता-पिता को यह लगता था कि विजय के साथ रहकर उसकी पूरी जिंदगी बदल गई है एक स्त्री यदि अपने आप को बदल भी दे तो उसका श्रेय भी उसको नहीं जाता- "कोई

यह नहीं कहता था कि यह उसकी अपनी हिम्मत है कि बदल दिया है खुद को। लड़कियां खुद को बदल लें तू भी श्रेय कहीं और चला जाता है।”⁴

‘विनी’ ने अंतर्जातीय विवाह किया था उसके घरवाले और उसके ‘विजय’ के माता-पिता कोई भी तैयार नहीं था लेकिन उसने अपनी जिद के आगे किसी की नहीं मानी और बड़ी बहन के सहयोग से विवाह किया उसके माता-पिता ने तो उसे त्याग दिया था और ससुराल वालों ने भी बहुत गालियां दी- “तू वैश्या है। तू कॉलगर्ल है? तूने हमारे कमाऊ पूत को फंसा लिया है। उसके रास्ते से हट जा नहीं तो तेरी शक्ल बिगाड़ देंगे।”⁵ विवाह के बाद सब नार्मल हो गया लेकिन ‘विनी’ भूल नहीं पाई थी। वह पति और बच्चों की सेवा में इस तरह तत्पर रहती है, विवाह से पूर्व आलस के कारण जो पूरा कमरा फैला रहता था। उसके कपड़े ढेर के रूप में अलमारी में पड़े रहते थे। आज उसका घर पूरा व्यवस्थित रहता है। वह हर एक काम को इतनी व्यस्तता से करती है कि उसके पास अपने लिए कोई समय नहीं है एक स्त्री का जीवन भी कितना विचित्र है कि उसका अपना कोई घर नहीं होता। जहाँ जन्म लेकर पली-बढ़ी हो, वहीं से उसका कन्यादान कर उसे पराया कर दिया जाता है तथा विवाह के पश्चात जिस घर में वह आई है, वहां भी उसका कोई मूल्य नहीं है। ‘ब्रेन हेमरेज’ का शिकार होकर वह मृत्यु के कगार पर थी। उसकी बड़ी बहन ‘सुमन’ उससे मिलने के लिए दौड़ी-दौड़ी आती है। लेखिका ने इस कहानी में एक बहन की मनःस्थिति का भी वर्णन किया है। जिसने अपनी छोटी बहन को एक बेटी की तरह पाला हो, जिस छोटी बहन ‘विनी’ को ‘सुमन’ ने बचपन से पलकों में बिठाकर पाला था, वही आज मृत्यु की सेज पर अस्पताल के आई.सी.यू. के कमरे में लेटी हुई आखिरी सांस ले रही है। सुमन उसके सिरहाने बैठकर उसके पूरे जीवन चक्र को याद करती है। एक-दो दिन में ही ‘विनी’ की मृत्यु हो जाती है। सुमन को बहुत आघात लगता है। माता-पिता भी बहुत ही बिलख कर रोते हैं- “और कोई वक्त होता तो सुमन पिता को ढाँढस बंधाने पहुँच जाती लेकिन इस वक्त वह मन ही मन कहती हैं, सुन रही है विनी तू। पश्चाताप के लिए किसी का मरना जरूरी है।”⁶

लेकिन उसके पति पर इसका कोई फर्क नहीं पड़ता। यहाँ तक कि वह कहता है कि बच्चों को भी बताने की क्या जरूरत है कि उनकी मां मर गई है। उन्हें कुछ बहाना बनाकर दोस्तों के घर भेज देते हैं तथा वह धीरे-धीरे समझ जाएंगे और उसकी मृत्यु के नौवें दिन ही उसने बेटे का जन्मदिन खूब धूमधाम से मनाया और छह माह के भीतर ही दूसरा विवाह कर लेता है। बड़ी बहन ‘सुमन’ स्तब्ध है कि उसे इतनी जल्दी क्या थी। एक औरत ने तो उसके लिए अपनी पूरी जिंदगी ही उस पर कुर्बान कर अपने आप को ही बदल दिया था और उसके पति से छह महीने भी नहीं रुका जा रहा है। समाज के लोगों का यहाँ तक ‘सुमन’ के पति ‘अनिरुद्ध’ का भी कहना था कि उसने बच्चों की वजह से ही दूसरा विवाह किया होगा लेकिन उसने बच्चों को तो उसी समय हॉस्टल भेज दिया था। इस कहानी के माध्यम से लेखिका यह बताना चाहती है कि एक औरत के यदि पति की मृत्यु हो जाए तो वह कई वर्षों तक पश्चाताप करती रहती है लेकिन वहीं यदि एक पुरुष की पत्नी की मृत्यु हो जाए तो उसे एक सप्ताह भी नहीं लगता उसे भूलने में। क्या पुरुष में कोई संवेदनात्मक भावना नहीं होती? एक स्त्री ही क्यों इतनी संवेगात्मक होती है?

“हर बार लौटना” कहानी में ‘मिसेज सक्सेना’ एक ‘मां’ के रूप में और एक नौकरी पेशा करने वाली ‘स्त्री’ के रूप में किस प्रकार सोचती है, उनकी क्या मनोस्थिति रही है इसका चित्रण किया गया है। वह जीवन भर अपने निजी जीवन में इतनी व्यस्त हो चुकी थी जिसके चलते उन्हें कभी अपने माता-पिता की ही याद नहीं आई। क्या एक स्त्री का जीवन यही होता है? ‘मिसेज सक्सेना’ एक नौकरी पेशा करने वाली स्त्री है जो अपने नौकरी के अंतिम चरण रिटायरमेंट के समीप है। जिस नौकरी में जाने के लिए वह संपूर्ण जीवन जद्दोजहद

करती रही, वहीं से आज रिटायर होने के ख्याल से वह विचलित सी हो उठती है। उन्हें लगता है कि अब उनका समय कैसे कटेगा? मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जब तक वस्तु उसके पास रहती है तो वह उसे महसूस नहीं करता लेकिन जब वस्तु नहीं रहती तो वहां दुखी हो जाता है। 'मिसेज सक्सेना' अब घर में बैठी अकेलेपन को महसूस कर अपने संपूर्ण जीवन को पीछे मुड़कर याद कर रही है कि- "सारी घटनाएँ अभी घटी लगती हैं। सब कुछ अभी तो हुआ है। चालीस साल पहले, नहीं कुछ वर्ष पहले, अभी इसी दिन, वह पट्टी-खड़िया लेकर स्कूल पढ़ने गई थी। आटे, हल्दी, धूप, सिंदूर, कनेर से पट्टी पूजती माँ का दिपदिपाता चेहरा अभी तक याद है... कैसे भूल सकती हैं।" लेखिका यह बताना चाहती हैं कि स्त्री अपने निजी जीवन में इतनी व्यस्त हो जाती हैं कि उसे उनकी भी याद कभी नहीं रहती, जिन्होंने उसे जन्म दिया, पालन-पोषण किया। यह तो एक स्त्री के जीवन की दुर्भाग्यपूर्ण परंपरा रही है कि वह अपने परिवारिक जीवन में इतनी व्यस्त रहती है कि अपने माता-पिता को ही भूल जाती है। जिस प्रकार आज 'मिसेज सक्सेना' के स्वयं के बच्चे ही उन्हें भूल गए हैं जिन्हें उन्होंने बड़े नाजों से पाला था आज वह अकेले में सोच रही हैं- "अपने अकेलेपन का वरण खुद उन्होंने ही तो किया था तो अब आंसू क्यों बहा रही हैं बचपन की स्मृति भाभी, उन्हें ही नहीं भूल सकी।" लेखिका यह बताना चाहती हैं जिस प्रकार 'उषा प्रियंवदा' की कहानी 'वापसी' में 'गजाधर बाबू' अपने जीवन में रिटायर होने के बाद बिल्कुल एकाकीपन महसूस कर दोबारा एक छोटी सी नौकरी में लग जाते हैं उसी प्रकार 'मिसेज सक्सेना' भी उसी रिटायर होने के ख्याल से एकाकीपन महसूस कर रही हैं।

"कस्बे की लड़की" एक ऐसी लड़की 'नीरू' की कहानी है जिसके जीवन में कुछ ऐसी घटना घटित हुई, जिसे चाहकर भी वह नहीं भुला पाती वह उस आदमी से बदला लेना चाहती थी जो इस घटना का जिम्मेदार है लेकिन ले नहीं पाती क्योंकि जब भी किसी लड़की के जीवन में कोई दुर्व्यवहार होता है तो वह परिवार की बदनामी के भय से, समाज के दायरे में रहकर क्यों कुछ नहीं बोल पाती। "इस समाज में कितनी लड़कियाँ ऐसी हैं कि जो अपने प्रति किए बुरे व्यवहार का बदला ले पाती हैं। बल्कि उनकी जुबान पर तो सौ-सौ ताले जड़ दिए जाते हैं और अधिक बदनामी की डर से, क्योंकि यहाँ बदनामी सिर्फ औरतों की होती है।" किसी समय उसके भाई का मित्र 'सक्सेना' जो बहुत गरीब था, भाई की मदद से ही वह एक बड़ा आदमी बन पाया लेकिन उसने नीरू के परिवार को छलने की कोशिश की तथा नीरू के चरित्र पर कीचड़ उछालने की कोशिश की। उसने किसी कस्बे के अखबार में यह खबर छपवा दी कि रमनपुर की एक लड़की स्मगलिंग करते पकड़ी गई तथा उसका संबंध शहर के नामी गुंडों से है जिन्हें मिलने वह जेल भी गई थी क्योंकि उसने 'नीरू' का नाम फर्जी से जेल के रजिस्टर में दर्ज करवा लिया था। सक्सेना की बड़े-बड़े नेताओं के साथ इतने अच्छे संबंध थे अगर वह कुछ भी गलत करता तो एक फोन कॉल से वह छूट जाता है। 'नीरू' उस भय से सहमी-सहमी रहती है। वह इतनी भयभीत रहती है कि उसे दिन में भी लगता है कि उसके पीछे से कहीं 'सक्सेना' न आ जाए- "आज भी लगता है मैं कहीं जा रही होऊंगी और सक्सेना कहीं रास्ते में प्रकट हो जाएगा कहेगा- कहे बहन जी कैसी हो, तुमने भी विश्वास कर लिया कि मैं मर गया।" ¹⁰

एक लड़की के जीवन में बदनामी का दंश मन में ऐसे पैठ जाता है कि वह उस भय से कितना भी निकलने की कोशिश करे लेकिन निकल नहीं पाती क्योंकि वह समाज के ऐसे लोगों के समक्ष खड़ी है जहाँ लड़की के चरित्र में थोड़ा सा भी सवाल उठे तो वह ऐसा दाग बन जाता है जहाँ कितनी भी कोशिश कर ले जिंदगी भर नहीं निकल पाती। "सक्सेना की स्मृति का दंश उसे फिर से बींधने लगा था। लोग कहते हैं निराधार अफवाहें दूध के उबाल की तरह होती हैं जो अपने आप धीरे-धीरे ठंडी होती हैं, लेकिन नहीं, कुछ घटनाएँ... खासतौर से औरतों संबंधी घटनाएँ लोग हमेशा याद रखते हैं। वह नश्वर की तरह होती हैं जिन्हें कभी भी चुप हो जा

सकता है।”¹¹ एक स्त्री के प्रति दुर्व्यवहार या एक स्त्री के चरित्र पर यदि दाग लगा हो तो समाज को एक ऐसा चाबुक मिल जाता है जिसे वह कभी भी घुमाकर स्त्री पर प्रहार कर सकता है।

“अगली सदी में एक लड़की” यह कहानी लेखिका की बड़ी विचित्र कहानी है जिसमें पढ़ी लिखी आधुनिक दो स्त्रियों की मानसिकता का वर्णन है। यहाँ बनने वाली सास और होने वाली बहू की कहानी है जिनके विचारों में विरोधाभास है। खुले विचारों को रखने वाली माँ अपने होने वाली आधुनिक बहू से आपसी असहमत हैं क्योंकि दोनों ने आपस में ऐसी शर्त रखी हैं कि बाद में रिश्ता ही टूट जाता है। बकुल की माँ चाहती है कि वह अपने बेटे के विवाह में कोई दहेज न लें तथा विवाह भी बिल्कुल सादगी से मंदिर या शांति घर में हो जिससे लड़की वालों का ज्यादा खर्चा न हो तथा वह चाहती है कि बेटे-बहू के साथ कोई आपसी कलह न हो इसलिए वह उन्हें अलग घर में रहने की सलाह देती हैं लेकिन लड़की होने वाली सास के विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं है- “वह फिर बोली आपने उनसे कहा कि शादी के बाद हमें अलग रहना होगा। लेकिन क्यों, मैं तो आपके साथ ही रहना चाहती हूँ।”¹² लड़की की सोच ‘बकुल’ की ‘माँ’ से बिल्कुल विपरीत थी वह सोचती है अगर कोई दहेज दे रहा है तो किसी को लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए- “लेकिन मेरा कहना तो यह है कि दहेज तो वह होता है जो मांगा जाए आप तो कुछ नहीं मांग रही लेकिन अगर माता-पिता दे सकते हैं और खुशी-खुशी देना चाहते हैं तो आप क्यों मना कर रही हैं। वैसे भी लड़की को उनके प्रॉपर्टी राइट्स तो मिलनी चाहिए।” एक स्त्री दूसरी स्त्री के लिए हैरान है कि वह आधुनिकता के चक्रव्यूह में इस तरह फंसे रही है कि उसे यह लगता है अगर माँ-बाप विवाह में खर्चा कर रहे हैं तो उसे ले लिया जाए उसे यह नहीं लगता अगर समाज में किसी लड़की के माँ-बाप इतना खर्चा न कर सके तो उसके बारे में सोचा भी जाए।¹³ और क्या फालतू के आदर्श उन लोगों के सामने बघारती फिरोगी, जो उन्हें समझ नहीं सकते तो लोग पागल ही कहेंगे। तुम्हें पता नहीं चलता कि कब किसके सामने क्या बात करनी चाहिए।”¹⁴ बेटे की बात सुनकर माँ स्तब्ध सी रह गई वह सोचने लगी कि क्या मेरी बहुत पुराने जमाने की सोच है जिस कारण लड़की वालों ने ही विवाह करने से मना कर दिया। “क्या वाकई मैं कई सदी पहले पैदा हो गई हूँ।”¹⁵ माँ का भाव केवल इतना ही था कि लड़की वालों को किसी भी प्रकार का कोई खर्चा ना उठाना पड़े लेकिन लड़की की सोच कुछ संकीर्ण थी जिस कारण वह स्वयं ही रिश्ता तोड़ देती है।

निष्कर्ष

एक स्त्री के जीवन में संघर्ष उसके बाल्यकाल से ही शुरू हो जाता है और वह संघर्ष जीवनपर्यंत रहता है और इन्हीं संघर्षों के चलते ही वह अपना शरीर तक कुर्बान करने के लिए आबरू हो जाती है। जिन्होंने उसे जन्म दिया है उन्हें ही अपने पारिवारिक कामकाज के लिए वह भूल जाती है या यह कहें कि वह अपने पारिवारिक जीवन में इतनी व्यस्त हो जाती है कि उन चीजों के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता। समाज में कितनी भी आधुनिकता क्यों न आ जाए लेकिन स्त्री को अपने जीवन में संघर्ष करना ही पड़ता है यह संघर्ष उसका घर की चाहरदीवारों से लेकर समाज के खुले वातावरण तक करना पड़ता है और यह संघर्ष भौतिक जीवन के भरण-पोषण से लेकर देह बेचने के संघर्ष तक चला जाता है लेखिका ने अपनी कहानियों में इस संघर्ष को बड़ी मनोवैज्ञानिकता से खुलकर चित्रण किया है तथा वह सदैव स्त्रियों के लिए ही आवाज उठाती रही हैं।

संदर्भ:

1. क्षमा शर्मा, नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2006, पृ. 79

2. वही, पृ. 83
3. क्षमा शर्मा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृ. 58
4. क्षमा शर्मा, नेमप्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2006, पृ. 59
5. वही, पृ. 62
6. वही, पृ. 65
7. क्षमा शर्मा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृ. 216
8. वही, पृ. 216
9. क्षमा शर्मा, रास्ता छोड़ो डार्लिंग, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृ. 128
10. वही, पृ. 128
11. वही, पृ. 135
12. नेम प्लेट, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, 2006, पृ. 161
13. वही, पृ. 70
14. वही, पृ. 163
15. वही, पृ. 163





सत्राची फाउंडेशन, पटना
शोध, शिक्षा एवं प्रकाशन की समाजसेवी संस्था

यह संस्था -

- साहित्यिक सम्मान देती है।
- शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है।
- पुस्तकें प्रकाशित करती है।
- सेमिनार आयोजित करती है।
- राजभाषा/राष्ट्रभाषा सेवियों को प्रोत्साहित करती है।
- शोधकर्ताओं को स्तरीय शोध के लिए प्रोत्साहित करती है।
- नेट/जे.आर.एफ. के अभ्यर्थियों को निशुल्क मार्गदर्शन देती है।
- हिन्दी साहित्य के शिक्षार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए तैयार करती है।